नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना

Social and Cultural Consciousness in the Novels of Nasira Sharma

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला–संकाय

शोधार्थी

प्रेमलता मीणा

शोध पर्यवेक्षक
डॉ. मुरलिया शर्मा

हिन्दी–विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2020

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled 'नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना' by **Smt. Premlata Meena** under my guidance. He has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of thesis.

Date :

Supervisor

(Dr. Muraliya Sharma)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that Ph.D Thesis **'नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना'** by **Smt. Premlata Meena** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.

e. The thesis has been checked using Plagiarism checker plagiarismchecker.com, and found with in limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

Premlata Meena	**Dr. Muraliya Sharma**
Research Scholar	**Research Supervisor**
Place :	Place :
Date :	Date :

शोध–सार

"नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना" शीर्षक पर आधारित इस शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी कथा–साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर एवं वरिष्ठ साहित्यकार नासिरा शर्मा द्वारा विरचित उपन्यासों को अध्ययन का विषय बनाया है। नासिरा शर्मा उन विरले रचनाकारों में से एक हैं जिनकी हर कृति का कैनवास बहुत विराट है। इनके उपन्यासों में गहरे शोध की छाया है। साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित एवं किस्सागोई के फ़न में माहिर नासिरा जी के उपन्यासों में नए–पुराने रिश्तों की दास्तान है, लुप्त होती संवेदनाओं की पड़ताल है, वैश्विक परिदृश्य में समाज की बंदिशों में जकड़ी हुई इंसानियत की चीख है तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक तंतुओं के ताने–बाने को गहराई समझने का सफल प्रयास है।

उनके प्रत्येक उपन्यास में समाज के विविध पक्षों को लेकर चिंतायें व्यक्त की गई हैं। **'सात नदियाँ : एक समन्दर'** ईरानी क्रान्ति पर लिखा गया दुनिया का पहला उपन्यास है, जो अब 'बहिश्ते–ज़हरा' के नाम से भी प्रकाशित हुआ है। **'शाल्मली'** स्वतन्त्रता के बाद अस्तित्व में आयी उस महिला की कहानी है जो वैचारिक रूप से परिपक्व है और वैवाहिक जीवन में प्रेम और बराबरी पर विश्वास रखती है। इसी तरह **'ठीकरे की मंगनी'** में आजादी के बाद की संघर्षशील लड़की जो अपनी मेहनत और काबिलियत से साबित करती है कि पितृसत्ता में औरत की एक अपनी पहचान भी होती है। **'ज़िंदा मुहावरे'** में हिन्दुस्तान के बँटवारे से उपजे दर्द का, **'अक्षयवट'** में कुव्यवस्था व कदाचार के विरुद्ध संघर्षरत युवा पीढ़ी की मनोव्यथा का, **'कुइयाँजान'** में दिनों–दिन विकराल होती जल–व्यवस्था व शुष्क होती संवेदनाओं का, **'ज़ीरो रोड'** में अपने देश में हालात से उखड़े हुए लोगों के यथार्थपरक जीवन का, **'पारिजात'** में संस्कृति और परम्परा की बाड़ेबंदियों के आर–पार जाकर संबंधों के नए सूत्र खोजने की कोशिश का, **'अजनबी जज़ीरा'** में इराक़ की बदहाली व उससे उत्पन्न दारुण स्थितियों का, **'कागज़ की नाव'** में स्थानीय बेरोजगारी, पलायन और ज़रूरतों व ज़िम्मेदारियों के समन्दर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश का, **'शब्द पखेरू'** में बाज़ार और तकनीक के भँवरजाल में चकराई सी युवा पीढ़ी का तथा **'दूसरी जन्नत'** में आधुनिकता की तेज़ रफ़्तार पटरी पर फिसलती ज़िन्दगी तथा मुस्लिम समाज में आ रहे बदलावों का जीवन्त चित्रण है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में इन सभी उपन्यासों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर चिंतन–मनन करने का प्रयास किया गया है, जिसका संक्षिप्त शोध–सार निम्न प्रकार है–

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध उपसंहार सहित कुल सात अध्यायों में विभक्त है। **प्रथम अध्याय** में उपन्यासों की सृजनकार नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व के विविध आयामों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। साथ ही उनके व्यक्तित्व के नियामक तत्त्वों एवं विभिन्न प्रभावों का निरूपण भी किया गया है।

द्वितीय अध्याय में नासिरा जी की सृजन–यात्रा की विविध धाराओं का परिचयात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही अनुसंधेय औपन्यासिक रचनाओं का वस्तुविश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए उनमें नामकरण एवं शीर्षक के अनुरूप अन्तर्निहित जीवन–दर्शन को निस्यूत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में समाज एवं सामाजिक चेतना के अर्थ, स्वरूप, परिभाषा आदि पर विचार करते हुए नासिरा जी के उपन्यासों में अन्तर्निहित सामाजिक चेतना के विविध पहलुओं को समझने का उपक्रम है। इसके अन्तर्गत धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, दलित तथा नारी विषयक लेखिका की दृष्टि व बोध विवेचित है।

चतुर्थ अध्याय में संस्कृति एवं सांस्कृतिक चेतना के अर्थ, स्वरूप, परिभाषा आदि के आधार पर विचार करते हुए नासिरा जी की औपन्यासिक रचनाओं में अन्तर्निहित सांस्कृतिक चेतना के विविध रूपों पर लेखकीय दृष्टिकोण को समझने का प्रयास है। रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार, आभूषण, परम्पराएँ, संस्कार, सांस्कृतिक मूल्य इत्यादि पर उपन्यास क्रम से विषयवार विवेचन प्रस्तुत किया है।

पंचम अध्याय में विवेचित उपन्यासों में अन्तर्निहित विविध समस्याओं जैसे स्त्री–पुरुष असमानता, संतानहीनता, नारी–शिक्षा, बाल–विवाह, दहेज की समस्या, गाँवों की उपेक्षा, भ्रष्टाचार, अन्याय व शोषण, जातिवाद, ऊँच–नीच, छुआछूत, साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास, बुजुर्गों की उपेक्षा, सूचना क्रांति के बढ़ते दुष्प्रभाव, एड्स की भयावहता, वेश्यावृत्ति, लेसबियन संबंध, बेरोजगारी, बाजारीकरण, ऐतिहासिक धरोहर की उपेक्षा, विभाजन का दंश, बच्चों के साथ अमानवीयतापूर्ण व्यवहार, मजदूर वर्ग की दयनीय स्थिति, जल की कमी का चित्रांकन करते हुए उनके सम्बन्ध में लेखकीय दृष्टि व समाधानों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

षष्ठ अध्याय में नासिरा जी के उपन्यासों की शैल्पिक चेतना के संयोजन–सूत्र संरचनाओं के आधार पर तलाशने की चेष्टा है। इसमें रचना–विधान के स्वरूप, रचनाओं के अन्तः एवं बाह्य स्वरूप–विवेचन, कथानक, पात्र–चित्रण, भाषा एवं भाषा–सौंदर्याधायक तत्त्व, शब्द व वाक्य प्रयोग, शैलीगत विविधता, उपन्यासों के शीर्षकों की सार्थकता इत्यादि के आधार पर लेखकीय प्रतिभा एवं कौशल को जानने का प्रयास है।

उपसंहार के अन्तर्गत विवेचित उपन्यासों की अध्ययनगत उपलब्धियों, निष्कार्षों, संभावनाओं तथा उद्घाटित वातायनों को विद्वज्जनों के समक्ष संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

इसके अलावा प्रत्येक अध्याय से पूर्व विवेच्य विषय के सार–स्वरूप उपन्यासों में द्योतित लेखिका के विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है।

♦♦♦♦

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled **'नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना'** in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Muraliya Sharma and submitted to the research center University of Kota, University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution.

I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date :

Premlata Meena

Place :

This is to certify that the above statement made by Smt. Premlata Meena (Registration No. RS/1411/13 is correct to the best of my knowledge.

Dr. Muraliya Sharma

Supervisor

प्राक्कथन

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावण हार।।

गुरु स्वरूप जगदीश्वर को नमन, जिसकी अनुकम्पा व असीम कृपा से मुझे शैक्षिक परिवेश मिला और मैं शिक्षा के महत्त्व को समझ पायी। माँ शारदा के अनुग्रह से उच्च शिक्षा के प्रति अभिलाषा जाग्रत हुई और हिन्दी साहित्य में अवगाहन करने का अवसर मिला। हिन्दी भाषा और साहित्य से एक बार परिचय हो जाने पर उसके रसास्वादन से विरत हो जाना किसी संवेदनशील हृदय के बस की बात नहीं और यह रसास्वादन आश्रित होता है लेखकीय प्रतिभा और शैल्पिक वैशिष्ट्य पर।

"लेखन का अर्थ केवल आपबीती कहना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है। बल्कि उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि वह आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"

कथाकार नासिरा शर्मा की आत्मानुभूतिपरक इस उक्ति के अनुसार लेखक की लेखकीय प्रतिभा समाजोपयोगी व प्रभावशाली सृजन का आधार बनती है। एक संवेदनशील लेखक की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा जब स्वर्णमय कलेवर से आवृत्त मिथ्या के भीतर स्थित अन्तःसत्ता का साक्षात्कार करती है तब वह लेखक की संवेदनामूलक अजस्र काव्यधारा के रूप में प्रस्फुटित हो उठती है। चिंतन और सृजन के सहज प्रस्फुटन की इस प्रक्रिया में रचनाकार मानव–हृदय से एकाकार होकर उसकी संवेदनाओं को महसूस करता है तथा उसके हृदय की गहराईयों तक जाकर व उसकी पीड़ाओं को यथोचित समाधान की दिशा देकर जीवन को आनन्दानुभूति से परिपूर्ण कर देता है और वस्तुतः सृजन का यही लक्ष्य है। रचनाकार की हृदयानुभूति की शब्दार्थरूप सम्यक् अभिव्यक्ति सकल समाज के मूल स्वरूप को, उसकी पीड़ा को, उसके आचार–विचारों को, मनोभावों को व संवेदनाओं को प्रतिबिम्बित करती है, उनको समाधान की दिशा प्रदान करती है तथा भटकाव से हटाकर ध्येय मार्ग की ओर उन्मुख करती है। साथ ही रचना–वैशिष्ट्य भी स्वतः साकार हो उठता है। इसलिए 'साहित्य समाज का दर्पण है' यह उक्ति पूर्णतः सत्य है।

आदिकाल से लेकर अद्यावधि हिन्दी साहित्य–सरिता सहज व सरल रूप में प्रवाहमान होती हुई विश्व–साहित्य में अपना अप्रतिम स्थान बनाये हुये है। कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तान्त, संस्मरण, आत्मकथा, आलोचना, डायरी, नाटक, रेडियो रूपक, लघुकथा, लेख–संग्रह, अनुवाद, संपादन कविता संग्रह आदि समस्त समृद्ध विधाओं रूपी रत्नों को धारण करने वाले हिन्दी साहित्य का सृजन अनवरत रूप से हो रहा है और नित नये आयाम व स्वरूपों के रूप में विकसित हो रहा है। हिन्दी

साहित्य के अवलोकन से प्रतीत होता है कि साहित्य सृजन की प्रक्रिया में गद्य–साहित्य ही सर्वप्रथम सहज रूप से प्रस्फुटित हुआ है। हिन्दी गद्य–साहित्य का उदीयमान सितारा भारतेन्दु युग से देखने को मिलता है। भारतीय एवं भारतेतर साहित्य पर अपना व्यापक प्रभाव स्थापित करने वाले कथा साहित्य का विशाल संसार भारतेन्दु युग से लेकर अद्यावधि अत्यन्त लोकप्रिय, उपादेय एवं समृद्ध रूप में विराजमान है। वैसे तो साहित्य की प्रत्येक विद्या में 'कथा तत्त्व' मूल रूप से विद्यमान रहता है, परन्तु लोक जीवन में शुद्ध कथा–विधा में कोई अद्‌भुत ही बात होती है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी कथा–साहित्य का एक नया रूप 'उपन्यास' के रूप में उद्‌भूत हुआ। उपन्यास शब्द 'उप अर्थात् समीप' तथा 'न्यास' अर्थात् धरोहर के शब्द–योग से निर्मित है। इस शब्द का मूल अर्थ है– 'पास में रखी हुई वस्तु'। यह साहित्य की आधुनिक विधा है। इस विधा में मानव जीवन को सर्वांगीण रूप में चित्रित किया जाता है। इसमें मुख्य कथा के साथ अन्य प्रासंगिक कथाएँ भी जुड़ी रहती हैं। उपन्यास में चरित्र विकास हेतु पूर्ण अवकाश भी मिल जाता है। यह कहानी की भाँति जीवन की एक झांकी प्रस्तुत नहीं करता अपितु जीवन का प्रत्यक्ष, सम्पूर्ण एवं बृहद् दर्शन कराता है।

आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बंगला उपन्यास को दिया जा सकता है, क्योंकि हिन्दी में इस विधा का श्रीगणेश अंग्रेजी एवं बंगला उपन्यासों की लोकप्रियता से हुआ। सन् 1853 ई. में वंशीधर द्वारा थामस डे के लोकप्रिय उपन्यास 'सेण्डफोर्ड एण्ड मर्टन' का अनुवाद किया गया तथा 1879 ई. में डॉ. जानसन के उपन्यास 'रासेलास' का भी हिन्दी में अनुवाद किया गया। हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास के संबंध में विद्वानों में मतभेद रहा है। इस संबंद्ध में श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (सन् 1877 ई.) तथा लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखा गया 'परीक्षा गुरू' (सन् 1882 ई.) इन दो उपन्यास का नाम लिया जाता है। परन्तु 'परीक्षा गुरू' को ही अधिकांश विद्वान् हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। प्रेमचन्द को हिन्दी उपन्यासकारों में केन्द्र बिन्दु मानते हुए हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम को निम्न तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं–

1. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
2. प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास
3. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, बाबू वृन्दावल लाल वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, फणीश्वरनाथ 'रेणु', श्रीलाल शुक्ल, मोहन राकेश, मन्नु भण्डारी, उषा प्रियंवदा, भीष्म साहनी, मनोहर श्याम जोशी, धर्मवीर भारती आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक उपन्यासों में विषय–वैविध्य के साथ–साथ शैलियों के भी विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र–शैली, वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली आदि विविध शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों की सूची में 'नासिरा शर्मा' एक प्रख्यात

एवं चर्चित उपन्यासकार के रूप में विराजमान हैं। नासिरा जी ने अपने 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'सात नदियाँ एक समन्दर (बहिश्ते–ज़हरा)', 'ज़िन्दा मुहावरे', 'अक्षयवट', 'कुइयाँजान', 'ज़ीरो रोड़', 'पारिजात', 'अजनबी जज़ीरा', 'काग़ज़ की नाव', 'शब्द पखेरू' एवं 'दूसरी जन्नत' इन दर्जन भर उपन्यासों में अधुनातन विषयों में आबद्ध, आधुनिक भारतीय नारी, स्त्री–विमर्श, संघर्ष एवं विद्रोह, जीवन की गहन जकड़न और समय की विसंगतियाँ, कुण्ठा, मूल्यों का ह्रास, हिन्दु–मुस्लिम सौहार्द्रता, शोषण व अन्याय, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, ग्राम्य जीवन व पलायन की प्रवृत्ति, बाजारीकरण, सूचना व तकनीकी के दुरुपयोग व दुष्प्रभाव, जल की व्यथा, शुष्क होती संवेदना तथा अतीत व भविष्य के स्वरूप को अत्यन्त बारीकी से उकेरा है। उनके उपन्यासों में समकालीन समाज स्फटिक की भाँति प्रतिबिम्बित होता है। उनमें सर्वसाहित्यावगाही विलक्षण रचनाधर्मिता है।

अतः उपर्युक्त माहात्म्य से समाविष्ट हिन्दी साहित्य से स्नातकोत्तर व एम.फिल पूर्ण करने के बाद, पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी, हिन्दी भाषा के माधुर्य से परिपूर्ण साहित्यामृत का कुछ और रसपान करने की पिपासा प्रबल बनी रही। इसकी पूर्ति हेतु ही शोधकार्य में प्रवृत्ति हुई। शोध–विषय का प्रश्न उपस्थित होने पर आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर एवं वरिष्ठ साहित्यकार नासिरा शर्मा सर्वप्रथम बुद्धिपटल पर उपस्थित हुईं। अतः निश्चय हो गया कि समकालीन हिन्दी लेखिकाओं में बहुचर्चित और बहुप्रशंसित नासिरा जी की रचनाओं को ही शोध का विषय बनाना है। पर उनका लेखनकर्म इतना विस्तृत है कि मोह त्याग कर चयन करना अनिवार्य हो गया। विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास विधा की ओर मेरी विशेष रूचि रही है। अतः उनके उपन्यासों पर शोध कार्य करना तय हुआ। नासिरा शर्मा उन विरले रचनाकारों में से एक है जिनकी हर औपन्यासिक कृति का कैनवास बहुत विराट है। उनके उपन्यास अपनी गंगा–जमुनी संस्कृति, मौलिकता, उपादेयता, संवेदनशीलता, यथार्थता इत्यादि दृष्टि से असाधारण स्थान रखते हैं।

शोध–विषय को लेकर अपनी शोध–पर्यवेक्षक आदरणीया डॉ. मुरलिया शर्मा से चर्चा की। उन्होंने यथोचित परामर्श के साथ सहर्ष अनुमति दे दी। महोदया की विद्वत्ता व सरलता तथा सहृदयता ने शोध की इस कठिन डगर को पर्याप्त सरल बना दिया। उनके मार्गदर्शन व सुझावों ने इस कार्य को पूरा करने में अत्यधिक सहायता की अथवा कहूँ कि उनके दिशा–निर्देश के बिना सही मार्ग पर चल पाना सम्भव नहीं था। इंगितों से मार्ग बता देने वाले मार्गदर्शक की महत्ता एक पथिक से अधिक कौन जान सकता है। शोध मार्ग की यह पथिक अपनी पथ–प्रदर्शिका की ऋणी है कि उसे पथ–विमुख होने से बचाकर लक्ष्य तक पहुँचा दिया, साथ ही मार्ग को निष्कंटक करने में भी पूर्ण सहयोग किया। उनके सहज स्मित स्वभाव ने तो शोधार्थी के श्रम परिहार का कार्य करते हुए शोध कार्य को बोझिल होने से बचाया।

मेरे परम आदरणीय माता–पिता, जिन्होंने मेरी शिक्षा प्राप्ति की ललक को पहचाना और इस हेतु अपनी क्षमता से भी अधिक सहायता की। माता–पिता के ऋण से उऋण होना वैसे ही सन्तान के लिए असम्भव है और फिर जब ऋण भार सामान्य से भी अधिक हो तो उसे चुकाने का विचार भी करना मूर्खता है। ईश्वर से बस इतनी ही प्रार्थना की जा सकती है कि उनके इस दाय का सम्मान कर सकूँ व उनकी सेवा व आज्ञा पालन करके अपने सौभाग्य में अभिवृद्धि कर सकूँ।

भाई–बहिनों, परिवार व आत्मीयजनों का निश्छल स्नेह निश्चय ही जीवन में प्रेरक का कार्य करता है। इस प्रेरणा व स्नेह के लिए आभारी हूँ।

जीवनसाथी डॉ. समय सिंह जी का धन्यवाद ज्ञापन उचित प्रतीत नहीं होता। मेरा परिश्रम व प्राप्ति सब उन्हीं के हैं। पारिवारिक दायित्वों में मेरे हिस्से को भी उन्होंने सहर्ष वहन किया। मानसिक निश्चिन्तता व लेखन हेतु समय मिलना उनके सहयोग के बिना सम्भव ही नहीं था, किन्तु कार्य तो पूरा शरीर ही करता है, आधा नहीं। अतः यह उन्हीं का कार्य था, उन्होंने ही किया, इसके लिए आभार प्रदर्शन करके उनके महत्त्व को कम नहीं करना चाहती।

अपने पुत्र आदित्य व पुत्री हिमांशी को सस्नेह आशीर्वाद देना आवश्यक है। उन्होंने न केवल अपनी बाल–क्रीडाओं से मेरे क्लान्त होते तन–मन को ऊर्जा से परिपूर्ण बनाए रखा अपितु इस कार्य में व्यय होते अपने हिस्से के समय को भी सहजता से स्वीकार कर लिया। यदा–कदा अपनी बालसुलभ हँसी से धो लेने वाले दोनों बच्चों के सुखद भविष्य हेतु शुभाशंसा।

सम्माननीय सास–ससुर के वात्सल्य व प्रेरणा को कदापि कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। उन्होंने हमेशा मेरी सराहना की और मुझे जीवन में आगे बढ़ने, सतत परिश्रम व स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया। सादर आभार व वन्दन।

मेरे दीदी–जीजाजी डॉ. मंजु मीना–डॉ. भरत सिंह मीना, डॉ. हेमलता मीना–डॉ. महेश चन्द मीना, मेरे प्रिय भाई डॉ. नरेन्द्र कुमार मीना और मेरी समस्त अनुजाओं की प्रेरणा व स्नेह ने शोध के इस सुदीर्घ मार्ग में पाथेय व सम्बल का कार्य किया। मेरी कार्य–सिद्धि से उनकी सन्तुष्टि व प्रसन्नता ही उनका प्राप्य है, मेरे द्वारा ज्ञापित धन्यवाद नहीं।

मेरे प्रिय गुरुवर डॉ. शिवशरण कौशिक जी जिनका मार्गदर्शन मुझे विद्यार्थी जीवन के हर पड़ाव पर मिलता रहा है। विषय सम्बन्धी क्लिष्टताओं का सरलीकरण कर मेरा अवबोधन व पथप्रशस्त किया। इसके अलावा डॉ. अनीता वर्मा जी जिन्होंने समय–समय पर प्रोत्साहित किया, बहुमूल्य सुझाव दिए तथा आवश्यक साहित्य से परिचय करवाया। आग्रहपूर्वक दी गई अमूल्य सहायता को सौभाग्य समझ कर ग्रहण करती हूँ। धन्यवाद सहयोग का मूल्य नहीं हो सकता।

उन सभी इष्ट मित्रों व आत्मीयजनों की आभारी हूँ, स्थानाभाव के कारण जिनका नामोल्लेख नहीं कर पायी, किन्तु जिनके हास–परिहास व प्रेरणा ने मुझे प्रमादी होने से बचाया।

अन्त में मैं कुशल, अत्रुटिपूर्ण एवं तत्परता से टंकण कार्य करने के लिए शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने इस शोध–प्रबन्ध को साकार रूप दिया, वह प्रशंसनीय हैं। वर्तनी संबंधी अशुद्धियों को शुद्ध करने का मैंने यथासम्भव प्रयास किया हैं फिर भी टंकण संबंधी कोई त्रुटियाँ रह गयी हो, तो मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

अल्पबुद्धि व यथासाध्य श्रम से जो कुछ कर पायी हूँ, विद्वज्जनों के सम्मुख प्रस्तुत है। यदि मेरा प्रयास थोड़ा भी सफल हो पाया तो यह ईश्वर की अनुकम्पा, गुरुकृपा व गुरुजनों के आशीर्वाद एवं स्नेही परिवारजन व आत्मीय मित्रों के प्रेम का परिणाम है। त्रुटियाँ तो निःसन्देह मेरी अल्पज्ञता का ही परिणाम हैं। सुधीजन त्रुटियों को क्षमा कर स्नेहाशीर्वाद प्रदान करेंगे, इसी आकांक्षा के साथ....।

शोधार्थी

प्रेमलता मीणा

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

शोध–सार i - iii

प्राक्कथन iv - viii

प्रथम अध्याय : नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व परिचय 1–29

(क) नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व का सामान्य परिचय

1. जन्म
2. परिवार
3. शिक्षा
4. व्यवसाय
5. विवाह
6. नैसर्गिक वैशिष्ट्य
7. अभिरुचि

(ख) नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व के नियामक तत्त्व

1. पारिवारिक वातावरण
2. शैक्षिक वातावरण
3. बाल्यकालीन स्मृतियाँ एवं अनुभव
4. इलाहाबाद का वातावरण
5. वैवाहिक वातावरण
6. वैदेशिक सम्पर्क व यात्राएँ
7. युगीन परिवेश

7.1 सामाजिक परिवेश

7.2 राजनीतिक परिवेश

7.3 आर्थिक परिवेश

7.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

(ग) पुरस्कार व सम्मान

निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय : नासिरा शर्मा की सृजन यात्रा के विविध आयाम 30–77

(क) नासिरा शर्मा की सृजन यात्रा : एक परिचय

(ख) नासिरा शर्मा के कहानी–संग्रह

1. शामी कागज
2. पत्थर गली

3. संगसार
4. इब्ने मरियम
5. सबीना के चालीस चोर
6. खुदा की वापसी
7. इनसानी नस्ल
8. शीर्ष कहानियाँ
9. दूसरा ताजमहल
10. बुतखाना

(ग) उपन्यास साहित्य

1. शाल्मली
2. ठीकरे की मंगनी
3. ज़िन्दा मुहावरे
4. सात नदियाँ एक समन्दर (बहिश्ते–ज़हरा)
5. अक्षयवट
6. कुइयाँजान
7. ज़ीरो रोड
8. पारिजात
9. अजनबी जज़ीरा
10. काग़ज़ की नाव
11. शब्द पखेरू
12. दूसरी जन्नत

(घ) राजनीतिक विश्लेषणपरक रचनाएँ

1. मरजीना का देश–इराक 2003
2. अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान 1990
   (i) अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान–देश और क्रान्ति (भाग–1)
   (ii) अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान–क्रान्ति और पड़ोसी देश (भाग–2)

(ङ) लेख–संग्रह

1. किताब के बहाने
2. राष्ट्र और मुसलमान
3. औरत के लिए औरत
4. औरत की दुनिया
5. वो एक कुमारबाज़ थी
6. औरत की आवाज

(च) रिपोर्ताज–जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं
(छ) संस्मरण–यादों के गलियारे
(ज) अनुवाद
1. क़िस्सा जाम का
2. शाहनामा–ए–फ़िरदौसी
3. प्रेम कथा
4. अन्य अनूदित रचनाएँ
(झ) संपादित रचनाएँ
1. इकोज़ ऑफ ईरानियन रिवोल्यूशन : प्रोटेस्ट पोयटरी
2. क्षितिज पार
3. अन्य सम्पादन
(ञ) आलोचना ग्रन्थ
(ट) बाल साहित्य
(ठ) नाट्यरूपान्तरण
निष्कर्ष

तृतीय अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना **78–150**

(क) समाज का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा
(ख) सामाजिक चेतना : अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा
(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यास : सामाजिक चेतना के विविध रूप
1. धार्मिक चेतना
2. आर्थिक चेतना
3. राजनीतिक चेतना
4. सामाजिक चेतना
5. ऐतिहासिक चेतना
6. दलित चेतना
7. नारी–चेतना
निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना के विविध आयाम **151–233**

(क) संस्कृति : अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा
(ख) सांस्कृतिक चेतना : अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा
(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना : विविध आयाम
1. शाल्मली : सांस्कृतिक चेतना
2. ठीकरे की मंगनी : सांस्कृतिक चेतना

3. ज़िन्दा मुहावरे : सांस्कृतिक चेतना
4. सात नदियाँ एक समन्दर (बहिश्ते–ज़हरा) : सांस्कृतिक चेतना
5. अक्षयवट : सांस्कृतिक चेतना
6. कुइयाँजान : सांस्कृतिक चेतना
7. ज़ीरो रोड : सांस्कृतिक चेतना
8. काग़ज़ की नाव : सांस्कृतिक चेतना
9. अजनबी जज़ीरा : सांस्कृतिक चेतना
10. पारिजात : सांस्कृतिक चेतना
11. शब्द पखेरू : सांस्कृतिक चेतना
12. दूसरी जन्नत : सांस्कृतिक चेतना

पंचम अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में अंतनिर्हित समस्याएँ **234–272**

1. स्त्री–पुरुष असमानता
2. संतानहीनता
3. नारी शिक्षा
4. बाल विवाह
5. दहेज की समस्या
6. गाँवों की उपेक्षा
7. भ्रष्टाचार
8. अन्याय व शोषण
9. जातिवाद, ऊँच–नीच, छुआछूत
10. साम्प्रदायिकता
11. अन्धविश्वास
12. बुर्जुगों की उपेक्षा
13. सूचना क्रांति के बढ़ते दुष्प्रभाव
14. एड्स की भयावहता, वेश्यावृत्ति एवं लेसबियन सम्बन्ध
15. बच्चों के साथ अमानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं अत्याचार
16. बेरोजगारी
17. मजदूर वर्ग की दयनीय स्थिति
18. भौतिकवाद एवं बाजारीकरण
19. जल की कमी
20. ऐतिहासिक धरोहर की उपेक्षा
21. विभाजन का दंश

निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों का रचना विधान **273–366**

(क) रचना–विधान से अभिप्राय एवं स्वरूप

(ख) नासिरा शर्मा के उपन्यास : अन्तःस्वरूप विवेचन

(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यासों में पात्र–परिकल्पना

(घ) नासिरा शर्मा के उपन्यासों का भाषागत वैशिष्ट्य

1. भाषा व बोली
2. शब्द प्रयोग
3. वाक्य प्रयोग
4. भाषा सौंदर्याधायक तत्त्व

4.1 मुहावरे

4.2 लोकोक्तियाँ व कहावतें

4.3 लोकगीत

4.4 नवीन अभिव्यंजना और उपमाएँ

4.5 बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक योजना

4.5.1 बिम्ब योजना

4.5.2 प्रतीक योजना

4.5.3 मिथक योजना

5. भावानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा

(ङ) शैलीगत वैशिष्ट्य

1. शैली का अर्थ, स्वरूप एवं विशेषताएँ
2. नासिरा शर्मा के उपन्यासों का शैलीगत विवेचन

2.1 वर्णनात्मक शैली

2.2 पूर्वदीप्ति शैली

2.3 चित्रात्मक शैली

2.4 व्यंग्यात्मक शैली

2.5 विश्लेषणात्मक शैली

2.6 स्मृतिपरक अथवा फ्लैश बैक शैली

2.7 संवादात्मक शैली

2.8 सूचनात्मक शैली

2.9 मनोविश्लेषणात्मक शैली

2.10 पत्रात्मक शैली

2.11 डायरी व पुस्तक लेखन शैली

2.12 वक्तव्य एवं उद्‌बोधन शैली

2.13 कथा शैली

(च) नासिरा शर्मा के उपन्यासों के शीर्षकों की सार्थकता

निष्कर्ष

उपसंहार **367–380**
शोध–संक्षेपिका **381–398**
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **399–411**
(क) नासिरा शर्मा के ग्रन्थ
(ख) सहायक–ग्रन्थ
(ग) व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ
(घ) शोध–पत्रिकाएँ
(ङ) संकेत स्थल
प्रकाशित शोध–पत्र
1. अजीब नामहरुमी से भरी जिन्दगी है यह!
2. नासिरा शर्मा के उपन्यास और सामाजिक बोध

प्रथम अध्याय

नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व परिचय

"एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो।"

—ठीकरे की मंगनी / 197

प्रथम अध्याय

नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व परिचय

समकालीन हिन्दी लेखिकाओं में नासिरा शर्मा बहुचर्चित और बहुप्रशंसित कथा लेखिका हैं। सृजनात्मक लेखन के साथ ही स्वतन्त्र पत्रकारिता में भी उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। वह ईरानी समाज और राजनीति के अतिरिक्त साहित्य, कला व सांस्कृतिक विषयों की विशेषज्ञ हैं। हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी एवं पश्तो भाषाओं पर उनकी गहरी पकड़ है। इराक, ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, सीरिया तथा भारत के राजनीतिज्ञों तथा प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों के साथ उनके साक्षात्कार बहुचर्चित हुए हैं जिनसे उन समाजों के विषय में बहुमूल्य जानकारी प्राप्त होती है। युद्धबन्दियों पर जर्मन और फ्रेंच दूरदर्शन के लिए बनी फिल्म में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत एवं हिन्दी की सजग व सक्रिय कथाकार नासिरा शर्मा एक ऐसी शख्सियत है जो एक लम्बे अरसे से पश्चिम एशियाई समाज की समस्याओं व सामान्य जनमानस के दुःख–दर्द पर अनवरत लिखती आयी हैं। उनके लेखन में एक संवेदनशील रचनाकार और विचारक प्रतिबिम्बित होता है। साथ ही साहित्यिक मानदण्डों की गहरी समझ, सामाजिक समस्याओं से सरोकार और मानवीय मूल्यों की स्थापना के प्रति प्रतिबद्धता भी द्योतित होती है। इसी प्रतिबद्धता के कारण उनके अन्दर अन्तनिर्हित लेखक देश–काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर बाहर से अनुभव बटोर लाता है तथा महिला लेखन से जुड़ी भ्रांतियों को चुनौति देता हुआ समकालीन लेखन की अगली पंक्ति में पूरे दम–खम के साथ आ खड़ा होता है।

नासिरा शर्मा उन विरले रचनाकारों में से एक हैं जिनकी हर कृति का कैनवास बहुत विराट है। उनके साहित्य में गंगा–जमुनी संस्कृति का अद्‌भुत संगम देखने को मिलता है। हिन्दी कथा साहित्य में उनका लेखन–संसार मौलिकता एवं गुणात्मकता की दृष्टि से असाधारण स्थान रखता है। उन्होंने पाठकों को जितना अपनी कहानियों और उपन्यासों से प्रभावित किया है उतना ही निबन्ध, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि के माध्यम से हिन्दी साहित्य के कोष को समृद्ध किया है। उनके साहित्य में परिलक्षित वैचारिक सुस्पष्टता सर्वाधिक प्रभावित करती है। लेखन के सम्बन्ध में उनका मानना है कि "लेखन का अर्थ केवल आपबीती करना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है। उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता

है कि वह आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"[1] इसके अलावा पुनश्च के संपादक दिनेश द्विवेदी के साथ हुए एक साक्षात्कार में नासिरा जी कहती हैं, "बिना मकसद के उस लेखन से क्या फायदा, जो गिनती में हो। मुझे पता है मेरे इस लेखन से ईरान का वह तबका फैजयाब हो रहा है जो कल जिंदा नहीं बचेगा, क्योंकि गिन–गिनकर मारा जा रहा है।"[2] इस प्रकार सामाजिक सरोकारों से गहरी संपृक्ति रखने वाली नासिरा शर्मा के लेखन में उन सांस्कृतिक तंतुओं को बड़ी ही सघनता से पहचाना जा सकता है जो पूरे भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं, बल्कि पूरी पश्चिम एशियाई पट्टी तक पसरे हुए हैं और जिनकी सभ्यतागत रगड़ के बीच इस समूचे समाज की रचना होती है।

यद्यपि नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर शोध मेरा प्रत्यक्ष विषय नहीं है तथा उनके उपन्यासों में निहित सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का समग्र अध्ययन करना ही मेरा प्रमुख लक्ष्य है, परन्तु किसी साहित्यकार के कृतित्व की महत्ता व्यक्तित्व की प्रामाणिकता से ही सिद्ध की जा सकती है। चूँकि नासिरा शर्मा हिन्दी कथा साहित्य की पुरोधा हैं, एक संवेदनशील साहित्यकार हैं, समाज की सूक्ष्म अध्येता हैं, मानवता की पक्षधर हैं, मानव मन की कुशल मनोविश्लेषक हैं, मनोभावों की मूर्तिकार हैं, शब्द साम्राज्ञी हैं, वाग्विदग्ध हैं, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं की रक्षक हैं, युगानुकूल परिवर्तनों की प्रबल पक्षधर हैं, समाज की जड़ों को खोखला करने में लगी हुई विसंगतियों को सुसंगतियों में बदलने की समर्थक हैं। अतः उनके उपन्यासों में निहित सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतनामूलक तत्त्वों के अन्वेषण से पूर्व उनके समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक बिहंगम दृष्टिपात करना एक तरह से विषय–प्रवेश एवं भावभूमि–निर्माण के लिए अपेक्षित था। अतः यहाँ सिर्फ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के परिचयात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करना ही मेरा अभीष्ट है।

(क) नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व का सामान्य परिचय

1. जन्म

नासिरा शर्मा का जन्म एक शिक्षित और सम्पन्न शिया मुस्लिम परिवार में 22 अगस्त, 1948 को उत्तरप्रदेश को साहित्यिक नगरी इलाहाबाद में हुआ।[3] उनका पारिवारिक नाम 'नासिरा अली' है। शादी के उपरान्त अपने पति रामचन्द्र शर्मा के नाम से उपनाम 'शर्मा' ग्रहण कर 'नासिरा शर्मा' नाम पड़ा। उस समय इलाहाबाद हिन्दी साहित्यिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था। निश्चय ही परिवेशगत वैशिष्ट्य ने नासिरा में अन्तर्निहित साहित्यिक चेतना को विकसित करने में पोषण का कार्य किया।

2. परिवार

नासिरा जी के पिता प्रोफेसर जामिन अली उर्दू के जाने–माने विद्वान् होने के साथ–साथ प्रगतिशील विचारों वाले अच्छे कवि भी थे। माँ नाझनीन बेगम गृहिणी थी। नासिरा शर्मा के दो भाई और दो बहिनें हैं। बड़े भाई सय्यद मोहम्मद हैदर अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन कार्य करते हैं। दूसरा छोटा भाई सय्यद मज़हर हैदर एक पत्रकार है। दोनों बहिनें साहित्य सृजन में रूचि रखती हैं। बड़ी बहिन फात्मा उर्दू की प्रसिद्ध लेखिका रही है। मझली बहिन का नाम शायरा है। बड़े अब्बा, दादा सब ही कवि थे। इस प्रकार नासिरा जी की माँ के अलावा परिवार के सभी सदस्य साहित्य सृजन में रूचि रखते है। माँ गृहस्थी की गाड़ी को संभालती थी। उन्होंने घर में बच्चों में आपसी व्यवहार और बोलचाल के सलीके की बुनियाद डाली। परिवार के साहित्यिक वातावरण ने नासिरा जी को लेखकीय विरासत धरोहर स्वरूप प्रदान की। अपने खानदान के बारे में वे लिखती हैं– "मेरा परिवार केवल पढ़ा–लिखा नहीं था बल्कि शायरों का एक सिलसिला रखता था। घर में मर्दों के लिखे कसीदे, परिंदे, नौहे और गज़लें औरतों द्वारा पढ़ी और सराही जाती थी।"[4]

नासिरा जी जब केवल सात साल की थी, तब ही उनके पिता का इन्तकाल हो गया था।[5] माँ के साथ पूरे पचास साल वे रही हैं। नासिरा जी अपने पिता को याद करती हुई कहती हैं कि– "जब मैं छोटी थी तब उनकी मृत्यु हुई मगर उनकी चर्चा हमेशा रही। उनके उसूल, पसंद, व्यवहार, सोच पर इतने लोग बातें करते थे कि अनजाने ही हम इन सारी बातों पर चलने और मानने लगे।"[6]

3. शिक्षा

नासिरा शर्मा परिवार के कुल पाँच बच्चों में सबसे छोटी थी इसलिए उनका बचपन बहुत ही लाड़–प्यार में बीता। परिवार में पढ़े–लिखे लोगों के बीच उनकी शिक्षा घर पर ही प्रारम्भ हुई। वे अपनी माँ को ही अपना पहला गुरु मानती है। उनकी प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा इलाहाबाद के कान्वेंट स्कूल में हुई तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् 1967 में उन्होंने बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली से फारसी भाषा साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और पश्तो भाषा पर गहरी पकड़ होने के कारण ईरान उनके साहित्यिक शोध का विषय रहा है।

4. व्यवसाय

अपनी शिक्षा पूरी होने पर नासिरा शर्मा ने सन् 1980 से 1983 तक दिल्ली स्थित जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में फारसी और उर्दू भाषा पर अध्यापन कार्य किया। परन्तु सृजन कार्य की

व्यस्तता तथा अध्ययन हेतु बार–बार विदेश यात्रा पर जाने में होने वाली कठिनाईयों के कारण उन्होंने अध्यापन कार्य बीच में ही छोड़ दिया। इसके बाद वे आमानगर रेडियो स्टेशन पर प्रोग्राम ऑफिसर के रूप में कई माह तक सेवारत रहीं। उन्हें नौकरी की कमी नहीं थी किन्तु स्वतन्त्र पत्रकारिता एवं साहित्य सर्जना में बाधक होने के कारण प्राप्त सुअवसरों को सहर्ष अस्वीकार कर दिया। पत्रकार होने के कारण वे कई लब्ध प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं से स्थायी रूप से जुड़ी रही हैं। अब सब कुछ छोड़कर वे स्वतन्त्र रूप से साहित्य सर्जना में व्यस्त रहती हैं।

5. विवाह

नासिरा शर्मा ने उन्नीस वर्ष की उम्र में अजमेर निवासी ब्राह्मण परिवार के डॉ. रामचन्द्र शर्मा के साथ 'स्पेशल मैरिज एक्ट' के तहत विवाह किया। अन्तर्धर्मीय विवाह होने के कारण परिवारजन सम्मिलित नहीं हुए। विवाह के तुरन्त बाद पति–पत्नी दोनों इंग्लैण्ड चले गये तथा वहाँ तीन वर्ष तक रहे। उस समय अंजु और अनिल इन दोनों बच्चों का जन्म हुआ। अपने वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में वे लिखती हैं कि– "डॉ. शर्मा की शादी के इच्छुक उनके पिता बरसों तक कोशिश करते रहे थे। राजस्थान के कई घराने दहेज में मकान, कार देने को तैयार थे। ये सारे कटाक्ष, ताने, कुढ़न हमारे संबंध पर कभी न हावी हुए, न धर्म, घर, परिवार, वर्ग, प्रान्त हमारे बीच कटुता के बीज बो पाए।"[7]

अन्तर्धर्मीय विवाह विषयक उनके स्वतन्त्र विचार हैं वे कहती हैं– "यदि इंसानियत पर विश्वास हो, धर्म के प्रति उदात्तभाव हो तब यह विवाह करना चाहिए वरना नहीं। होता यह है कि ऐसे विवाह के बाद दोनों पक्ष अपने–अपने धर्म, रीति–रिवाज से चिपक जाते हैं। प्रेम का विस्तार संकीर्णता ले लेता है और पति–पत्नी कुण्ठित हो जाते हैं।"[8]

नासिरा शर्मा का वैवाहिक जीवन अत्यन्त सफल रहा है। जब डॉ. शर्मा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भूगोल के प्राध्यापक के रूप में कार्य करते थे तब तक वे उन्हीं के साथ इलाहाबाद में ही रही। वहाँ उनके साथ उनकी सासू माँ भी रहती थी। डॉ. शर्मा ने बाद में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग में अध्यापन कार्य किया। कई दिनों के लिए वे विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में स्काटलैंड और नागालैण्ड भी गए। नागालैण्ड में भूगोल विभाग की नींव डॉ. शर्मा ने ही रखी। एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी से 'इंडियन डेजर्ट' पर पीएच.डी. करने वाले वे भूगोल में पहले भारतीय स्कॉलर रहे हैं। उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'ओशनोग्राफी' है। 13 नवम्बर, 2009 को वे स्वयं को हमारी स्मृतियों में छोड़कर इस दुनियां से चले गये।[9] बेटी अंजु का विवाह बिहार के गोपालगंज निवासी बदीउज्ज़मा के साथ हुआ। बदीउज्ज़मा बिहार में शिपिंग कंटेनर

लीजिंग कम्पनी चलाते हैं और अंजु उस कम्पनी की डायरेक्टर है। बेटा अनिल शर्मा जिसका दूसरा नाम असगर अली है, वह भारत से बाहर कार्यरत है।

इस प्रकार नासिरा शर्मा की प्रबल इच्छाशक्ति और डॉ. रामचन्द्र शर्मा के आपसी सहयोग, विश्वास व समन्वय के कारण उनका वैवाहिक जीवन एक आदर्श रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

6. नैसर्गिक वैशिष्ट्य

हिन्दी साहित्य की बहुचर्चित उपन्यासकार नासिरा शर्मा का बहिरंग और अन्तरंग उभयविध व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावकारी है। उनसे साक्षात्कार होने पर प्रथम दृष्ट्या जो स्वरूप उभर कर आता है वह उनके लेखकीय व्यक्तित्व एवं संजीदगी का परिचायक है। नासिरा शर्मा आम भारतीय नारी की तरह मध्यम कद–काठी एवं गौर वर्ण की महिला है। हलकी गुलाबी आभा लिए गोल एवं गोरा चेहरा, उभरे हुए गाल, गुलाबी होठों पर मधुर स्मित, नीली–भूरी चमकती आँखें, लम्बे व सीधे खुले बाल, कानों में खूबसूरत कर्णफूल, परम्परागत भारतीय परिधान साड़ी से झलकता सादगीपन आदि एक ओर जहाँ उनके स्नेहिल स्वभाव को दर्शाते हैं, वहीं दूसरी ओर वे एक सजग व संवेदनशील लेखिका के अनुरूप पैनी नजर वाली तेज–तर्रार नारी भी प्रतीत होती हैं। प्रसंगवश 'सारिका' पत्रिका के कोई तीस वर्ष पूर्व एक अंक में लेखिका का व्यक्तित्व परिचय कुछ इस प्रकार दिया गया था– "कंधों से नीचे जाते खुले–लम्बे सीधे बाल, गोल चेहरा, चमकती हुई आंखें व चेहरे से टपकता बौद्धिक उजास और विश्वास। नाम–नासिरा शर्मा"।

नासिरा जी स्वयं अपने चेहरे के बारे में लिखती हैं कि "मेरा चेहरा शायद अन्तर्राष्ट्रीय है–ठीक मेरी सोच की तरह, क्योंकि कोई मुझे इटैलियन या फिर पठान, तो कोई इरानी, तो कोई पंजाबी या फिर कश्मीरी कहता है। एक बार मैं कनॉट प्लेस के बैंक में डॉलर ले रही थी। पास खड़े एक जोड़े को कुछ परेशानी थी। मैंने काग़ज पढ़कर समझाया। औरत ने शुक्रिया अदा करते हुए कहा कि आप अंग्रेज होकर कितनी अच्छी हिन्दी बोल लेती हैं।"[10]

नासिरा शर्मा के साथ हुई अपनी पहली मुलाकत का अनुभव बांटती हुई अर्चना बंसल उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखती हैं– "सोने जैसी धरती जैसलमेर, सोने जैसा चमकता उनका व्यक्तित्व। लगा कि रौशनी की एक लहर साथ चल रही है। जैसे जैसलमेर की धरती पर दमकता सूरज खूबसूरत लगता था, वैसे ही पहली मुलाकात में नासिरा जी का व्यक्तित्व भी मुझे आकर्षक और खूबसूरत लगा। गौरवर्ण, एक भरा–पूरा व्यक्तित्व, तन–मन दोनों से। बातों में अनुभव की महक और आंखों में सागर की सी खनक।"[11]

नासिरा शर्मा स्वभाव से बहुत ही संयमी, सरल, सादगीपूर्ण, स्पष्ट व मुखर वक्ता, साहसी एवं निडर महिला हैं। स्वयं 'नासिरा' मूलतः अरबी शब्द है जो 'मददगार', 'हिमायती', 'सहायक', 'रक्षा करने वाली', 'विजय देने वाली' इत्यादि अर्थों का द्योतक है। इनके अलावा इसका एक अर्थ 'गद्य लेखिका' भी होता है। नस्र अर्थात् गद्य लेखक।[12] नासिरा जी की कथनी और करनी में समरूपता है तथा वे बहुत निडर व्यक्तित्व की धनी हैं। उनके द्वारा रचित स्त्री पात्रों के माध्यम से भी यह प्रमाणित होता है। चाहे वह 'शाल्मली' की शाल्मली हो या 'ज़ीरो रोड' की कविता या 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख़ हो, या फिर 'दूसरा ताजमहल' की नयना हो। यद्यपि नासिरा जी की साहसिकता तो स्वतः स्पष्ट है फिर भी वे स्वयं कहती हैं कि 'अदब ने, जिंदगी ने शराफत और इनसानियत के साथ–साथ बुजदिली भी पैदा कर दी है।' इसे स्पष्ट करती हुई वे कहती हैं– "मुझे अच्छी तरह याद है, क्योंकि आज भी मैं इस दर्द से गुजरती हूँ और अपने अन्दर तड़प–तड़प कर रह जाती हूँ। मगर बहादुरी का वह कदम नहीं उठा पाती हूँ जो अक्सर लोग प्रतिक्रिया के रूप में उठा लेते हैं। पर अपनी इस कमजोरी को पहली बार मैंने अगस्त, 1960 में हुई एक दुर्घटना के बाद बहुत शिद्दत से महसूस किया कि मैं बदला लेने, किसी को नुकसान पहुँचाने और किसी को जलील करने की क्षमता कतई नहीं रखती हूँ और धैर्य के अथाह समन्दर में, जिसका स्वाद नमकीन है, अक्सर मैं खारे पानी मैं डूबती–तैरती हूँ। मगर ये आँसू बेचारगी के नहीं, आक्रोश के होते हैं। जब कभी फैसला लेने की घड़ी आई तो हमेशा मेरी कोशिश रही है कि मैं बहादुरी की इस चमचमाती तलवार को म्यान में रख बुजदिली से कोई ऐसा कदम उठाऊँ जो उस रास्ते को जाए जहाँ दरवाजे दूसरों के लिए खुले हों, बन्द नहीं। यही मेरी ताकत है। यही वजह है, मेरे लेखन में या किरदारों में आपको वह 'बुजदिली' नहीं मिलती जिसका अर्थ भीरू, डरपोक होने से लगाया जाता है।"[13]

नासिरा जी का व्यक्तित्व पारदर्शी व उदार होने के नाते उनमें आत्मबल और दृढ़ता का संचार अनवरत दिखाई देता है। वे एक स्वाभिमानी स्त्री एवं सुघड़ लहजे व तेज–तर्रार भाषा में साफगोई से लिखने वाली लेखिका हैं परन्तु अहं से कोसों दूर। उनकी बेटी अंजु ने पति के रूप में बिहारी सुन्नी मुसलमान लड़के को पसन्द किया तब नासिरा जी ने लड़के के घरवालों से कहा था– "मैं बारातियों का किराया नहीं दूँगी, लड़की ब्याहिनी है तो अपने बलबूते पर आइये। दहेज नहीं दूँगी। ऐसी कोई हरकत नहीं करूँगी, जिसके खिलाफ लिखती और बोलती भी हूँ सिर्फ लड़की दूँगी।"[14]

नासिरा शर्मा बेहद अनुशासित जीवन जीने की आदी हैं। वे कहती हैं– "डिसिप्लिन हमारे घरों में दिया गया था..........वही मेरे बच्चों ने पाया और अब यह..........माफ कीजिए, ये बहुत बड़ी बीमारी है। ये बबाल हम इन सब तक पहुँचा रहे हैं। सभी लोग–दोनों बच्चे और मुझसे या

गैरज़रूरी बातों से परेशान होते हैं। मेरी बेटी के ससुराल वाले भी इस छूत की बीमारी से ग्रस्त हो गए हैं। मैं देख रही हूँ कि धीरे–धीरे लोगों की जिन्दगी से आब्जर्वेशन और डिसिप्लिन गायब हो रहा है।"[15]

नासिरा जी द्वारा बड़े ही जोश और उमंग के साथ किया जाने वाला अतिथि सत्कार, प्राचीन परम्पराओं पर उनकी गहरी आस्था, सर्वधर्म समभाव की प्रवृत्ति तथा आमजन के दुःखों से द्रवीभूत होने वाला मन उनको वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। प्राचीन विश्वासों के बारे में उनकी मान्यता है कि "प्राचीन विश्वासों के प्रति मेरा नज़रिया बहुत साफ है कि बेशक वे हमारे वर्तमान प्रश्नों एवं समस्याओं का समाधान नहीं बन सकते हैं और न ही हमारी कठिनाईयों की वर्तमान जटिलता को हल कर सकते हैं मगर उस परम्परा की, जिसकी आदत हमको पड़ चुकी है और शताब्दियों से हमारी सोच का हिस्सा बन गई है, वह हमको उस समय संतोष देने की शक्ति रखती है, जब हम अपने ऊपर से विश्वास खो देते हैं। ऐसे डगमगाते समय आराधना और आस्था ही इन्सान को बल देकर उसमें ऊर्जा का संचार करती है।"[16]

नासिरा जी पारिवारिक रिश्तों व सामाजिक सम्बन्धों को सहेजने या यूँ कहें कि उनको जीना पसन्द करती हैं। रिश्तों में पवित्रता व पारस्परिक विश्वास को वे बहुत ही जरूरी समझती हैं। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि "अपने दोस्तों पर बड़ा विश्वास है। शोहर, माँ, भाई, बेटे, बेटी के रिश्ते पर नाज़ है मुझे। दोस्तों, जिनमें औरतों से ज्यादा मर्द शामिल हैं– वे मर्द इतने इंसान हैं और इतने खूबसूरत इंसान हैं उन्होंने मेरी मेंटलग्रोथ में खुद मर्दों को समझने में, एक लेखक की तरह मेरे विकास में बहुत साथ दिया है। नाम लेने से कुछ बनेगा नहीं पर अभी तक मेरे किसी औरत या मर्द दोस्त ने गलत मशविरा नहीं दिया।"[17] नासिरा जी की सहज और स्वाभाविक मुस्कान पारस्परिक सम्बन्धों में प्रगाढ़ता लाती है।

नासिरा शर्मा का धार्मिक दृष्टिकोण पूर्णतया इंसानियत पर आधारित है। इस सम्बन्ध में वे व्यापक सोच की धनी हैं। सर्वधर्म समभाव पर आधारित उनका विशाल दृष्टिकोण हमेशा से ही धार्मिक कर्मकाण्डों का विरोधी रहा है। उन्होंने अपने निजी जीवन एवं लेखन में किसी धर्म को बुरा नहीं माना है और न ही अपमान किया है। जन्मतः मुस्लिम परिवार और विवाहोपरान्त हिन्दू धर्म के तथा वैदेशिक यात्राओं से विभिन्न धर्मगत मान्यताओं को बहुत ही करीब से जाना है। धर्म के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य स्पष्ट करती हुई वे कहती हैं कि "धर्म केवल योजनाबद्ध तरीके से जीवन जीने का एक रास्ता है। आज धर्म को समझना हमारे लिए बेहद ज़रूरी हो जाता है क्योंकि इसका गलत प्रयोग इन्सानों की जिन्दगी को बेहद दुर्वार बना रहा है।"[18] वे सभी धर्मों के धार्मिक स्थलों पर गयी हैं। अपना अनुभव बाँटती हुई वे कहती हैं कि "यह भी अजीब इत्तेफाक है

कि मैं धर्म–बन्धन से जितना दूर भागती रही हूँ, धर्मस्थलों पर जाने का सबसे ज़्यादा अवसर मुझे मिला है। चाहे सिखों का गुरुद्वारा हो या ईसाईयों का गिरिजाघर या मुसलमानों की दरगाहें, इमामबाड़े, हिन्दुओं के मन्दिर या बौद्ध व जैनों के मठ या फिर स्थानीय देवी–देवताओं के पवित्र स्थल। देश एवं विदेश हर जगह ये अपनी आगोस खोले मेरे स्वागत के लिए बाँहें फैलाये रहे। इन स्थानों को ऐतिहासिक दृष्टि से देख मैं सदा इन्हें पवित्र मानती आई हूँ।"[19]

7. अभिरूचि

नासिरा शर्मा स्वभावतः एक संयमी, सरल एवं सादगी पसन्द महिला है। उनकी आत्मीयतापूर्ण मेहमाननबाजी को अभ्यागत भूल नहीं पाता है। लेखिका होने के साथ–साथ वे कुशल गृहिणी भी हैं। पढ़ना, पढ़ाना, घर सजाना, खाना पकाना, सिलाई, विभिन्न शीर्षकों को लेकर एलबम बनाना आदि उनके रुचिकर कार्य रहे हैं।[20] नूतन ठाकुर को दिये साक्षात्कार के एक प्रश्न के जवाब में नासिरा जी अपने शौक के सम्बन्ध में कहती हैं कि "मेरी जिंदगी में ये नहीं रहा कि एक शौक है और उसे पूरा करना है। शौक मेरी जिन्दगी में दुःख और चुनौति बनकर कभी नहीं आया। मैं जिन्दगी के हर पड़ाव और मोड़ पे किसी न किसी काम में रूचि से जुड़ी रही। लेकिन ये जरूर मैंने पाया कि इन सारी रुचियों का अन्तःस्वर एक है। मेरा मीडिया भले ही बदलता रहा हो पर अन्तःस्वर मूलतः एक ही रहा है। वह है– पढ़ना–लिखना जबकि घर सजाना, खाना पकाना, सिलाई, एलबम विभिन्न शीर्षकों को लेकर बनाना आदि–आदि यह सब समय के साथ पीछे छूटता चला गया।"[21] नासिरा जी अपने शायरी विषयक शौक के बारे में लिखती हैं "मैं गद्य जरूर लिखती हूँ, मगर मुझे शायरी पढ़ने का बहुत शौक है। शेर अब याद नहीं रह जाते मगर उन्हें बार–बार पढ़ना, दोहराना, उनके अर्थ को अपने में सहेजना भला लगता है।"[22] इस कथन से उनके हृदय की कोमलता और संवेदनशीलता का सहज परिचय मिलता है। वे कहती हैं कि "बचपन से धार्मिक कर्मकांड पर मेरा विश्वास कतई नहीं था। रात को सोते हुए घर के बाक़ी बहन–भाईयों से अलग मेरी एक आदत थी कि मैं हमेशा अपने से मुख़ातिब होती। दिन–भर हुई ग़लतियों को न दोहराने और अच्छी आदतों को हासिल करने की तमन्ना करती। इसका मज़ाक़ भी उड़ता, मगर सर सिजदे में कभी नहीं गिरा। नमाज़–रोज़े में कभी दिल न लगा, मगर किसी का दिल दुखाना या नुकसान पहुँचाना मुझे अच्छा नहीं लगता था।"[23] खेलने के प्रति वे अधिक शौकीन नहीं रही लेकिन क्रिएटीविटी–बचपन से सदैव साथ रही। बच्चों से शुरू से बहुत प्यार रहा है। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं कि "मेरी वो जो बचपन की हॉबी थी, जो बीच की जिन्दगी की यात्राओं और लेखन में गुम हो गई थी, वो बाल भवन जाकर फिर मुझे वापस मिल गई है। मैं वहाँ की मेंबर हूँ और क्रिएटिव क्लासेज भी लेती हूँ और बच्चों के साथ शेयर करना एक बड़ी अजीब दुनिया है, बहुत बड़ा सुख है।"[24]

(ख) नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व के नियामक तत्त्व

किसी भी साहित्यकार के वैयक्तिक जीवन का वातावरण, निजी अनुभव–अनुभूतियाँ, अन्तर्मन को व्यथित करने वाले क्षण, वैचारिकता आदि उसके साहित्य के आधार होते हैं। साहित्यकार का सम्बन्ध समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि विभिन्न गतिविधियों से होता है। चूँकि साहित्यकार भी मूलतः पहले व्यक्ति है और एक व्यक्ति के रूप में वह एक ही प्रसंग को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखता है, समझता है या उस प्रसंग पर उसका व्यवहार व्यक्तिशः अलग–अलग होता है। अतः जिस समाज में साहित्यकार जीता है, संघर्ष करता है, जिन लोगों को नज़दीक से देखता है, समता–विषमता, सत्य–असत्य की पड़ताल अपने विवेक से ग्रहण करता है, ये ही संवेदनायें उसके चित्त को उद्वेलित करती रहती हैं। इन्हीं अनुभूत संवेदनाओं को वह साहित्य की विभिन्न विधाओं के रूप में अपनी सशक्त लेखनी से प्रकाश में लाता है। कुछ जन्मजात वैशिष्ट्य, व्यवसाय–शिक्षण आदि से प्राप्त अनुभव, समाज, संस्कृति व राष्ट्रीय विचारों से अर्जित वैचारिक अवधारणा आदि भी साहित्यकार के लिए प्रेरणास्रोत बन जाते हैं। उसका सृजन जाने–अनजाने उसके व्यक्तित्व से गहरा ताल्लुक रखता है। इसी कारण किसी भी साहित्यकार के कृतित्व का अध्ययन करने से पूर्व उसके व्यक्तित्व को जानना भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की विख्यात लेखिका नासिरा शर्मा के संबंध में कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व व कृतित्व भी विभिन्न नियामक तत्त्वों से निर्मित है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. पारिवारिक वातावरण

व्यक्तित्व विकास का प्रथम सोपान परिवार है। परिवार के हर एक सदस्य से समान प्रेम प्राप्त करना सौभाग्य ही है। नासिरा शर्मा ऐसी ही सद्भागी बेटी रही जिन्हें अपने परिवार के सभी सदस्यों का समान लाड़–प्यार मिला, वात्सल्य मिला। नासिरा शर्मा के दो भाई और दो बहनें हैं। बड़े भाई सय्यद मुहम्मद हैदर अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन कार्य करते हैं। दूसरा भाई सय्यद मजहर हैदर एक पत्रकार है। दोनों बहनें साहित्य सृजन में रुचि रखती हैं। नासिरा जी की माँ नाझनीन बेगम के अतिरिक्त परिवार के सभी सदस्य किसी न किसी रूप में साहित्य लेखन से जुड़े हुए हैं। माँ ने पूरी गृहस्थी को अच्छी तरह संभाल रखा था, उन्होंने घर में व्यवहार और बोलचाल के सलीके की बुनियाद भी डाली। नासिरा जी को लेखकीय विरासत धरोहर के रूप में ही मिली। अपने खानदान के बारे में वे लिखती हैं– "मेरा परिवार केवल पढ़ा लिखा नहीं था बल्कि शायरों का एक सिलसिला रखता था। घर में मर्दों के लिखे कसीदे, परिन्दे, नौहे और गज़लें औरतों द्वारा पढ़ी और सराही जाती थीं।"[25]

साधारणतया मुस्लिम परिवारों में अन्य धर्मों की अपेक्षा मर्द और औरत की स्थिति में बहुत फर्क था पर नासिरा जी के पूरे परिवार में उतना फर्क नहीं था। उसके बारे में उन्होंने लिखा है– "मर्द और औरत की स्थिति में जमीन और आसमान का फर्क नहीं था। औरत की इज्जत करना और उनसे मोहब्बत करना मर्दों का फर्ज था।"[26] इसी सम्माननीय वातावरण में पले–बढ़े होने के कारण उनके व्यवहार और चरित्र में भी दृढ़ आत्मविश्वास बना रहता है। किसी व्यक्ति के रचना संसार को पूर्ण रूपेण जानने के लिए उसके प्रेरक तत्त्वों को समझना बहुत जरूरी है। नासिरा शर्मा का जीवन साहित्यिक वातावरण में ही गुजरा उनके परिवार में पठन–पाठन का अच्छा वातावरण था। इस सन्दर्भ में नासिरा जी की स्वीकारोक्ति है कि "हमारा जो घर था वह लिखने और पढ़ने वालों का घर था। पिता शायर थे और चाचा कवि थे। वे कुछ अवधी भाषा में लिखते थे और कुछ उर्दू में। उस वातावरण में बचपन से हम भी पेन्सिल और पेपर लिये कुछ न कुछ करते रहते थे। जो बड़ों की किताब थीं वो भी पढ़ते थे। पहले नकल से बात शुरु हुई और वो आदत बन गई।"[27] बचपन से ही नासिरा जी के मन में साहित्य रचना करने की उत्कट इच्छा होती थी। उनका बचपन इलाहाबाद में गुजरा था लेकिन किशोरावस्था कुछ कष्टदायक थी क्योंकि उस समय पिता की मृत्यु हो गयी। फिर उनके लिए माँ ही सर्वस्व थी। माँ के प्यार ने मानवीय संवेदनाओं से उन्हें परिचित कराने का सफल काम किया।

साहित्य सृजन के लिए उनके घर का वातावरण भी अच्छा था। लेखिका के अनुसार, "घर का माहौल साहित्य के लिए अच्छा था। मेरे परिवार की हर पीढ़ी में कवि थे, मेरे दादा, ताया, पिता........मुझे प्रेरणा वास्तव में इंसानी जिन्दगी के उतार–चढ़ाव से मिली है। उसमें परिवार का बड़ा सहयोग रहा है, क्योंकि बहुत से अनुभव उसी माहौल में हुए हैं।"[28] साहित्य रचना में मुझे प्रेरणा देने वाले व्यक्ति थे कृश्न चंदर, प्रेमचंद आदि। उनके बारे में वे कहती हैं, "कृश्न चंदर के व्यंग्य लेखन से मैं बहुत प्रभावित थी। प्रेमचंद शुरू से अभी तक पसंद आने वाला लेखक है। मैक्सिम गोर्की–की 'माँ' से बेहद प्रभावित थी। सहादत हसन मंटो की 'फंसाद की कहानियाँ' कृष्ण बलदेव वैद, देवेन्द्र इस्सर के साहित्य भी बेहद प्रभावित करते थे।"[29] साहित्य सृजन उन्हें बहुत अच्छा लगता है। उनके अनुसार "मैं ज्यादातर दुःखी ही रहती हूँ किसी न किसी चीज से लेकिन मेरा सुख का समय तब होता है जब मैं सृजन करती हूँ, मुझे पूरी दुनिया खूबसूरत लगती है। सही मायने में तब मैं अपने आपमें जी रही होती हूँ और मेरी नज़रों में सारे दुःख जो वास्तव में दूसरों के दुःख होते हैं, वे मेरे अंदर सृजन का स्रोत खोलते और मैं अपने को भरपूर और बेहद सुन्दर महसूस करती हूँ।"[30] दुनिया की हर चीज के प्रति उनके मन में उदारता की भावना है। वही उनके साहित्य सृजन का मूल आधार है।

2. शैक्षिक वातावरण

परिवार के बाद किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावित करता है, उसको मिलने वाला शैक्षिक वातावरण। शिक्षण संस्थाओं का वातावरण, अध्यापक के विचार, सहपाठियों के द्वारा किया जाने वाला परस्पर व्यवहार आदि निश्चित रूप से एक संवेदनशील व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले व दिशा देने वाले कारक बनते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में नासिरा जी का बहुत ही आत्मीय संबंध उस्ताद खुसरू कसरवी से रहा है। उनसे नासिरा जी फारसी का प्राइवेट ट्यूशन लेती थी। उन्होंने इनको केवल फारसी भाषा का ज्ञान ही नहीं दिया अपितु जीवन–मूल्यों में गहरी नैतिक दृष्टि का सदा समर्थन देकर व्यावहारिक जीवन का अर्थ भी समझाया। उन्होंने लेखिका को सिखाया कि कोई कुछ बुरा कह रहा है तो उसको अनसुना कर दो। यदि बहरा बनना मुमकिन न हो तो बेहतर है उस नामाकूल बात से सकारात्मक पहलू निकालना। उस्ताद की बातों ने इनको ज़िन्दगी के मुसीबत भरे अवसरों पर भी बहुत शक्ति दी। अपने जीवन पर उस्ताद के प्रभाव को लेखिका नासिरा शर्मा स्वयं स्पष्ट करती हुई कहती हैं कि "उनका योगदान मेरे जीवन में गहरा है। यदि वह फारसी का उच्चारण सही न सिखाते, न पर्तदार फारसी का मुहावरा समझाते तो मैं ईरान पर काम नहीं कर सकती थी।"[31]

यूँ तो प्रत्येक अध्यापक विद्यार्थी के व्यक्तित्व को कहीं न कहीं प्रभावित करता है किन्तु छठी कक्षा में पढ़ते समय अपनी हिन्दी टीचर मिसेज हसनैन की जीवनी व कार्य–व्यवहार ने नासिरा जी को बहुत प्रभावित किया। नासिरा जी स्वयं लिखती हैं– "मिसेज हसनैन के बारे में मुझे कुछ विचित्र बातें मालूम हुई थीं। जैसे वह स्वयं हिन्दू थीं और किसी मुसलमान मिस्टर हसनैन से शादी की थी। स्कूल में एक छोटे से कमरे को किराए पर लेकर रहती थीं। खुद पकातीं, खुद कमाती थीं। सुना था कि वह बड़े अमीर घर की बेटी थीं, मगर यहाँ उनके बीमार रहने पर जब हम उनका सिर दबाने दवा पिलाने को पूछते तो वह किसी भी तरह की मदद लेने से इंकार कर देतीं और होमवर्क देकर हमें विदा कर देती।.......मगर उनका सांवला लंबा चेहरा, कंधों तक झूलते घुंघराले बाल, सलीके से पहनी साड़ी और उनकी तेज नुकीली आवाज के संग उनकी तंबीह ने हम सबको तराशा भी खूब था।"[32]

इसके अलावा अपने स्कूली दिनों की सहपाठिनियों विशेषतः जावेद, रजिया, निसार, नसीम जुबैरी, शमा, निगहत सुल्ताना से नासिरा जी खासी प्रभावित रहीं हैं। अपने स्कूली दिनों को याद करती हुई वे कहती हैं "स्कूल के माहौल ने मुझे बहुत कुछ दिया। मेरी सहेलियों ने मुझे एक नई तरह की अनुभूतियाँ दीं। उस मोहल्ले में मेरे लिए अनुभवों का भंडार था, जिसको मैं जितना देखती, महसूस करती, उतनी ही दौलत समेटती थी। टीचरों ने मुझे कदम–कदम पर

अहसास दिलाया मैं कौन हूँ, किसकी बेटी और किस खानदान से हूँ। वह सब मुझे पहचान के एक खास सांचे में रखना चाहते थे। उससे मैं परेशान थी। यह घुटन आखिर ऐसी बगावत में उभरी कि मैं बाकी बहन–भाइयों की तरह अपने परिवार के बारे में पूछे जाने पर कभी अब्बा का नाम न लेती। दिल में ठान लिया था कि मैं अपनी जिंदगी पर किसी का हस्ताक्षर नहीं होने दूंगी और अपनी तरह बनकर रहूँगी।"[33]

3. बाल्यकालीन स्मृतियाँ एवं अनुभव

नासिरा शर्मा बचपन से ही जिज्ञासु प्रकृति की रही हैं। रास्ते में आते–जाते समय दिखाई पढ़ने वाले घर, दुकान, फुटकर विक्रेता, मोची, ताले–चाबी बाला, घर–मोहल्लेवासी, सहपाठियों के परिवार, ठेले वाले ये सब उनकी दृष्टि व मंथन के विषय बनते थे। कुछ परिवार व व्यक्ति, उनकी स्थिति उनके जेहन में इस कदर बस गये थे कि वे उनको कभी भुला नहीं पायीं। कहा भी जाता है कि किसी भी साहित्य व साहित्यकार के सृजन का विषय उसके द्वारा अनुभूत परिवेश ही बनता है। तदनुसार ही नासिरा जी के जीवन व सृजन पर उनके द्वारा अनुभूत बचपन की स्मृतियों का गहरा असर रहा है। बालिका नासिरा की सूक्ष्म दृष्टि द्वारा अवलोकित वे परिवार व चरित्र ही उनकी रचनाओं के पात्र बने हैं। यथार्थानुभव पर आधारित इनकी जीवनी उनकी रचनाओं में जीवन्त बन उठी हैं।

बचपन में हर रोज देखा नानबाई का मकान 'कुइयाँजान' उपन्यास में परिवार के रूप में उभरा है। 'नौतपा' और 'गूंगी गवाही' में वही आधी पत्थरगली उभरी है, जहाँ भड़भूजन पड़ी सोती नजर आती थी। 'अक्षयवट' उपन्यास में उस मालिन का घर उभरा है, जिससे उनका गहरा रिश्ता रहा क्योंकि वह मोहर्रम के दो माह हर रोज जूही, चमेली और गुलाब से बनी मालाएँ अलम पर डालने लाती। गलियों में बर्फ की चिरैया बेचने वाला इरशाद 'अक्षयवट' में मुरली के पात्र के रूप में उभरा है। उनके उपन्यास 'कुइयाँजान' की शुरुआत उसी पत्थरगली से होती है जहाँ "बताशेवाली गली में सुबह फूट पड़ती थी, मगर उसका उजाला तंग गली में अपना दूधिया रंग अभी बिखेर नहीं पाया था। मंदिर की घंटी और दूध वाले की साईकिल की टनटनाहट से एक–दूसरे से सटे घर कुनमुना उठते थे। चन्दन हलवाई दातून करता घर के बाहर बने पतले चबूतरे पर आकर बैठ जाता था और उसको देखकर कुत्तों द्वारा अंगड़ाई लेकर बदन सीधा किया जाता था और वे दुम हिलाना शुरु कर देते थे। उनकी कहानी 'ताबूत' में भी नासिर हलवाई सेव का झाबा लिए ख़ाला बी का दरवाजा खटखटाता है और वही पगली ख़ातून की शक्ल में उस कहानी में मौजूद है। समीउल्लाह दर्जी 'अक्षयवट' में एक किरदार के रूप जिंदा हुआ है। 'गूंगी गवाही' के गली–कूंचे भी उसी इलाके को जीवन्त करते हैं। कोतवाली के सामने से गुजरने वाली

सड़क जो देखने में बाजार की तरह लगती थी, उसी पर स्थित 'सुहाग स्टोर' से ही इनकी कहानी 'चार बहनें शीशमहल की' की शुरुआत होती है।"

अपने बचपन के बारे में बताती हुई नासिरा जी कहती हैं कि "मेरा बचपन, जो दबे पांव मेरे जेहन से निकल मेरी कहानियों के जरिए कागज पर दर्ज होता है, दरअसल वह मेरे वजूद का हिस्सा है, जिस पर नखास कोने के आस–पास का इलाका नक्श हो चुका है, जहाँ मेरे अपने रहते हैं, जिन्होंने मुझे भाषा दी, मुहावरे सिखाए, जिंदगी की जद्दोजहद का पाठ पढ़वाया, जिन्होंने बताया कि हर इन्सान की जिंदगी की बुनियादी जरुरतों को पूरा करने वाले हम हैं, जो रूई धुनते हैं, लिहाफ भरते हैं, छुरी, कढ़ाई, तवा बनाते हैं, तेल निकालते हैं, उन्हें फूलों से बसा कुप्पी भरते हैं। सब्जी बोते और गेहूँ पीसते हैं। चावल पछोड़ते और दाल दरेरते हैं। तुम्हारे लिए आराम ही आराम मुहैया करते हैं। अब आप ही फैसला लें। इनके बिना मेरा सांस लेना कितना मुश्किल हैं?"[34]

इसी क्रम में वे आगे लिखती हैं कि "मेरी रचनाओं का केन्द्र जिसमें छप्परवाले दालान, हजार गज में फैले गरीब किरायेदार, जो दरअसल रोजी–रोटी की की तलाश में शहर आए पनाहगुजीर थे, जिनसे वह अपनी तन्हाई बांटती थी, जिन्हें देखकर, सुनकर मेरी सृजनशीलता किसी सोते की तरह फूटती।"[35]

4. इलाहाबाद का वातावरण

इलाहाबाद उत्तर भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। एक संवेदनशील मन को सजग और भावना प्रधान बनने के लिए, उसे प्रेरित करने के लिए जिस माहौल की जरूरत होती है, यदि वह मिल जाए तो एक आम आदमी से एक संवेदनशील लेखक बनने तक का सफर सुचारू रूप से तय हो जाता है। जिस समय नासिरा जी साहित्य से परिचय कर रही थीं उस समय इलाहाबाद का वातावरण बहुत ही प्रेरणीय था। नासिरा जी इस सम्बन्ध में कहती हैं कि "उस समय इलाहाबाद का वातावरण साहित्यिक था। राजनैतिक चेतना थी। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अपने समय के महत्त्वपूर्ण प्रोफेसर थे जो विद्यार्थियों एवं नैतिक मूल्यों के प्रति सजग और रचनाशील थे। उस समय के इलाहाबाद का माहौल अपनी ऊँचाई से नीचे की यात्रा आरंभ कर चुका था। मगर फिर भी बहुत कुछ बचा हुआ था। जो मैंने सुना था मगर जिस विश्वविद्यालय की इतनी चर्चा थी वह मेरे बी.ए. करने के समय आठ माह बन्द रहा था।"[36] नासिरा जी ने पढ़ाई के समय का इलाहाबाद का सारा परिदृश्य हमारे समक्ष रखा है।

5. वैवाहिक वातावरण

नासिरा जी ने रामचन्द्र शर्मा के साथ मिलकर दो संस्कृतियों से समन्वित एक साझा संस्कृति का ख्वाब देखा और उसे पूरा किया। नासिरा जी अपने संस्मरण में कहती हैं, "राम शर्मा मेरे भूगोल के प्राध्यापक थे। पहली मुलाकात 1966 में तथा शादी 1967 में हुई। मेरी हाजरी कम थी। मेरे उर्दू के प्रोफेसर ने खत देकर भेजा था कि वह अटेन्डेंस ठीक करवा देंगे। मैं बहन के घर अलीगढ़ में ज्यादा रूक गयी थी। बाद में पता चला वही मेरे भूगोल के प्राध्यापक हैं।"[37]

सन् 1967 के समकालीन परिवेश में अन्तर्जातीय विवाह अपने आपमें एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी कदम था। हिन्दु–मुस्लिम दो संस्कृतियों का मेल एक क्रान्ति की चिनगारी का सूचक समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लेखिका और उनके पति का निर्णय चौका देने वाला था। इतने बड़े क्रांतिकारी कदम के कारण शादी सादे तरीके से 'रजिस्टर्ड मैरेज' हुई थी।[38] नासिरा जी कहती हैं कि "सभी ताज्जुब में थे। शादी के बाद तीन साल के लिए इंग्लैंड गई। घर में सब गुस्से से ज्यादा मेरे लिए चिंतित थे। उन्हें भय था कि डॉक्टर शर्मा की दूसरी मैरेज न हो। बाद में डॉ. शर्मा का स्वभाव देख सब बदले, मन में जो भी हो मगर सभी से प्यार और सम्मान मिला। यह भय भी दूर हुआ कि इनका पहले कोई विवाह हुआ था।"[39]

सामान्यतः देखा जाता है कि ऐसे क्रांतिकारी कदम उठाने वाले दम्पतियों पर लोग छींटा–कशी करते हैं। तंज कसते हैं, वही सब कुछ नासिरा जी ने भी भोगा। उनके विवाह को लेकर कुछ लोगों के अलावा परिवारजनों ने कुछ नहीं कहा। उनके इस निर्णय को घरवालों ने कभी गलत नहीं समझा। नासिरा जी के घर में बड़े भाई का काफी दबदबा था। "भाभी के कहने पर कि नासिरा ने हिन्दू से विवाह कर लिया, तो उनका संक्षिप्त उत्तर था, मेरे घर में एक हिन्दू की सख्त जरूरत थी।"[40]

नासिरा जी का पूरा परिवार प्रगतिशील विचारों का रहा है। इस विवाह के चलते उन्हें प्रेम और सम्मान ही मिला। वह कहती है– "माँ और भाईयों के दिल खुले थे। घर का दरवाजा खुला था। जहाँ डॉ. शर्मा से रिश्ते कुछ इस तरह जुड़ गए थे कि जब उन्हें कोई शर्मा खालू या शर्मा फूफा कहते या फिर घर की नौकरानी उन्हें दूल्हा मियाँ कहती तो हम दोनों को हँसी आ जाती थी। बेशक यह हँसी उस सेतु की थी, जो हिन्दू–मुसलमान के बीच हमने अपनी खुशी और मर्जी से बनाया था, जिस पर सब चल फिर रहे थे।"[41]

नासिरा शर्मा के नाम को लेकर लोगों, विशेष रूप से मर्द लेखकों ने जिज्ञासा प्रकट की है। नासिरा जी को बार–बार पत्र लिखकर पूछने पर वे कहती हैं– "मैं मुसलमान हूँ। पति हिन्दू। मोहब्बत हिन्दी से, जबकि मादरी जुबान उर्दू है। पढ़ाई (परशियन) में की है।"[42]

नासिरा जी जन्मतः मुस्लिम होने के साथ उन्होंने हिन्दू (ब्राह्मण) के साथ विवाह किया। व्यक्तिगत जीवन में जो भी मिला हो पर दोहरे अनुभव और जानकारी ने उनके लेखन को प्रभावी बनाया है एवं उसे विस्तृत आयाम दिया है। विवाहोपरान्त व्यक्तिगत जीवन से भी वे काफी सन्तुष्ट व प्रसन्न दिखीं। नासिरा जी कहती हैं कि "मेरे पति स्वयं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में भूगोल के प्राध्यापक रहे एवं गोल्ड मैडलिस्ट थे। पर कभी अहं उनके साथ नहीं रहा। ससुराल में भी भरपूर अपनत्व मिला। सास ने सदैव मुझे सर आँखों पर रखा। अलग धर्म से आई होने के बावजूद उन्होंने कभी अलग होने का एहसास नहीं होने दिया। राजस्थान के अजमेर शहर में मेरी ससुराल है।"[43]

नासिरा जी ने अपने आत्म–तर्पण (हंस 1992) में लिखा है कि "शर्माजी से शादी न करती तो आधा हिन्दुस्तान ही नहीं देख पाती।"[44] यह सच है कि नासिरा शर्मा जैसी एक कुशल लेखिका के पीछे डॉ. रामचन्द्र शर्मा जैसे एक सहृदय पति का हाथ या प्रेरणा नहीं होती तो ऐसी एक लेखिका का उदय भी संभव नहीं था। एक लेखिका जो आज़ादी चाहती है या एक लेखिका को अपनी प्रोफेशन जिन्दगी में जितनी आज़ादी अपेक्षित है उतनी आज़ादी देने वाले थे रामचन्द्र शर्मा। सामान्यतः लेखकों को ऐसी आज़ादी अपने परिवार से नहीं मिलती है। इसलिए अपने दाम्पत्य जीवन के बारे में वे इस प्रकार कहती हैं कि "जो विस्तार मुझे जीने का मिला उसका सुख वहीं जान सकता है जिसने यह अनुभव किया है।"[45]

6. वैदेशिक सम्पर्क व यात्राएँ

नासिरा शर्मा ने अपने पत्रकारिता के शौक के चलते कई बार विदेशों की यात्राएँ की हैं। इन यात्राओं के दौरान एक पत्रकारी दिमाग के साथ–साथ एक संवेदनशील लेखक का अन्तर्मन भी उनके साथ था। इस कारण अपनी विभिन्न यात्राओं के दौरान वहाँ की सभ्यता, संस्कृति, भाषा और लोगों के अन्तर्मन का अभ्यास भी उन्होंने किया। सन् 1967 से 1970 और 1983 में वह इंग्लैण्ड में रही हैं। सन् 1976, 1979, 1980 तथा 1982 में वह ईरान की यात्रा पर गईं। सन् 1982, 1983, 1984 और 1986 में इराक की यात्राएँ की। सन् 1983 में फ्रांस, सन् 1988 में जापान, सन् 1988 में थाईलैण्ड, सन् 1988 में हाँगकाँग की यात्राएँ करने के अवसर उन्हें प्राप्त हुये। इसके अलावा सन् 1987 में अफगानिस्तान, सन् 1987 और 1988 में पाकिस्तान तथा सन् 1994 में नेपाल की यात्राएँ लेखिका ने की हैं।[46] इसके बाद भी यात्राओं का यह सिलसिला अनवरत जारी है।

अपनी इन वैदेशिक यात्राओं के दौरान नासिरा जी को देश–दुनियां, वहाँ के लोग, उनकी संस्कृति, समाज में व्याप्त विसंगतियों, विचारों को बहुत ही निकटता के साथ समझने का मौका

मिला। उनके साथ रहकर प्रत्यक्ष रूप से उन–उन तत्त्वों को गहराई से अनुभूत किया। इस अनुभूति के परिणामस्वरूप लेखिका के मनो–मस्तिष्क पर भी गहरा असर हुआ। लेखिका के विचारों को पुष्टि मिली और वे अनुभूतियाँ उनके व्यक्तित्व व कृतित्व का हिस्सा बनती चली गईं। लेखिका स्वयं कहती हैं कि "अपनी पहली यात्रा में जिस ईरान ने मुझे अपना मेहमान बनाकर बुलाया था, उसकी आध्यात्मिक एवं सूफ़ियाना साहित्यिक ऊर्जा को मैंने गहराई से महसूस किया था। यह अहसास जागा था जैसे अपने देश का दरवाज़ा खोलकर मैंने अपने घर के दूसरे आँगन में क़दम रखा हो।"[47]

अपनी दूसरी ईरान यात्रा का अनुभव बांटती हुई वे कहती हैं कि "दूसरी यात्रा वर्ष भर बाद मैंने अपने ख़र्च पर की जिसका उद्देश्य ईरान की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों एवं हिन्द व ईरान की साझी सभ्यता पर काम करना था। उसी सिलसिले में शाहनामा फ़िरदौसी के महत्त्वपूर्ण किरदार रूस्तम को एक हीरो के रूप में कॉमिक सीरीज़ द्वारा पाठकों तक पहुँचाना था। लिखित प्रोजेक्ट पर बातचीत कई माह से चल रही थी। देशी–विदेशी पब्लिशरों को मैंने प्रोजेक्ट की कॉपी भेज दी थी। ईरान में स्थित 'बुनियाद–ए–शाहनामा' के ज़बानी बुलावे पर कि इस पेशकश पर बात हो सके, मैं ईरान गई मगर वहाँ तो शाह के विरोध में बिसात बिछ गई थी। शाहनामा का अर्थ अब ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं बल्कि पहलवी काल के प्रति उपजी घृणा का नाम हो गया था। बुनियाद–ए–शाहनामा संस्थान बन्द और उसके प्रोफ़ेसर अंडरग्राउण्ड हो गये और नया साहित्य का अध्याय मेरे सामने खुला था जो जनता की भाषा में वह सब कुछ कह रहा था जो इन्सान की ज़रूरतों के क़रीब था। मैं इस जागृति से प्रभावित हुई थी। एक दूसरी आग सीने में दबाए लौटी। यह अलग बात है कि दस वर्ष बाद कॉमिक के रूप में तो नहीं परन्तु पुस्तक के रूप में शाहनामा की ग्यारह महत्त्वपूर्ण कहानियों का अनुवाद करने में सफल हुई।"[48]

ईरान के अलावा अन्य कई देशों पर लिखे गये नासिरा जी के रिपोर्ताज एवं लघुलेखों के कारण उनका दाखिला पीएच.डी. में नहीं हो सका और नौ माह जे.एन.यू. छात्र यूनियन ने फ़ारसी विभाग से लड़ाई की और अन्त में छात्र आन्दोलन के शान्त हो जाने पर लेखिका को फर्स्ट डिविज़न उसी विभाग से लेने के बाद भी उनहें यह कहकर रद्द कर दिया गया कि मुझे फ़ारसी नहीं आती। जामिया में तीन वर्ष पढ़ाने के बाद ईरान पर अपने दृष्टिकोण के कारण नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा क्योंकि रूढ़िवादी एवं अवसरवादी शक्तियाँ फ़ारसी अध्यापन की सक्रिय हुईं तो उनके समर्थन में पूरा मोर्चा उनके विरुद्ध बन गया। तब लेखिका को लगा कि हर जगह लड़ने से अच्छा है क़लम चलाना। इसी कारण 1983 से अध्यापन कार्य छोड़ वे पूर्णतः लेखन के प्रति समर्पित हो गई।[49]

लेखिका पुनः कहती हैं कि "इतने साल गुजर जाने के बाद भी मेरी पहचान ईरान पर लिखे मेरे रिपोर्ताजों से बनी हुई है। एक गलतफ़हमी जो अक्सर लोगों को मेरे बारे में है....कि मैं ईरानी हूँ और बी.बी.सी. लन्दन वाले मार्कटुली की तरह भारत प्रेम एवं पेशे के चलते हिन्दुस्तान में रह गई हूँ। उनकी बातें सुनकर हँसती भी हूँ और ताज्जुब भी करती हूँ कि क्या वास्तव में राहुल सांकृत्यायण को लोग भूल गए हैं जिन्होंने ईरान पर विस्तार से काम किया था फिर रेणु को जो नेपाल क्रान्ति को देखकर बौद्धिक स्तर पर उद्वेलित हो उठे थे? इन रिपोर्ताज़ों से दोबारा गुज़रना मेरे लिए बड़ा कष्टदायक अनुभव साबित हुआ। एक तरफ़ यक़ीन करना मुश्किल हो रहा था कि इस सबसे गुज़रने वाली मैं ही थी जो इब्नेबतूता बनी, सर पर कफ़न बाँधे इन इलाक़ों में घूम रही थी।.....अकसर मैं सोचती हूँ कि इस तरह के लेखन के चलते मैं पिछले तीस वर्ष से कितने तनाव—दबाव और व्यथा में रही हूँ। मेरे लेखन ने इन देशों का रुख कैसे किया में नहीं जानती मगर कारण ज़रूर कुछ होगा शायद सिर्फ़ इतना सा कि मैं अपने समय के प्रति सचेत हूँ।"[50]

इसके अलावा अपनी वैदेशिक यात्राओं के दौरान नासिरा जी को कई जाने—माने देशी व विदेशी शख्सियतों के साक्षात्कार लेने व उनसे मिलने के सुअवसर प्राप्त हुए जिनमें पाकिस्तान के 'सय्यद मोहम्मद रज़ी रिझवी, 'मौलाना नूरानी', अफगानिस्तान के 'गुलाबद्दीन हिकमतयार', 'पीर गीलानी', बगदाद के 'झियाउर रहेमान', ईरान के 'आयातुल्ला खुमैनी' और 'रफसनजानी', पेरिस के 'शहापोर बख्तीयार', 'मसूद रजवी' और 'बनी सरदार' इत्यादि प्रमुख शख्सियत शामिल हैं। इन व्यक्तियों से मिलकर नासिरा जी स्वयं को और भी उत्साही महसूस करने लगी।

7. युगीन परिवेश

'साहित्य समाज का दर्पण होता है' इस उक्ति के अनुसार साहित्य में तत्कालीन समय के परिवेश की झलक अवश्य मिलती है। युगीन परिवेश एवं वातावरण साहित्य सृजन पर विशेष प्रभाव डालता है। चूँकि साहित्य अनुभूति का परिणाम है और वह अनुभूतिजन्य साहित्य किसी संवेदनशील व्यक्तित्व की लेखकीय प्रतिभा का प्रतिफल होता है। इस प्रकार समकालीन परिवेश का पहले लेखक के व्यक्तित्व पर प्रभाव होता है और तदनुसार ही होता है उसका कृतित्व। लेखक युगीन वातवरण एवं परिवेश को दृष्टिगत रखते हुए ही लेखन करता है। साहित्य संसार पर तत्कालीन सामाजिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश, आर्थिक परिवेश एवं धार्मिक परिवेश का विशेष रूप से प्रभाव दिखाई देता है। डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि "भाषा साहित्य के निर्माण में युगीन वातावरण का विशेष योग हुआ करता है क्योंकि युगीन वातावरण, राजनीति, संस्कृति, साहित्य और कला के मूल्यों द्वारा निर्मित होता है। अतएव युगविशेष के

साहित्य के अध्ययन के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था का ज्ञान होना अपने आप में अनिवार्य हो जाता है।"[51]

हिन्दी साहित्य की प्रतिभा सम्पन्न लेखिका नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व व कृतित्व भी अपने युगीन परिवेश का प्रतिबिंबत प्रतिरूप दिखाई देता है। जिसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है–

7.1 सामाजिक परिवेश

नासिरा शर्मा को साहित्यिक माहौल विरासत में मिला। परिवार के सदस्यों का लिखने–पढ़ने से गहरा सम्बन्ध रहा है। नासिरा जी स्वयं कहती हैं कि "अपनी जिंदगी का शुरुआती हिस्सा मैंने मुस्लिम परिवेश में जिया है। शादी के बाद हिन्दू परिवेश को करीब से जानने–समझने का मौका मिला। मेरे एक तरफ हिन्दू और दूसरी तरफ मुस्लिम समाज है। दोनों को अच्छी तरह जानती हूँ। हिन्दू अपने–आप में डूबा हुआ है। वह सिख, ईसाई और मुस्लिम को नहीं जानता। इससे दीवार बनी है। मुसलमानों को इस दौर में हिन्दुओं से ज्यादा अपनी इज्जत, वफादारी और बरताव का ध्यान रखना पड़ेगा क्योंकि वह इस वक्त सबसे मुश्किल दौर में है। उसे दूसरों से ज्यादा खुलूस से पेश आना पड़ेगा।"[52]

नासिरा जी द्वारा लिखित साहित्य हमें स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक के परिवेश के जीवन्त चित्रण से अवगत करवाता है। बचपन से लेकर आज तक नासिरा जी ने अपने आस–पास समाज में जो भी घटित होता हुआ देखा, उस सबने कहीं न कहीं उनकी वैयक्तिक अवधारणा को सुदृढ़ बनाया। उनकी रचनाओं की कहानी, कथावस्तु तथा पात्र उन्होंने अपने आस–पास से ही उठाये हैं। अपने पैतृक मोहल्ले के आस–पास की बस्ती की जानकारी देती हुई वे कहती हैं कि "इलाहाबाद का सबसे खूबसूरत और जानदार इलाका है नखास कोना और उसके आस–पास का वह सारा इलाका, जो उनकी कहानियों में धड़कता है।.....इस इलाके में एक ही रास्ता आधा पत्थरगली कहलाता है और आधा शाहनूर अलीगंज। पत्थरगली में मेरा हमीदिया गर्ल्स कॉलेज और शाहनूर अलीगंज में मौसी का घर। आधी गली में हिन्दुओं के घर और मंदिर। बाकी गली में मुसलमानों के मकान और मस्जिदें।"[53]

लेखिका कहती हैं कि "आज भी जब कभी उधर से गुजरती हूँ तो बचपन के वे दिन याद करती हूँ जब आए दिन मेरी खाला का नौकर अब्दुल्ला शाहनूर अलीगंज से सुबह–सुबह आकर खबर देता था, आज गढिमा की तरफ हिन्दू–मुसलमान में लड़ाई होने वाली है। नस्सो बीवी का स्कूल जाना ठीक नहीं है। ए.सी.बासु रोड़ पर स्थित हमारा घर इन अपवाहों के घेरे में आ जाता। फसाद की खबर से मेरा स्कूल जाना टल जाता था। रिक्शेवाला लौटा दिया जाता और शाम तक खाला अम्मा जब घर आती तो पता चलता कि 'अफवाह' का स्रोत मोहल्ले का

कूड़ादान था, जहाँ जंग लगी पुरानी छुरी जमादारिन को टोकरे में कूड़ा भरते हुए मिली थी। दूसरे दिन सहेलियों को स्कूल न आने का कारण क्या बताती, अलबत्ता मौसी के हरकारे के चेहरे से मुझे चिढ़ हो गई थी, जिसको इस तरह की अर्थहीन बात करने पर कोई फटकार नहीं पड़ती थी।"[54]

अपने सृजन की वैचारिकता को स्पष्ट करती हुई वे कहती हैं कि "मैं तो इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि सृजन की जो नदी होती है, वो आपकी योजनाओं को ठेंगा दिखाती है और जो चीज निकलने वाली होती है, चटपट निकलती है, जैसे जीरो रोड़—कुइयांजान। मैं आपको एक और बात बताऊँ कि मैं एक माँ हूँ, बीवी हूँ, बहन हूँ, दोस्त हूँ और इस जिंदगी को मैंने भरपूर जिया है, लेकिन एज नासिरा—एज ए राइटर जिया है। पूरी जो नर्मी मेरे रिश्तों की है, वो सब मेरी राईटिंग में आई है। मेरे रिश्ते मेरी राइटिंग से अलग नहीं है और मेरे चरित्र मेरी दुनिया से अलग नहीं हैं।"[55]

इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन के परिवेश एवं सामाजिक परिवेश ने नासिरा शर्मा जैसी साहित्यकार का निर्माण किया है। सहज स्वभाव, सहज सौन्दर्य, माँ—बाप, बचपन, परिवार, शिक्षा, भाषा—ज्ञान, वैवाहिक जीवन, मित्रता, यात्रायें, प्रकृति—प्रेम, अन्तर्राष्ट्रीय बोध, नारी—बोध, स्वतन्त्रता—बोध सब उनके साहित्य सृजन के प्रेरणा—स्रोत रहे हैं।

7.2 राजनीतिक परिवेश

राजनीतिक परिवेश का समाज, संस्कृति तथा साहित्य से बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। राजनीतिक हलचलों ने लोकजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। लेखकीय जीवन व सर्जना भी इससे अछूती नहीं है। 1947 की आजादी देश की तत्कालीन प्रमुख घटना रही है। इसके साथ ही भारत में स्वतन्त्रता का स्वर्णमय वातावरण निर्मित हुआ। धीरे—धीरे यह नव चेतना, नवनिर्माण में परिणत हो गई। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस नवजागरण और नव राष्ट्रीय चेतना का केवल अनुसरण ही नहीं किया, अपितु उसे प्रेरित भी किया और उसका मार्ग भी प्रशस्त किया।

नासिरा जी स्वानुभव को बाँटती हुई कहती हैं कि "देश के बँटवारे के बाद मुसलमानों की भूमिका राष्ट्र में एक सहज प्रवाह जैसी नहीं रह गई थी। पूरा मुस्लिम समाज बँटवारे और जमींदारी उन्मूलन से बुरी तरह टूटकर बिखर चुका था। मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग लगभग पाकिस्तान जा चुका था। अस्सी प्रतिशत कारख़नदार बचे थे, जो आए दिन फ़साद की चपेट में आकर कम से कम मज़दूरी पर काम करने के लिए मजबूर हो जाते थे। ऊपर से फ़साद बँटवारे के आक्रोश का परिणाम माने जाते, मगर वास्तव में यह छोटे स्तर के पूँजीवादी मानसिकता रखने वाले व्यापारियों का एक हिंसक खेल होता, जिसमें राजनेता भी अपनी सफल भूमिका पेश करते

और उनके आँसू पोंछने निकल जाते थे। इन टूटे दिल वालों के लिए यही राजनेता, जो हिंदू और मुसलमान दोनों में से होते थे, आशा की किरण बनते और इस तरह मुस्लिम वोट बैंक की परम्परा जड़ें जमाने लगी, जबकि 1947 से पहले हिन्दू–मुसलमान वोट तो दूर, कुछ भी बँटा हुआ नहीं था।"[56]

नासिरा जी आगे लिखती हैं कि "पिछले पच्चीस वर्षों में खाली जगह काफी हद तक भर गई और मुस्लिम मध्यम वर्ग उभरकर आया। आज किसी भी क्षेत्र में मुसलमान नाम आपको खासी संख्या में नज़र आयेंगे, जो मुख्यधारा में कार्यक्षेत्र के स्तर पर घुल–मिल से गए हैं। इस ओर पहले ध्यान नहीं गया था, परन्तु जब बाबरी मस्जिद का प्रश्न उठा और 6 दिसम्बर का ऐतिहासिक कांड हुआ, उस समय हिंदुओं ने ही नहीं, बल्कि मुसलमानों ने पहली बार बड़ी गंभीरता से अपनी भूमिका पर सोचना शुरु किया कि केवल पढ़ने–लिखने, कमाने और मौलवियों से दूर रहने तक उनकी जिम्मेदारी नहीं बनती, बल्कि सियासत को अब उनकी ज़रूरत है............ आज पढ़ा लिखा मुसलमान इस बात को बड़ी शिद्दत से महसूस कर रहा है कि राष्ट्रीय समस्याओं में, विशेषकर उन जटिल समस्याओं में, जिनमें वही कारण है, उसमें विचार और अभिव्यक्ति के स्तर पर तो उसकी भागीदारी है, परन्तु क़ानून और फ़ैसले में नहीं।"[57]

निष्कर्षतः नासिरा शर्मा जी अपने समकालीन राजनीतिक परिवेश से बेहद प्रभावित रही हैं और उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बना उनका साहित्य। वे लिखती हैं कि "आज एक विचित्र तरह के संकट का सामना भारतीय समाज कर रहा है। इस बदलते परिवेश से पढ़ा–लिखा मुसलमान वर्ग बुरी तरह आहत है, क्योंकि वह देख रहा है, समझ रहा है कि यह जो हो रहा है, वह आध्यात्मिक दृष्टि और धर्म–दर्शन के कारण नहीं हो रहा है, बल्कि प्रतिक्रिया के कारण हो रहा है जो किसी भी समाज के लिए कोई सेहतमंद अलामत नहीं है। बहुत से बुद्धिजीवी, विचारक और समाज–सुधारक इस नतीजे पर पहुँच रहे हैं कि उनको यदि अपने समाज को बचाना है, तो सरकारी स्तर पर संकुचित, संकीर्ण नज़रिया रखने वाले नेताओं के विरोध में उन्हें खड़ा होना पड़ेगा कि मुस्लिम समाज के फ़ैसले अकेले मौलवी, काज़ी आदि किसी एक को लेने का अधिकार नहीं है। वे अनपढ़ मुसलमानों को 'इस्लाम ख़तरे में है' का डर दिखाकर अपनी बात ऊँची रखते हैं और पढ़े–लिखे वर्ग को यह कहकर नकारते हैं कि ये न मुसलमान है और न ही इनको इस्लाम के बारे में कुछ पता है। साथ ही राजनेताओं को यह भी सोचना चाहिए कि भारत में रहने वाली विभिन्न क़ौमें राष्ट्र के निर्माण में बराबर का सहयोग दे सकती है। किसी भी एक क़ौम का पतन वास्तव में राष्ट्र के लिए चिंता बन सकता है। मुसलमानों को सहज रूप से जीने की सहूलियतें प्रदान करना उनका कर्त्तव्य है.......एक अभिशप्त वोटर के रूप में उनका उपयोग बहुत लाभदायक प्रक्रिया नहीं है।"[58]

7.3 आर्थिक परिवेश

लेखिका के व्यक्तित्व पर परिवेशगत सामाजिक ताने–बाने के साथ–साथ आर्थिक ताने–बाने का भी गहरा असर रहा है। नासिरा जी इलाहाबाद के जिस परिवेश में पली–बढ़ी, वहाँ समाज का प्रत्येक तबका रहता था। सब अपनी–अपनी तरह से गुजर–बसर कर रहे थे। यहाँ बर्फ बेचने वाले, सब्जी वाले, चूरन वाले, अण्डे बेचने वाले, फुटपाथी दुकानदारों से लेकर हलवाई, किराना व्यवसायी, साज–सज्जा व पार्लर तथा मध्यम एवं उच्च घरानों के लोग रहते थे। नासिरा जी की जिज्ञासु प्रवृत्ति सदैव उनको इनकी निजी जिन्दगी में झाँकने के लिए विवश करती थी। वह सदैव यह जानने की कोशिश करती थी कि ये लोग किस प्रकार अपना जीवन–बसर करते हैं, स्वयं की जिन्दगी के बारे में कैसा महसूस करते हैं। अल्प संसाधनों में किस प्रकार खुशहाल जीवन–जीते हैं। नासिरा जी अपनी सहपाठी छात्राओं के पारिवारिक जीवन के बारे में जानने के लिए अक्सर उनके घरों पर जाना पसन्द करती थी। नासिरा जी ने जो महसूस किया व देखा, वही उनकी रचनाओं का विषय बनता चला गया।

नासिरा जी अपने बाल्यकालीन अनुभव को बताती हुई कहती हैं कि "मेरा घर मेरे लिए किसी तरह की दिलचस्पी लिए हुए नहीं था। वहाँ की सारी चीजें कायदे–करीने वाली थीं, जिनका मुझे पता था, जिसमें कोई भी नयापन नहीं था, मगर मेरी दोस्तों के घर मुझे बहुत लुभावने लगते थे। जब मैं अपनी दोस्त नजमा की रोजाकुशाई में गई तो उनके रोकने पर मैंने फौरन हाँ कर दी। खपरैल के उस घर में दीवार के पास जमीन पर नर्म गद्दे बिछाकर हम दोनों का बिस्तर लगा दिया गया था और आराम से छत पर फैली ठंडक और आसमान पर छिटके तारों का मजा लेती नजमा की बातें सुन रही थी कि उसकी असली माँ यह नहीं है। वह बीमार रहती है। उसके इस भेद के खोलने पर मुझे अजीब लगा था। इसी बीच नौकर अब्दुल्ला के दोबारा आने पर मुझे घर जाना पड़ा। मगर घर आकर लकड़ी की सुन्दर सिरहाने वाली मसहरी पर सफेद चादर का अपना बिस्तर मुझे बहुत बुरा लगा था, जिसमें न कोई रंग था, न बेतकल्लुफाना, जो मैं उस कथरी के नर्म बिस्तर पर छोड़ आई थी। आज भी मैं उस घटना से मुक्त नहीं हो पाती हूँ। उस छत का सुख मेरी कई कहानियों में आया है, मगर प्यास अब भी बाकी है।"[59] स्कूल में जबान कई तरह की अभिव्यक्ति के साथ बोली जाती थी, क्योंकि हर लड़की का परिवेश अलग था। इलाहाबाद के आस–पास के गाँव–कस्बे की लड़कियों के साथ विभिन्न वर्गों और पेशों वाले घरानों से लड़कियाँ इस स्कूल में आती थीं।

नासिरा शर्मा जी ने अपने 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास की प्रमुख पात्र 'महरुख़' के माध्यम से वास्तविक साम्यवादी होने को अभिव्यक्ति दी है। वेद प्रकाश के अनुसार "नासिरा शर्मा कम्युनिस्ट विचारधारा को मानने वाले कुछ लोगों की सीमाओं और उपभोक्तावाद के दोगलेपन की

आलोचना करती है लेकिन वे कम्युनिस्ट विचारधारा की विरोधी नहीं समर्थक हैं, क्योंकि महरुख़ के संघर्षमय जीवन के माध्यम से उन्होंने इसी विचार को स्थापित करने का प्रयास किया है।"[60]

7.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

धार्मिक आचार–विचार एवं संस्कृति वह सोपान है जो एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ी से जोड़ती है, मिलाती है। व्यक्ति का धार्मिक व सांस्कृतिक परिवेश जिस प्रकार का होगा, व्यक्तित्व भी वैसा होता जाता है। नासिरा जी के परिवार व स्कूल का वातावरण बहुत खुले विचारों वाला रहा है। अपने स्कूली दिनों को याद करती हुई वे कहती है कि "मेरे स्कूल में टीचरें विभिन्न धर्मों की थीं, वहाँ पर लड़कियाँ एक धर्म को मानने वाली थीं। आज हम सब महसूस करते हैं कि इन टीचरों ने बिना किसी प्रचार–प्रसार के हमें शिक्षा के साथ एक मानसिक सुरक्षा का विश्वास दिया था, जिसमें इन्सानी संबंध पर जोर था। इसी के साथ स्कूल में सीनियर–जूनियर दोनों तरह की लड़कियों का नाटक–नृत्य ग्रुप एक बड़े परिवार जैसा बन गया था, जो महीनों अभ्यास के चलते एक साथ उठता–बैठता, खाता–पीता था, जिनमें एक अलग तरह की संवेदना और अपनापन काम करता था।"[61]

नासिरा जी आगे लिखती हैं कि "यू.पी. में उन दिनों एक विशेष वर्ग द्वार गऊ मांस खाने के विरोध में आंदोलन तो था ही, उसी के साथ अंग्रेजी हटाओ, हिन्दी को उचित स्थान दिलाओ की भी चर्चा थी। प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के भाषणों में संस्कृत पढ़ने पर जोर दिया जाता था। उनका विश्वास था कि अपनी संस्कृति जानने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान जरूरी है। इसलिए संस्कृत भाषा हिन्दी के साथ में पढ़ाई जाती थी। हिन्दी टीचर खुराना बहनजी का पूरा व्यक्तित्व मोहक था। उनका उच्चारण प्रवाह हमें प्रभावित करता और बार–बार हम कहते–एक बार और बहिनजी और वह मुस्कराती हुई हमें, रसखान, बिहारी, मीरा, तुलसी व सूरदास सुनाती, जो हमको अनजाने ही इन कवियों के बहुत निकट ले गया। इसी कारण लड़कियों ने उर्दू या अंग्रेजी की जगह 'हिन्दी' में एम.ए. किया। मैं उर्दू इसलिए पढ़ पाई, क्योंकि घर का माहौल ऐसा था।"[62]

"स्कूल में नमाज के पीरियड में सभी लड़कियाँ नमाज पढ़ाती थीं। एक लामजहब मैं थी जो पत्रिका खोलकर कहानियाँ पढ़ती थीं। कई बार सीनियर लड़कियों का गोल मुझे धमकाने भी आया, मगर मेरा जवाब एक ही होता कि आप पुण्य लूटें, मुझे यूँ ही छोड़ दें मेहरबानी करके......"[63] "चूँकि मेरी अरबी भाषा कमजोर थी, सो कुरान को पढ़ते हुए उच्चारण में ज़बान बार–बार लड़खड़ाती और पारा पढ़ने में मन न लगता, सारा ध्यान क्लास की मुखतलिफ लड़कियों के झुंड की तरफ लगा रहता। आखिर तंग आकर मैंने एक दिन सूरहों के ऊपर हिन्दी से उच्चारण लिख लिया और उस्तानीजी के सामने फरफर पढ़कर सबक ख़त्म कर दिया। दीनयातवाली उस्तानी जी बेहद खुश हुई थीं, मगर मेरी इस हरकत पर किसी ने कहा था कि कुरान पर हिन्दी लिखने से

तुम्हें बहुत गुनाह पड़ेगा और सचमुच मैं नमाज, रोजा, कुरान ठीक से न उस समय पढ़ पाई, न आज अदा कर पाई न रख पाई। आज सोचती हूँ कि मैं ऐसी क्यों थी आख़िर मजहबी रियायत मुझे क्यों नहीं बांध पाई, मेरे संस्कार में नौहा, मजलिस, मोहर्रम क्यों नहीं गुंथ पाया, जबकि उस घर, उस स्कूल और उस माहौल में सब कुछ मौजूद था।"[64] नासिरा जी के इन कथनों से स्पष्ट होता है कि वे बचपन से ही खुले–दिमाग व चिन्तनशील व्यक्तित्व की धनी थी। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण सदैव सामाजिक व्यवहार व उसके पीछे निहित कारणों के प्रति वह अभिरुचि रखती थीं। इसी सोच व अनुभव ने धीरे–धीरे उन्हें संजीदापन प्रदान किया।

नासिरा जी स्वयं कहती हैं कि "मेरे उस कॉलेज ने तरह–तरह के मोहल्लों की सैर करा छोटे–बड़े घरों में रहने वाले मस्तमौला लोगों से मेरा परिचय कराया और बताया कि एक रिश्ता खून, वर्ग, जात, रंग, धन, विषय, धर्म से अलग हटकर इन्सानियत का होता है, जिसे पाकर भूख भी हँस सकती है। इसी संदर्भ में कृष्ण बलदेव वैद को पढ़ते हुए उनकी एक अभिव्यक्ति मेरे अंदर गहरे उतर जाती है, जब वह लिखते हैं भूख का रंग ऊदा होता है। इस ऊदे रंग में जुल्म की चोटों का ही नहीं, जाड़े से पड़ते 'नील' का भी अर्थ छुपा होता है और जाने कितनी परतें हैं भूख के ऊदे रंग की, जिन्हें मैंने इन छोटे–कच्चे अधगिरे घरों में जाकर महसूस किया था जहाँ मेरा कोई नहीं रहता–न दोस्त, न रिश्तेदार, मगर आज कागज पर बने उन घरों में मेरे चरित्र बसते हैं, जो वास्तव में मेरी दुनिया, मेरे लोग हैं।"[65]

उपर्युक्त प्रेरक व नियामक तत्त्वों से इतर नासिरा जी के स्वस्थ तन, सकारात्मक एवं उत्साही मन और समृद्ध अन्तःचेतना ने उनके लेखकीय व्यक्तित्व को बनाने में महती भूमिका निभाई है। उनकी जीवटता, परिश्रमशीलता, सैद्धान्तिक व चारित्रिक दृढ़ता और आत्मसम्मान की भावना उनको वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

(ग) पुरस्कार व सम्मान

अपनी अथक एवं अनवरत लेखनी से हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने वाली नासिरा शर्मा सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त विविध पुरस्कारों से सम्मानित होती रही हैं। पुरस्कार से साहित्यकार की प्रामाणिकता साहित्य समाज में महती प्रतिष्ठा को प्राप्त करती है। उनके रचना–संसार की युगानुकूलता, वरेण्यता, गूढ़ता, मौलिकता, जीवन्तता, यथार्थता आदि वैशिष्ट्य के कारण नासिरा शर्मा साहित्यिक समाज एवं सुधी–पाठकों के मध्य सदैव समादृत रहीं हैं। उन्होंने अपनी सुदीर्घ सृजनयात्रा में कहानी, उपन्यास, अनुवाद, समीक्षा, पत्रकारिता आदि विविध क्षेत्रों में लेखन कार्य किया है। उनके साहित्य में रस–रंग, रोमानी आर्द्रता, सौंदर्य के विविध आयाम, चिन्तन और विचार, खण्डित व्यक्तित्व, दुःख–सुख आदि के साथ पात्रों की अन्तरंग और

बहिरंग छवियाँ कई धरातलों पर जीवन्त हो उठती हैं। उनके इस महान् सर्जनात्मक योगदान को हिन्दी साहित्य जगत् ने विविध पुरस्कार देकर सम्मानित किया है। उन्हें हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा हिन्दी सेवा के लिए 'अर्पण सम्मान' (1987–88), 'संगसार' कहानी संग्रह के लिए मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा गजानन माधव मुक्तिबोध पुरस्कार (1995), 'शाल्मली' एवं मध्यपूर्वी देशों पर लेखन के लिए बिहार शासन द्वारा महादेवी वर्मा पुरस्कार (1997), हिन्दी अकादमी, दिल्ली से इंडोरशन चिल्ड्रेन्स् राईटिंग अवार्ड (2000) और कीर्ति सम्मान, पत्रकार श्री प्रतापगढ़, यू.पी. (1980) आदि अनेक पुरस्कारों से अलंकृत किया गया है। आज जब सम्पूर्ण विश्व मुसलमानों को एक समस्या के रूप में देख रहा है, ऐसे समय में 27 जून, 2008 को लन्दन के हाउस ऑफ लाड्र्स में 14वें अन्तर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान से सम्मानित हिन्दी की प्रख्यात लेखिका नासिरा शर्मा की वैचारिक पुस्तक 'राष्ट्र और मुसलमान' भारतीय समाज को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के मार्ग की ओर ले जाती है।[66]

वर्ष 2008 में उनहें उपन्यास 'कुइयाँजान' के लिए यू.के. कथा सम्मान से सम्मानित किया गया। हिन्दी में वर्ष 2016 का साहित्य अकादमी का प्रतिष्ठित पुरस्कार उन्हें उनके उपन्यास 'पारिजात' के लिए देकर साहित्य अकादमी ने भी उनकी लेखन–क्षमता व वैशिष्ट्य को प्रमाणित किया है।[67]

नासिरा जी ने उस व्यवस्था के खिलाफ अपना लेखन किया है जो इंसान के अधिकारों का हनन करती है। इन्सान को इन्सान बने रहने पर प्रेरित करते रहना एवं अपमान, शोषण, अत्याचार के विरोध में खड़े होने की प्रेरणा देना उनकी रचनाओं का प्रमुख उद्देश्य रहा है। पुरस्कारों से वे प्रेरित नहीं हैं। वे पुरस्कार को कभी भी योग्यता का प्रतिमान नहीं मानती हैं किन्तु पुरस्कारों के क्षेत्र में अपनायी जाने वाली भेदभावपूर्ण नीति उन्हें पसन्द नहीं।

एक साक्षात्कार के प्रश्न के प्रत्युत्तर में वे कहती हैं कि "जब से लाख दो लाख के पुरस्कार वजूद में आए हैं उसी के साथ एक अलग तरह की संस्कृति ने भी जन्म लिया है। भव्य गोष्ठी, इंटरव्यू, मुबारकबादों का हंगामा, यह सारा सिलसिला थोड़ी देर के लिए नाड़ियों में नया खून दौड़ा देता है और आम लोग जो साहित्य नहीं पढ़ते हैं उनकी नज़रों में लेखक एक महत्त्वपूर्ण प्राणी बन जाता है।"[68]

साथ ही उस लेखनीय विरोधाभास को व्यक्त करती हुईं वे कहती हैं कि "पुरस्कार की अंधी दौड़ में शामिल होने के लिए केवल व्यवस्था को दोष देना उचित नहीं है बल्कि हम खुद काफी हद तक इसके भागीदार हैं। हम एक लेखक की तरह अपने व्यक्तित्व को संभालते नहीं हैं बल्कि उसको अकसर 'सामाजिक प्रतिष्ठा' के कार्ड की तरह मौके़–बेमौके़ प्रयोग करते हैं। आज

भी हमारे पैरों के नीचे लेखकीय ठोस ज़मीन नहीं है। हमारा वह योगदान समाज में नहीं है जो होना चाहिए। लिखने के लिए हम लिख रहे हैं मगर हम अपने सहयोगियों तक से वह व्यवहार नहीं करते जो हमको एक शक्ति बन साहस दे।"[69]

इस प्रकार नासिरा शर्मा जी के व्यक्तित्व के विविध पक्षों के अनुशीलन उपरान्त निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि "उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का सबसे खूबसूरत पक्ष है—उनकी भाषा। लहजे का आरोह—अवरोह बरबस ही मन को बाँध लेता है। नासिरा जी को खूबसूरती से प्यार है, चाहे वह और की खूबसूरती हो या मन की प्रेमिल अनुभूतियों की, चाहे व्यवहार व शिष्टाचार की नफासत हो अथवा प्रकृति का नैसर्गिक आनन्द हो, फूल, वृक्ष, नदी, झरने, समन्दर, पहाड़, जंगल, सभी तो उनकी आँखों के अक्स में समाए रहते हैं।"[70] उनकी वैयक्तिक विशेषताओं में उनका मातृप्रेम, देशशक्ति, भाषा—प्रेम, ऐतिहासिक जिज्ञासा, अन्याय—प्रतिरोध, प्रकृति—प्रेम, नारी के प्रति विशेष सोच, परिवेशगत जिज्ञासा इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इन सबके समाहार ने उनके व्यक्तित्व के साथ—साथ उनके साहित्य को भी प्रभावशीलता व सर्वग्राह्यता प्रदान की है। नासिरा जी प्रारम्भ से ही जिज्ञासु प्रकृति की रहीं है। अपने आस—पास के परिवेश, वहाँ रहने वाले नाना तबकों व काम—धन्धों में संलग्न लोगों, उनके जीवन के विविध—पक्षों, अपनी सहपाठी छात्राओं की बातों को सुनकर उनकी पारिवारिक स्थितियों को जानने की चेष्टा, उनके व्यक्तित्व को निखारती चली गईं। नासिरा जी किसी भी घटना का सीधे—सीधे अर्थ लेने की बजाय घटना सापेक्ष समग्र चिन्तन उपरान्त ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं तथा पूर्ण साफगोई व वेबाकपूर्ण लहजे में बिना किसी लाग—लपेट के, अपनी बात रखती हैं।

नासिरा जी का वैचारिक दृष्टिकोण बहुत ही उन्नत है। वे रुग्ण परम्पराओं का प्रबल विरोध करती हैं, वहीं आदर्श परम्पराओं की पुनर्स्थापना की आग्रही रही हैं। वे अपने वैयक्तिक जीवन में नमाज़ और रोज़े से दूर रहीं हैं। किसी धर्म विशेष को बुरा कहना या धर्म के नाम पर उनका अपमान करना उन्हें पसन्द नहीं है। धार्मिक स्थलों को वे ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हुए पवित्र मानती हैं। उनका हर धर्म के प्रति विशाल दृष्टिकोण है।

अपने लेखन के लिए उन्होंने अपने आस—पास के परिवेश से ही सामग्रियाँ जुटायी हैं। एक रचनाकार की शैली में स्वयं नासिरा जी कहती हैं कि "सर्जना से जुड़े व्यक्ति में तीसरी आँख का होना ज़रूरी है। यह उनकी बनावट का अनिवार्य अंग है। चूँकि साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है, वे उसी के सुख—दुःख की बात करते हैं जो सामाजिक चेतना के द्वारा उनमें अधिक पैना होता है।"[71]

इस प्रकार नासिरा शर्मा वर्तमान हिन्दी साहित्य की बहुत संवेदनशील व सफल रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं के पात्रों, किरदारों, जीवनियों, कहानियों व कथ्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि वे सदैव मानवता व इंसानियत की पक्षधर हैं।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. फिरोज अहमद–वाङ्मय नासिरा शर्मा एक विशेषांक, पृ.–42
2. सं. एम. फिरोज अहमद, नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, पृ.–65
3. नासिरा शर्मा विरचित रचनाओं में लेखकीय परिचय से उद्धृत
4. सं. कन्हैयालाल नन्दन, गगनाँचल (जनवरी–मार्च), (मेरा परिवेश और रचनाशीलता), पृ.–112
5. सं. एम. फीरोज अहमद, नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, पृ.–382
6. सं. कन्हैयालाल नन्दन, गगनाँचल (जनवरी–मार्च), (मेरा परिवेश और रचनाशीलता), पृ.–284
7. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा, पृ.–173–174
8. नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, पृ.–12
9. नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, पृ.–185
10. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा, पृ.–188–189
11. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, अतीत और भविष्य का दस्तावेज : कुइयाँजान–अर्चना बंसल, पृ.–90
12. www.hindi2dictionary.com तथा नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, पृ.–428
13. नासिरा शर्मा से साक्षात्कार, नया ज्ञानोदय, अंक : सितम्बर, 2007
14. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा, पृ.–182
15. फीरोज अहमद से हुआ साक्षात्कार, साक्षात्कार से विशेषांक, पृ.–332
16. राष्ट्र और मुसलमान, संस्मरण–जायज़ा तीसरी आँख से सरहद के आर–पार का, पृ. 191
17. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा, पृ.–371
18. राष्ट्र और मुसलमान, पृ.–371
19. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा–संस्मरण, पृ.–190–191
20. सामाजिक चेतना और नासिरा शर्मा : वैश्वीकरण स्त्री–विमर्श, दलित–चेतना, डॉ. (श्रीमती) मनीषा शर्मा, पृ.–22
21. औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा, पृ.–172
22. नासिरा शर्मा, शीर्ष कहानियाँ, पृ.–168
23. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा–संस्मरण, पृ.–185
24. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, पृ.–379–380
25. सं. कन्हैयालाल नंदन–गगनांचल (जनवरी–मार्च) (मेरा परिवेश और रचनाशीलता), पृ.–112

26. सं. कन्हैयालाल नंदन–गगनांचल (जनवरी–मार्च) (मेरा परिवेश और रचनाशीलता), पृ.–113
27. नासिरा शर्मा से साक्षात्कार से उद्धृत
28. ज्ञानोदय, 2009, पृ.–63
29. नासिरा शर्मा–शामी कागज–दो शब्द से
30. औरत के लिए औरत–नासिरा शर्मा, पृ.–202
31. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं, नासिरा शर्मा, पृ.–3
32. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, पृ.–21
33. एक मूल्यांकन, पृ.–44
34. एक मूल्यांकन, पृ.–45–46
35. एक मूल्यांकन, पृ.–46
36. 'मानवीय संवेदना और साझा संस्कृति की दुनिया : इंसानी नस्ल'–प्रो. वीरेन्द्र मोहन–वाङ्मय–नासिरा शर्मा विशेषांक–संपादक डॉ. एम. फीरोज अहमद, जून 2009, पृ.–201
37. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, डॉ. शेख अफरोज फातेमा, पृ.–74
38. सबीना के चालीस चोर–नासिरा शर्मा, पृ.–दो शब्द से
39. सबीना के चालीस चोर, पृ.–170
40. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, डॉ. शेख अफरोज फातेमा, पृ. 74 तथा राष्ट्र और मुसलमान, पृ.–186
41. पत्थर गली–नासिरा शर्मा, पृ.–29
42. औरत के लिए औरत–नासिरा शर्मा, पृ.–181
43. औरत के लिए औरत, पृ.–181
44. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, सं. एम. फीरोज अहमद, पृ.–10
45. नासिरा शर्मा : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व–डॉ. विजय राऊत, पृ.–246
46. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, डॉ. शेख अफरोज़ फातिमा, पृ.–149
47. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं–नासिरा शर्मा, पृ.–दो शब्द से
48. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं, पृ.–दो शब्द से
49. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं, पृ.–दो शब्द से
50. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं, कवर पृष्ठ से
51. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.–281

52. नासिरा शर्मा से साक्षात्कार–दो आबा, अंक : जून 2007, पृ.–177
53. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, पृ.–14
54. एक मूल्यांकन, पृ.–14–15
55. वही–एक जनेअजीबी : नासिरा शर्मा, पृ.–391–392
56. राष्ट्र और मुसलमान, नासिरा शर्मा, पृ.–19
57. एक मूल्यांकन, पृ.–20–21
58. एक मूल्यांकन, पृ.–22–23
59. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, पृ.–20–21
60. एक मूल्यांकन, पृ.–20–21
61. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, पृ.–24
62. एक मूल्यांकन, पृ.–30–31
63. एक मूल्यांकन, पृ.–37
64. एक मूल्यांकन, पृ.–26–27
65. एक मूल्यांकन, पृ.–49
66. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, पृ.–308
67. http://hindi:yourstory.com गीता श्री का लेख, साहित्य–अकादमी–पुरस्कार–हिन्दी तथा sahitya-akademi.gov.in
68. ललित शुक्ल द्वारा नासिरा शर्मा का साक्षात्कार, नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि, सं. ललित शुक्ल, पृ.–395
69. वही, पृ.–395
70. वही, डॉ. सुदेश बत्रा–नासिरा शर्मा : जितना मैंने जाना, पृ.–54
71. साहित्य अमृत–फरवरी, 2002, पृ.–32

द्वितीय अध्याय

नासिरा शर्मा की सृजन यात्रा के विविध आयाम

"हालात अच्छाई और बुराई के मायने कैसे बदलकर रख देते हैं....पेट भरे लोगों के लिए उँगली उठाना कितना आसान होता है मगर भूखे के लिए रोटी हर फ़लसफ़े से बढ़कर अहम हो उठती है।"

—अजनबी जज़ीरा / 120

द्वितीय अध्याय

नासिरा शर्मा की सृजन यात्रा के विविध आयाम

शोध–प्रबन्ध के केन्द्रीय विषय "नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना" पर आने से पूर्व यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि लेखिका के समग्र रचना–संसार का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया जाये और उन रचनाओं के कथ्य पर विचार किया जाये। साथ ही उनकी रचनाओं में निहित भाव सौन्दर्य एवं शिल्प सौन्दर्य को सही ढंग से समझने तथा समीक्षापरक अध्ययन के लिए भी यह समीचीन प्रतीत होता है। लेखिका को आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित महिला साहित्यकारों की श्रेणी में स्थापित करने वाले एवं लोककल्याण के साधनभूत उनके साहित्य जगत् की विषयवस्तु को समझना व उससे रूबरू होना जरुरी हो जाता है क्योंकि यह उनके उपन्यासों के निहितार्थों तक पहुँचने में एक सार्थक सोपानक्रम प्रतीत होता है।

डॉ. विजय कुमार राऊत लिखते हैं कि 'साहित्य' मनुष्य की अंदरूनी कसमसाहट की अभिव्यक्ति होता है। साहित्यकार मूलतः पहले व्यक्ति होता है और बाद में साहित्यकार। व्यक्ति के रूप में जीवनयापन करते समय प्राप्त अनुभूतियाँ ही अंततः साहित्य के रूप में रूपायित होती हैं। यही अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न माध्यमों का अन्वेषण करती हैं। इसी के तहत साहित्य में विभिन्न विधाओं का उद्‌भव हुआ है। एक ही घटना या प्रसंग उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, कविता जैसे विभिन्न रूपों द्वारा उद्‌घाटित होता है। कभी–कभी प्रसंग अथवा घटनाएँ नूतन विधाओं की मांग करती हैं। इसी के परिणामस्वरूप साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति को विभिन्न रूपों में व्यक्त करता है। साहित्यकार युगीन जीवन का भोक्ता होता है। अतः वह अपने अनुभूतिजन्य संदर्भों को साहित्य द्वारा वाणी देता है।[1]

(क) नासिरा शर्मा की सृजन यात्रा : एक परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महिला साहित्यकारों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। इन महिला लेखिकाओं ने अनेक अनछुये पहलुओं को उद्‌घाटित किया है। नासिरा शर्मा वर्तमान समस्याओं, भावबोध, परिवेशगत अनुभूति और संवेदना आदि को लेकर साहित्य सृजन करने वाली महत्त्वपूर्ण साहित्यकार हैं। लेखिका के पिता प्रो. जामिन अली स्वयं एक कवि और लेखक रहे हैं,

इसलिए नासिरा जी को बचपन से ही साहित्यिक वातावरण मिला है। कुछ परिवेशगत प्रभाव और कुछ स्व–प्रतिभा के कारण लेखिका को बचपन से ही लेखन कार्य में रूचि रही है।

लेखिका स्वयं कहती हैं कि– "मैं जब तीसरी कक्षा में पढ़ती थी तो हमीदिया गर्ल्स कॉलेज में कहानी–लेखन में मैंने पुरस्कार पाया, पर उस कहानी का नाम अब याद नहीं है। मैं जब सातवीं कक्षा में पढ़ती थी तो मेरी कहानी 'राजा भैय्या' पत्रिका में (1959) प्रकाशित हुई। 1975 में जब हमने संजीदगी से सोचा कि कुछ लिखा जाए तो कहानी लिखना शुरू किया। 1975 में सारिका के नवलेखन अंक में मेरी कहानी 'बुतखाना' और 'मनोरमा' पत्रिका में 'तकाजा' प्रकाशित हुई।"[2]

साहित्य रचना के प्रति उनकी प्रेरणा के सम्बन्ध में पूछे गये एक प्रश्न के प्रत्युत्तर में नासिरा जी कहती हैं। कि– "कृश्न चंदर के व्यंग्य लेखन से मैं बहुत प्रभावित थी। प्रेमचन्द शुरू से अभी तक पसंद आने वाला लेखक है। मैक्सिम गोर्की की 'मां' से बेहद प्रभावित थीं। सआदत हसन मंटो की फसाद की कहानियाँ मुझे बेहद प्रभावित करती थीं।"[3] इसके अलावा वे अन्यत्र भी लिखती हैं कि– "घर का माहौल साहित्यिक था। मेरे परिवार में हर पीढ़ी में कवि थे, मेरे दादा, ताया, पिता...मुझे प्रेरणा वास्तव में इनसानी जिन्दगी के उतार–चढ़ाव से मिली है। उसमें परिवार का बड़ा सहयोग रहा है। क्योंकि बहुत से अनुभव इसी माहौल में हुए हैं।"[4]

इस प्रकार श्रीमती शर्माजी एक सृजनात्मक परिवार में पली बढ़ी होने के कारण इसका प्रभाव उनके लेखन पर स्पष्टतः दिखाई देता है। उनके लेखकीय सौंदर्य बोध और परिवेश के प्रति सूक्ष्मावलोकन को हम उनके मौलिक विचारों से सरलता से जान सकते हैं। अपने कर्तृत्व के बारे में बतलाते हुए वे कहती हैं कि– "'शामी कागज' पहला कहानी संग्रह 1980 ई. में प्रकाशित हुआ जिसमें ईरान और ईरानियों का प्राकृतिक सौंदर्य व स्वभावगत दार्शनिकता दिखाई देती है। पहला उपन्यास 'सात नदियाँ एक समन्दर' 1987 ई. में प्रकाशित हुआ जिसकी प्रेरणा ईरान की क्रांति रही है।"[5]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महिला साहित्यकारों की श्रृंखला में नासिरा शर्मा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आप वर्तमान समस्याओं, भावबोध, परिवेशगत अनुभूति और संवेदना आदि को लेकर साहित्य सृजन करने वाली प्रख्यात लेखिका हैं। आपके लेखन का फलक देश–विदेश की परिधियों को लांघता नजर आता है। आपने कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त रिपोर्ताज, अनुवाद, लेख आदि विविध विधाओं में लिखा है किंतु कथा साहित्य के क्षेत्र में उनका विशेष योगदान रहा है।

नासिरा जी के अद्यावधि प्रकाशित साहित्य का परिचयात्मक विवरण इस प्रकार है–

(ख) नासिरा शर्मा के कहानी संग्रह

1. शामी कागज[6]

'शामी कागज' पुस्तकीय कलेवरबद्ध नासिरा शर्मा की प्रथम रचना है। इसका प्रकाशन दिसम्बर 1980 ई. में हुआ था। इस संग्रह में 'पतझड़ का फूल', 'परिंदे', 'दीमक', 'दादगाह', 'खुशबु का रंग', 'उकाव', 'आशायाना', 'आबे तौबा', 'शामी कागज़', 'तलाश', 'बेगाना ताजिर', 'मिट्टी का सफर', 'सहरा–नवरद', 'मुट्ठी भर धूप', 'आईना', 'मिश्र की ममी' आदि ईरानी परिवेश पर आधारित सोलह कहानियों का संग्रह है। ये सभी कहानियाँ इन्सानी भावनाओं का प्रतीक बनकर हर देश, भाषा और संस्कृति का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। अपनी ईरान यात्रा के दौरान लेखिका ने जो अनुभूत किया, ईरानी समाज में घुल–मिलकर जो करीब से देखा, उसका यथार्थ चित्रण इन रचनाओं में हमें देखने को मिलता है। लेखिका स्वयं इस संग्रह की भूमिका लिखते समय कहती हैं कि– "अपना–पराया कुछ न था। बस, जो मेरे दिल और दिमाग ने देखा, समझा और महसूस किया, वह कागज पर ढलकर कहानी बन गयी। इस तलाश में सीमा का ध्यान न रहा। सच्चाई भी यही है कि न मैं सीमा–रेखाओं को पहचानती हूँ और न ही मेरा विश्वास है उन पर। मैं तो केवल दो हाथ, दो पैर, दो कान, दो आँख, एक दिल और एक दिमाग वाले इन्सान को पहचानती हूँ। वह जहाँ भी, जिस सीमा, जिस परिधि में जीवन की सम्पूर्ण गरिमा के साथ मिल जाए, वहीं मेरी कहानी का जन्म होता है।"[7]

ईरानी समाज का जीवन्त चित्रण इन कहानियों में देखने को मिलता है। वहाँ एक वर्ग ऐसा है जिसके पास अकूत धन–दौलत व सुख–सुविधाएँ हैं वहीं दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग है जो गरीबी, अभावग्रस्त व नानाविध समस्याओं से जूझ रहा है। 'पतझड़ का फूल' कहानी के अन्तर्गत विधवा जीवन की त्रासदी का अंकन है। अनमेल विवाह से उत्पन्न व आजीवन झेली जाने वाली छटपटाहट और घुटन की शिकार नारी का हृदयस्पर्शी चित्रण इस कहानी में किया गया है। 'परिंदे' कहानी में भारत से ईरान में जाने वाले लोगों की विवशता का चित्रण है। 'दीमक' कहानी ईरानी क्रान्ति, 'दादगाह' में पति–पत्नी के टूटते हुए सम्बन्धों को देखकर वैवाहिक जीवन से उत्पन्न वितृष्णा युक्त युवक के जीवन, 'खुशबू का रंग' कहानी में ईरान में चल रही तानाशाही के विरुद्ध संघर्षरत दो प्रेमियों का, 'उकाव' कहानी में मानसिक उलझनों, उबाऊ जीवन और समाज में व्याप्त बुराईयों से संत्रस्त लेखक की आत्मकथा का, 'आशयाना' में अपने घर के सपने बुनने

वाले दम्पती के ऊहापोह भरे जीवन, 'आबे तौबा' में अनैतिक यौन सम्बन्ध रखने के बाद पश्चाताप की अग्नि में जलने वाली एक औरत, 'शामी कागज़' इस संग्रह की शीर्ष कहानी में नायिका पाशा के विवाह के कुछ ही समय में उसके पति की आकस्मिक मृत्यु तथा आजीवन अकेले रहने का निर्णय लेना आदि नारी मन की कोमल भावनाओं तथा 'तलाश' कहानी के अन्तर्गत चार युवकों द्वारा अपने भविष्य की तलाश वर्णित है।

'बेगाना ताजिर' में जीवन–मूल्यों के ह्रास से क्षुब्ध हृदय से युक्त व्यक्ति 'मिट्टी का सफर' में आर्थिक समस्या से ग्रस्त एक आदमी, 'मुट्ठी पर धूप' इंसानी बेगानेपन के शिकार एक चित्रकार तथा 'मिश्र की ममी' में प्रेम की पराजय और कामान्ध नारी की पोल खोलने वाली कहानी पर आधारित है। इस प्रकार तीन वर्षों के अन्तराल में लिखी गई ये सभी कहानियाँ ईरान के उस दौर की साक्षी हैं जब अनगिनत जिज्ञासाएँ लिये लेखिका ने ईरानी धरती पर कदम रखा।

2. पत्थर गली[8]

नासिरा शर्मा द्वारा प्रणीत दूसरा कहानी संग्रह 'पत्थर गली' है। इसमें एक विशेष परिवेश को लेकर लिखी गयी आठ कहानियाँ संग्रहीत हैं। यह संग्रह सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। मुस्लिम समाज की रूढ़िग्रस्त परम्पराओं का यथार्थ चित्रण हमें यहाँ देखने को मिलता है। 'बावली', 'सरहद के इस पार', 'बंद दरवाजा', 'कातिब', 'ताबूत', 'कच्ची दीवारें', 'पत्थर गली' और 'सिक्का' इन आठों कहानियों में लेखिका ने उस समाज को केन्द्र में रखा है जो आगे बढ़ने के लिए बन्द दरवाजों से बाहर आना चाहता है। मुस्लिम पात्रों को एक अनोखे अन्दाज के साथ पेश किया गया है।

इस संग्रह की पहली कहानी 'बावली' में नायिका सलमा की मनोव्यथा व त्याग की भावना का सूक्ष्म चित्रण, 'सरहद के इस पार' में हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष की वैचारिकता का तथा इस सांप्रदायिकताजन्य विभिन्न स्थितियों में पिसते हुए मानव 'रेहान' की कथा, 'ताबूत' कहानी में निम्नवर्गीय मुस्लिम परिवार की अभावग्रस्त जिंदगी तथा अविवाहित लड़कियों पर अपने ही परिवार द्वारा किये जाने वाला शोषण का हृदय–विदारक वर्णन तथा 'कच्ची दीवारें' एक निःसंतान दम्पती की अंतिम अवस्था व दूसरों की धनलिप्सा आदि का चित्रण उपलब्ध होता है।

'सिक्का' कहानी में लेखिका द्वारा आत्मकथात्मक शैली में प्रेमानुभूति का काव्यात्मक इजहार किया है। एक वेश्या के असफल प्रेम को यहाँ दर्शाया गया है। 'पत्थर गली' इस संग्रह की शीर्ष कहानी है। यह शीर्षक इलाहाबाद की एक मशहूर गली से लिया गया है। इसमें सामन्ती

परिवेश में नारी की कुर्बानी की कहानी है। 'पत्थर गली' में संग्रहीत कहानियों के सम्बन्ध में स्वयं लेखिका का कहना है कि– "ये कहानियाँ महाजरत के दुःख और मुजरों के सुख का मोहभंग करती हुई एक ऐसी गली की सैर कराती हैं जो पत्थर की गली है। इस पत्थर की गली में रहने वाले अपने विकास के लिए छटपटाते नजर आते हैं, अपनी पहचान के लिए वह जद्दो–जहद के समुन्दर में गोते लगाते हैं, रूढ़िवादिता की बेड़ियों को तोड़कर खुले आसमान में उड़ना चाहते हैं, पंखों को पसारकर उसमें सूरज की गर्मी और रोशनी भरने के लिए तड़पते हैं और इस कशमकश में पत्थर से टकराकर लहूलुहान हो उठते हैं।"[9]

3. संगसार[10]

जब ईरान में क्रांति अपने चरमोत्कर्ष पर थी और ईरान–इराक युद्ध (1980–1988) से जन–जीवन पूर्णतः अस्त–व्यस्त हो गया था। इसी इरानी क्रांति के विविध पक्षों को आधार बनाकर श्रीमती नासिरा शर्मा द्वारा लिखी गई कहानियों का संग्रह है 'संगसार'। अनुभूतिजन्य यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाले इस कथा संग्रह का प्रकाशन सन् 1993 में हुआ। इस संग्रह के अन्तर्गत 'तारीखी सनद', 'पहली रात', 'दरवाज–ए–कजविन', 'दीवार–दर–दीवार', 'गुंचा दहन', 'दिल की किताब', 'यहूदी सरगर्दान', 'जरा–सी बात', 'उड़ान की शर्त', 'खलिश', 'झूठा पर्वत', 'संगसार', 'नमक का घर', 'अजनबी शहर', 'गूंगा आसमान', 'लबादा', 'आखिरी प्रहर' और 'तुम्हारे बिना' ये कहानियाँ संकलित हैं। ये सभी कहानियाँ लेखिका द्वारा सन् 1980 से सन् 1992 के मध्य लिखी गई हैं।

इस संग्रह की पहली कहानी 'तारीखी सनद' में एक सरकारी फौज के कर्मचारी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण है, 'पहली रात' कहानी में ईरानी क्रान्ति के दौरान शाह के जुल्मों का शिकार होने वाले लोगों के आक्रोश को दर्शाया है, 'दरवाजा–ए–कजविन' में एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जिसे इच्छा के विरुद्ध वेश्याओं के साथ रहना पड़ता है और न चाहते हुए भी वह पेशा अपनाना पड़ता है। 'दीवार–दर–दीवार' में क्रांति के समय के एक परिवार के चार सदस्यों की चार विभिन्न विचारधाराओं को दर्शाया गया है। 'गुंचा दहन' जो परवीन ऐतेमासी स्कूल काण्ड की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है, इसमें कहानी की नायिका को धर्म के ठेकेदारों द्वारा प्रताड़ित कर मार दिया जाता है। जब ईरानी शासन द्वारा साम्यवादी तथा अन्य क्रांति के विचारक साहित्य पर प्रतिबंध लगाया था तथा घर–घर तलाशी लेकर पुस्तकों को जलाया जा रहा था, उसी घटना की

जीवन्त अभिव्यक्ति है 'दिल की किताब'। 'यहूदी सरगर्दन' के अन्तर्गत नागरिकता के प्रश्न से पीड़ित डॉ. बोरहान की स्थिति और उस पर लगायी गयी बंदिशों को दर्शाया गया है।

'जरा सी बात' में एक किशोरी के मन का चित्रण है जिसको उसके परिवारजन समझने की कोशिश भी नहीं करते। 'उड़ान की शर्त' में घर्म और राष्ट्र को लेकर फैले राजनीतिक वैमनस्य के शिकार दम्पती 'महशी और तालिब' की कहानी चित्रित है। 'भूख' में निर्धन वर्ग के संघर्ष तथा 'खलिश' कहानी में एक युवक की आत्मग्लानि वर्णित है। 'झूठा पर्वत' कहानी में एक वृद्ध जिसके छः बेटे देश के लिए शहीद हो जाते हैं, की मार्मिक अन्तर्व्यथा को दर्शाया गया है।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'संगसार' और कहानियों से अपेक्षाकृत भिन्न कहानी है। संगसार का अर्थ है–पत्थरों से उस समय तक मारना जब तक कि व्यक्ति के प्राण न निकल जाएँ। 'संगसार' उस युगल को किया जाता है, जो अनैतिक शारीरिक सम्पर्क करते हैं। यह धर्म और समाज दोनों दृष्टियों से पाप माना जाता है। इस कहानी की नायिका को भी कथित पाप के कारण इस्लाम धर्म के अनुसार संगसार करने का दण्ड मिलता है, किंतु उसका पुरुष साथी साफ बच निकल जाता है।

'नमक का घर' कहानी में ईरानी क्रांति से देश छोड़ अन्य देश में पनाह लेने वाली नायिका 'शाहबानो' की मनोव्यथा को दर्शाती है। आतंक के कारण खण्डहर में तब्दील हुए शहरों और घरों की कहानी है 'अजनबी शहर'। 'गूंगा आसमान' में निर्दोष मेहरअंगीज की कहानी है तथा 'लबादा' ईरान से पलायन करने वाले दो क्रांतिकारी लेखकों की कथा है। 'आखिरी प्रहर' की जहिरा द्वारा झेले गये क्रांति के विभिन्न पड़ावों का चित्रण है।

आदर्श सक्सेना के अनुसार "'संगसार' की कहानियों में गहन मानवीय चेतना, तीखी संवेदना और मार्मिक अभिव्यंजना का सुन्दर समन्वय हुआ है। लेखिका ने किसी भी वैचारिक आग्रह से खुद को पूर्णतः मुक्त रखकर उस लेखकीय ईमानदारी का आदर्श प्रस्तुत किया है। जो किसी रचना को सार्थक बनाता है।"[11]

इस संग्रह के बारे में लेखिका कहती है कि– "ये कहानियाँ इन्सानों की अभिलाषाओं और सपनों की दस्तावेज मात्र हैं, किसी धर्म, विचार, मत की अच्छाई और बुराई को बताने का रोजनामचा नहीं।"[12]

4. इब्ने मरियम[13]

'इब्ने मरियम' सन 1994 में प्रकाशित नासिरा शर्मा का महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह है। इस संग्रह की कहानियाँ हमें द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आतंकवाद व अन्य समस्याओं से पीड़ित राष्ट्रों की त्रासदी से साक्षात्कार कराती हैं जिनका कैनवास राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर आधारित है। 'अमोख्ता', 'जड़े', 'जैतून के साये', 'काला सूरज', 'कागजी बादाम', 'तीसरा मोर्चा', 'मोमजामा', 'मिस्टर ब्राउनी', 'काशीदाकारी', 'जुलजुता', 'पुल–ए–सरात', 'जहाँनुमा' और 'इब्ने मरियम' ये तेरह कहानियाँ इस संग्रह में संकलित हैं जिनकी यद्यपि ज़मीन भिन्न–भिन्न है किन्तु संवेदना का धरातल एक ही इन्सानी संघर्ष, छटपटाहट, पीड़ा, भूख, गरीबी तथा बदहाली पर आधारित है। इन कहानियों में फिलिस्तीन, युगांडा, इथोपिया, अफगानिस्तान, सीरिया आदि कई देशों के आतंकवाद से लेकर भारत के भोपाल गैस–दुर्घटना से पीड़ित आम जनता की दयनीय स्थिति आदि का यथार्थ चित्रण है। लेखिका स्वयं कहती हैं कि– "इब्ने मरियम संग्रह की सारी कहानियाँ एक विशेष स्थिति की हैं जिसमें फँसा इन्सान जीने के लिए छटपटाता है। कभी उसका यह संघर्ष अपने अधिकार को पाने के लिए होता है तो कभी समाज को बहतर बनाने के लिए करता है।"[14]

'अमोख्ता' कहानी में भारत विभाजन के समय पंजाब राज्य में आकर बसने वाले एक हिन्दू व्यक्ति की कथा के माध्यम से लेखिका ने एक आम आदमी की मानसिक पीड़ा को दर्शाया है। 'जड़े' कहानी युगांडा में बसे भारतीय लोगों की त्रासदी तथा अपने और नागरिकता की अन्तहीन खोज को दर्शाती है। साथ ही फिलिस्तीन के मुक्ति संग्राम के समय लोगों द्वारा किये गये अत्याचारों का दर्दनाक प्रस्तुतिकरण भी 'जैतून के साए' कहानी करती है। 'काला सूरज' में यूथोपिया के अकाल (1980) के दौरान पीड़ित लोगों के दुःख और व्यथा को दर्शाया गया है। 'कागजी बादाम' में अफगानिस्तान में उत्पन्न अव्यवस्था से परेशान होकर पाकिस्तान आकर बसने वाले एक परिवार की कथा है। भारत विभाजन के बाद कश्मीर की बिगड़ती परिस्थितियों में हिन्दू–मुस्लिम परिवारों के पारस्परिक प्रेम व सौहार्द को दर्शाती कहानी है 'तीसरा मोर्चा'। इसमें कश्मीर के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हुई लेखिका कहती हैं कि– "मारने और भागने वालों के अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग ऐसा भी है जो वहाँ की विडम्बनाओं से जूझकर परिस्थितियों का सामना करने और सुधारने का दम रखता है।"[15] 'मोमजामा' कहानी में हमें लेबनान के मुस्लिम युवक और सीरिया की ईसाई युवती के प्रेम और संघर्षमय जीवन का विवरण मिलता है।

स्कॉटलैंड में बसे भारतीय युवक भूरेलाल के परिवार की व्यथा का चित्रण है 'मिस्टर ब्राऊनी'। 'काशीदाकारी' कहानी में भारत और बांग्लादेश के विभाजन उपरान्त उत्पन्न परिस्थितियों का जीवन्त चित्रण किया गया है। इसमें दोनों देशों में रहने वाले मछेरों के मेल–मिलाप की मर्मस्पर्शी कथा है। 'जुलजुता' ईसाई धर्म की दो विभिन्न धाराओं (कैथोलिक और प्रोटेस्टैन्ट) के पारस्परिक मतभेदों और तनाव के शिकार एक प्रेमी युगल की कथा है। 'पुल–ए–सरात' कहानी में ईरान–इराक युद्ध (1980–88) से त्रस्त दो प्रेमियों की कहानी है। 'जहाँनुमा' कहानी में नबीला और कमाल नामक एक प्रगतिशील विचारधारा सम्पन्न युगल की कहानी है। भोपाल गैस काण्ड से उत्पन्न आम आदमी की तड़प और बेबसी को दर्शाती है 'इब्ने मरियम' कहानी। इस प्रकार इन कहानियों में वैश्विक धरातल पर पीड़ित, कुंठित, दमित एवं विस्थापितों की समस्याओं को उद्घाटित करने का भरसक प्रयास किया है।

5. सबीना के चालीस चोर[16]

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में आये विभिन्न बदलावों व परिस्थितियों को साकार करती हुई बारह कहानियों का संग्रह है 'सबीना के चालीस चोर'। नासिरा शर्मा कृत यह संग्रह सन् 1997 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में 'विरासत', 'चाँद–तारों की शतरंज', 'इमाम साहब', 'ततइया', 'गूंगी गवाही', 'सतघरवा', 'उसका बेटा', 'तक्षशिला', 'चिमगादड़े', 'नौ–तपा', 'सबीना के चालीस चोर' और 'आया बसंत सखी' ये बारह कहानियाँ संकलित हैं। ये सभी कहानियाँ अपने कथ्य व बुनावट से लेखिका की अनुभूति से सीधे–सीधे जुड़ाव रखती हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पचास साल बाद भी गाँव और नगरों में आये बदलावों के कारण मानव जीवन ऊपर उठने की बजाय गिरता ही चला गया। लेखिका इन कहानियों में नूतन कथ्य और शिल्प को प्रस्तुत करती हैं। रघुवंश 'मणि' इस संग्रह पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि– "'सबीना के चालीस चोर' संग्रह की कहानियाँ बिना नाम बताए पढ़ने को दी जाए तो यह जान पाना कठिन होगा कि वह एक लेखिका की कृतियाँ हैं। आज के स्त्रीवादी विमर्श के अतिरेक में यह एक बड़ी उपलब्धि है कि नासिरा शर्मा की कहानियों में एक स्वस्थ सामाजिक समझ है। संग्रह में संकलित सभी कहानियाँ ऐसे जीवन की है जिसे जीते लोग भारतीय समाज के हाशिए पर हैं।"[17]

इस संग्रह की सभी कहानियों के पात्र ज्यादातर निम्न वर्ग से हैं, जो अपनी विभिन्न समस्याओं से आक्रान्त हैं। 'विरासत' कहानी में गाँवों से नगरों की ओर पलायन और उससे उत्पन्न व्यथा का चित्रण, 'चाँद–तारों की शतरंज' और 'इमाम साहब' में गरीबी व निर्धनता से जूझते परिवार का चित्रण तथा 'ततइया' में नारी शोषण एवं नारी जीवन की व्यथा का चित्रण

करती हैं। 'गूँगी गवाही' में एक नाई परिवार की कहानी के माध्यम से भ्रष्टाचार युक्त वर्तमान सामाजिक व न्याय व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है। 'सतघरवा' कहानी में लेखिका ने ऊँच–नीच, वर्ग–भेद, पीढ़ीगत संघर्ष एवं बंगलों में रहने वाले लोगों की घटिया मानसिकता का चित्रण किया गया है। 'उसका बेटा' कहानी में हमारे सरकारी अस्पतालों में रोगियों के प्रति नर्सों के लापरवाहीपूर्ण व्यवहार, विशेषतः निम्न वर्ग के प्रति को दर्शाया गया है। पुरुष प्रधान समाज में पिसती जा रही नारी और उसके संघर्ष को एक दृढ़ संकल्प वाली आधुनिक पत्रकार महिला की कहानी के माध्यम से 'तक्षशिला' में चित्रित किया है। 'चिमगादड़े' कहानी में इलाहाबाद के उस पुराने और पिछड़े इलाके का चित्रण है जहाँ शिक्षा एक अभिशाप समझी जाती थी। साथ ही शिक्षा क्षेत्र में पैर पसारते भ्रष्टाचार को भी दर्शाया है। समाज व्याप्त सामाजिक अराजकता और धार्मिक उन्माद को जीवन्त करती कहानी है 'नौ–तपा'। शीर्षक कहानी 'सबीना के चालीस चोर' में एक छः वर्षीय सबीना नामक लड़की की दृष्टि से देश–विभाजन के समय के हिन्दू–मुस्लिम फसाद को 'अलीबाबा और चालीस चोर' के परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है। सबीना का मानना है कि फसाद कराने वाले, दूसरों का हक मारने वाले ही चालीस चोर है, जो हमेशा कमजोर वर्ग को दबाते हैं।

'आया बसंत सखी' इस कहानी में लेखिका ने सांप्रदायिकता की चपेट में आये श्रमजीवी वर्ग के संघर्ष को लखनऊ के चिकन दस्तकारों की दुर्दशा तथा वहाँ कुछ पूँजीपति द्वारा अपने फायदे के लिए कराये जाने वाले शिया–सुन्नी फसाद के माध्यम से समाज के समक्ष रखा है।

स्वयं नासिरा जी इस संग्रह पर टिप्पणी करती हुईं लिखती हैं कि– "ये कहानियाँ उन इन्सानों की हैं, जो बचपन से मेरे साथ हैं। जिन्होंने मुझे कहीं न कहीं प्रभावित किया। अपनी जिंदगी से मेरा रिश्ता जोड़ा और मुझे ताजा अनुभूतियों से भरी दुनिया का अलग संसार दिया।"[18]

6. खुदा की वापसी[19]

'खुदा की वापसी' नामक यह कहानी संग्रह नासिरा शर्मा कृत छठा कहानी संग्रह है। सन् 1998 में प्रकाशित इस संग्रह का वैशिष्ट्य यह है कि इसकी समस्त नौ कहानियाँ नायिका प्रधान हैं। इनमें मुस्लिम समाज की महिलाओं के अधिकारों के विषय में बताया है। 'खुदा की वापसी', 'चार बहनें शीशमहल की', 'दहलीज', 'दिलआरा', 'पुराना कानून', 'दूसरा कबूतर', 'बचाव', 'मेरा घर कहाँ' और 'नई हुकूमत' में नौ कहानियाँ संग्रहीत हैं।

'खुदा की वापसी' इस कहानी में नायिका फरजाना अपने मेहर[20] के वाजिब हक को लेकर आवाज उठाती है। 'चार बहनें शीशमहल की' इसमें 'सुहाग स्टोर' नाम से चूड़ियों की दुकान चलाने वाले 'शरीफ' और उसकी चार लड़कियों की कहानी है। कहानी में दर्शाया गया है कि बेटी होने के कारण परिवारजनों द्वारा आत्मीयतापूर्ण व्यवहार नहीं मिलने पर भी बेटियाँ किस प्रकार पैतृक परिवार के लिए आत्मोत्सर्ग करती हैं। लगभग ऐसी ही कहानी 'दहलीज' में दर्शायी गयी हैं। जिसमें नायिका अपनी अन्य दो बहनों से इतर अनन्त दहलीजों को पार कर शिक्षा प्राप्त करती है और परिवार के आर्थिक दायित्वों का निर्वहन करती हुई लड़कियों के प्रति नजरिये को बदलने को मजबूर कर देती है।

'दिलआरा' कहानी में विधवा साजदा के माध्यम से दिलआरा और अन्य लड़कियों में धर्म, शरीयत और औरतों के हक के बारे में जागृति लाने की कोशिश की है। इसी तरह 'पुराना कानून' कहानी में लेखिका ने एक ऐसे निम्न वर्गीय मुस्लिम परिवार का चित्रण किया है, जो धर्म के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ है। मुस्लिम समाज में प्रचलित बहुपत्नी–रिवाज के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं का चित्रण 'दूसरा कबूतर' और 'बचाव' कहानियों में हुआ है। 'मेरा घर कहाँ' निम्नवर्ग की स्त्रियों की कहानी है तथा 'नई हुकूमत' में भी यही दर्शाया है। साथ ही समाज को संदेश दिया है कि 'आत्मनिर्भरता' ही वास्तविक जीवन है।

इस्लाम धर्म में स्त्रियों को पुरुषों के बराबरी में हक दिये हैं। पुस्तक की भूमिका में लेखिका स्वयं कहती है कि– "क्योंकि मुझे शिद्दत से महसूस हो रहा था कि हमने काफी समय उन अधिकारों को पाने के संघर्ष में गँवा दिया, जिसके लिए हमारा समाज, धर्म और मानसिकता तैयार नहीं थे, मगर हमने उन अधिकारों की तरफ ध्यान नहीं दिया जो हमें मिले हुए हैं और हम उनसे बेखबर सिर्फ इसलिए हैं कि पुरुष प्रधान समाज उसे हमें देना नहीं चाहता है। मुझे लगा, बेहतर है कि हम मिले अधिकारों को पहले हासिल करें, फिर जो नहीं उनका सवाल उठाएँ।"[21]

7. इनसानी नस्ल[22]

'इनसानी नस्ल' वर्ष 2000 ई. में प्रकाशित नासिरा शर्मा का सातवाँ कहानी संग्रह है। इसमें 'असली बात', 'अपराधी', 'पाँचवाँ बेटा', 'बड़े परदे का खेल', 'कोड़ा', 'अग्निपरीक्षा', 'मरुस्थल', 'उजड़ा फकीर', 'दुनिया', 'वही पुराना झूठ', 'इनसानी नस्ल', 'एक न समाप्त होने वाली प्रेमकथा' और 'कनीज का बच्चा' ये तेरह कहानियाँ संग्रहीत हैं। ये समस्त कहानियाँ मुख्य रूप से दो प्रकार की है– "पहली, इनसान से इनसान की टकराहट धर्म, भाषा, जात–पाँत की आड़ लेकर

जो सतही कारण हैं जरूर, मगर गहरे बेधते हैं। दूसरी वे कहानियाँ, जो संवेदना के स्तर पर एक इनसान दूसरे को छलकर सुख प्राप्त करता है और दूसरे इनसान को गहने आहत करता है। ये अंतर्धारा को पकड़ती इनसानी पेचीदगियों की कहानियाँ हैं, जो इंसान की आंतरिक व्यवस्था को दर्शाती हैं। खासकर इस बात को कि दिमाग दिल पर कितना हावी होता जा रहा है और संवेदनाएँ किस तरह शुष्क हो भौतिक सुख में अपने को तलाश करती भटक रही है।"[23]

संग्रह की 'असली बात' कहानी में हिन्दू–मुस्लिम फसाद से पीडित निर्धन वर्ग की विडम्बना को, 'अपराधी' कहानी में समाज में व्याप्त भेदभाव को, 'पाँचवा बेटा' में धार्मिक भेदभाव से ऊपर उठकर इनसानियत को, 'बड़े परदे का खेल' कहानी में अन्तर्वैवाहिक सम्बन्ध और उससे उपजी समस्याओं को दर्शाया गया है। 'जोड़ा' कहानी स्त्री–पुरुष की पारस्परिक अपरिहार्यता को स्पष्ट करती है वहीं 'अग्निपरीक्षा' कहानी निर्दोष स्त्री पर दोषारोपण करने की सामाजिक स्वभाव को दर्शाती है। 'मरुस्थल' कहानी ऐसी दो सखियों की कहानी है जो एक ही पुरुष मित्र के प्रेम में फंस जातीं हैं और पुरुष मित्र के दोनों को छोड़कर चले जाने पर यादों के मरुस्थल से अकेले जूझना पड़ता है। 'उजड़ा फकीर' की नायिका रानी कठिन परिश्रम के बाद भी अपने घर को नहीं बचा पाती है।

'दुनिया' कहानी के माध्यम से लेखिका ने सामाजिक व पारिवारिक रिश्तों से लुप्त होती संवेदना को स्पष्ट किया है वहीं 'वही पुराना झूठ' कहानी से अनाथ जाहिदा के विषमतापूर्ण जीवन को चित्रित किया है। 'एक न समाप्त होने वाली प्रेमकथा' एक ऐसी औरत के चेहरे को हमारे समक्ष उपस्थित करती है जो संपत्ति की लिप्सा में अपने बीमार पति को यातनाएँ दे–देकर मार डालती है। 'कनीज का बच्चा' कहानी हमें स्त्री का स्त्री के प्रति नफरत भरे स्वभाव तथा उदारता से नफरत पर विजय को दिखलाती है।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'इनसानी नस्ल' अलग–अलग धर्मों के पति–पत्नी जो मिलकर ऐसी नस्ल को जन्म देना चाहते हैं जो केवल इनसान हो, न कि हिन्दू अथवा मुसलमान।

8. शीर्ष कहानियाँ[24]

सन् 2001 ई. में प्रकाशित 'शीर्ष कहानियाँ' नासिरा शर्मा का आठवाँ कहानी संग्रह है। इसमें पूर्व में प्रकाशित सात शीर्षक कहानियों–'शामी कागज', 'पत्थर गली', संगसार', 'इब्ने मरियम', 'सबीना के चालीस चोर', 'खुदा की वापसी' और 'इनसाली नस्ल', को संग्रहीत किया है।

9. दूसरा ताजमहल[25]

'दूसरा ताजमहल' सन् 2002 में प्रकाशित नासिरा शर्मा का नौवाँ कहानी संकलन है। इस संग्रह में संकलित सभी सातों कहानियाँ लेखिका की मौलिक अनुभूतियों से संपृक्त होने के कारण यथार्थ–जीवन का एहसास दिलाती हैं। 'दूसरा ताजमहल', 'तुम डाल–डाल हम पात–पात', 'और गोमती देखती रही', 'प्रोफेशनल वाइफ', 'पंच नगीना वाले', 'गली घूम गई', और 'संदुकची' इन सात दीर्घ कहानियों को यहाँ सम्मिलित किया गया है।

संग्रह की शीर्ष कहानी 'दूसरा ताजमहल' में आधुनिकता की चकाचौंध के कारण लुप्त होती इंसानियत तथा तिरोहित हो रही मानवता को दर्शाया गया है। 'तुम डाल–डाल हम पात–पात' कहानी में भ्रष्ट पुलिस–तन्त्र और इससे पिसते सामान्य आदमी तथा सत्ता के गलत इस्तेमाल का चित्रण है। इस प्रकार इन कहानियों में लेखिका ने आधुनिक परिवेश, बदलते संदर्भ, स्त्री–पुरुष संबंधों के बदलते प्रतिमान, मूल्य विघटन, घुटन जैसे विभिन्न तथा समसामयिक संदर्भों का उद्घाटन किया है।

10. बुतखाना[26]

नासिरा शर्मा प्रणीत इस कहानी संग्रह में कुल उनतीस कहानियाँ और लेखिका का मन्तव्य समाहित हैं। वर्ष 2002 ई. में प्रकाशित इस संग्रह को तीन विभागों में विभाजित किया जा सकता है। संग्रह के सम्बन्ध में स्वयं नासिरा जी कहती हैं कि– "बुतखाना मेरी पहली कहानी है, जो 'सारिका' के नवलेखन अंक में 1976 में छपी थी। जहाँ से मेरा लेखन कार्य शुरू होता है फिर 'मरियम' (1984), 'खिड़की' (1984), 'नमकदान' (1987) में छपी। अन्य कहानियाँ 2000 और 2001 ई. में लिखी गई हैं। इस तरह मेरा यह संग्रह मेरे 25 वर्ष के लेखन का समावेश है।[27] इस तरह 'नमकदान', 'अपनी कोख', 'खिड़की', 'बुतखाना', 'गुमशुदा लड़की', 'ठंडा बस्ता', 'बिलाव', 'मटमैला पानी', 'घुटन', 'दूसरा चेहरा', 'इच्छा घर', 'कैद घर', 'फिर कभी', 'शर्त', 'गलियों के शहजादे', 'मरियम', 'लू का झोंका', 'कल की तमन्ना', 'रुतबा', 'खौफ', 'गलत सवाल सही जवाब', 'नजरिया', 'आज का आदम', 'निकास द्वार', 'पीछा', 'अभ्यास', 'उलझन', 'तन्हा', 'पनाह' ये कहानियाँ यहाँ संग्रहीत हैं। इन कहानियों के माध्यम से लेखिका ने समझाया है कि व्यक्ति आधुनिकता की होड़ में अपने आप से दूर होता जा रहा है। संवेदनाओं का समन्दर सूखता जा रहा है। व्यक्ति केवल हाड़ माँस के शरीर तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि यंत्रवत् हो चला है। हम अपने ही बनाये जाल में फँसकर छटपटाते नजर आने लगे हैं।

(ग) उपन्यास साहित्य

1. शाल्मली[28]

नासिरा शर्मा कृत पहला उपन्यास 'शाल्मली' सन् 1987 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की ख्याति का प्रमाण है कि अभी तक इस उपन्यास के चार संस्करण निकल चुके हैं। यही लेखिका की कीर्ति का आधार स्तम्भ साबित हुआ। इस उपन्यास में दाम्पत्य जीवन के संतुलन में बाधक बनती जा रही पुरुष की परम्परागत मानसिकता के चित्रण के साथ–साथ आदर्श और आधुनिकता में तालमेल बिठाती आधुनिक नारी का चित्रण किया गया है।

इस उपन्यास की नायिका 'शाल्मली' है, जो एक सुशिक्षित, सर्वगुणसम्पन्न, बड़ी अफसर तथा सम्पन्न परिवार की इकलौती सन्तान है। वहीं शाल्मली का पति नरेश रूढ़िवादी मानसिकता से लिप्त तथा औरत को पैर की जूती समझने वाला पुरुष चरित्र है। शाल्मली घर और दफ्तर दोनों को बखूबी संभालती है परन्तु नरेश पुरुष जन्य सामान्य विकृतियों का शिकार है। शाल्मली उसको बहुत समझाती है तथा अपने घर को टूटने से बचाने का भरसक प्रयास करती है। शाल्मली को जब नरेश के बाह्य सम्बन्धों का पता चलता है तब शाल्मली खुद को समेट नहीं पाती। आखिरकार वह नरेश को अपना फैसला सुना देती है– "नरेश मुझे और उसके बीच किसी एक को चुनने की स्वतन्त्रता तुम्हें देती हूँ। उसके साथ रहकर तुम्हें अपना जीवन सार्थक लगता है, तो।"[29] नरेश का हमेशा गलत व्यवहार करना, ताने देना, शराब पीकर देर रात घर लौटना, परोसी थाली को छोड़कर बाहर खाना खाना, स्वयं नैतिक रूप से पतित होने के बावजूद शाल्मली पर ही लांच्छन लगाना, उसका अमानवीय व्यवहार इन सबसे शाल्मली व्यथित होकर सोचती है कि सम्बन्धों से निजात पा ले। उसकी सहेलियों का भी यही मानना है। परन्तु वह नरेश को तलाक देने के पक्ष में नहीं है। अन्त में शाल्मली इस निर्णय पर पहुँचती है कि जीवन के इन दस–ग्यारह वर्षों के संताप को वह जीवन का महत्त्वपूर्ण मुद्दा बनाकर उसकी तरफ से निर्लिप्त हो जाए, इसी में उसकी भलाई है, वरना जिस व्यक्तित्व को उसने अब तक सहेज कर रखा है, उसे यूँ ही तोड़ बैठेगी और उसकी अपनी जीवन यात्रा की धारा टूट कर शाखाओं में बटने लगेगी और उसका ठोस व्यक्तित्व एक चंचल धारा की तरह अपना सीधा लक्ष्यपूर्ण प्रवाह खो बैठेगा।[30]

इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से कहा जा सकता है कि बुनियादी हथियारों को पुरुषों ने अपने पास रखा है। ऐसी स्थिति में नारी की बेचैनी, छटपटाहट तथा घेरे से बाहर निकलने की अकुलाहट स्वाभाविक है। इन्हीं सूक्ष्मतम मानवीय संवेदनाओं को, नारी–मन की

छटपटाहट और संघर्ष को 'शाल्मली' के माध्यम से पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है तथा सोचने पर विवश किया है।

2. ठीकरे की मंगनी[31]

नासिरा शर्मा का द्वितीय उपन्यास 'ठीकरे की मंगनी' सन् 1989 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति और रूढ़िग्रस्त वातावरण से बाहर निकलने के संघर्ष की दास्तान है। "यह उपन्यास उस नारी की गाथा है जो अपने आपको खोकर और कुछ पाना नहीं चाहती।" इस तथ्य को उपन्यास की नायिका 'महरूख़' के जीवन से लेखिका ने सन्देश दिया है।

उपन्यास का सम्पूर्ण वृतान्त उत्तरप्रदेश के पारम्परिक देहाती मुस्लिम सैयद परिवार में जन्मी 'महरूख' की है। इस परिवार में पिछली चार पीढ़ियों से जन्मी यह पहली लड़की है क्योंकि इससे पूर्व जन्मी लड़कियाँ जीवित नहीं रह पाती थीं। अतः नवजात बच्ची को जीवित रखने और उसके ऊपर से तमाम बलाएँ टालने के लिए टोटके की रस्म के तहत उसकी खाला ने गंदगी से भरे ठीकरे में सिक्का डालकर उसकी मंगनी ठीकरे से कर देती है तथा कहती है कि "खालिदा आज से यह लड़की मेरी हुई।"[32] आगे चलकर महरूख के बाद चार बहनें और जन्म लेतीं हैं। ठीकरे के साथ हुए इस टोटके की रस्म को खाला शाहीन गंभीरता से लेकर महरूख की अपने बेटे रफत से मंगनी करती है और उसे अपनी बहू के रूप में देखती है। समय के साथ वयस्क होने पर महरूख़ रफत भाई के साथ दिल्ली रहकर पढ़ाई करती है लेकिन रफत भाई अमेरिका जाकर किसी और वैलरी नामक लड़की के साथ बँध जाता है। यह समाचार जब महरूख को मिलता है तो रफत के साथ बुने सारे सपनों को तोड़कर गाँव चली आती है तथा अपनी थीसिस को बीच में ही छोड़कर एक छोटे से गाँव में अध्यापिका की नौकरी करने लगती है। जहाँ वह अपने सहयोगी पुरुष अध्यापकों तथा गाँव के रसूखदारों के द्वारा परेशान की जाती है। इसी बीच अमेरिका से पूर्व पत्नी को तलाक देकर लौटे रफत भाई के द्वारा महरूख को शादी का प्रस्ताव देने पर वह कहती हैं– "मैं जगह, चीज या मकान नहीं थी, रफत भाई, जो वैसी की वैसी रहती। मैं इंसान थी, कमजोरियों का पुतला। मैंने आपको जिस भरोसे भेजा था, आप भी वैसे कहाँ रह पाए? कुछ चीजें कितनी बेआवाज टूटती हैं। मैं बेआवाज टूटी थी, किरच–किरच होकर बिखरी थी। बड़ी मुश्किल से अपने को चुना है, समेटा है, जोड़ा है, तब कहीं जीने के काबिल हुई हूँ। मुझसे अब मेरी यह जिंदगी वापस मत छीनिये।"[33]

इस प्रकार संघर्षों की अग्नि में तपकर वह और भी मजबूत होती है और सेवानिवृत्त होकर पुनः अपने गाँव लौट आती है। माँ–बाप के गुजर जाने के बाद बदले माहौल में उसी पुराने घर में अकेले रहने का निर्णय लेती है।

नासिरा शर्मा का यह उपन्यास समसामयिक नारी चेतना का बहुत सशक्त प्रतिनिधित्व करता है, "इसका स्वर बहुत लाऊड नहीं है पर क्या चीख–पुकार के बिना कोई बड़ी बात कही ही नहीं जा सकती। यह उपन्यास महरूख के माध्यम से नारी के अन्तः साक्षात्कार का उपन्यास है, उसकी अपनी पहचान का उपन्यास है। यह उस नारी की गाथा है जो अपने आपको खोकर और कुछ पाना नहीं चाहती। उपन्यास का प्रमुख आकर्षण इसकी प्रवाहमयी भाषा भी है, जिसमें उर्दू की छौंक कुछ गहरी लगी हुई है। जिसे परिवेश को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है, उसे देखते हुए यह आवश्यक भी था।"[34]

3. ज़िंदा मुहावरे[35]

'जिंदा मुहावरे' नासिरा शर्मा द्वारा विरचित एक बहुचर्चित उपन्यास है। भारत–विभाजन की त्रासदी को आधार बनाकर लिखा यह उपन्यास सन् 1993 में प्रकाशित हुआ। धर्म के नाम पर हुए कत्ले आम और इनसानियत के मर जाने का वीभत्स चित्रण करता हुआ यह उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत में अपना वैशिष्ट्य लिये हुए है।

दिल्ली से दूर फैजाबाद गाँव में रहने वाले रहिमुद्दीन के परिवार की कहानी को इस उपन्यास में गूँथा गया है। उपन्यास के पूर्वार्ध में लेखिका ने भारतीय मुसलमानों की घरेलू जिंदगी का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है। साथ ही उस मानसिकता का चित्रण भी बखूबी किया जिसके कारण मुस्लिम युवा पीढ़ी विभिन्न कारणों से पाकिस्तान जाने को अपना मकसद मान बैठी है। रहिमुद्दीन का छोटा बेटा निजाम, जो इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है वह जन्नत बने पाकिस्तान का ख्वाब देखते हुए करांची चला जाता है। पाकिस्तान जाते वक्त वह सोचता है, "जहाँ जात है अब वहीं हमारे वतन कहल इहे। नया ही सही अपना तो होइहे। जहाँ रोज–रोज ओकी खुद्दारी को कोई ललकारिए तो नाहीं। कोई ओके गरिबान पर हाथ डालै की जुर्रत तो न करिहे...।"[36]

पाकिस्तान जाकर वह संघर्ष करते हुए बड़ा आदमी बन जाता है, पर अपनी जन्मभूमि की गंध के लिए हमेशा तड़पता रहता है। परिवार के शेष सभी सदस्य माँ–बाप, भाई–बहन, भाभी और गोलू भारतीय जमीं पर ही पैतृक गाँव में रहते हैं। वह भारत लौटने के लिए लालायित रहता है,

परन्तु सियासत उसे ऐसा नहीं करने देती। आखिर बड़ी जद्दोजहद व मुश्किलों को पार करते हुए जब वह भारत लौटता है तब उसे सुकून मिलता है।

इस प्रकार यह उपन्यास इतिहास के झरोखे से हमें बतलाता है कि विभाजन जितना विनाशकारी हिन्दुओं के लिए था उतना ही विनाशकारी मुस्लिमों के लिए भी था। बँटवारे के समय जो मुसलमान पाकिस्तान चले गये उनको वहाँ के मुसलमानों ने कभी भी ह्रदय से नहीं लगाया। कुछ आर्थिक रूप से समुन्नत हुए परन्तु अन्त तक वे 'मुजाहिर' ही कहलाये। उस त्रासदी मे धर्मान्धता अपनी पताका फहरा रही थी और मनुष्यता धरती पर पड़ी हुई तड़प रही थी। कश्मीर रूपी देश आज भी भारतीय सरजमी को खोखला करने में लगा हुआ है। पाकिस्तान अपनी आदतों से बाज न आते हुए उग्रवादियों को सह दे रहा है तथा कश्मीर के मुसलमानों को भारत के खिलाफ उकसा रहा है।

संक्षेप में कहें तो आने वाली नस्लों के नाम पर ज़िंदा मुहावरे उपन्यास मानवीय चेतना की दास्तान है। लेखिका इस उपन्यास के बारे में टिप्पणी करती हुई लिखती हैं कि– "मैं जिंदा मुहावरे के पाठकों को उस सेतु पर लाकर खड़ा कर सकूँ जो इस इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है।"[37]

4. सात नदियाँ एक समंदर[38]

'सात नदियाँ एक समंदर' यह उपन्यास सन् 1995 में प्रभात प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इसका नाम पहले 'बहिस्त–ए–ज़हरा' था। लेखिका द्वारा विगत कई वर्षों में की गई ईरान यात्राओं का लेखा–जोखा स्वरूप है यह उपन्यास, जो वैश्विक स्तर के कई अनछुए पहलुओं को प्रस्तुत करता है। ईरान की क्रान्ति पर आधारित इस उपन्यास में वर्णित किया गया है कि इन्सान की तमन्ना व इच्छाएँ किस प्रकार अधूरे रह गये सपनों को बयां करती है। ईरान में शाही साम्राज्य को हराकर लोगों ने खुमैनी को शासन इस आशा में सौंपा कि अब उनकी स्थिति शाह के शासन काल जैसी नहीं रहेगी। परन्तु लोगों का यह भ्रम जल्दी ही टूट गया और लोग खुमैनी के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। इस उपन्यास में इनसे सम्बन्धित समस्त घटनाओं की झलक देखने को मिलती है।

इस उपन्यास के सारे प्रमुख चरित्र औरतें हैं। उपन्यास का आरम्भ विश्वविद्यालय के उस माहौल से होता है जहाँ, तय्यबा, सूसन, मलिहा, परी, शहनाज, अख्तर और सनोबार ये सभी छात्राएँ अपना सुनहरा भविष्य बुनने में संलग्न हैं परन्तु शाह के शासन के विरोध में हुए

आन्दोलनों के कारण विश्वविद्यालय बन्द होता है तथा खुमैनी शासन के आने पर भी पीएच.डी. के लिए दाखिले मिलने की उम्मीदों पर भी पानी फिर जाता है। धीरे–धीरे वे वैवाहिक जीवन में व्यस्त होकर दूर–दूर हो जाती हैं परन्तु तय्यबा अपनी कलम को खुमैनी शासन के विरुद्ध चलाती है। धीरे–धीरे खुमैनी शासन के विरोध और दमन की घटनाऐं अपना खूनी रूप ले लेती हैं। जिसमें तय्यबा को शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना देते हुए गोली से उडा दिया जाता है परन्तु अपने साथियों के बारे में कुछ नहीं बोलती।

इस उपन्यास के बारे में नासिरा शर्मा लिखती है कि– "ईरान की क्रांति पर लिखा मेरा यह उपन्यास उन अनुभवों का लेखा–जोखा है, जो पिछले नौ वर्षों में मुझे ईरान की धरती पर हुए। इन नौ वर्षों के पीछे लगभग नब्बे वर्षों का अतीत सांसे ले रहा था, जिसमें पाँच हजार वर्ष पुराने ईरान की सभ्यता, संस्कृति का वैभव अपनी ऐतिहासिक गाथा गुनगुना रहा था।"[39] इस प्रकार लेखिका द्वारा अन्यायी शाह व खुमैनी शासनों के विरुद्ध पीड़ित लोगों के खड़े होने विशेषतः वहाँ की औरतों के द्वारा लड़ी लड़ाई का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है।

5. अक्षयवट[40]

नासिरा शर्मा द्वारा प्रणीत 'अक्षयवट' उपन्यास 2003 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के केन्द्र में इलाहाबाद से जुड़ी लेखिका की स्मृतियों का लम्बा सिलसिला है। दरअसल इलाहाबाद की हवा, पानी, मिट्टी ने लेखिका के मनोमस्तिष्क को गहरा प्रभावित किया है और उसका प्रभाव उनके व्यवहार एवं कर्तृत्व में स्पष्ट रूप से झलकता है। पिछले बीस वर्षों में आये बदलावों को इलाहाबाद के परिप्रेक्ष्य में इसमें दर्शाया गया है। इस उपन्यास के केन्द्र में इलाहाबाद शहर के पत्थर गली, नखासकोना, रानीमुंडी, दरियाबंद, हिम्मतगंडा, बताशा वाली गली, कोतवाली और आस–पास फैला बाजार तथा घंटाघर आदि विभिन्न भागों तथा उसमें रहने व गुजर–बसर करने वालों की जिंदगी को दर्शाया गया है।

दरअसल अक्षयवट प्रतीक है उस अविराम भावधारा का–उस अक्षर विरासत का, जिसका शहर इलाहाबाद की धमनियों में निरन्तर विस्तार है। कहना होगा कि– "इस उपन्यास में इलाहाबाद शहर अपने सारे नये–पुराने चटकमद्धिम रंगों और आयामों के साथ जीवन्त रूप में उपस्थित है। इसमें शहर की धड़कन में रची–बसी ऐसी युवा जिन्दगियों की मर्मस्पर्शी कहानी है जो विरासत में मिली तमाम उपलब्धियों के बावजूद वर्तमान व्यवस्था की सड़ाँध और आपाधापी में अवसाद–भरी जिन्दगी जीने के लिए अभिशप्त हैं। निस्सन्देह नासिरा शर्मा ने अपने इस उपन्यास

के माध्यम से जीवन की गहन जकड़न और समय की विसंगतियों को पहचानने और उनसे मुठभेड़ करने की कोशिश की है।...वास्तव में 'अक्षयवट' को पढ़ना एक बनती–बिगड़ती और बदरंग होती सभ्यता से साक्षात्कार करना भी है।"[41]

इलाहाबाद साझी संस्कृति का उत्कृष्ट उदाहरण रहा है। जिस उल्लास से यहाँ रामलीला और दुर्गापूजा की जाती है, उसी उत्साह से ईद और मोहर्रम भी मनाये जाते हैं पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पचास–बावन वर्ष बाद माहौल पूरी तरह बदल गया है। उपभोक्ता संस्कृति ने उत्सवों में छिपे सार–तत्त्वों को सोख लिया है। स्वयं लेखिका कहती हैं कि– "परम्परा के निर्वाह के लिए रावण के पुतले में आग लगाना और बुराई को सदा के लिए मिटा देने का संकल्प हर दिल में होता, मगर व्यावहारिक रूप से मर्यादा पुरुषोत्तम राम बनने की जिज्ञासा किसी में न जागती, क्योंकि त्याग करने पर आज के दौर में कोई राजी न था। उल्टे त्याग की जगह पैसा कमाने की नयी–नयी तरकीबों में सबका मन–मस्तिष्क रमता। रावण को नकारते हुए भी रावण–कृत्य को अपनाने की छुपी लालसा, आज का सबसे कड़वा यथार्थ था।"[42]

उपन्यास के केन्द्र में ज़हीर और उसका परिवार है। संगम की इसी मिट्टी की उपज है जहीर जिसे अपनी दादी और माँ से स्वाभिमान, ईमानदारी, त्याग और कर्मठता के संस्कार विरासत में मिले हैं। उसका पिता शहर के दंगों में मारा गया था और विधवा दादी फीरोज़जहाँ बेगम ने ही उसे पाल–पोसकर बड़ा किया है। परन्तु जीवन में उसका सामना होता है स्वार्थी नेता और भ्रष्ट पुलिस तन्त्र के गठजोड़ से। जिसके कारण आम आदमी का जीवन दूभर हो गया है। ज़हीर और उसके मित्रों द्वारा देखे गये सुखद भविष्य के सपने भी इस व्यवस्था का शिकार होकर सपने ही रह जाते हैं। इस विवशतापूर्ण स्थिति का धैर्यपूर्वक सामना करते हुए वे अन्याय का खुलकर प्रतिकार करते हैं और जोखिम उठाकर भी पीड़ितों की सहायता करते हैं। भ्रष्ट पुलिस इंस्पैक्टर श्यामलाल त्रिपाठी जैसे उनको रास्ते से हटाने की ताक़ में रहते हैं किन्तु "ज़हीर मारा ही नहीं जा सकता वह तो 'अक्षयवट' है। अक्षय युवा शक्ति–युवा पीढ़ी का प्रतीक ज़हीर, मात्र ज़हीर नहीं है, उसमें समंजित हैं, रमेश, जुगनु, सलमान, मुरली, बसंत, सुरेन्द्र और सतीश यानि कि सम्पूर्ण युवा शक्ति और इसमें संदेह नहीं कि आज के जीवन में जो कुछ उम्मीद बची है, वह युवा पीढ़ी के इन्हीं प्रतिनिधियों के बल पर कायम रह सकती है।"[43]

दारागंज में अपनी व्यथा और पीड़ा को रमेश के साथ बैठकर जब ज़हीर निराला तथा गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश' की कविताओं के द्वारा व्यक्त करता है तब अपनी पीड़ा में डूबे हुए

ज़हीर से रमेश पूछता है– "तुम हो कौन ज़हीर? सहसा निकले रमेश के इस अटपटे प्रश्न को सुनकर ज़हीर ने गर्दन घुमाकर रमेश को ताका, फिर धीमे से बोला 'अक्षयवट'।"[44]

आगे चलकर जहीर और उसके साथियों पर जानलेवा हमले होते हैं। मुरली को ट्रक से कुचलकर मरवा दिया जाता है। मुरली की मौत ने ज़हीर का कवच उतार कर रख दिया है। उसका अन्तर्मन पीड़ाग्रस्त है–अपने भीतर अपना सामना करते हुए वह यह महसूस करता है कि मुरली की देन भाव–राग, एकता, कर्मठता आदि तो उसमें मौजूद हैं पर ज्ञान के बिना अभी वह अपूर्ण है और पूर्णता के लिए उसे अपनी पढ़ाई पूरी करनी होगी, क्योंकि मनुष्य का सबसे बड़ा सृजन स्वयं का निर्माण है। वह पढ़ाई पूरी कर प्रोफेसर बन जाता है पर अपने संस्कारों के कारण समाज के प्रति अपने दायित्वों के प्रति हमेशा जागरूक रहता है। इसी क्रम में वह अपने मित्रों के साथ मिलकर लावारिस बच्चों को प्यार और सुरक्षित जीवन देने के लिए एक शिशु ग्रह 'मुस्कान' की शुरूआत करता है एक मृत भिखारिन के अनाथ बच्चे गुलाब से।

अपने मित्र की बहन 'कुकी' के अपने प्रति आकर्षण को स्वीकार करते हुए भी, बिना उसकी अवहेलना किये अपने समग्र व्यक्तित्व से प्रेम और ध्येय में से ध्येय का चयन करता है और कुकी से कहता है कि– "क्या हम इन्सान इस तरह नहीं जी सकते? अपनी चाहत को एक ऐसा विस्तार दे जिसमें सिर्फ मैं या तुम न हो बल्कि हम सब हो एक न समाप्त होने वाला सिलसिला.... एक ऐसा घर जिसकी कोई चार दीवारी न हो मगर उसमें सारी दुनिया सिमट आए?"[45]

इस प्रकार ज़हीर पूरी तरह मन लगाकर 'मुस्कान' के विस्तार पर कार्य करता है और अन्त में श्यामलाल का अधीनस्थ कर्मचारी हीरालाल श्यामलाल की अवैध संतान एक लड़के को परवरिश के लिए 'मुस्कान' में छोड़कर जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास के माध्यम से इलाहाबाद की संस्कृति और बनते–बिगड़ते जीवन को बड़ी बारीकी से पकड़ा है।

6. कुइयाँजान[46]

'कुइयाँजान' नासिरा शर्मा द्वारा विरचित छठा उपन्यास है। समसामयिक ज्वलन्त समस्या 'जल की समस्या' को अपना प्रमुख विषय बनाता हुआ यह उपन्यास सन् 2005 में प्रकाशित हुआ। 'कुईयाँ' से तात्पर्य वह जल स्रोत जो आदिम काल से मनुष्य की प्यास बुझाता आया है। जिजीविषा की पुकार पर मानव की शायद प्रथम खोज थी। पहली उपलब्धि जो हमने अतीत में अपनी प्राण रक्षा के लिए प्यास बुझाकर हासिल की थी और आज भी उतनी ही तीव्र है। परन्तु

आधुनिक तकनीकी युग में मनुष्य ने उस मूलस्रोत को आदिम करार दे दिया है और अपनी यान्त्रिक ताकत के बल पर प्रकृति के इस अक्षय स्रोत 'जल' से खिलवाड़ कर रहा है। इस अंधाधुध जल के दोहन का परिणाम यह हुआ है कि अपार जल संपदा होते हुए भी हम आज प्यासे तड़पने को मजबूर हो रहे हैं। विशेषज्ञों के द्वारा लाख चेतनावनी देने पर भी जिस तरह आज हम इस प्राकृतिक वरदान जलसंपदा को नष्ट कर रहे हैं, उसके परिणामस्वरूप वह दिन दूर नहीं जब पानी को लेकर विश्व एक और महायुद्ध के आगोश में समा जाये।

इंसानी संवेदना और धरती से पानी के सूखते जाने की ज्वलन्त कहानी को लेखिका ने अपने सशक्त कथानक में इस प्रकार ढाला है कि पाठक पूरी तरह सराबोर हो जाता है। वह जान पाता है कि पानी के होने और नहीं होने पर, दोनों हालातों में इंसानी रिश्ते के रंग और सम्बन्ध मुखतलिफ हो उठते हैं।

उपन्यास का कथानक इलाहाबाद के पुराने मोहल्लों तथा उन गलियों में रहने वाले पात्रों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। यहाँ बताशेवाली गली है, अदरसे वाली गली है। उपन्यास की शुरूआत एक बच्चे के जन्म लेने और एक बूढ़े की मौत से होती है। अधेड़ावस्था में पन्ना सुनार के घर पुत्र पैदा होने की चटखारे लेकर खबर फैलाने वाली पनवाड़िन भी है। ठीक उसी समय उसी गली में रहने वाले मौलवी साहब के इंतकाल होने तथा दफ्न पूर्व गुस्ल के लिए पानी न होने का प्रश्न खड़ा होता नजर आता है। इसके बाद कहानी में अनेक पात्र और घटनाएँ हैं, जिनमें चंचलता, ठसक, गंभीरता, हँसी—मजाक, रिश्तों की महक, छल—फरेब, इंसानियत की उठापटक के साथ सेवा व समर्पण के अद्‌भुत दृश्य हैं।

विशेषतः मुस्लिम समाज एवं परिवारों की जीवन—शैली, परम्पराओं, रस्मों और अक़ीदों की आकर्षक प्रस्तुति देखने को मिलती है। इन सारी गतिविधियों के बीच, घर हो या दुकान, गृहस्थ हो या मज़दूर, कोई आयोजन हो अथवा दैनिक गतिविधि, पानी के अभाव की चर्चा हमेशा व हर जगह बनी रहती है। वह भी उस इलाहाबाद में, जिसे दो—दो महानदी अपनी गोद में समाये हुए हैं। इस अभाव के कारण हैं पानी का अनुचित प्रबंधन और परम्परागत जलस्रोतों की उपेक्षा।

उपन्यास की कथावस्तु में प्रभाव शकरआरा और खुर्शीदआरा दो खास बहनों एवं उनके परिवार तथा परिवार की विगत और वर्तमानकालिक घटनाओं से आया है। शकरआरा बड़ी, बेहद सुंदर, मग़रूर, सेवानिवृत्त आई.ए.एस. की महत्त्वाकांक्षी पत्नी है। पति, सास, बहन, पुत्र डॉ. कमाल, बहू समीना और तीन पुत्रियों में परस्पर वैचारिक भिन्नता रहती है। वहीं खुर्शीदआरा उदार

दृष्टिकोणपरक महिला है। इस प्रकार पारिवारिक द्वन्द्व व मेलजोल के साथ ही उपन्यास की कहानी थोड़े पीछे जाकर डॉ. के.एल. राव की जल योजना की याद दिलाता है जिनके विचार पर देशभर में सरकारी स्तर पर जल समस्या के समाधान हेतु सेमिनारें आयोजित की जाती हैं। अरबों रुपये खर्च होने पर भी समस्या ज्यों कि त्यों रहती है। सेमिनारों में डॉ. कमाल देश के हर प्रान्त में घूम–घूमकर जल की समस्या के कारण तथा निदानों तक पहुँचने की कोशिश करता है। यहाँ अपने विभिन्न पात्रों के माध्यम से लेखिका इतिहास और भूगोल को खंगालकर रख देती है। संस्कृत ग्रन्थों, राजस्थानी लोक जीवन और उसमें निहित कथाओं–ढोला–मारू प्रसंग आदि के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि देश में वस्तुतः जल की कोई कमी नहीं है। "अपनी जिजीविषा के कारण मनुष्य इसको संरक्षित एवं सहेजने का प्रयास लगातार करता रहा है। राजस्थान में कुआँ, कुइयाँ (कुआँ का स्त्रीलिंग कुइया। बहुवचन कुइयाँ जो उपन्यास के नामकरण का उत्स है), बावडियाँ आदमी ने अपने बुद्धि कौशल से बनाई। परन्तु जब से विदेशी अंधानुकरणपरक आधुनिक जीवन–शैली और बाजारवाद देश में पसरा, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के तिजारती हाथों ने प्रकृति से छेड़छाड़ की, बाँध बनाए, परंपरागत जलस्रोतों की उपेक्षा हुई, पर्यावरण में असंतुलन आ गया। बाढ़ सूखा इसी की देन हैं।"[47]

लेखिका स्पष्ट रूप से ऐसी सारी योजनाओं–नीतियों को नकारती हैं जिनमें पश्चिम का बाजारवाद बोलता हो। डॉ. कमाल के माध्यम से लेखिका प्रत्येक पाठक व आम नागरिक से पूछती हैं कि– "आज़ादी मिले एक अर्सा हो गया, परन्तु स्वच्छ जल सबको बराबर नहीं मिला। उल्टा जिस गुलामी को हमने कभी नकारा था अब जल परियोजनाओं के चलते हम फिर उस दासता को स्वीकार कर रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ किस तरह अपना उल्लू सीधा कर रही हैं, जब यह षड्यंत्र हमारी समझ में आ रहा है, तो उनकी समझ में क्यों नहीं आ रहा जो ऐसे अनुबंधों पर हस्ताक्षर करते हैं?"[48]

साथ ही लेखिका हमें यह सूचना भी देती हैं कि छत्तीसगढ़ में भिलाई के पास शिवनाथ नदी की बाईस किलोमीटर की पट्टी को एक निजी कंपनी के हाथ में देकर वहाँ के लोगों के लिए नदी में प्रवेश पर रोक लगा दी गई है। इस प्रकार पानी को लेकर प्रकृति और इंसान के रिश्तों के पूरे इतिहास में जाते हुए नासिरा जी उन कारणों की तलाश भी करती हैं, जो अच्छे साफ पानी को लगातार हमसे दूर किए जा रहे हैं।

7. ज़ीरो रोड[49]

नासिरा शर्मा कृत उपन्यास 'ज़ीरो रोड' 2008 ई. में प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी में स्त्री–विमर्श के इस दौर में पुरुष–विमर्श की प्रस्तावना करता है। इसमें पुरुष–शोषण की कथा को बड़ी ही दयनीयता एवं मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति को अपने दैनन्दिन जीवन में जो सामाजिक व राजनीतिक संताप मिलता है, वही राष्ट्रीय संकट के पर्यायभूत साम्प्रदायिकता की भावना को अपनी विषयवस्तु बनाकर इस उपन्यास को लिखा गया है। साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति और इसका ज़हर धीरे–धीरे शिक्षित वर्ग में किस कदर फैलता है, इस बुनियादी समस्या पर विचार किया गया है।

'ज़ीरो रोड़' के कथानक का केन्द्र इलाहाबाद के ज़ीरो रोड का 'चक मुहल्ला' और व्यापारिक शहर दुबई है। उपन्यास कई समस्याओं को उठाता हुआ आगे बढ़ता है। प्रवासी मानसिकता, महानगरों का एकाकीपन, धर्म के नाम पर झगड़े, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आदि समकालीन विश्व की अनेक ज्वलंत समस्याओं को उठाया गया है। साथ ही विभिन्न वैश्विक त्रासदियों के चित्रण के साथ–साथ दुबई में मजदूरों की समस्याओं और यूरोपीय वर्चस्व को भी वर्णित किया गया है।

इस उपन्यास का कथानक इसके प्रधान पात्र 'सिद्धार्थ' के इर्द–गिर्द घूमता है। इलाहाबाद की 'चक गली' का रहने वाला सिद्धार्थ दुबई में अपने आपको बहुत अकेला महसूस करता है। वहाँ रहते हुए उसकी विभिन्न देशों और प्रान्तों के लोगों के साथ मित्रता होती है तथा वह जान पाता है कि "इस संसार में कितनी तरह के लोग हैं। गोरे, काले, पीले, साँवले। सुंदर, कुरूप, परंतु जो चीज सबके पास एक तरह की है, वह है भावना।"[50]

लेखिका कहती हैं कि– "ज़ीरो रोड उपन्यास का कथानक इलाहाबाद के ठहरे और पिछड़े मोहल्ले चक से शुरू होकर दुबई जैसे अत्याधुनिक व्यापारी नगर की रफ्तार की ओर हमें ले जाता है। यह वह नगर है जहाँ लगभग सौ राष्ट्रों के लोग अपनी रोजी–रोटी कमाने के लिए रेगिस्तान में जमा हुए हैं। दरअसल यह अपनी मर्जी से यहाँ नहीं आये हैं बल्कि अपने हालात से उखड़े वे लोग हैं जो बम संस्कृति से खदेड़े गये हैं, निराश्रित हैं और अपने ख्वाब एवं खयाल को ढूंढते, फिर से जीने के लिए कमर कसे हैं।"[51]

सिद्धार्थ को अधिकारी की नौकरी का आश्वासन देकर अवैध रूप से दुबई भेजा जाता है। वहाँ जाने के बाद सब विपरीत घटित होता है। वह एम.ए. पास किया शिक्षित युवक है लेकिन

वहाँ मजदूरी कर सौभाग्य से सुपरवाइजर बन जाता है। सिद्धार्थ की तरह ही भारत से अनेक गरीब मजदूर अवैध रूप से दुबई जाते हैं तथा वहाँ अनेक समस्याओं में फँस जाते हैं। दलाल लोग नकली पासपोर्ट बनाकर उन्हें नारकीय जीवन में ढकेल देते हैं। कंपनी मालिक मजदूरों के स्वास्थ्य एवं आवास व्यवस्था की ओर कोई ध्यान न देकर तथा लेबर लॉ के नियमों को ताक में रखकर मजदूरों से अतिरिक्त काम करवाते हैं जिसके बदले उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता है। नानाविध तरीके की परेशानियों को वह अनुभूत करता है तथा अपने भटकाव के प्रति उसमें अपराध बोध उत्पन्न होता है।

उपन्यास का अन्त स्वप्निल कल्पना (फैंटेसी) और जीवन–यथार्थ के उस मुकाम पर होता है जहाँ करुणा और दुःख के बीच यदि कुछ शेष है वह है मनुष्य की अनंत जिजीविषा, जो गाफ के दरख्त के रूप में चित्रित है। कथा–नायक सिद्धार्थ के अपराध बोध की पृष्ठभूमि में उसकी दमित राग–चेतना को उभारकर जो फैंटेसी उत्पन्न की है उसकी परिणति करुणामय होती है। स्वप्न में सिद्धार्थ को नूरा कहती है कि– 'मुझे तुम्हारी जरूरत है सिद्धार्थ।' वह दिल्ली आकर नूरा से मिलने अस्पताल जाता है तो देखता है कि उसके पूर्व कृत्य की भाँति बम धमाकों में घायलों की सार–सँभाल में नूरा व्यस्त है एवं वह उनको अपना बताती है। घर से फोन की घंटी से उसका स्वप्न टूटता है तो समाचार मिलता है कि एक दुर्घटना में उसके पिता का निधन हो गया है।

इस प्रकार लेखिका ने सिद्धार्थ के माध्यम से जिस कथानक को हमारे समक्ष रखा है वह एक युवक या किसी एक देश का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि संसार के हर देश और हर उस युवक का प्रतिनिधित्व करता है, जो पढ़ा–लिखा होकर भी बहकावे में आ जाता है और भटकाव का शिकार हो जाता है। साथ ही बढ़ते उपनिवेशवाद, भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था, पासपोर्ट बनवाने में होन वाली धाँधली एवं दलालों के अवैध कामों का भी पर्दाफाश करता है।

8. पारिजात[52]

वरिष्ठ साहित्यकार नासिरा शर्मा द्वारा प्रणीत उपन्यास 'पारिजात' वर्ष 2011 में प्रकाशित हुआ। कृष्णा सोबती, अलका सरावगी और मृदुला गर्ग के बाद नासिरा शर्मा वह चौथी महिला हैं जिन्हें साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अपनी अनोखी रचना 'पारिजात' हेतु साहित्य अकादमी सम्मान, 2016 से सम्मानित किया गया है। पारिजात एक फूल का नाम है, जिसकी स्मृतियाँ स्वर्ग से जुड़ती हैं और वही पारिजात इस धरती पर भी कहीं बचा पड़ा है। "उपन्यास लिखते समय पारिजात फूल नासिरा के दिमाग में इस कदर बस गया था कि उसे

देखना उनकी अनिवार्यता बन गई थी। उसे देखने के लिए उचित मौसम का इंतजार बहुत धैर्यशाली लेखक ही कर सकते हैं। उपन्यास को बीच में छोड़कर वे निकल पड़ी थीं दुनिया के इकलौते बचे पारिजात वृक्ष की खोज में। उन्हें वह वृक्ष मिला भी उत्तरप्रदेश की घाघरा नदी के तट पर स्थित बाराबांकी जनपद के बदोसराम कस्बे के पास, जहाँ एक शाम वे उसके फूल को खिलते देखती हैं। उन्हें चुनती हैं और दुआ करती है कि ये फूल उनके दामन में गिर जायें। अब वे फूल गिरे हैं अकादमी सम्मान के रूप में, पारिजात के नाम। किस्सागोई के फन में माहिर नासिरा जी के इस उपन्यास में पारिजात सिर्फ मेटाफर की तरह नहीं बल्कि नए पुराने रिश्तों की दास्तान है। लुप्त होती संवेदनाओं की पड़ताल है। लखनऊ और इलाहाबाद की ज़मीन पर बुना गया कथानक है, जिसमें पारिजात की खुशबू आती है।"[53]

अपने इस उपन्यास के सम्बन्ध में ओपिनियन पोस्ट के लिए निशा शर्मा को दिये एक साक्षात्कार के दौरान लेखिका कहती हैं कि– "पारिजात त्रिकोणीय भार पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास की तहजीब को हमने उठाया लखनऊ, इलाहाबाद से। लखनऊ की पुरानी तहजीब नवाबों की है और कैसा मिला–जुला कल्चर है वहाँ, कैसे आर्ट एण्ड कल्चर को बढ़ावा मिला था। इलाहाबाद कैसे शिक्षा का केन्द्र था। उसके साथ हम ले आए हुसैनी ब्राह्मण का इतिहास, मर्सिया और कर्बला को। कर्बला की अपनी विशिष्ट कहानी है। उपन्यास में हमने बताया है कि कर्बला क्या है, हुसैनी ब्राह्मण क्या हैं? हमेशा कहा जाता है कि मुस्लिम देश हमारे पड़ोसी हैं और पड़ोंसियों से हमेशा प्यार, मोहब्बत का रिश्ता होता है तो मैं उन सब चीजों को उस माहौल में ले गई। इसमें हमने बहुत से किरदार गढ़े हैं, बहुत कहानियाँ कही हैं, जैसे जहरे इश्क को ले आई हूँ। मर्सियां को ले आई हूँ।"[54]

'पारिजात' से परीजाद तक.....शीर्षक से लिखी गई समीक्षा में सत्यदेव त्रिपाठी लिखते हैं कि– "नासिरा शर्मा के साहित्य अकादमी से पुरस्कृत उपन्यास 'पारिजात' का यह शीर्षक शब्द पीढ़ियों, संस्कारों, देशी–विदेशी संस्कृतियों और धर्मों के द्वन्द्वों–तनावों व उपादेयताओं के साथ ही अतीत की स्मृतियों, वर्तमान की दमित इच्छाओं व अवशेष हसरतों तथा भविष्य के सपनों का वाहक–वाचक संकेत बनकर तो आया ही है, इन सभी रूपों का केन्द्रीभूत एक पात्र बनकर भी उपस्थित है–बल्कि यूं कहें कि पात्रत्व प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित होने के बावजूद पूरे उपन्यास में उपस्थित है–पूरी कथा और हर प्रमुख पात्र के मनों में 'सबके दिल में जगह तेरी' बनकर और इन सभी तरहों में अद्‌भुत रूप से साकार होता है 'पारिजात' का शीर्षकत्व और शीर्षक का पारिजातत्त्व–'पादपों में पारिजात' जैसा।"[55]

उपन्यास का नायक रोहन है एवं उसकी ब्रिटिश प्रेमिका पत्नी एलिसन, दोनों के दो साल के बेटे 'पारिजात' को लेकर गायब हो जाती है। साथ ही रोहन पर बहुत सारे झूठे इल्जामात लगाकर उसे जेल भी भिजवा देती है। सम्पूर्ण उपन्यास में यह त्रासदी उभरकर सामने आती है। पारिजात को पाने की तड़प व अति आतुर प्रतीक्षाओं में ही सबकी सदिच्छायें टिकी रहती हैं। उपन्यास का कथानक तीन प्रगाढ़ मित्र परिवारों के इर्द–गिर्द घूमता है। पहला है–रोहन के प्रोफेसर माता–पिता प्रभा व प्रह्लाद दत्त का परिवार। दूसरा परिवार नुसरत व बसारत का है, जिनका भी एक बेटा है–काज़िम। तीसरा परिवार है–जुल्फ़िकार व फ़िरदौस जहाँ का, जिनके एक पुत्र मोनिस और एक लड़की रूही है। ये तीनों परिवार 'हिन्दु–मुस्लिम एकता के द्वीप' की भाँति चित्रित हैं। जब तीनों परिवारों के बीच अकेली लड़की 'रूही' पैदा होती है तो बेटी का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है परन्तु तीनों परिवारों का अकेला वारिस है 'पारिजात'।

तीनों परिवारों के चारों भाई–बहनें साथ–साथ बड़े होते हैं, साथ–साथ खेलते हैं तथा बड़े होकर सभी अपनी उच्च शिक्षा हार्वर्ड यूनिवर्सिटी से पूरी करने जाते हैं। रूही की शादी मोनिस से तो हो नहीं सकती क्योंकि वह सगा भाई है लेकिन रूही की शादी रोहन से नहीं होकर काजिम से हो जाती है। बड़ा होकर भी रूही का भाई मोनिस विदेश जाकर बस जाता है। इधर काजिम व उसके माता–पिता भी काल का ग्रास बनकर उपन्यास के पर्दे से हट जाते हैं। उधर रूही के पिता भी चल बसते हैं। इतने सारे दुःखों की मारी विधवा रूही ही मायके में पाँव से अशक्त माँ व उनकी लालकोठी तथा ससुराल में खुद की व सफेद कोठी की संरक्षिका का दायित्व निभाती हैं। दूसरी तरह रोहन को जेल से छुडाकर लाने तथा अन्य गमों के कारण रोहन की माँ भी चल बसती है। इस प्रकार प्रधान रूप से चार पात्र–रोहन व उसका पिता तथा रूही व उसकी माँ, ही उपन्यास के फलक पर विचरते हैं।

कथाकृति के अन्त में रोहन की दूसरी शादी रूही के साथ होती है। रोहन की मुस्लिम सास सोचती है कि 'मैं हर वह काम अंजाम दूंगी, जिससे पारिजात लौटे या परिजाद के रूप में नया बेटा आए'। इस तरह यह उपन्यास 'पारिजात' से 'परीजाद' तक की प्रतीक–कथा भी है।

9. अजनबी जज़ीरा[56]

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार नासिरा शर्मा का नया उपन्यास 'अजनबी जज़ीरा' वर्ष 2012 में लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ। नवभारत टाइम्स की संध्या रानी के साथ अपनी बातचीत के दौरान 'अजनबी जज़ीरा' का संक्षिप्त परिचय देती हुई नासिरा जी कहती हैं कि– "एक उपन्यासिका जो 'दोआबा' पत्रिका में छपी है, वही अब पुस्तक के रूप में 'अजनबी जज़ीरा' के नाम से पाठकों के सामने आ रही है। इसमें मैंने उस दौर को लिया है जब आर्थिक

नाकाबंदी से इराक की जनता गरीबी और महंगाई से जूझ रही थी। उसी में अमेरिकन बमबारी, फौज का दाखला, सद्दाम का तख्ता पलट, आम आदमी किस तरह सियासी खबरों के पीछे छुप जाता है, उसी के सुख–दुःख को उजागर किया है। मौत और भूख की गहरी फिजा में किस तरह प्रेम का बीज अपने अंकुर फोड़ता है। यह उपन्यासिका उसी का बयान है।"[57]

"'अजनबी जज़ीरा' में समीरा और उसकी पाँच बेटियों के माध्यम से इराक़ की बदहाली बयान की गई है। गौरतलब है कि दुनिया में जहाँ कहीं ऐसी दारुण स्थितियाँ हैं, यह उपन्यास वहाँ का एक अक्स बन जाता है। छोटी–से–छोटी चीज़ को तरसते और उसके लिए विरासतों–धरोहरों–यादगारों को बाज़ार में बेचने को मजबूर होते लोग; ज़िन्दगी बचाने के लिए सब कुछ दाँव पर लगाती औरतें और विदेशी आक्रमणकारियों की प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष निगरानी में साँस लेते नागरिक–ऐसी अनेक स्थितियों–मनःस्थितियों को नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास के पृष्ठों पर साकार कर दिया है। बारूद, विध्वंस और विनाश के बीच समीरा ज़िन्दगी की रोशनी व खुशबू बचाने के लिए जूझती नजर आती है। उपन्यास समीरा को चाहने वाले अंग्रेज फ़ौजी मार्क के पक्ष से क्षत–विक्षत इराक़ की एक मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।"[58] समीरा और मार्क की प्रेम कहानी अद्‌भुत है, जिसमें जिम्मेदारियों के हस्सास रंग शिद्दत से शामिल हैं। घृणा और प्रेम का सघन अन्तर्द्वन्द इसे अपूर्व बनाता है। लेखिका यह भी रेखांकित करती है कि ऐसे परिदृश्य में स्त्री–विमर्श के समूचे निहितार्थ सिरे से बदल जाते हैं। सभ्य कहलाने वाले इस आधुनिक विश्व में विध्वंस का यह मूर्त रूप पाठकों को स्तब्ध कर देता है। विध्वंस की इस राजनीति में किस प्रकार मानवीयता तार–तार होती है, इसी की अभिव्यक्ति है 'अजनबी जज़ीरा'। एक पंक्ति में कहे तो यह उपन्यास ज़रूरी वैश्विक प्रश्नों के प्रति जागरूक और संवेदनशील बनाता है। समीरा के इस कथन से कथानक का सार स्पष्ट हो जाता है कि– "जिस्मफ़रोशी से मुझे हालात ने महफ़ूज़ रखा वरना वह भी मुझे करना पड़ता.....हालात अच्छाई और बुराई के मायने कैसे बदलकर रख देते हैं.... पेट भरे लोगों के लिए उँगली उठाना कितना आसान होता है मगर भूखे के लिए रोटी हर फ़लसफ़े से बढ़कर अहम हो उठती है।"[59]

10. कागज़ की नाव[60]

नासिरा शर्मा हिन्दी कथा साहित्य में अपनी अनूठी रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाएँ समय और समाज की भीतरी तहों में छिपी सच्चाइयाँ प्रकट करने के लिए पढ़ी व सराही जाती हैं। 'काग़ज़ की नाव' नासिरा शर्मा का नया और विशिष्ट उपन्यास है। वर्ष 2014 में प्रकाशित यह उपन्यास बिहार में रहने वाले उन परिवारों का वृत्तान्त है, जिनके घर से कोई न

कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया हुआ है। वतन से दूर रहने वाले यहाँ छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक का भरा–पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से आने वाले रुपए...और रिश्तों के अंधेरे उजाले। 'काग़ज़ की नाव' शीर्षक एक रूपक बन जाता है, यानि ज़रूरतों और ज़िम्मेदारियों के समन्दर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश। उपन्यास महजबीं और अमजद की बड़ी बेटी महलक़ा के पारिवारिक तनाव को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ है। महलक़ा के ससुर ज़हूर और ख़ाबिन्द ज़ाकिर के बीच भावनाओं का जो चित्रण है वह पढ़ने योग्य है। मुख्य कथा के साथ भोलानाथ, कैलाश, बिंदू, सुधा, कांता, राजेश, त्रिसुलिया, क्रांति झा आदि चरित्रों की बेहद मानीख़ेज़ उपकथाएँ हैं।

इस उपन्यास में सबसे मार्मिक कहानी है मल़कानूर की। मलक़ानूर से तात्पर्य है प्रकाश की देवी। मलक़ानूर अपने व्यक्तित्व की रोशनी तलाश कर रही है, उन अंधेरों के बीच जो सदियों से औरत के नसीब का हिस्सा बने हुए हैं। मल़कानूर की इस तलाश का अंजाम क्या है, इसे लिखते हुए लेखिका ने विमर्श और वृत्तान्त की ऊँचाइयों को छू लिया है। 'काग़ज़ की नाव' ज़िंदगी और इनसानियत के प्रति हमारे यक़ीन का पुख़्ता करने वाल बेहद ख़ास उपन्यास है।[61]

डॉ. संजीव कुमार जैन अपनी समीक्षा में इस उपन्यास को 'रिश्तों की आंतरिक बुनावट'[62] की संज्ञा देते है। साथ ही इस उपन्यास के माध्यम से नासिरा जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि शहर की अधिकांश औरतें अंधविश्वास की शिकार हैं। जादू–टोने, मूठ मारने और गंडा–ताबीज के द्वारा पुरुष को अपने बस में रखना, सास–ससुर को बीमार करना, परेशान करना आदि विकृतियों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षिक किया है।

इस उपन्यास के केन्द्र में महजबीं है। चारों तरफ के रिश्तों और कहानियों के सूत्र महजबीं से आकर जुड़ते रहते हैं। इस तरह रिश्तों का एक पूरा संसार यहाँ समाहित हो जाता है। महजबीं का पश्चाताप भरा यह कथन जो कि उसने अपनी बड़ी बेटी महलका से कहा, रिश्तों की मार्मिकता को स्पष्ट करता है– "मैंने तुम्हें कई बातों में गलत मशविरे दिए, वह मेरी ममता की खुदगर्ज़ी थी। अब मेरी आँखें खुल चुकी हैं। जैसे मैंने अपनी गलती मान ली हैं, अब तुम भी मान लो और तौबा करो। तौबा का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। उस नेक बंदे को जो तुम्हारे शौहर का बाप है उसकी खिदमत कर अपना कफ़्फ़ारा अदा करो वरना मैं तुम्हें दूध बख़्शने वाली नहीं हूँ, यह मेरा आख़िरी फ़ैसला है।"[63]

11. शब्द पखेरू[64]

'शब्द पखेरू' नासिरा शर्मा द्वारा विरचित नवीन उपन्यास है। यह वर्ष 2017 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास हमें आगाह करता है कि कैसे नई पीढ़ी अनजाने में ही साइबर क्राइम का हिस्सा बन जाती है। आम–जीवन में बढ़ते इंटरनेट के इस्तेमाल और सामाजिक सम्बन्धों में आए बदलावों को हमारे समक्ष बखूबी उपस्थित करता है। मध्यवर्गीय परिवार की घुटन, संवादहीनता और सीमित संसाधनों के साथ बड़े सपनों को पूरा करने की जद्दोजहद में लगे बच्चों की कथा, यह उपन्यास काफी बारीकी से कहता है। पीढ़ीगत अन्तराल सभी समाजों में हर एक दौर में मिलता है। उपन्यास के नायक सूर्यकान्त और उसकी बेटियों (शैलजा और मनीषा) के बीच में भी वही पीढ़ियों का फासला है लेकिन नायक उस फासले को पाटने की पूरी कोशिश करता है। वह अपनी बेटियों की खुशी के लिए अपने खाने की आदतों में बदलाव लाता है, जो कि उसकी बेटियों के लिए सुख व सरप्राइज होता है। दोनों बेटियों को खुशी से चहकते हुए देख सूर्यकान्त सोचते हैं कि– "पिछले दो वर्षों में आज की दोपहर यादगार बनकर रह गयी या फिर एक नये जीवन की शुरुआत जिसे हम बदलाव का नाम भी दे सकते हैं या फिर भविष्य की तरफ बढ़ने का संकेत। जीवन समय के फिसलने का नाम है शायद।"[65]

अपने ज्ञान और तेजी के सामने नई पीढ़ी अक्सर ही पुरानी पीढ़ी को लगभग अज्ञानी, सुस्त और अनुभवहीन समझती है। उपन्यास की नायिका शैलजा, अपने दिन का लगभग आधा समय सोशल मीडिया की आभासी दुनिया में ही बिताती है। लेकिन कई बार इस आभासी दुनिया की उलझनें उसके वास्तविक जीवन तक पहुँच जाती हैं। फेसबुक पर बने एक उम्रदराज दोस्त की टाइमपास दोस्ती शैलजा को साइबर क्राइम के मुहाने तक ले जाती है।

पुराने समय में घर के बच्चों को ज्ञान और अनुभव देने का जो काम घर के बुजुर्ग बाबा–दादी या नाना–नानी करते थे, अब वही काम इंटरनेट करने लगा है। आज की पीढ़ी भी घर के बुजुर्गों के बजाए गूगल से मिलने वाले ज्ञान के साथ ज्यादा सहज है क्योंकि यहाँ बदले में न कोई जिम्मेदारी निभानी है, न ही कोई वायदा है। "मनीषा, शैलजा में बढ़ता विश्वास देख रही थी जो कभी–कभी उसे बड़ा आक्रामक लगता। हरदम लैपटॉप की स्क्रीन पर आँखें गाड़े रहती। एक दिन उसने ईर्ष्यावश उसका नाम 'इंटरनेट बेबी' रख दिया था, मगर उस पर कोई फर्क नहीं पड़ा। फेसबुक पर हर फ्रेंड रिक्वेस्ट को कनफर्म कर देना जैसे उसके लिए जरूरी था। किताब या नोटबुक खुली है, सामने मैटर ढूँढने के बहाने चैट चल रही हैं। दिखावा ऐसा करती

है, जैसे बेचारी पढ़ाई को लेकर हलकान हो रही है.....। इंटरनेट के विस्तृत आकाश पर देखने–पढ़ने और खोजने के लिए बहुत कुछ था। उसने गूगल को ग्रैंडपा का नाम दे रखा था।"[66]

इस प्रकार नासिरा शर्मा का यह उपन्यास सूर्यकान्त, साधना, शैलजा और मनीषा के माध्यम से मध्यवर्गीय परिवार की घुटन, नई पीढ़ी के नए किस्म के संघर्षों और जद्दोजहद से परिचय कराने में सफल होता है। अपना अधिकांश समय सेशल मीडिया पर बिताती नई पीढ़ी, कैसे अनजाने में अनेक बार साइबर क्राइम का हिस्सा बन जाती है, इसका सटीक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। बेहतर जिन्दगी की चाह में छटपटाती और अपने सपनों के लिए बड़े से बड़ा जोखिम लेने के लिए तैयार नई पीढ़ी के साथ, अन्तहीन कर्तव्यों से जूझती पुरानी पीढ़ी भी यहाँ देखने को मिलती है। यह सम्पूर्ण उपन्यास मध्यम वर्गीय जीवन को जीवन्त कर देता है। एक ऐसा जीवन, जिसमें जीने को लेकर कोई खास उत्साह नहीं है परन्तु ऐसे ही जीते जाने से कोई शिकायत भी नहीं है। गायत्री आर्य लिखती हैं कि– "शब्द पखेरू, जहाँ सारी स्मार्टनेस के बावजूद नायिकाएँ उड़ते पंछियों के पर नहीं गिन पाती!"[67]

"नए तेवर, नई भाषा–शैली में लिखा नासिरा शर्मा का यह एक मार्मिक उपन्यास है, जो नई पीढ़ी के गहरे दुःखों व जद्दोज़हद से हमारा परिचय कराता है।"[68]

12. दूसरी जन्नत[69]

वर्ष 2017 में प्रकाशित नासिरा शर्मा का यह उपन्यास रिश्तों की गरमाहट और अपनेपन का एक जीवंत दस्तावेज है। ऊपर से ठहरे और शांत दिखने वाले मुस्लिम समाज के भीतर बहुत कुछ बदल रहा है जो नहीं बदल रहा, उसको बदलने की ख्वाहिशें और कोशिशें कम नहीं है। सतह पर नहीं दिखने वाली इसी हलचल को यह उपन्यास बखूबी कुरेदता है। इसका कथानक बांझ माँ–बाप की कहानी पर आधारित है।

यह लघु उपन्यास, रिश्तों की गर्माहट और अपनेपन से सफर शुरू करते हुए दूरियों, मतभेदों, टकरावों और बहसों का एक नक़्शा पेश करता है। इसमें एक पुकार है जिसकी अनदेखी मुश्किल है।

इसमें अब्बास परिवार की नई डॉक्टर बहू रुख़साना अपनी कोशिशों से बेऔलाद औरतों की जिन्दगी में खुशियों की किलकारी लाने का प्रयास करती है। वह 'शहला क्लीनिक' खोलकर निःसन्तान सम्पतियों का इलाज करती है। उनको मानसिक संबल प्रदान करती है। अच्छी–अच्छी सलाह जैसे बच्चा गोद लेना आदि देती है। जब कोई नहीं मानता है तब वह पारस्परिक सहमती

से आई.वी.एफ. के जरिये सन्तान प्राप्ति के लिए सलाह देती है। ऐसा ही एक दम्पती है– गुलज़ार और फ़रहाना, जो इलाज करवाकर 'शाद' जैसे पुत्र की प्राप्ति करते हैं परन्तु धार्मिक कानूनों का हवाला देते हुए गुलजार उसे अपनाता नहीं है। यहीं से एक बहस शुरू होकर अदालत पहुँच जाती है और दोनों का तलाक हो जाता है। मुस्लिम समाज में दो धड़े बनकर एक–दूसरे का सहारा बनते हैं। रुखसाना भी पारम्परिक सोच वाले लोगों के बीच जाकर, गोष्ठी–सम्मेलनों के जरिये लोगों को विज्ञान के इस चमत्कार तथा मुस्लिम देशों की इस सम्बन्ध में सहमति सूचक कानूनों के बारे में समझाती है परन्तु लोग समझने को तैयार नहीं होते हैं। अन्त में शुक्राणु लैब से शुक्राणु दाता की पहचान व खोज करते हुए फरहाना शाद के असली बाप तक पहुँचने हेतु लेबनान निकल पड़ती है और अन्त में उसकी खोज सफल होती है। फरहाना अपने नये शौहर से मिलकर खुश है। वह पूरा वाकया सुनाती है तो उसे अपना लिया जाता है। वह और बेटा शाद परिवर्तित नाम से परिवार सहित रहते हैं। इस तरह यह उपन्यास अनेक प्रश्न उठाकर समाप्त होता है।

(घ) राजनीतिक विश्लेषणपरक रचनाएँ

नासिरा शर्मा एक सशक्त कथाकार के साथ–साथ एक सशक्त एवं स्वतन्त्र पत्रकार भी रह चुकी हैं। उनके अन्दर निहित पत्रकार उन्हें ऊँगली पकड़ कर शोध की ओर उन्मुख करता है। जैसे मोहब्बत पर लिखना हो तो वे ताजमहल की सैर किए बिना नहीं लिखेंगी। इन्होंने इराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत के कई राजनीतिज्ञों और प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों का साक्षात्कार किया जो बहुचर्चित हुए। पत्रकारिता को लेकर उन्होंने जो विदेश–यात्राएँ की, उनका समग्र लेखा–जोखा हमें उनकी राजनीतिक विश्लेषण पर आधारित पुस्तकों में देखने को मिलता है, जो निम्न प्रकार हैं–

1. मरजीना का देश–इराक 2003

नासिरा शर्मा की पुस्तक 'मरजीना का देश–इराक' वर्ष 2003 में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक तीन खण्डों में विभाजित है। तीनों खण्ड तीन काल खण्डों को दिखाते हैं। पहला खण्ड 1980, 'ईरान–इराक का युद्ध' शीर्षक नाम से है। दूसरा 1990 और तीसरा खण्ड 2003 तक का है। यह पुस्तक नासिरा जी द्वारा उस वक्त लिखी गई जब पूरी दुनिया के स्तर पर एक असुरक्षा का वातावरण छा गया था। इसमें नासिरा जी ने इराक की राजधानी बगदाद की शुरूआती स्थिति से लेकर वर्तमान बगदाद (2003) की अवस्था तक का वर्णन बखूबी किया है। लेखिका के अनुसार

इराक के लोगों को अपनी संस्कृति व सभ्यता को संजोकर रखना चाहिए। क्योंकि उनका मानना है कि इराक इस्लामी देश होने पर भी प्रगतिशील एवं स्वतन्त्र विचारों वाला देश है। वे कहती हैं कि– "मैंने वास्तव में मरजीना से लेकर आज तक के इराक को जिया और महसूस किया कि समाज कहीं रुका नहीं है। मरजीना नाम की नारी–नारी का व्यक्तित्व इराक में निरन्तर बहाव में है। आज के इराक को सँभालने वाली औरत कौन है? मरजीना सरीखी हज़ारों मरजीना जो गर्म तेल की सुराही हाथों में उठाए संघर्षरत हैं।"[70]

2. अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान, 1990[71]

(i) अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान – देश और क्रांति (भाग–1)

(ii) अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान – क्रांति और पड़ोसी देश (भाग–2)

"पुस्तक का प्रथम भाग अफगानिस्तान और दूसरा भाग पेशावर आदि पर केन्द्रित है। इस पुस्तक का नाम अफगानिस्तान के राष्ट्रीय खेल (बुज अर्थात् बकरी, कशी अर्थात् खींचना) पर आधारित है। दरअसल लेखिका ने 'बुजकशी' शब्द को एक प्रतीक के रूप में लिया है। जिस प्रकार पोलों के खेल में घुड़सवार दल गेंद को छीनने का प्रयास करते हैं, उसी तरह इस खेल में गेंद के स्थान पर बकरी की खाल गेंद के समान बड़े खुले मैदान में डाल दी जाती है, जिसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक घुड़सवार प्रयास करता है। जो भी घुड़सवार मुर्दा खाल को प्राप्त करता है, वही विजयी घोषित किया जाता है।

ठीक उसी भाँति मुर्दा खाल की गेंद वह सत्ता है, जिसको हासिल करने के लिए देशी और विदेशी हुक्मराँ अफगानिस्तान को अपनी गुजरगाह समझते हैं।....यही सत्ता अफगानी जनता के लिए मुर्दा यानी अर्थहीन साबित हुई, क्योंकि किसी भी सत्ताधारी ने जनता की आबादी और खुशहाली के लिए कोई महत्त्वपूर्ण काम अंजाम नहीं दिया, इसलिए यह हमेशा से केंद्रीय सत्ता के विरोध में गुरिल्ला युद्ध का अखाड़ा बना रहा है।"[72]

इस प्रकार इन पुस्तकों में लेखिका ने अपनी पारखी नजर से अफगानिस्तान के अनछुए और वास्तविक स्वरूप को ढूँढने का प्रयत्न किया है।

"'अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान' हिन्दी में अपनी तरह की पहली पुस्तक है, जो अफ़गानिस्तान, ईरान तथा पाकिस्तान कई बार जाकर अनुभवों, बुद्धिजीवियों से संवाद तथा मौलिक सामग्री पर आधारित है।"[73]

(ङ) लेख संग्रह

1. किताब के बहाने[74]

'किताब के बहाने' वर्ष 2001 में प्रकाशित उन लेखों का संग्रह है, जो अलग–अलग भाषाओं की पुस्तकों पर लिखे गए हैं। यह पुस्तक 'आलोचना भी सृजनात्मक हो सकती है' इस विश्वास को पुष्ट करती है। ये लेख हिन्दी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी भाषा की चर्चित पुस्तकों पर लिखे गये हैं जिनके माध्यम से जिंदगी के अहम मुद्दों और संवदेना का संसार हमारे समक्ष उजागर होता है। यहाँ संग्रहीत सभी लेख 'स्वतन्त्र भारत' समाचार पत्र में अक्टूबर 1992 से लेकर 1993 तक प्रकाशित हो चुके हैं।

इसमें इतिहास से सम्बन्धित 'माजी के मजार' (सिब्ते हसन), 'मानव–सभ्यता का विकास (रामविलास शर्मा), समय का लघु इतिहास (स्टीफेन डब्ल्यू हांकिग) आदि तथा समाज से सम्बन्धित 'हिन्दुस्तानी समाज में मुसलमानों की समस्या' (अशफाक खान), हमें जिन पर गर्व है (द्रोपदी हरित) आदि लेख हैं। साथ ही साहित्य से सम्बन्धित, नारी से सम्बन्धित तथा विभिन्न जीवनियों पर लिखे गये लेख यहाँ समाहित हैं। इस प्रकार कुल 23 किताओं पर लिखी गई आलोचनाएँ यहाँ पुस्तकाकार में दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार "किसी एक किताब का फलक कितना विस्तृत हो सकता है, इसके उदाहरण ये लेख हैं, जो देशी और विदेशी लेखकों द्वारा सभ्यता, समाज, साहित्य, नारी और आत्मकथा जैसे विषयों पर लिखे गए हैं। ये लेख सात सौ वर्ष पहले लिखी पुस्तक से लेकर बीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों तक लिखी कृतियों से हमारा परिचय कराते हैं।"[75]

संग्रहीत लेखों के सम्बन्ध नासिरा जी कहती हैं कि– "किताब के बहाने कॉलम लिखने की प्रेरणा के पीछे केवल मेरी बेची नहीं बल्कि मेरी इस बनती सोच का भी योगदान था कि मैं अपने आस–पास लिखी जा रही रचनाओं पर टिप्पणी दूँ।"[76]

2. राष्ट्र और मुसलमान[77]

वर्ष 2003 में प्रकाशित 'राष्ट्र और मुसलमान' इस लेख–संग्रह में वही लेख संग्रहीत हैं जो 'राष्ट्र और मुसलमान' नाम से एक लेखमाला 'जनमोर्चा', 'दैनिक हिंदुस्तान', 'संडे ऑब्जर्वर' में सन् 1991 से 1999 तक छपे थे। "प्रख्यात लेखिका नासिरा शर्मा की वैचारिक पुस्तक 'राष्ट्र और मुसलमान' भारतीय समाज को अन्तर्राष्ट्रीय शांति के मार्ग की ओर ले जाती है। धर्म, राजनीति,

समाज, संस्कृति और साहित्य इत्यादि विषयों पर रचित पुस्तक के अध्यायों का निर्धारण करते हुए प्रत्येक अध्याय का नामकरण हिन्दी वर्णमाला के 'स' अक्षर से किया गया है। जैसे–संस्कार, सरोकार, सियासत, सहिष्णुता, समाज, स्त्री, साहित्य, संस्करण और सम्मोहन इत्यादि।"[78] "इस किताब में मुसलमान एक आदमी की तरह अपनी खूबी और कमजोरी के साथ मौजूद है। वह स्वयं अपनी बात कहने में सक्षम है, इसलिए वह किसी बड़े नाम के सहारे या धार्मिक नेताओं के बल पर आगे नहीं बढ़ता है।"[79]

हिन्दुस्तान की सभ्यता और संस्कृति सदियों से साझी विरासत के रूप में चलती आयी है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस एकता के लिए आर्थिक एवं सामाजिक समानता आवश्यक है। राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में सामान्य मनोस्थिति को स्पष्ट करती हुईं नासिरा जी लिखती हैं कि– "सियासी समीकरणों में डूबकर हम सदा नफे और नुकसान की सोचते हैं। हमको अपने इतिहास के साझेपन से खुदा–वास्ते का वैर है। जो सच है, उसको स्वीकार कर उसमें भविष्य की संभावना की तलाश करना हमको पसंद नहीं। हम चाहते हैं अपने लिए अपनों की तबाह व बिसमार करना। सामूहिक पहचान की बातें सिर्फ तिरंगा फहराते हुए कहते हैं। भारत की प्रशंसा करते हुए अनेकता में एकता का राग अलापते हैं, मगर जब बात अपनी जगह में दूसरे को थोड़ी सी जमीन, अपनी रोटी से आधी रोटी दूसरे को देने की आती है, तो हम कड़ा रुख़ अपना लेते हैं और अखण्डता भूल खण्ड–खण्ड के स्वामी बनना चाहते हैं।"[80]

इस पुस्तक में समाहित विषयों पर अपनी बात रखते हुए लेखिका पुनः कहती हैं कि– पुस्तक लिखने से पहले मैंने निश्चय किया कि– "एक भारतीय की तरह मैंने मुसलमान को कैसा देखा, परखा, महसूस किया, उसका ब्यौरा देना ही मेरी सीमा होनी चाहिए, ताकि अपने यथार्थ की भूमि पर खड़ी होकर जब मैं कुछ कहूँ, तो उसमें खरेपन की टनटनाहट हो और मैं पुस्तक में उभरे प्रश्नों का जवाब देते हुए बग़लें न झांकूँ।"[81]

इस प्रकार 'मुसलमान : एक सच', 'राष्ट्र और मुसलमान (चार भाग)', 'हम छीन लेंगे आजादी', 'धर्म, समाज और विकास', 'भारतीय समाज में मुसलमान', 'औरत–मर्द–सम्बन्ध का सच', 'मुस्लिम औरत : धर्म और विश्वास', 'धर्म : पोषण या शोषण?', 'मेहर की मेहरबानी कब तक?', 'प्रेम की कोई भाषा नहीं', 'भारत एवं अरब देशों के प्राचीन सम्बन्ध' इत्यादि महत्त्वपूर्ण लेख यहाँ द्रष्टव्य हैं।

3. औरत के लिए औरत[82]

'औरत के लिए औरत' नासिरा जी का यह लेख–संग्रह सन् 2003 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक को अपनी माँ नाजनीन बेगम को समर्पित करती हुईं वे कहती हैं कि– "औरत से मेरी पहली और गहरी पहचान अपनी माँ के जरिये हुई। यह पहचान ममता के दायरे से अलग उस परिवेश की थी जिसमें औरत एक इनसान की तरह सांस लेती है। वही औरत जिसके चारों तरफ जिंदगी चहचहाती है और रिश्ते फूल और फलदार दरख्तों के रूप में उगते हैं।....ये सारे लेख केवल लिखने के लिए नहीं लिखे गये हैं बल्कि यह सब मेरे सरोकार हैं जो औरत के द्वारा आबाद दुनिया में उसको बेहतर जिंदगी जीते देखने की कामना रखते हैं।"[83]

यह लेख–संग्रह दो भागों में विभक्त है–पहला भाग–'आलेख' है जिसके अन्तर्गत औरत की स्थिति को लेकर बहुत ही महत्त्वपूर्ण 48 लेख समाहित हैं। जिनको 15 उपशीर्षकों में विभक्त किया गया है। इसमें 'प्रेम के साथ सम्मान भी जरूरी', 'सास–बहू संबंध', 'औरत की जबान और जज्बात का सेंसरशिप', 'मर्दों की कुंठाओं को झेलती औरत', 'कानून को समझे औरत', 'प्रगतिशीलता के नाम पर रिश्तों की तिजारत', 'नारी मुक्ति का मकसद क्या है' इत्यादि लेख उल्लेखनीय हैं। द्वितीय भाग 'साक्षात्कार' के अन्तर्गत स्त्री–विमर्श से सम्बन्धित ऐसे दस साक्षात्कार सम्मिलित हैं जो लेखिका ने विभिन्न साक्षात्कारकर्ताओं को दिये। औरत के सम्बन्ध में लेखिका के मन्तव्य को स्पष्ट करने वाले इन साक्षात्कारों को यहाँ दस शीर्षकों से संग्रहीत किया गया है।

इन समस्त लेखों व साक्षात्कारों के सारस्वरूप अपने विचारों को रखते हुए नासिरा जी कहती हैं कि– "सरकार, कानून, संविधान, प्रचार–प्रसार–माध्यम औरतों के उत्थान के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं। कुछ अपने विश्वास के चलते ऐसी योजनाओं में तन–मन से जुटे हैं और कुछ अपनी वैचारिक आस्था के स्थान पर केवल नौकरी के कर्त्तव्य निभाने के कारण स्त्री–शक्ति और स्त्री–विकास के कामों में रत हैं। कुल मिलाकर सारे काम जो 'औरत' को लेकर अंजाम पा रहे हैं वह अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु यह नाकाफी है। स्वयं स्त्री को अपने प्रति जागरूकता लानी पड़ेगी और जब वह अपने प्रति जवाबदेह होगी तब वह दूसरी स्त्री के प्रति भी संवेदनशील होगी। उसके दुःख–सुख को पुरुष आँखों से नहीं बल्कि इनसानी आँखों से देखेगी। उस समय महिला–स्थिति में जो बदलाव आएगा वह ठोस और प्रामाणिक होगा।"[84]

4. औरत की दुनिया[85]

नासिरा शर्मा द्वारा लिखित यह लेख–संग्रह वर्ष 2015 में प्रकाशित हुआ। इसमें महिलाओं जुड़े सरोकारों पर बहुत महत्त्वपूर्ण लेख सम्मिलित किये गये हैं। ये सभी लेख वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी पूर्णतः उपयोगी और समसामयिक नजर आते हैं।

5. वो एक कुमारबाज़ थी[86]

लेखिका नासिरा शर्मा द्वारा अपने उपन्यासों की रचना प्रक्रिया एवं आत्मतर्पण (हंस 1990) को यहाँ शामिल किया गया है। उनकी यह कृति 'वह एक कुमारबाज़ थी' वर्ष 2010 में प्रकाशित हुई। यह रचना हिन्दी साहित्य में नवीन विधा के रूप में एक नई परम्परा का प्रारम्भ भी है। समीक्षा कृति के पहले आत्मवृत्तात्मक आलेख 'वह एक कुमारबाज़ थी' में लेखिका ने दूसरों की नजरों से स्वयं को देखा है। स्वयं को दूसरों की दृष्टि से देखने और उनके विचारों को नासिरा ने सेंसर न कर बेबाकी से बयां किया है। इस आलेख में केवल नासिरा जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण ही नहीं अपितु आत्मकथा के बहाने रचना, समाज, राजनीति और साहित्य के समीकरणों, अंतर्विरोधों, नंगी सच्चाई और इनमें व्याप्त, ओछेपन के साथ समाज के वृहत्तर सरोकारों से रूबरू होते हैं।

6. औरत की आवाज़[87]

वर्ष 2010 में नासिरा जी का यह लेख–संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें विभिन्न देशों की महत्त्वपूर्ण लेखिकाओं, कवयित्रियों एवं राजनेताओं से साक्षात्कार और लेख तथा स्वयं लेखिका से लिए गए साक्षात्कार संग्रहीत हैं।

(च) रिपोर्ताज[88]

नासिरा द्वारा लिखित रिपोर्ताज संग्रह 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं' वर्ष 2003 में प्रकाशित हुआ। मूलतः ईरान में हुई खूनी क्रांति पर लिखा गया यह रिपोर्ताज हमें ईरान के राजनीतिक हालात से रूबरू कराता है। ईरान में शाह के विरुद्ध हुई क्रांति किस–किस दौर व हालातों से गुजरी, इसका लेखा–जोखा हमें इस पुस्तक के माध्यम से मिलता है। जब हम इसका अध्ययन करते हैं तो इन रिपोर्ताजों में सादी और फिरदौसी का खुशहाल ईरान हमें इन्कलाब की आग में जलता हुआ नजर आता है। ईरान के अलावा अन्य कई देशों पर लिखे रिपोर्ताज़ एवं लघु लेख भी इस पुस्तक में संकलित है। लेखिका का कथन है कि– "जापान, पेरिस, लन्दन, नेपाल,

अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान, इराक, फिलिस्तीन, कुर्दिस्तान आदि जहाँ सुरक्षा और शान्ति एक सपना बन गये हैं, उन देशों में भी ईरान की क्रान्ति के पदचिह्न साफ़ नज़र आते थे जैसे आज अमेरिका एवं अफ़गानिस्तान के चलते पूरा विश्व किसी न किसी रूप में इस युद्ध की चपेट में आ गया है।"[89]

यह रिपोर्ताज अठारह खण्डों में विभक्त है। ये सभी अठारह खण्ड अठारह यात्रा के रूप में चित्रित किये गये हैं। इसमें सत्रहवें खण्ड तक तो विभिन्न देशों की यात्राओं का वर्णन है और अठारहवें खण्ड में नासिरा जी के साथ की गई भेंट वार्ताएँ हैं। इसलिए इसको यात्रावृत्त भी कहा गया है। पहला खण्ड 'ईरान एक ख़ूबसूरत ग़ज़ल' में ईरान के प्राकृतिक सौंदर्य का ; दूसरे खण्ड में तीन भागों में ईरान में पनप रही क्रांति का ; तीसरे खण्ड में सात भागों में क्रान्ति के बाद ईरान के लोगों की मानसिकताओं का ; चतुर्थ खण्ड में पाँच भागों में ईरानी लेखकों के क्रियाकलाप, साहित्य और जीवनियों का ; पाँचवे खण्ड – ईरान बुतख़ाने में ख़ूनी पतझड़ का ; छठे खण्ड में 'ईरान क़ैदख़ाना, मस्जिद या क़ब्रिस्तान', 'ईरान–इराक़ युद्ध : आँखों देखा हाल', 'क्या ईरान–इराक़ युद्ध ज़ारी रहेगा' इत्यादि प्रमुख बातों पर विचार किया गया है। सातवें खण्ड में 'बारूद की छाँव में पनपती कला और मरज़ीना का देश और 'सन्दल से माँग, बच्चों से गोदी भरी रहे' ये दो शीर्षक लेख हैं। आठवें खण्ड में अपनी पेरिस यात्रा का, नवमे खण्ड में लन्दन यात्रा का तथा दसवें खण्ड में ईरान क्रान्ति से पीड़ित अफ़गानिस्तान का वर्णन है। ग्यारहवें खण्ड में पाकिस्तान यात्रा का, बारहवें खण्ड में जापान यात्रा का तथा तेहरवें खण्ड में पुनः ईरान पर विचार किया गया है। चौदहवें खण्ड में फिलिस्तीन की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। पन्द्रहवें खण्ड में 'कुर्द : अपनी स्वायत्तता के लिए लगातार संघर्षरत' शीर्षक से कुर्दिस्तान की स्थिति का वर्णन किया गया है। सोलहवें खण्ड में नेपाल यात्रा का तथा अब तक की गई ईरानी यात्राओं के सुनहरे पलों का यादगार है। सत्रहवें खण्ड में नयी सदी के नये इतिहास का सजीव वर्णन तथा अफ़गानिस्तान की तत्कालीन हालात का विभिन्न शीर्षकों से जीवन्त वर्णन किया गया है। अन्त में अठाहरवें खण्ड में कुछ जाने–माने पत्रकारों द्वारा नासिरा जी से की गई भेंटवार्ताओं का संकलन है। लेखिका ने अपनी यह पुस्तक अपने फ़ारसी उस्ताद खुसरू कसरवी को समर्पित की है।

(छ) संस्मरण

नासिरा शर्मा का 'यादों के गलियारे'[90] शीर्षक संस्मरण वर्ष 2009 में प्रकाशित हुआ। आज के गतिशील समय में साहित्य के स्वरूप एवं शिल्प को गढ़ने में पत्रकारिता महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा

कर रही है इसलिए रोजमर्रा की घटनाओं के ताजातरीन अनुभव और उनसे ऊर्जा एवं प्रेरणा ग्रहण करता लेखकीय समाज घटनाओं की प्रगतिशीलता एवं प्रयोगशीलता के नए–नए गलियारे तलाशता–सा लगता है। नासिरा जी की यह पुस्तक भी संस्मरण, यात्रा–संस्मरण, रिपोर्ताज एवं स्वतन्त्र लेख इत्यादि के माध्यम से की गई ऐसी ही एक सार्थक तलाश है।

प्रकृति नासिरा जी की इस अभिन्न जीवन–यात्रा का अनुपम अंग है। झांसी के बूढ़े किले, बेतवा के हरियाले जीवन एवं लखनऊ के बाराबंकी में पारिजात के विविधवर्णी सौंदर्य, ताजमहल के जादुई स्नेह से सराबोर पाठक खो सा जाता है। प्रशासन एवं पुलिस का रूखापन हो या चिकन दस्तकारी करने वाले कारगीरों की दुर्दशा और शोषण सब कुछ यहाँ नजर आता है। इसी तरह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के कैंपस में अध्यापकीय परिसर का हिस्सा होने के नाते लेखिका वहाँ के बिगड़ते माहौल एवं दूषित होते वातावरण का साक्ष्य रखती हैं तो खुद को उसका एक हिस्सा होने के लिए भाग्यशाली भी मानती हैं और वहाँ की विचार स्वतन्त्रता की तारीफ भी करती है।

पुस्तक के अंतिम हिस्से में लेखिका के स्वतन्त्र लेख हैं जिनमें 'भारत की अखण्डता एवं राष्ट्रभाषा' नामक अपने पहले लेख में लेखिका की चिन्ता राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को उसका हक दिलवाने की है जो आम राष्ट्रवादी सोच से हटकर है। 'प्रवासी भारतीयों की विडम्बना' शीर्षक लेख में विदेश में बसे भारतीयों के अपने समाज एवं संस्कृति से दूर रहने की समस्याएँ एवं डर हैं तो दूसरी संस्कृतियों से आदान–प्रदान के नए–नए अवसर भी हैं। इन दोनों पहलुओं पर लेखिका ने अपने विचार रखे हैं। 'बच्चों की दुनिया में बड़ों का दखल' लेख आधुनिकीकरण के कारण बच्चों की दुनिया पर पड़ रहे प्रभाव की विश्लेषणात्मक व्याख्या ही नहीं करता अपितु परम्परागत एवं लोक–साहित्य आदि की जरूरत को भी रेखांकित करता है। पुस्तक के अन्तिम भाग में संकलित एक और लेख 'मैं नाटक लिखना चाहती हूँ' में लेखिका अपने जीवन का एक सपना पाठकों के साथ साझा करती हैं।

(ज) अनुवाद

उपर्युक्त विधाओं के अतिरिक्त नासिरा शर्मा ने अनुवाद के क्षेत्र में भी महती भूमिका निभाई है। उन्होंने अनेक वैदेशिक रचनाओं का अनुवाद किया है। विशेष रूप से ईरान की लोक संस्कृति से सम्बन्धित लोककथाओं का अनूठा अनुवाद किया है। उनकी अनूदित रचनाओं का विवरण निम्न प्रकार है–

1. क़िस्सा जाम का[91]

नासिरा शर्मा की पहली अनूदित रचना 'क़िस्सा जाम का' है। यह एक कहानी संग्रह है जिसके पहले संस्करण का प्रकाशन वर्ष 1977 में हुआ था। इस कहानी संग्रह की सभी 37 कहानियाँ ईरान की लोक–संस्कृति पर आधारित हैं। लेखिका कहती हैं कि जब भारत और ईरान की लोक–संस्कृतियों की समानता ईरान में वहाँ की लोककथाओं में नजर आई तो मेरा कथाकार मन पुनः सृजन के लिए व्याकुल हो उठा। ईरान की खुरासानी बोली से हिंदी में अनुवाद करते वक्त लेखिका ने रचना के मुहावरे को पकड़े रखा है। उनके अनुसार भारत और ईरान सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से एक चने की दो दालें हैं। इस संग्रह की कुछ कहानियाँ या कहें कि किस्सों के शीर्षक हैं–कहानी एक बेल की, बद से बदतर, डरपोक देव, सम्मानित, बुद्धिमान, लोमड़ी, सोने के अंडों वाली मुर्गी, मूलचनकरे, चालीस चाबियाँ, तीन नारंगियों की कहानी, राह व नीमराह।

लेखिका कहती है कि– "यह पूरी किताब तीन तरह के किस्सों में बंटी हुई है। एक भाग में दर्शन का चिंतन है। दूसरे भाग में राजाओं के माध्यम से सांसारिक व्यावहारिकता का ज्ञान है और तीसरे किस्से वे हैं जो मूलतः परिंदों व हब्शियों से सम्बन्धित हैं। जिसके द्वारा यह बताया गया है कि धरती का सबसे शक्तिशाली और महिमामय प्राणी 'मनुष्य' है, जो दुष्कर से दुष्कर, कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी विजय पताका लहराता है। केवल एक किस्सा जानवरों पर आधारित है जिसमें रोचकता के साथ ही व्यंग्य का पुट है।"[92]

2. शाहनामा–ए–फ़िरदौसी[93]

नासिरा की अनूदित रचना 'शाहनामा–ए–फ़िरदौसी' वर्ष 1990 प्रकाशित हुई। ईरान की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों एवं हिन्द व ईरान की साझी सभ्यता की पहचान करने के उद्देश्य से नासिरा जी ने ईरान के प्रसिद्ध लेखक फ़िरदौसी की रचना 'शाहनामा फ़िरदौसी' का हिन्दी में अनुवाद किया। नासिरा जी के सहज, सरल एवं प्रवाहपूर्ण अनुवाद के कारण यह रचना वैदेशिक होने का जरा सा भी अहसास नहीं होने देती। 'शाहनामा' की दस चुनिन्दा दास्तानों का अनुवाद इस अन्दाज में किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे हिन्दी भाषा की ही प्राचीन कथाएँ हों। अपने अनुवाद में उन्होंने जगह–जगह फारसी के शेरों को हिन्दी में लिपिबद्ध कर उनका अर्थ भी दिया है। फ़िरदौसी का 'शाहनामा' नयी भाषा और नये कलेवर में हिन्दी भाषा में पाठकों को लेखिका की अनुपम भेंट है।

3. प्रेम कथा[94]

यह अनुवाद संग्रह सन् 2001 में प्रकाशित हुआ। ईरानी एवं मध्यपूर्वी मामलों की विशेषज्ञ नासिरा शर्मा ने इसमें ईरान के प्रसिद्ध क्रांतिकारी एवं सफल साहित्यकार समद बहरंगी की कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया है। इस संग्रह में 'काली छोटी मछली', 'एक आडू और हजार आडू', 'चौबीस घंटे सोते जागते', 'नारंगी का छिलका', 'चुकंदरवाला', 'प्रेम कथा', 'दोमरूल', 'दीवाने–सर', 'आकाश की तलाश', 'आदी और बूदी', 'अनाम', 'सफेद दाढ़ी वाला बकरा', 'भेड़ और भेड़िया', 'भूखा चूहा', 'दो बिल्लियाँ दीवार पर', 'सोने का चूजा' और 'आत्मकथा बर्फ के गोले की' ये सोलह अनूदित कहानियाँ सम्मिलित हैं। ये सभी कहानियाँ मूलतः फारसी में लिखी गई हैं। पर नासिरा जी की प्रतिभा एवं अनुवाद कौशल का सहारा पाकर ये सभी हिन्दी की ही जान पड़ती हैं। कहानियों का भाव ज्यों का त्यों हैं।

4. अन्य अनूदित रचनाएँ

उपर्युक्त रचनाओं के अलावा नासिरा शर्मा जी की सादी की रचनाओं का अनुवाद 'गुलिस्ताँ–ए–सादी'[95], 'बरनिंग पैयर (1985)[96], सैद सुल्तानपुर की ईरानी क्रान्ति पर लिखित कविताओं का अनुवाद, वियतनाम की लोककथाएँ (1985)[97], ईराक की रोचक कहानियाँ (1980)[98], आदि महत्त्वपूर्ण अनूदित रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'अदब में बाईं पसली'[99] नाम से भारतीय उर्दू कहानियों का अनुवाद संग्रह वर्ष 2017 में ही प्रकाशित हुआ है।

(झ) संपादित रचनाएँ

अपनी अद्‌भुत प्रतिभा के बल पर साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ने वाली बहुआयामी लेखिका नासिरा शर्मा ने संपादकीय क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। उनके द्वारा सम्पादित रचनाओं का परिचय इस प्रकार है–

1. इकोज़ ऑफ ईरानियन रिवोल्यूशन : प्रोटेस्ट पोयटरी[100]

नासिरा शर्मा का ईरानी सभ्यता और संस्कृति के प्रति विशेष लगाव रहा है। इसी लगाव के चलते वे अनेक बार ईरान की यात्रा पर रही हैं। अपनी यात्राओं के दौरान उन्होंने अन्याय और शोषण के विरुद्ध शाह व खुमैनी साम्राज्य के विरोध करते हुए लोगों को देखा, उनके दर्द को बहुत करीब से महसूस किया। इन्हीं लोगों की वेदना व दुःख को बांटने का प्रयास किया है नासिरा जी ने अपने ग्रन्थ 'इकोज़ ऑफ ईरानियन रिवोल्यूशन : प्रोटेस्ट पोयटरी' का वर्ष 1979 में

कुशल संपादन करके। इस किताब में ईरानी लोगों के न्याय और स्वातन्त्र्य से संबंधित काव्य का समावेश किया है। इन सभी रचनाओं के मूल रचयिता वहाँ के क्रांतिकारी ही हैं। इस रचना में कुल 37 कविताओं को सम्मिलित किया गया है। जिनमें नीमा योसेज की– 'मेरा घर', 'मुलाकाती' और 'अनाम कविता'; मारझी अहमदी औस्की की– 'कैदी', 'लहर', 'कैदी मित्र के लिए गीत', 'काव्यमय' और 'मैं एक औरत' ; शारंग मुशीरी की– 'जब सूरज धूप का आँचल' ; सय्यद सुलतानपुर की – 'संग्राम', 'जेल की धरती' और 'चार अक्षर', नेमन–ए–मिझी जादे की– 'कर्ज' और 'स्वतन्त्रता की मूर्ति'; अहमद–ए–शामलू की–'घुटन', 'डर' और 'अंधेरे का गान', जावेद–ए–मोहदिसी की– 'अतीत', मेहंदी–ए–अखवान–ई–सालेस की– 'पडोस में', 'ग़ज़ल' और 'दुःखी दिल' ; हुशाण–ई–इफ्तेजा की– 'फांशी पाने वाले' और 'सौगंध'; मोहम्मद अली अहमद्दीन की– 'नारा' और 'और कल', सियाहोश–ई–कासराई की– 'दूसरा वियतनाम'; सुसान मिहान दोस्ती की– 'कैदी' और 'लाल घटाएँ' ; मोहसीन–ई–मिहान दोस्त की 'पहाड़ की चोटी तक', 'जुलजुता तक', 'शहादत का आरम्भ', 'बसन्त कहाँ है' और स्वयं नासिरा शर्मा की 'बहिश्ते जहरा', 'संघर्ष', 'मशहद की रातें', और 'सजावट' इन कविताओं का समावेश है। इस संपादित ग्रन्थ में मूल पर्शियन भाषा की कविताओं का हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू में अनुवाद भी समाविष्ट है। अंग्रेजी अनुवाद केशव मलिक ने तथा हिंदी और उर्दू अनुवाद स्वयं नासिरा जी ने किया है। ये सभी कविताएँ ईरानी लोगों के जीवन के विविध पक्षों के साथ–साथ समस्त मानव जाति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

2. क्षितिज पार[101]

ईरानी कविताओं के यशस्वी संपादन के उपरान्त नासिरा शर्मा ने सन् 1988 में 'क्षितिज पार' के कहानी संकलन का प्रभावी संपादन किया। राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 'शिक्षक दिवस' के उपलक्ष्य में राज्य के अध्यापकों की चुनिंदा कहानियों को 'क्षितिज पार' नाम से संकलित कर उन्होंने राजस्थान के अध्यापकों के विचारों और अनुभवों को जन–जन तक पहुँचाया है। इस संकलन में विविध विषयों से सम्बन्धित कुल तीस कहानियों को समाविष्ट किया है। इस संकलन में अरनी राबर्ट्स की 'रिश्ता', कमलेश शर्मा की 'तुम अकेली नहीं हो', रमेशचन्द्र पारीक की 'मास्टर घसीटाराम', सलीमा खाँ फरीद की 'कजाक', शंकरलाल सोनी की 'शिबुली', सावित्री परमार की 'एक आण यह भी', त्रिलोकीमोहन पुरोहित की 'नई शुरुआत की ओर', भगवती लाल व्यास का 'अपना–पराया', शीतांशु भारद्वाज की 'अभिशप्ता', छीतरलाल साँखला की 'अपनों से दूरी' इत्यादि संकलित हैं।

इस संकलन के सम्बन्ध में नासिरा जी का कथन है कि– "यह संकलन उन यथार्थ कहानियों का सुखद समूह है, जिसके आधार पर क्षेत्र, समाज और मानव समुदाय की अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। मरुभूमि से जुड़े लेखकों की ये कृतियाँ हैं, जो मनःस्थल को हरा–भरा, क्रियाशील तथा जीवित करने की क्षमता रखती हैं।"[102]

3. अन्य सम्पादन[103]

नासिरा जी ने लेखन और पुस्तकीय संपादन के साथ–साथ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन और संयोजन भी किया है। सन् 1976 में ईरान से लौटने के बाद 'सारिका' पत्रिका के ईरानी क्रांति कथा विशेषांक का संयोजन उनकी बहुआयामी प्रतिभा का परिचायक है। इस सिलसिले में वह इस अंक के लिए सामग्री संकलन के निमित्त यह कहकर ईरान चली गई कि– "सारिका के पाठकों के लिए आपके इन सवालों का जवाब ढूँढ पायी तो अपने को खुशकिस्मत मानूँगी।"[104]

महिलाओं पर सृजनात्मक लेखन के प्रति नासिरा जी की गहरी अभिरूचि रही है। इसी सोच के चलते उन्होंने सन् 1994 में 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका के महिला लेखन अंक का संपादन किया। सन् 1983 में 'पुनश्च' के ईरानी साहित्य विशेषांक का विशेष संयोजन किया। इस प्रकार इन पत्रिकाओं के कुशल संपादन व संयोजन ने पाठकों के मन में वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण करने के साथ–साथ उनकी जिज्ञासाओं को शान्त किया है।

(ञ) आलोचना–ग्रन्थ[105]

नासिरा शर्मा जी की 'किताब के बहाने' और 'सबसे पुराना दरख़्त' ये दो आलोचनात्मक रचनाएँ हैं। 'किताब के बहाने' पुस्तक का परिचय लेख–संग्रह बिन्दु के अन्तर्गत दिया जा चुका है। 'सबसे पुराना दरख़्त' यह आलोचना ग्रन्थ वर्ष 2005 में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा 'जब समय बदल रहा हो इतिहास' पुस्तक वर्ष 2010 में प्रकाशित हुई। जिसमें लेखिका द्वारा विभिन्न विधाओं पर लिखी उनकी रचनाएँ एवं साक्षात्कार आदि सम्मिलित हैं।

(ट) बाल साहित्य[106]

नासिरा शर्मा ने बाल–मनोविज्ञानपरक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचनाओं को लिखा है। बाल मनोविज्ञान एवं मनोरंजन के लिए उन्होंने तीन लघु उपन्यास लिखे हैं– 'बदलू', 'दिल्लू दीमक' और 'भूतों का मैकडोनल'। पानी की समस्या को केन्द्र में रखकर उपन्यास 'बदलू' को रचा है।

'दिल्लू दीमक' में खेल–खेल में शिक्षण पर बल दिया है। 'भूतों का मैकडोनल' में मनोरंजन की अधिकता है किन्तु विषय गंभीरतापूर्ण और सोद्देश्य है। कथा के केन्द्र में पाँच शरारती बच्चे और घुंघरू गाँव को रूप व भाव देती एक पाठशाला है। इन तीनों उपन्यासों में बालमनोविज्ञान पर आधारित शिक्षा, सफाई, अन्धविश्वासपूर्ण जीवन और समाज के उन बुनियादी प्रश्नों को उठाया गया है।

बाल साहित्य में नासिरा जी लोककथाओं के आधार पर भी लिखती रही हैं। 'बाज की नजर' फारसी लोकथा पर आधारित है वहीं 'अंधार पत्थर', अरेबियन नाइट्स' पर आधारित है।

इनके अलावा 'संसार अपने–अपने' (2012) कहानी संग्रह, 'दर्द का रिश्ता व अन्य कहानियाँ (2011), गुल्लू (2005) इत्यादि महत्त्वपूर्ण बालोपयोगी रचनाओं का भी उन्होंने सृजन किया है।

(ठ) नाट्यरूपान्तरण[107]

लेखिक ने नाटक–विधा के प्रति भी अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने अपने द्वारा लिखी हुई कुछ चयनित कहानियों का नाटक में रूपान्तरण किया है। 'सबीना के चालीस चोर' इस कहानी का नाट्य रूपान्तरण करने के साथ ही संवाद लेखन में भी महती भूमिका निभाई है। इसके अलावा लेखिका ने 'पत्थर गली', 'दहलीज', 'प्लेट फार्म नम्बर–7' इन कहानियों को भी नाट्य रूपान्तरण किया है।

इन सबसे अलग टेलीफिल्में, सीरियल, कथानक लेखन, अभिनय आदि के क्षेत्र में भी नासिरा का सक्रिय योगदान रहा है।

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नासिरा शर्मा हिन्दी की प्रख्यात एवं एक प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य में जितना योगदान दिया है उससे कहीं अधिक योगदान साहित्येतर लेखन के क्षेत्र में दिया है। समकालीन समाज के गूढ़ अन्तर्विरोधों को उन्होंने जिस प्रकार अपने उपन्यासों, कहानियों आदि में उकेरा है, उनमें उनका बेबाकीपन, साफगोई एवं निर्भीक व्यक्तित्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने साहित्य में एक ओर जहाँ मानवीय मूल्यों व सरोकारों को दर्शाया है तो वहीं दूसरी ओर आमजन के पक्ष में खड़े होकर उसकी आवाज को बल प्रदान किया है। वर्तमान समय के वैचारिक उथल–पुथल के माहौल में नासिरा जी ने पाठकों को सच से रूबरू करवाया है तथा निष्पक्षता एवं न्यायपूर्ण तरीके से सोचने–विचारने के प्रति जागरूक भी किया है। उनके साहित्य का फलक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर

फैला हुआ है। उनकी रचनाओं में केवल मुस्लिम समाज ही नहीं अपितु वैश्विक स्तर पर महिलाओं की स्थिति को भी प्रस्तुत किया है ।

नासिरा जी ने उपन्यास, कहानी, नाटक, बालसाहित्य, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, अलोचना, सर्जनात्मक लेखन, लेख, संपादन कार्य, अनुवाद, स्तम्भ लेखन इत्यादि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अनवरत लेखनी चलाई है। इनकी हर रचना साहित्य जगत में अपना अलग ही महत्त्व रखती है। इनकी किसी भी साहित्यिक कृति को लें तो उसमें आयी कहानियाँ और उनके पात्र हमेशा अपने हक की लड़ाई लड़ते नजर आते हैं। कोई भी पात्र विपरीत परिस्थितियों से घबराकर निराश व टूटता नजर नहीं आता है अपितु पाठक को एक आशावादी दृष्टिकोण अनायास ही दे जाता है।

नासिरा जी प्रारम्भ से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति की महिला रही हैं। कोई भी रचना कल्पनाप्रसूत नहीं होकर यथार्थ बोध से सम्पृक्त नजर आती है। उनके अन्दर छुपा पत्रकार उन्हें शोध की ओर अग्रसर करता है। समाज के संघर्षों को नजदीक से देखने के बाद ही वे अपनी लेखनी चलाना शुरू करती हैं। इसी कारण उनकी लेखनी में हमें खुलापन साफ–साफ नजर आता है। उनकी कृतियों में जहाँ एक तरफ मुस्लिम समाज व जीवन की सच्चाईयाँ कड़वाहट के साथ सामने आई हैं, वहीं दूसरी तरफ हिन्दू समाज का वह तबका भी है जो धार्मिक अंधविश्वासों से घिरा हुआ है।

निस्संदेह नासिरा शर्मा अपने समय की एक समर्थ एवं सशक्त लेखिका हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य और बौद्धिकता के संसार में कुछ गिने–चुने लोग ही हैं जिनके पास विषयों व विधाओं का इतना बड़ा वितान हो और एक साथ इतनी सारी भाषाओं की समझ हो। हिन्दी के अलावा अंग्रेजी, उर्दू, फारसी और पश्तो भाषाओं पर अपने अधिकार के साथ उन्होंने जितना कुछ लिखा है, वह हिन्दी साहित्य और समाज के लिए बहुत मूल्यवान है। समकालीन हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध समालोचिका, साहित्यकार एवं पत्रकार गीता श्री का यह कथन कि– "नासिरा शर्मा की कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंधों की प्रमुखता पढ़ने को मिलती है। इनकी कहानियाँ सिर्फ एक कहानी मात्र न होकर पूरा का पूरा ज़िंदगीनामा हैं, जो शब्दों के द्वारा तर्कपूर्ण विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत करती हैं।"[108] से स्पष्ट होता है की नासिरा जी सूक्ष्मतम मानवीय संवेदनाओं की कुशल चितेरी हैं।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. नासिरा शर्मा के उपन्यासों का अनुशीलन, डॉ. विजयकुमार राऊत, पृ.–17
2. औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा, पृ.–176
3. औरत के लिए औरत, पृ.–176
4. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, डॉ. शेख अफरोज फातिमा, पृ.–84
5. नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, डॉ. शेष अफरोज फातिमा, साक्षात्कार प्रश्नावली, प्र.क्र. 29, पृ.–444
6. शामी कागज, नासिरा शर्मा
7. शामी कागज, नासिरा शर्मा, पृ.–भूमिका से
8. पत्थर गली, नासिरा शर्मा
9. पत्थर गली, नासिरा शर्मा, पृ.–7
10. संगसार, नासिरा शर्मा
11. समीक्षा, मार्च 1998–सं. गोपालराय, पृ.–39
12. संगसार, नासिरा शर्मा, पृ.–5
13. इब्नेमरियम, नासिरा शर्मा
14. इब्नेमरियम, नासिरा शर्मा, पृ.–7
15. नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में संवेदना एवं शिल्प, डॉ. जाहिदा जबीन, पृ.–29
16. नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर, कहानी संग्रह
17. नासिरा शर्मा, शीर्ष कहानियाँ, मूल पृष्ठ
18. नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर, पृ.–7–8
19. नासिरा शर्मा, खुदा की वापसी, कहानी संग्रह
20. 'मेहर' एक प्रकार की राशि या सम्पत्ति है, जिसे इस्लाम धर्म में निकाह के अलक्ष्य में पत्नी अपने होने वाले पति से प्राप्त करने की हकदार होती है, जिसके बिना कानूनी तौर पर निकाह जायज नहीं माना जाता। पत्नी की सुरक्षा के लिए मेहर एक शक्तिशाली हथियार है। मुस्लिम धर्म में तलाक की अधिकता के कारण और उससे बचने के लिए पति पर मेहर की राशि अधिक निश्चित की जाती है किन्तु कुछ धोखेबाज मुस्लिम शौहर ऐसे होते हैं, जो सुहागरात में ही मेहर की रकम वापस करवा लेते हैं।–हिंदी कहानी में मुस्लिम

नारी–पात्र – डॉ. इशरत खान, समरलोक–अप्रैल–जून, 2007, संपा. मेहरून्निसा परवेज, पृ.–88

21. खुदा की वापसी–नासिरा शर्मा, पृ.–भूमिका से
22. नासिरा शर्मा, इनसारनी नस्ल, कहानी संग्रह
23. इनसानी नस्ल–नासिरा शर्मा, पृ.–दो शब्द से
24. नासिरा शर्मा, शीर्ष कहानियाँ, कहानी संग्रह
25. नासिरा शर्मा, दूसरा ताजमहल, कहानी संग्रह
26. नासिरा शर्मा, बुतखाना, कहानी संग्रह
27. बुतखाना–नासिरा शर्मा, पृ. भूमिका से
28. नासिरा शर्मा, शाल्मली, उपन्यास
29. शाल्मली, पृ.–146
30. शाल्मली, पृ.–169
31. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, उपन्यास
32. ठीकरे की मंगनी, पृ.–17
33. ठीकरे की मंगनी, पृ.–117
34. 'ठीकरे की मंगनी–डॉ. मूलचन्द सेठिया', प्रकर–अक्टूबर 1991 संपा. वि.सा. विद्यालंकार, पृ.–24
35. नासिरा शर्मा, जिंदा मुहावरे, उपन्यास
36. जिंदा मुहावरे, पृ.–11
37. जिंदा मुहावरे, पृ.–8, दो शब्द से
38. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समंदर, उपन्यास
39. सात नदियाँ एक समंदर, पृ.–7
40. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, उपन्यास
41. अक्षयवट, फ्लैप कवर
42. अक्षयवट, पृ.–24
43. 'जहीर ज़हीर को कैसे मार सकता है?' मीरा सीकरी, साक्षात्कार–अक्टूबर 2004–संपा. हरि भटनागर, पृ.–111
44. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, उपन्यास, पृ.–125

45. अक्षयवट, पृ.–494
46. नासिरा शर्मा, कुईयाँजान, उपन्यास
47. डॉ. विजयकुमार राऊत, नासिरा शर्मा के उपन्यासों का अनुशीलन, पृ.–39
48. नासिरा शर्मा, कुईयाँजान, पृ.–219
49. नासिरा शर्मा, जीरो रोड़, उपन्यास
50. जीरो रोड़, पृ.–134
51. जीरो रोड़, फ्लैप से
52. नासिरा शर्मा, पारिजात, उपन्यास
53. पारिजात की खोज में नासिरा–गीता श्री, 28 मार्च, 2017, http://hindi.yourstory.com
54. लेखिका द्वारा ओपिनियन पोस्ट के लिए निशा शर्मा को दिये साक्षात्कार का अंश, 23.02. 2017
55. सत्यदेव त्रिपाठी–पारिजात से परीजाद तक........ओपिनियन पोस्ट, दिनांक–21.06.2017
56. नासिरा शर्मा, अजनबी जज़ीरा, उपन्यास
57. संध्या रानी (नवभारत टाइम्स) को दिये साक्षात्कार का अंश, 09 मार्च 2013
58. अजनबी जज़ीरा, पृ.–फ्लैप से
59. अजनबी जज़ीरा, पृ.–फ्लैप से, पृ.–120
60. कागज़ की नाव–नासिरा शर्मा, उपन्यास
61. कागज़ की नाव, फ्लैप से
62. rachanapravesh.blogspot.com
63. कागज़ की नाव, पृ.–49
64. शब्द पखेरू, उपन्यास, नासिरा शर्मा
65. शब्द पखेरू, पृ.–17
66. शब्द पखेरू, पृ.–40
67. गायत्री आर्य, पुस्तक समीक्षा शब्द पखेरू, satyagrach.scroll.in
68. शब्द पखेरू–पुस्तक समीक्षा, m-hindi.webdunia.com
69. दूसरी जन्नत–नासिरा शर्मा, उपन्यास
70. नासिरा शर्मा, मरजीना का देश–इराक, राजनीतिक विश्लेषणपरक रचना
71. अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान (भाग–1 व 2)

72. अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान (भाग–1) देश और क्रांति–नासिरा शर्मा, दो शब्द से, पृ.–8
73. अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान–नासिरा शर्मा, पृ. फ्लैप से
74. किताब के बहाने–नासिरा शर्मा, लेख–संग्रह
75. किताब के बहाने, फ्लैप से
76. किताब के बहाने, फ्लैप से, पृ.–9
77. नासिरा शर्मा, राष्ट्र और मुसलमान, लेख–संग्रह
78. डॉ. इकरार अहमद, राष्ट्रीय एकता का यथार्थ : राष्ट्र और मुसलमान–राष्ट्र और मुसलमान, पृ.–308
79. नासिरा शर्मा, राष्ट्र और मुसलमान, फ्लैप से
80. राष्ट्र और मुसलमान, दो शब्द से, पृ.–8
81. राष्ट्र और मुसलमान, दो शब्द से, पृ.–7
82. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, लेख–संग्रह
83. औरत के लिए औरत, दो शब्द से, पृ.–6
84. औरत के लिए औरत, दो शब्द से, पृ.–9
85. औरत की दुनिया, लेख–संग्रह
86. नासिरा शर्मा, वो एक कुमारबाज थी, लेख–संग्रह
87. नासिरा शर्मा, औरत की आवाज़, लेख–संग्रह
88. नासिरा शर्मा, जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं, रिपोर्ताज
89. जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं, फ्लैप से
90. नासिरा शर्मा, यादों के गलियारे, संस्मरण
91. नासिरा शर्मा, किस्सा जाम का, अनूदित रचना
92. किस्सा जाम का, पृ.–11
93. नासिरा शर्मा, शाहनामा–ए–फ़िरदौसी, अनूदित रचना
94. नासिरा शर्मा, प्रेम कथा, अनूदित रचना
95. नासिरा शर्मा, गुलिस्ताँ–ए–सादी, अनूदित रचना
96. नासिरा शर्मा बरनिंग वैयर, अनूदित रचना
97. नासिरा शर्मा, वियतनाम की लोककथाएँ, अनूदित रचना

98. ईराक की रोचक कहानियाँ, अनूदित रचना

99. नासिरा शर्मा, अदब में बाईं पसली, अनुवाद संग्रह

100. इकोज़ ऑफ ईरानियन रिवोल्यूशन : प्रोटेस्ट पोयटरी, सं. नासिरा शर्मा

101. क्षितिज पार, सं. नासिरा शर्मा

102. सं. नासिरा शर्मा, क्षितिज पार, पृ.– फ्लैप से

103. डॉ. विजय राऊत, नासिरा शर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.–48–49

104. सं. कन्हैयालाल नंदन, सारिका, मई 1981, संपादकीय

105. नासिरा शर्मा, बाल साहित्य

106. डॉ. शेख अफरोज फातेमा, नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, पृ.–143

107. डॉ. शेख अफरोज फातेमा, नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, पृ.–145

108. गीता श्री, http://hindi.yourstory.com March 28, 2017

तृतीय अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

"एक स्तर के बाद हम औरत—मर्द नहीं रह जाते हैं, बल्कि हमारा काम हमारी पहचान होती है, हमारी अक्ल हमारी कसौटी होती है।"

— शाल्मली / 56

तृतीय अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

"साहित्य समाज का दर्पण है" इस लोक प्रसिद्ध सूक्ति के अनुसार साहित्य रूपी दर्पण में समाज प्रतिबिम्बित होता है। एक साहित्यकार समाज को जैसा महसूस करता है वही उसके साहित्य में प्रतिफलित होता है। समाज के प्रति संवेदनशीलता ही साहित्य का मूल होता है। साहित्य और समाज की अन्योन्याश्रितता की भाँति व्यक्ति और समाज भी परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। "व्यक्ति से समाज का अस्तित्व है और समाज में ही व्यक्ति की सार्थकता है।"[1] यह कथन अरस्तू के उस कथन को ही व्याख्यायित करता दिखाई देता है जिसमें कहा गया है कि– "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" व्यक्ति और समाज के इस वास्तविक सम्बन्ध को एक साहित्यकार ही ठीक प्रकार से विवेचित और विश्लेषित कर सकता है। प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी समाजविषयक अवधारणाओं को अनायास ही स्पष्ट कर देता है। एक सृजनकार की सृजनशीलता का आधार अथवा उत्प्रेरक तत्त्व भी समाज ही होता है। अतः 'समाज' क्या है? इस प्रश्न पर विचार करना स्वाभाविक हो जाता है।

(क) समाज का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

'समाज' शब्द संस्कृत के सम् उपसर्ग+अज् (जाना) धातु+घञ् प्रत्यय से मिलकर निष्पन्न होता है, जो 'सभा', 'गोष्ठी', 'समिति', 'परिषद्', 'मिलन', 'मजलिस', 'समुच्चय', 'दल' इत्यादि अर्थों का द्योतक है।[2] इस प्रकार सामान्यतः 'समाज' शब्द का प्रयोग जनसमूह के लिए किया जाता है। भर्तृहरि के नीतिशतक में 'विद्वत्वर्ग' शब्द समाज के लिए ही प्रयुक्त हुआ है–

"विशेषतः सर्वविदां समाजे,
विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।"[3]

चन्दवरदाई ने अपने ग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' में 'परिजनों के समूह' अर्थ में समाज शब्द का प्रयोग किया है– "भूमि कलिजंर जादुमिलौ परिमाल समाजह।"[4]

तुलसीदास जी ने 'दोहावली' में 'शोक समाज' का प्रयोग भी समाज अर्थ में ही किया है– "चढ़ै बधूरे चंग ज्यों, ग्यान ज्यों सोक समाज।"[5]

भारतीय साहित्य में 'समाज' अर्थ में 'लोक' शब्द का भी व्यवहार किया जाता रहा है। 'लोक्यतेऽसौ, लोक्+घञ्' इस व्युत्पत्ति से निष्पन्न 'लोक' शब्द व्यापक अर्थ में 'दुनिया', 'संसार'

इत्यादि अर्थों में प्रयुक्त होता है परन्तु 'समुदाय', 'समूह', 'क्षेत्र', 'इलाका', 'प्रान्त', 'सामान्य जीवन' इत्यादि अर्थों में भी साहित्य में इसका प्रयोग बहुत मिलता है।[6] 'लोक' व्यापक अर्थ संवाही शब्द है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से भावार्थक 'घञ्' प्रत्यय जुड़कर निष्पन्न होता है। तदनुसार लोक शब्द दृश्य और द्रष्टा दोनों का ही वाचक है। कोश ग्रन्थों में इस शब्द के द्विविध अर्थ मिलते हैं, प्रथम 'इहलोक परलोक आदि' स्थानों के लिए तथा द्वितीय 'जन सामान्य' अर्थ के लिए। हलायुध कोश[7] में संसार, सप्तलोक, प्रजा, जन अर्थ में तथा वृहद् हिन्दी कोश[8] में भुवन, संसार, विश्व का एक भाग, पृथ्वी, मानव जाति, समाज, प्रजा, प्रान्त, निवास, स्थान, दिशा, सांसारिक व्यवहार, दृश्य और यश अर्थों के लिए लोक शब्द का व्यवहार है।

समाज का अंग्रेजी पर्याय शब्द Society भी लगभग इसी अर्थ का द्योतक है– "Society Means the sun of human conditions and activity regarded as a whole functioning interdependently or a social community or a social model of lite or the customs and organization of an ordered community or the socially advantaged or prominent members of a community or participation in hospitality; other people's homes or company or companionship, company or an association persons united by a common aim or interest or principle."[9]

इस तरह साधारण बोलचाल की भाषा में भी 'समाज' से अभिप्राय 'जनसमूह' से है। सामान्यतः जब हम आर्य समाज, स्त्री समाज, कृषक समाज, मुस्लिम समाज आदि समाजों की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय इन विशिष्ट वर्गों के मनुष्य के समुच्चय से होता है। 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' में समाज को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि– "वह संस्था जो बहुत से लोगों के द्वारा एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की जाती है। जैसे–संगीत समाज, साहित्य समाज।" सर मोनियर विलियम ने 'ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी' में समाज को परिभाषित करते हुए लिखा है– "Meeting with, feeling in with a meeting assembly."[10]

समाज के मूल स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने इसे विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। इस सम्बन्ध में प्राप्त अवधारणाओं को हम दो भागों में बाँट सकते हैं– भारतीय अवधारणा और पाश्चात्य अवधारणा। इन दोनों अवधारणाओं को हम यहाँ समेकित रूप में निम्न परिभाषाओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

हिन्दी के प्रख्यात समालोचक व लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'समाज' को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "वह व्यवस्थित मानव समुदाय जिसमें सब लोग सम्यक् प्रकार से अपने कर्त्तव्यों का सम्पादन करते हुए व्यवस्थित ढंग से रह सकें।"[11]

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार अपनी परिभाषा में लिखते हैं– "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर जीवन बिताना उसका स्वभाव है। अतः वह अन्य मनुष्यों के साथ अनेक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करता है। मनुष्यों के जीवन में एक दूसरे के साथ सम्बन्धों का जो जाल बिछा हुआ है उसी को समाजशास्त्र में 'समाज' कहते हैं।"[12]

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' कहते हैं कि– "समाज से अभिप्राय है वह परिवृत्ति, जिसके साथ व्यक्ति किसी प्रकार का अपनापन महसूस करे, वह मानव समाज का एक अंश भी हो सकता है। मानव समाज की परिधि बाहर बढ़कर पशु–पक्षियों को भी घेर सकती है। बल्कि (चरमावस्था) मानव समाज को छोड़कर पशु–पक्षियों और पेड़–पत्तों तक भी जा सकती है। समाज की इयत्ता अन्ततोगत्वा समाजत्व की भावना पर ही आश्रित है।"[13]

शंभुरत्न त्रिपाठी जी 'समाज' को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "समाज का सामान्य अर्थ व्यक्तियों का समूह है। मनुष्य मनुष्यों से पृथक् रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ होता है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने हेतु उसे अपने आस–पास के व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। व्यक्तियों के इन सामाजिक सम्बन्धों को समाज कहते हैं।"[14]

डॉ. सम्पूर्णानन्द जी अपनी पुस्तक 'समाजवाद' में समाज को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "जिसमें लोग मिलकर एक साथ, एक गति से चलें, वही समाज है। तात्पर्य है कि उन लोगों की, जो समाज के अंग हो, परिस्थिति एक–सी हो, उनके प्रयत्न और उद्देश्य एक–से हों वही समाज कहलाता है।"[15]

पाश्चात्य विद्वान् एच.पी.फेयर चाइल्ड 'समाज' शब्द की परिभाषा देते हुए लिखते हैं– "समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो अपने बहुत से प्रमुख हितों, उद्देश्यों जिनमें अनिवार्य रूप से स्वयं की रक्षा या भरण–पोषण तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करना सम्मिलित है, को पूरा करने में सहयोग करते हैं।"[16]

टेलकट पारसन्स के मतानुसार– "समाज को उन मानवीय सम्बन्धों को सम्पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो साधन, साध्य, सम्बन्धों के रूप में क्रिया करने से उत्पन्न हुए हों, चाहे वे यथार्थ हों या प्रतीकात्मक।"[17]

ई.पी. रयूटर के मतानुसार– "समाज एक अमूर्त धारणा है जो एक समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों की जटिलता (सम्पूर्णता) का बोध कराती है।"[18]

प्रो. गिडिंग्स के अनुसार– "समाज स्वयं संघ है, संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक–दूसरे के साथ जुड़े हुए या सम्बद्ध हैं।"[19]

मैकाइवर एण्ड पेज के अनुसार– "समाज विभिन्न समूहों में उपयोगिता और व्यवस्था, अधिकार एवं परस्पर सहकार्य से युक्त एक व्यवस्था है जिसमें मानवीय व्यवहार एवं स्वातंत्र्य का विभाजन रहता है। ऐसी नित्य परिवर्तनशील सम्मिश्रित व्यवस्था को हम समाज कहते हैं।"[20]

उपर्युक्त भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मन्तव्यों पर विचार करने पर निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक जीवन दृष्टिकोण को लेकर जीवन–यापन करने वाले प्राणी–समूह को समाज कहते हैं। यह एक ऐसा उद्देश्यपूर्ण समूह होता है जो किसी एक क्षेत्र में बनता है, उसके सदस्य एकत्व एवं अपनत्व में बंधे होते हैं। व्यक्ति अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति निमित्त दूसरों पर निर्भर रहता है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। समाज के बगैर व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है। समाज में कुछ सार्वभौमिक विशेषताएँ, जैसे–परस्पर सहयोग, समानता, अमूर्तता, संघर्ष, अन्योन्याश्रितता आदि पाई जाती हैं, जिन्हें अपनाकर ही मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाए रख सकता है। इस प्रकार एक से अधिक लोगों का समूह समाज कहलाता है। इसमें सभी व्यक्ति आचरण, सामाजिक सुरक्षा, निर्वाह आदि क्रियाएँ सम्पादित करते रहते हैं। किसी समाज के अन्तर्गत आने वाले व्यक्ति एक–दूसरे के प्रति जितना परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं, उतना अन्य समाज के व्यक्ति के साथ नहीं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाये रखते हुए अलग–अलग रस्मों–रिवाजों का पालन करते हैं।

(ख) सामाजिक चेतना : अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

सामाजिक चेतना से तात्पर्य है समाज से सम्बन्धित चेतना, ज्ञान, समझ, प्रज्ञा, बोध, संवेदनशीलता, चिन्तन, विचार–विमर्श अथवा जागरूकता। लोककल्याणपरक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए साहित्य के माध्यम से प्रयत्न करना तथा सामाजिक मूल्यों का प्रचार–प्रसार करना साहित्य में सामाजिक चेतना का अभिप्राय है। साहित्य का सम्बन्ध एक ओर समाज से जुड़ा होता है अर्थात् वह समाज की चेतना की प्रस्तुति करता है तो दूसरी ओर चेतना का सम्बन्ध साहित्यकार से भी जुड़ा होता है। वह अपने जीवन और जगत के आदर्शों को परोक्ष रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार रचनाओं में प्रत्यक्षतः यदि युगीन सामाजिक–सांस्कृतिक चेतनाएँ विद्यमान रहती हैं तो उसमें रचनाकार की चेतनाएँ भी झांकती प्रतीत होती हैं। अतः साहित्य में सामाजिक चेतना को समझने के लिए 'सामाजिक' और 'चेतना' इन दोनों शब्दों के निहितार्थों को समझना आवश्यक हो जाता है।

सामाजिक शब्द 'समाजः समावेशनं प्रयोजनमस्य ठञ्' के अनुसार समाज+ठञ् प्रत्यय से मिलकर निष्पन्न होता है।[21] हिन्दी व्याकरणानुसार समाज+इक प्रत्यय से मिलकर यह शब्द बनता है।[22]

'चेतना' शब्द 'चित्' धातु से भावार्थक 'ल्युट्' व स्त्री प्रत्यय 'टाप्' से मिलकर निष्पन्न होता है। जो ज्ञान, संज्ञा, प्रतिबोध, समझ, प्रज्ञा, जीवन, प्राण, सजीवता, बुद्धिमत्ता, विचार–विमर्श आदि अर्थों को उद्भासित करता है।[23]

यहाँ धर्मेन्द्र कुमार गुप्त ने चेतना की व्युत्पत्ति बताते हुए उसे ज्ञानात्मिक वृत्ति स्वीकार किया है। जहाँ बुद्धि और समझ युगीन सामाजिक–राजनीतिक यथार्थ की पहचान के सार्थक उपकरण हैं।

चेतना शब्द का अंग्रेजी अनुवाद Consciousness होता है जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा में हुई है, जहाँ इसका अर्थ है– "Knowing things together."[24] 'Consciousness' शब्द सामान्यतः मानसिक सतर्कता (Mental Awareness) के लिए प्रयुक्त होता है– 'The state of being aware of and responsive to one's surroundings.'[25]

इस प्रकार भारतीय एवं भारतेतर कोशकारों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से 'चेतना' को परिभाषित किया है। डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' लिखते हैं कि– "बुद्धि, मनोवृत्ति, ज्ञानात्मक–स्मृति, सुधि, चेतनता, संज्ञा, होश (हिचेत+ना प्रत्यय), संज्ञा में होना, होश में आना। यहाँ चेतना को 'जागृत अवस्था' के अर्थ में स्वीकार किया है।"[26] चेतना को अस्तित्ववान मानते हुए 'हिन्दी विश्वकोश' में लिखा है कि– "चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्त्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है।"[27]

डॉ. जयनाथ नलिन चेतना को समझाते हुए लिखते हैं कि "बोध, भाव और कर्म की समन्वित राशि है चेतना, चिंतन अनुभूति और कर्म की प्रक्रिया और इनका प्रसार व विकास ही चेतना है।"[28]

'वर्ल्ड यूनिवर्सिटी इनसाइक्लोपीड़िया' में चेतना को "आत्मबोध की शक्ति से जाना गया है– The power that the mind has to know its own action and states."[29]

हिन्दी विश्वकोश के अनुसार– "चेतना मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे व्यक्तिगत विषय में तथा अपने वातावरण के विषय में ज्ञान कराती है। इसी ज्ञान को विचार शक्ति बुद्धि कहा जाता है।"[30]

डॉ. रामविलास शर्मा अपने एक लेख में लिखते हैं कि– "चेतना मस्तिष्क में निहित पदार्थ का गुण है, प्रकृति के एक अंश का गुण है। इसलिए वास्तविक विचार केवल चिंतन द्वारा अपने भीतर से उत्पन्न नहीं किये जा सकते। विचार के लिए मानव–चेतना और बाह्य जगत् का सम्पर्क आवश्यक होता है। इस कारण ज्ञान का आधार मनुष्य का प्रत्यक्ष अनुभव है। अपने व्यवहार से मनुष्य अपना ज्ञान समृद्ध करता है।"[31]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वास्तव में चेतना में विविध मानवीय सम्बन्धों व आत्मिक मूल्यों का समावेश होता है। नैतिकता, औचित्य, व्यवहार, कुशलता, संवेदनाएँ, अनुभूतियों, ज्ञान, कल्पना, इच्छा, मनोभाव, आत्मचेतना इत्यादि का सम्मिलित रूप ही चेतना है। इससे भिन्न उसकी उद्देश्यपूर्ण सक्रियता, विशाल परिवर्तनकारी भूमिका, उसके योगदान की सुनियोजित पद्धति में ही अन्तर्निहित गुणों द्वारा स्पष्ट होती है।

'सामाजिक चेतना' में समाहित दोनों शब्दों का तात्पर्य सुस्पष्ट हो जाने पर हम सामाजिक चेतना के वास्तविक विशेषतः साहित्यिक संदर्भपरक आशय को सरलता से समझ सकते हैं। साहित्य का सम्बन्ध एक ओर समाज से जुड़ा है तो दूसरी तरफ चेतना का सम्बन्ध साहित्यकार से भी जुड़ा होता है। वह अपने जीवन और जगत के आदर्शों को परोक्ष रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। रचनाकार की चेतना का सामाजिक सरोकार ही उसकी चेतना को स्फुरित करता है। स्फुरित चेतना सामाजिक जन–जीवन में हस्तक्षेप करती हुई अनेकायामी स्तरों पर अपना विकास करती है। रचनाकार सामाजिक यथार्थता, वर्ग–वैषम्य, वर्ग–संघर्ष और व्यवस्था की अमानवीयता, लोकजीवन को प्रभावित करने वाले षड्यंत्रों आदि के युगीन संदर्भों की यथार्थ समझ से अपनी चेतनाशक्ति को प्रबुद्ध करता है। इसी समाज सापेक्ष बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा लेखक की चेतना वर्ग–समाज, राजनीति के व्यापक आयामों में प्रसारित होती हुई रचना संघर्ष में संलग्न होती है और रचना प्रक्रिया के क्षणों में कृति के भीतर समाती चली जाती है। इस प्रकार एक रचनाकार की चेतना उसकी अनुभवगम्य संवेदनशीलता द्वारा बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् के व्यापक संदर्भों की रचनात्मक प्रस्तुति करती है और इसकी विकास प्रक्रिया की सही–सही पहचान हेतु तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व आर्थिक यथार्थपरक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक हो जाता है।

सामाजिक चेतना को परिभाषित करते हुए डॉ. कुंवरपाल सिंह कहते हैं कि– "सामाजिक चेतना सरित् प्रवाह की तरह विकसित होती चलती है, यह चेतना विच्छिन्न नहीं होती, बल्कि भिन्न–भिन्न सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक गतिविधियों, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विषमताओं से सम्बन्धित नागरिक जीवन की समतामूलक विकासात्मक भावना ही सामाजिक चेतना है।"[32]

डॉ. रत्नाकर पाण्डेय का मन्तव्य है कि– "जब कोई नूतन विचारधारा समाज में प्रविष्ट होती है और निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ती है तो सामाजिक विचारधारा जागृत होती है। इसी जागृति को सामाजिक चेतना कहा जाता है। सामाजिक चेतना के अर्थ राजनीति, धर्म आदि विविध तत्त्व है।"[33]

डॉ. सोमनाथ शुक्ल का मानना है कि "सामाजिक चेतना ने व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व और व्यक्ति–व्यक्ति के संबंधों के स्वरूप को निर्धारित और नियंत्रित किया है। सामाजिक चेतना की सार्थकता, प्रत्येक मानवीय समस्या पर सामूहिक दृष्टि से विचार करना है। सामाजिक चेतना ने आधुनिक युग में अधिकाधिक विस्तार प्राप्त किया है। व्यक्ति, उसका मन और महत्त्वकांक्षा, परिवार और परिवेश, समाज, सामाजिक, नीति और अनीति, धर्म और अध्यात्म, राज्य और राजनीति, शांति और समर आदि सभी सामाजिक चेतना के अन्तर्गत विचार योग्य हैं।"[34]

डॉ. सुषमा गुप्त सामाजिक चेतना विषयक अपनी अवधारणा को विस्तृत रूप में स्पष्ट करते हुए लिखती हैं कि "सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों रूपों में रहती है। व्यक्ति–चेतना सामाजिक चेतना का एक रूप है। व्यक्तिमूलक सामाजिक चेतना व्यक्ति के दो छोरों को प्रकट करती है। एक छोर उसके क्षुद्र व्यक्तित्व का है और दूसरे छोर पर वह विराट व्यक्तित्व धारण कर सकता है। व्यक्ति जितने अंशों में सामाजिक चेतना को ग्रहण करता है उतना ही उसका जीवन समाज सापेक्ष होता है। जब व्यक्ति स्वचेतना में केन्द्रित होकर समाज के स्वार्थ के विपरित होता है तब समाज विरोधी स्थिति रहती है। सामाजिक चेतना से अभिप्राय हुआ सामाजिकता की आत्मा अर्थात् उसके वे मूलभूत गुण जिनके कारण सामाजिक चेतना इस संज्ञा से अभिहित होती है। आत्मा के उदात्त आशय, सभ्यता या संस्कृति के संपूर्ण तत्त्वों तथा समाज की उद्वेगजनक स्थितियों की अवधारणा को सामाजिक चेतना कहते हैं। जातीयता, सार्वजनिकता, युग की संघर्षपूर्ण स्थिति की व्य×जकता सबको एक साथ मिलाकर सामाजिक चेतना का नाम दिया जा सकता है। जीवन और जगत् की विराटता का वैविध्यपूर्ण चित्रांकन, विशिष्ट जीवनदर्शन, शाश्वत मानव प्रश्नों और मूल्यों की स्थापना आदि से सामाजिक चेतना की झलक मिलती है। परम्परागत आचार–विचारों का परिष्कार कर उन्हें युगीन रूप में प्रस्तुत करने में सामाजिक चेतना विहित है।"[35]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक चेतना समाज में विद्यमान समस्त समस्याओं और अंतर्द्वन्द्वों का उपचार नहीं है बल्कि समाज में निहित बुराईयों के प्रति सचेत बनाने का प्रयास ही है। सामाजिक चेतना से युक्त प्रत्येक रचनाकार अपनी सृजनधर्मिता के बल पर एक सुखी और उत्कृष्ट समाज का निर्माण करने का प्रयास करता है। संस्कृत के प्रखर विद्वान् एवं चिन्तक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' में लिखते हैं कि "साहित्य में सभी–आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के जीवन सर्वांगीण और नवनवोन्मेषशाली होते हैं। जीवन यहाँ प्रतिबिम्बता को प्राप्त करता है, समुल्लसित होता है और वृद्धि को प्राप्त करता है। बिम्ब का विभाजन करता हुआ और उसे संस्कृत करता

हुआ यह प्रतिबिम्ब अद्‌भुत है। इसमें समवेत होकर जीवन नवीनता को प्राप्त करता है। जीवन में साहित्य है और साहित्य में जीवन है। इनके द्वारा की गयी सिद्धि सम्प्रवर्तित होती है।"

साहित्ये जीवनं सर्वं सर्वाङ्गीणं नवं नवम्।

प्रतिबिम्बत्वमायाति समुल्लसति वर्धते।।

अद्‌भुतः प्रतिबिम्बोऽयं बिम्बमेव विभावयन्।

संस्कुर्वन् जीवनं तस्मिन् समवेतो नवायते।।

जीवने चास्ति साहित्यं साहित्ये जीवनं यथा।

परस्परकृता सिद्धिरनयोः सम्प्रवर्तते।।[36]

हिन्दी के प्रगतिवादी समीक्षक मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि– "आधुनिक युग में साहित्य में सामाजिक संदर्भों और राजनीतिक परिस्थितियों का जितना निर्णायक और व्यापक प्रभाव पड़ रहा है उतना पहले कभी नहीं रहा। आज के जमाने में साहित्य की दुनियाँ केवल सौन्दर्य और प्रेम की ऐकान्तिक साधना के बल पर नहीं चलती, वह समाज के आर्थिक ढाँचे, राजनीतिक परिवेश, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं से बहुत दूर तक प्रभावित होती है।"[37]

(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यास : सामाजिक चेतना के विविध रूप

सामाजिक चेतना को विविध रूप प्रदान करने वाले प्रत्यक्ष और परोक्ष अनेक तत्त्व होते हैं। समय–समय पर इनमें से कुछ तत्त्वों की प्रमुखता बढ़ती–घटती दिखाई देती है। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक स्थितियाँ सामाजिक चेतना पर प्रभाव डालती हैं और उसे स्वरूप प्रदान करने में सहायक बनती हैं।

हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन में महिला उपन्यासकारों ने 'समाज' को अपना केन्द्रीय विषय बनाया है। इनमें सर्वाधिक चर्चित समकालीन रचनाकार हैं 'नासिरा शर्मा'। नासिरा शर्मा जीवन की मार्मिक अनुभूतियों की कथा लेखिका हैं। जहाँ आदमी और उसकी आदमीयत है वहाँ ज़िंदगी और उसके मर्म का आलेखन ही रचना को मार्मिक और जीवंत बनाता है। उनके लेखन में दृष्टिगोचर होने वाली सजगता और सतर्कता ही उन्हें वैशिष्ट्य प्रदान करती है। उनका आत्मचिंतन और अवलोकन दृष्टि ही उनके लेखन का आधार बनते हैं। सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर उन्होंने गहनता से विचार किया है। घर हो या परिवार, समाज हो या बिरादरी, देश हो या विदेश, परम्पराएँ हों या रीति–रिवाज, धार्मिक आचरण हों अथवा मान्यताएँ, स्त्री हों अथवा पुरुष, नौकर हो अथवा मालिक, रोजी–रोटी के लिए संघर्षरत जीवन हो अथवा आलीशान जिंदगी, सदाचरण हो अथवा कट्टरता आदि इन सभी पक्षों पर गहरे शोध की झलक नासिरा जी के उपन्यासों में नज़र आती है। लेखन का अर्थ बताते हुए वे कहती हैं– "लेखन का अर्थ केवल

आपबीती कहना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है, उसे पचाना पड़ता है। उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"[38]

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में चित्रित विविधरूपा सामाजिक चेतना पर बिन्दुवार निम्न प्रकार से विचार किया गया है–

1. धार्मिक चेतना

'धार्मिक' शब्द 'धर्म' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय[39] तथा हिन्दी के अनुसार धर्म शब्द से गुणवाचक 'इक' प्रत्यय[40] जुड़कर बनता है जो नेक, पुण्यात्मा, न्यायशील, सद्गुणसंपन्न, सत्याश्रित, धर्म से युक्त इत्यादि अर्थों का द्योतक है। धर्म शब्द का सामान्य अर्थ है वे नियम जिन पर चलने से समाज में नैतिकता व मानवता बनी रहे। धर्म और समाज एक–दूसरे में समाहित हैं। कोई भी सभ्य समाज धर्म के बिना अपने स्वरूप का विकास नहीं कर सकता है। मानवीयता की सामाजिक समस्याओं के समुचित समाधान तथा व्यक्ति की चित्तवृत्तियों का परिष्कार कर विश्वशान्ति की स्थापना के लिए धार्मिक चेतना का होना आवश्यक है। साहित्य और समाज के पारस्परिक तादात्म्य को ध्यान में रखते हुये साहित्य के सन्दर्भ में धार्मिक चेतना से तात्पर्य साहित्य में ध्वनित उन तथ्यों व संवादों से है जिनके माध्यम से पाठक पूर्व में प्रचलित धार्मिक विश्वासों व मान्यताओं के सत् स्वरूप से परिचित हो सके तथा तदनुकूल आचरण कर अपने जीवन, समाज व राष्ट्र को समुन्नत कर सके। साथ ही धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्या आडम्बरों एवं कुचेष्टाओं के प्रति लोगों को सावधान किया जा सके।

इस धार्मिक चेतना के विकास में एक सजग एवं सतर्क साहित्यकार अपनी महती भूमिका अदा करता है क्योंकि वह सामान्य जनमानस को अपनी लेखनी के माध्यम से जीवन की वास्तविकता से साक्षात्कार करवाता है। हिन्दी की प्रख्यात साहित्यकार नासिरा शर्मा इस मायने में अपना अहम स्थान रखती हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की अच्छाई और बुराईयों को बड़ी ही निर्भीकता से उजागर किया है। धर्म के विषय में जो सच है उसे स्वीकार करने में और जो गलत है उसे गलत कहने में उन्होंने कहीं भी संकोच नहीं किया है। सीधी–सपाट भाषा में उन्होंने अपनी बात रखी है। धार्मिक चेतना के संदर्भ में नासिरा जी ने अपने विचार अपने लेख 'धर्म, समाज और विकास' में बड़े ही सटीक ढंग से व्यक्त किये हैं। नासिरा जी का मानना है कि– "दुनिया गतिशील है। प्रगति के रोज बढ़ते चरण और विविध विद्याओं ने, अनेक विषयों की मौलिकता ने मध्यवर्ग, ऊँचे वर्ग को भी इतना व्यस्त कर दिया कि वे पुराना बदलने और बोसीदा छोड़ने की दौड़ में धर्म को भुला बैठे। उनके पास ज्ञान का सागर था,

जिसको उन्हें पीना था। 'प्राचीन ज्ञान' पर वे अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहते थे, जिसका नतीजा यह निकला कि वे चाहे–अनचाहे धर्म के उसी संकीर्ण, संकुचित दायरे को धर्म मान बैठे, जिसने अपने लिए बाजार पैदा कर लिया था। मृत्यु, जन्म, विवाह और समस्या के समाधान के समय उसे मजबूरन मुल्ला–पंडित का मुख देखना पड़ता था। धीरे–धीरे करके वह सब कुछ धर्म में शामिल होने लगा, जिसके विरोध में धर्म वजूद में आया था।....वैभवपूर्ण कर्मकांड नए अमीर हुए लोगों की शान बनते चले गए। वह भूमिका जो धर्म को निभानी थी, उसका लोप होता चला गया और धर्म सत्ता के साथ धन से भी संबंध बना बैठा, जिसने धर्म के प्रति कई भ्रांतियाँ उत्पन्न करा दीं। धर्म का संग अब उन बुराईयों के साथ हो लिया था, जिससे पढ़ा–लिखा वर्ग अपनी पहचान नहीं बनाना चाहता था। इसका अंजाम यह निकला कि बुद्धिजीवी वर्ग पूर्ण रूप से इस प्राचीन ज्ञान से विमुख होता चला गया, जो उसके प्रारंभिक दौर का साक्षी था।"[41]

भारतीय परिवेश में धर्म को लेकर टिप्पणी करती हुई नासिरा जी पुनः कहती हैं कि– हम व्यक्तिगत रूप से धर्म के प्रति जो भी नजरिया रखना चाहें, वह हमारा निजी सरोकार है, मगर जब हम समाज को नज़र में रखते हैं, तो हम उस जनता के सामूहिक लाभ–हानि, सोच–विचार को महत्त्वपूर्ण मानते हैं, जो एक झुण्ड, एक गिरोह के रूप में हमारे सामने होता है। भारतीय जनता चाहे वह जिस धर्म को मानने वाली क्यों न हो, उसका मिजाज देखकर हम कह सकते हैं कि वह 'धार्मिक आस्था' वाली है। उसका विश्वास धर्म पर, कर्मकाण्ड, रीति–रिवाजों पर है।....यह एक जटिल गुत्थी है कि धर्म की जड़ता और रूढ़िवादिता से 'व्यक्ति' मुक्त हो जाता है, मगर समाज नहीं।.....इसलिए आज भारतवर्ष में धर्म के नाम पर एक सियासी शक्ति अपने पैर जमा रही है; क्योंकि धर्म को पुराना कहना और नकार देना बहुत आसान है, मगर उसे तर्क और कानून के स्तर पर जूझना कठिन काम है। तभी राजनेता एवं धर्मनेता बुद्धिजीवी वर्ग की अथाह कोशिशों के बावजूद अपने को शक्तिशाली पा रहा है और आम इंसान अपनी मुक्ति की राह नहीं खोज पा रहा है।.....पिछले दो दशकों से विश्व स्तर पर धर्म का उन्माद बढ़ रहा है। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि लोग एकाएक धार्मिक हो रहे हैं, बल्कि सियासत जिस व्यवस्था को मज़बूत करना चाहती है, उसमें धर्म के नाम का मसाला सबसे अहम भूमिका अदा करता है, जिसका कुछ भी लेना–देना धर्म से न होकर सत्ता और रोटी से है।"[42]

समकालीन परिप्रेक्ष्य में धर्म के विषय में अपने विचार रखती हुईं नासिरा जी लिखती हैं कि "सदी के अन्त में खड़े होकर जब पिछले पचास वर्षों को देखती हूँ, तो लगता है कि 'समय' ने ही कई बार करवट बदली, आन्दोलनों के मुद्दे हल होकर भी आज दोबारा संघर्ष के लिए तैयार हैं। एक तरफ धर्म का उन्माद बढ़ करा है, तो उसी समाज में लोग विमुख हो रहे हैं। एक कदम आगे और दो कदम पीछे नहीं चल रहे हैं, बल्कि संतुलन की जगह सब कुछ तोड़ देने की जो

प्रवृत्ति काम कर रही है, वह नया कुछ देने के बारे में न सोच पा रही है और न ही उसके पास नई कोई योजना है। उसका कारण भी है। जो शक्ति नया कुछ लाने और बनाने में समर्थ है, उसका सारा बल समाज में उठते तूफान को शांत करने में लग जाता है। बँटवारे के बाद से लगातार फसादों का सिलसिला है, जो बंद होने का नाम नहीं ले रहा है। वह एकता, जो अंग्रेजों के विरोध में खड़ी हुई थी, अब एक–दूसरे को बर्बाद करने पर तुली नज़र आती है। बिना इस हक़ीक़त को समझे हुए कि जो दरिया–ए–सिंध एक बार पार चुका, वह हिंदुस्तानी बन बैठा और उसी अनेकता के ताने–बाने से बना हमारा समाज है।"[43]

लेखिका की यही साफगोई और सुस्पष्ट नजरिया उनके उपन्यासों में हमें देखने को मिलता है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से सच्चे धर्म को दर्शाया है। धार्मिक आस्था हमेशा सच्ची और खुली आँखों से रखनी चाहिए, का संदेश दिया है। धर्म व्यक्ति को सही दिशा में संचालित करने के लिए स्थापित व्यवस्था का नाम है। इस व्यवस्था का संस्थापक भी मनुष्य ही है किन्तु इसका दुरुपयोग इंसानियत के लिए हानिकारक भी हो जाता है। धर्म को किसी निश्चित स्वरूप में नहीं बांधा जा सकता है, क्योंकि इसका स्वरूप अनेक परिवर्तनों एवं विकास के मध्य अनवरत रूप से आगे बढ़ता और बदलता रहता है। स्थूल रूप में धर्म दो स्वरूपों में नजर आता है– व्यक्तिगत धर्म और संस्थागत धर्म। वैयक्तिक धर्म के अन्तर्गत विश्वास और आस्था को प्रकट किया जाता है। इसके अलावा पूजा पाठ–संस्कार आदि बाह्य तत्त्वमूलक होता है संस्थागत धर्म। धर्म व्यक्ति के लिए है व्यक्ति धर्म के लिए नहीं। लेखिका ने अपने उपन्यासों में इन्हीं बातों को समझाने का प्रयास किया है। उपन्यासों में इन्हीं बातों को समझाने का प्रयास किया है। साथ ही साम्प्रदायिक सौहार्द्ध एवं परस्पर मिलजुलकर रहने के लिए प्रेरित किया है। सभी धर्मों के यथार्थ को समझकर व्यक्ति को सावचेत होकर जीना चाहिए।

'अक्षयवट' उपन्यास का केन्द्र बिन्दु 'इलाहाबाद' शहर है जिसकी मूल जीवन धारा लेखिका ने पारस्परिक साम्प्रदायिक व धार्मिक सौहार्द्ध को बताया है। यहाँ धर्म के स्थूल तत्त्वों–त्यौहारों, पर्वों, धार्मिक रीति–रिवाजों, आयोजनों का सांगोपांग चित्रण किया गया है।

राष्ट्र स्तरीय पर्व दशहरा, कुम्भ मेला, नवरात्र, दुर्गा–पूजा, जन्माष्टमी, ईद–बकरीद, मोहर्रम, जुमे़–जुमेरात, मज़ार, उर्स, ताज़िया की रौनकों के चश्मदीद हाल से रूबरू कराया है। साथ ही बाजारबाद के प्रभाव से इन धार्मिक आयोजनों में आयी गिरावट से लेखिका ने अपना क्षोभ भी खुलकर प्रकट किया है। वे लिखती हैं कि "बाजार ने कई दशकों से धर्म को गोद ले रखा है। ऐसे अवसरों पर साड़ी, जेवर, खाने–पीने की नयी चीजों का प्रचार धार्मिक भावनाओं के मिश्रण से किसी जाल की तरह फैला हुआ था। धर्म का मूल भाव तो कहीं खो चुका था। किन्तु निष्ठा अलबत्ता शोख रंगों में अपने को अभिव्यक्त करने के लिए व्याकुल नजर आ रही थी।.....

इसमें कोई शक नहीं था कि परम्परा निभाने के लिए छोटे–बड़े व्यापारी, हिन्दु हों या मुसलमान दुकानदार, अपने हिसाब से अपने–अपने इलाकों को सजाने के लिए आतुर थे।"[44]

धार्मिक सौहार्द्ध को बढ़ावा देने वाले इन त्योहारों में से दशहरा पर्व का वर्णन करती हुईं नासिरा जी लिखती हैं कि "इलाहाबाद के लिए दशहरा केवल धार्मिक पर्व भर नहीं हैं, यह स्थानीय परिवेश से निकली एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो अपनी ही बोली–बानी में इन्सानी दुख का बयान करती है। आम इन्सान की जिन्दगी से इतनी मिलती–जुलती उसकी व्यथा है कि हर कोई उसमें अपने को शामिल पाता है। उसमें सरोकार मानवीय, सामाजिक चिन्ता एवं जमीनी रंग बड़े चरख हैं, जो बरबस ही अपनी तरफ खींच लेते हैं। जिसमें भाव और विचार की समानता होती है। नैतिक और अनैतिक का भेद तर्क के साथ सामने आता है। जिसमें दुःख–सुख इतने सहज लगते हैं कि हर वर्ग का इन्सान जीवन के किसी न किसी स्तर पर उससे गुजरा जरूर होता है। इसलिए रामलीला की यह चौकियाँ देखने इलाहाबाद के आस–पास के नगर और कस्बे का हर व्यक्ति लालायित रहता है, चाहे वह किसी धर्म–विचार–वर्ग का हो।"[45]

इन त्योहारों के मूल संदेश को अपने जीवन में नहीं उतार पाने सम्बन्धी अपनी बात रखती हुई वे पुनः कहती हैं कि "रावण के पुतले में आग लगाना और बुराई को सदा के लिए मिटा देने का संकल्प हर दिल में होता है मगर व्यावहारिक रूप से मर्यादा पुरुषोत्तम राम बनने की तमन्ना किसी में न जागती, क्योंकि त्याग करने पर आज के दौर में कोई राजी न था। उलटे त्याग की जगह पैसा कमाने की नयी–नयी तरकीबों में सबका मन–मस्तिष्क रमता है। रावण को नकारते हुए भी रावण–कृत्य अपनाने की छुपी लालसा, आज का सबसे कड़वा यथार्थ था।"[46]

'ज़ीरो रोड़', उपन्यास में नासिरा जी ने इसी धर्म के चेहरे से नकाब उठाने की कोशिश की है। धर्म के नाम पर समाज के पारम्परिक सौहार्द को मिटाने में लगे लोगों तथा धार्मिक कट्टरता के नाम पर इन्सानियत को तबाह करने वाले कुछ दृष्टान्तों के माध्यम से पाठकों को झकझोरती हैं और सही–गलत का निर्णय करने पर विवश कर देती हैं। उपन्यास का नायक जो खुले विचारों वाला है, उसको धर्म के नाम पर अपनी चपेट में ले लेते हैं और वह संप्रदायवादी–विचारों में आकर अपने ही मोहल्ले के एक मुसलमान युवक को मारने वाले झुंड में शामिल होता है परन्तु आत्मबोध होने पर पश्चाताप करते हुए वह कहता है कि "वह एक मनहूस घड़ी थी जब मैं धर्म के उन्माद में या फिर दिशाहीन छटपटाहट में उस झंड में जा मिला जो वे सारे काम करते थे जो सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं थे। मगर.....रामलला का चढ़ता जुनून अयोध्या से चलता इलाहाबाद पहुँच गया था। तर्क, तथ्य, मानवता, भाईचारा, अखण्डता के सारे सिद्धान्त हम जवान भूल चुके थे।"[47]

इसी तरह मुन्ना हाफ़िज का घर रामप्रसाद व जगतराम जी के मोहल्ले में ही था। वह चौक में मजहबी किताबों की दुकान लगाकर परिवार का पालन–पोषण करता है तथा अपनी ईमानदारी व उदार दृष्टिकोण के कारण अपने ही मजहब के कट्टर व संकुचित मानसिकता वाले लोगों को चुभने लगता है। उनके उकसाने पर वह तब्लीगी जमात वालों को जवाब देते हुए कहते हैं कि "कान खोलकर सुन लें आप सभी साहेबान! मैं किसी के न खिलाफ कोई काम करता हूँ न किसी मज़हब की तब्लीग पर। मैं गैर मुसलमान को गाली नहीं देता हूँ बल्कि उन बातों की शिकायत करता हूँ जो हमें खलती हैं, जिससे हमें नुकसान पहुँचता है।"[48]

एक दिन अचानक रात के दो–तीन बजे हाफ़िज की दुकान को आग लगा दी जाती है। लगभग दो लाख की किताबें जलकर खाक हो जाती हैं। इस घटना को लेकर उनके ही जमात के लोग तरह–तरह की आशंकाऐं व्यक्त करते हैं। हनीफ मास्टर कहते हैं कि 'यह आग किसी गैर–मुस्लिम ने लगायी है।' तो रफीक तौलिये वाले कहते हैं 'हाँ भई, कौन हिम्मत कर पाएगा? अपनों को पता था उसमें मज़हबी किताबें थीं।' परन्तु मुन्ना हाफ़िज यहाँ पूर्ण विवेकी व्यक्ति का परिचय देते हैं। वह उन धर्मांध लोगों के बहकावे में न आकर तथा धार्मिक उन्माद को बढ़ावा न देकर शान्त स्वभाव से घटना के सभी पक्षों पर विचार करते हैं। वे कहते हैं कि "किसी पर शक करूँ? दिल तो नहीं मानता कि यह काम गैर मुसलमानों में से किसी का है।"[49] अन्त में उनका दिमाग छिटककर हफ्ता भर पहले वाले हादसे की तरफ मुड़ जाता है, जब उनकी दुकान पर तब्लीगी जमात वाले आये थे। उनकी बातें उन्हें याद आ जाती हैं– "आप अपने बर्ताव की क़ीमत खुदा के कहर की शक्ल में एक दिन देखेंगे।"[50]

यहाँ हाफ़िज जी हम सभी को यह प्रेरणा देते हैं विशेषतः आज की युवा पीढ़ी को कि अपने आस–पास सामाजिक विद्वेष फैलाने वालों के प्रति सतर्क रहे। किसी भी घटना के सभी पक्षों पर विचार किये बिना धर्मांधता का रुख नहीं करें।

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास की 'महरुख़' जब गाँव में पढ़ाने जाती है तो गाँव के चन्द खुशहाल मुसलमानों के घरों के द्वारा उससे मेल–जोल बढ़ाना चाहा। यहाँ तक कि सलमान ने तो अपने छोटे भाई इमरान के लिए निकाह का पैग़ाम भेजा। परन्तु महरुख ने बड़ी शालीनता से मना कर दिया। वह अनावश्यक धर्म के नाम पर मेल–जोल बढ़ाना पसन्द नहीं करती है। यहाँ तक कि साथी अध्यापकों संजय, अरोड़ा व इशरत के द्वारा आये–दिन तंग किये जाने पर भी धर्म का सहारा नहीं लेती है। परन्तु लछमिनिया की हालत बिगड़ने पर उसकी मदद के वास्ते वह तुरन्त सलमान के पास पहुँचकर मदद की गुहार लगाती है– "देखिए, लछमिनिया की हालत बहुत खराब है। अगर आस–पास से किसी लेडी डॉक्टर का इन्तजाम हो सके, तो वह जरूर बच जाएगी। इस वक़्त आपकी मदद की दरकार है। पैसे का मुँह न देखिएगा। जैसे भी हो आप डॉक्टर का बन्दोबस्त कर दीजिए।"[51] महरुख का यह व्यवहार पाठकों को सच्चे धर्म की ओर इशारा करता है।

कुइयाँजान उपन्यास का प्रमुख पात्र डॉ. कमाल अपने आचरण व व्यवहार से पाठकों को सच्चे मानव धर्म का पाठ पढ़ाता हुआ दिखलाई देता है। वह सोते–जागते हमेशा पानी की समस्या से उत्पन्न समस्याओं, फैलती बीमारियों व गरीब मरीजों के बारे में ही सोचता रहता है। जो कुछ भी अपनी क्लीनिक से कमाता है वह सब मरीजों एवं निःसहायों की सेवा में लगा देता है। सौभाग्य से उसकी जीवन संगिनी समीना उसके विचारों को समझने वाली है और कदम से कदम मिलाकर अपने पति का साथ देती है। अतः लेखिका ने स्वयं समीना से कहलाया है कि "मुझे 'मिस मेरी स्कूल' का वह ऑफर कुबूल कर लेना चाहिए, वरना बिना नौकरी के छोटी–छोटी जरूरतों के लिए मुझे बड़ी अम्मी के आगे हाथ फैलाना पड़ेगा। कमाल जो कमाते हैं वह मरीजों पर खर्च कर देते हैं। उन्हें मना करने का अर्थ है, नेकी से हाथ खींचना, जो मैं नहीं चाहती हूँ; मगर इस समस्या का तो हल करना पड़ेगा। माली तौर से जब तक हम मजबूत न होंगे, किसी भी शख्स की मदद सही तरीके से नहीं कर पायेंगे। अधूरी सहायता से उस आदमी की स्थिति तो नहीं बदलती है, कुछ देर के लिए उसके आंसू पुंछ जाते हैं।"[52]

'जिंदा मुहावरे' उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक हमें धर्म के नाम पर हुए सरहदों के बँटवारें व मानवता को शर्मसार करने वाले सच को दिखलाता है। दिनों–दिन परस्पर धार्मिक उन्माद बढ़ता ही चला जा रहा है। दिलों में एक–दूसरे के प्रति मोहब्बत के बजाय नफरत ही ज्यादा पनपी है। परन्तु हिंदुस्तान में गोलू की इज्जत देख निजाम सोचता है कि "आज तक हिन्दू–मुसलमान फसाद की ख़बरें तो पाकिस्तान में पहुँच रही थीं मगर यह इत्तला वहाँ नहीं पहुँची थी कि एक मुसलमान अफसर के नीचे हजारों मातहत हिन्दू भी हो सकते हैं और.....।"[53] अतः सच को जानना बहुत जरूरी है। सुनी–सुनायी बातों पर यकीन करना सरासर गलत है। अतः बिना असलियत जाने धार्मिक उन्माद के बहाव में नहीं बहना चाहिए।

लेखिका ने बड़ी ही संजीदगी और निर्भीकता का परिचय देते हुए अपने पाठकों को समझाया है कि धर्म और राजनीति दो अलग–अलग चीजें हैं किन्तु आज सियासतदार धर्म की राजनीति का पावर गेम खेल रहे हैं। उनकी औपन्यासिक कृति 'सात नदियाँ : एक समन्दर' में धर्म और राजनीति के बीच पिसती इंसानियत को दर्शाया है। राजनीति और धर्म के गठजोड़ का वीभत्स रूप हमें 'ईरान की खूनी क्रांति' के रूप में स्पष्ट दिखलाई देता है जब इमाम खुमैमी ने जुल्मों–सितम का कहर ढहा दिया और देखते ही देखते खुशहाल ईरान को कब्रिस्तान में तब्दील कर दिया था। राजनीति और धर्म के सम्मिश्रण से उद्भूत धर्म के विकृत रूप का पटाक्षेप करती हुईं नासिरा जी लिखती है कि खुमैनी और उसका शासन निरंकुश तानाशाह में बदलकर रह गया और "कुछ दिन बाद बढ़ते अंकुश से घबराये बुद्धिजीवी अपने पुराने ठिकाने की ओर लौटने लगे।

एक वर्ग भाग चुका था। तय्यबा जैसा वर्ग अब अर्थहीन होकर नहीं रह गया था। रूढ़िवादिता का दानव समाज को निगलने को आतुर।"[54]

इस सम्बन्ध में अमरीश सिंह दीप अपने एक लेख में लिखते हैं कि "धर्म एक ऐसी महामारी है जिसकी चपेट में आकर दुनियाँ में सबसे ज्यादा लोग मरते हैं। महाभारत और रामायण काल से लेकर आज तक जितनी जनहानि धर्मयुद्धों से हुई उतनी अन्य किसी महामारी से नहीं हुई है। मुस्लिम आतंकवाद हो या हिंदू आतंकवाद अथवा अन्य किसी धर्म का आतंकवाद, हर आतंकवाद की जड़ धर्म ही है। धर्म आदमी को असहिष्णु बनाता है, निर्मम और क्रूर बनाता है, तलवार–त्रिशूल, बंदूक उठाना सिखाता है, आदमी की नस्ल को गाजर–मूली की तरह काटना सिखाता है। उसे दुराचारी, अत्याचारी और बलात्कारी बनाता है। खुमैनी के सत्ता में आते ही ईरान में धर्म, सर्वशक्तिमान हो गया था और अपने खिलाफ उठने वाली हर आवाज को बंदूक से बंद कर रहा था। धर्म की महामारी के फैलते ही लोग देश छोड़कर भागने लगे थे।"[55]

लेखिका हमेशा प्रगतिशील व खुली सोच की धनी रहीं हैं। वह आज के परिवेश फैल रहे संकुचित व संकीर्ण विचारों का खुलकर विरोध करती हैं। अपने इन्हीं विचारों को पारिजात उपन्यास के पात्र 'रोहन दत्त' से वे इस प्रकार बयां करवाती हैं– "मैं भी कहाँ हिटलर की सोच का आदमी हूँ? यकीन करें, मैं आज के दौर में चल रहे नस्लवाद, धर्मवाद, जातिवाद, भाषावाद का पैरोकार नहीं हूँ मगर अब मजबूरी यह है कि मैं अपनी वल्दियत तो बदल नहीं सकता.....आप मेरी मजबूरी को समझ रहे हैं न?"[56]

धर्म के नाम पर प्रचलित आडम्बरों, कर्मकाण्ड, तंत्र–मंत्र, जादू–टोने इत्यादि के प्रति नासिरा जी ने बड़े ही मुखर ढंग से आक्रोश जाहिर किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि धर्म के मूल तत्त्व से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये सब स्वार्थलोलुप चंद ढोंगी लोगों के मन की उपज हैं। जब 'काग़ज की नाव' उपन्यास की पात्र महजबीं अपने परिवार में तथा बेटियों के ससुराल में अपनी स्वार्थ सिद्धि की खातिर आमिल के पास जाकर और मोटी रकम फँसाकर ताबीज आदि लाती रहती है तब उसकी छोटी बेटी उसका खुलकर विरोध करती हुई कहती है कि "मम्मी, मुझे यह सब पसंद नहीं है। यह ग़ैरमज़हबी और ग़ैरइनसानी हरकत है।"[57] माजदा के इस कथन से लेखिका संकेत करती है कि आज की युवा व शिक्षित पीढ़ी धीरे–धीरे धर्म के नाम पर चल रहे इन गोरखधन्धों के प्रति अपना आक्रोश जाहिर करने लगा है।

आज की नई पीढ़ी को वह परिवेश व सामाजिक संस्कार नहीं मिल पा रहे हैं जो पहले पीढ़ी दर पीढ़ी मिलते थे और जिनके कारण धार्मिक वातावरण सौहार्दपूर्ण बना रहता था। परन्तु आज की युवा पीढ़ी उनसे पूर्णतः अनजान है। इस कारण वह बिना सोचे–समझे बहकावे में आकर

धर्म के नाम पर खून–खराबे पर उतारू हो जाती है। यदि उसको तथ्यात्मक तरीके से एवं विगत पीढ़ी की जीवन–शैली से अवगत करवाया जाता है तो वह शीघ्र ही समझ भी जाती है। इसी बात की ओर इशारा करती हुईं नासिरा जी हमें 'दूसरी जन्नत' उपन्यास की पात्र 'राना' से परिचय करवाती है। जब शहला बानों 'सावन' गाती है–

"झूला पड़ा क़दम की डारी
झूला झूलवें कृष्ण मुरारी।"

इस दूसरे बन्ध को सुनकर राना सीने पर हाथ रखकर अचानक कह उठती है 'हाय अल्लाह!' इस पर शहनाज़ इस तरह चौंकने का कारण पूछती है तथा शहनाज़ और फरीद इतिहास की याद दिलाकर राना को समझाते हैं। फरीद राना से कहता है कि "वह धुँधली ब्लैक एण्ड व्हाइट तस्वीर जो दीवार पर लगी है वह मेरे दादाजान के दादाजान की है, राजा हुसैन अब्बास, पहले ज़मींदार और राजा तलुक़ेदार भी कहलाते थे। सुना उनके अब्बा जान बेहद पढ़े लिखे थे। हुसैन अब्बास साहब ने उर्दू भाषा में भगवत गीता और महाभारत के कुछ हिस्सों का अनुवाद भी किया था। खूब शोहरत मिली अपने इलाके में, शाम को चबूतरे पर महफिल जमती। उसे पढ़ा जाता।.....अरसे बाद वह स्वतन्त्रता संग्राम जब बंटवारे का जुनून बन मार काट में बदल गया तो हाथ से लिखी किताबें उस तबाही में जलकर राख हुईं।....हाँ तो बताना यह है कि आर्ट का कोई धर्म विशेष नहीं होता। वह सिर्फ़ कला होती है, इनसानी जज्बे़ की तरजुमानी होती है।.....कितने हिन्दू हैं जो मोहर्रम के नोहे लिखते हैं, रोज़े रखते हैं। यह इनसानी विरासत है। हम मिसालें देते हुए कैकेयी कांड, कोप भवन, रोज की बोलचाल में इस्तेमाल करते हैं। लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह भी अपने को कृष्ण का अवतार मानते थे।"[58]

इस प्रकार नासिरा जी ने अपने औपन्यासिक कृतियों द्वारा धर्मान्धता के क्रूर चेहरे को समाज के सामने रख धर्म और मजहब की सही मायने में व्याख्या की है। साथ ही हमको समझाया है कि– 'धर्म व्यक्ति के लिए है व्यक्ति धर्म के लिए नहीं।'

2. आर्थिक चेतना

भारतीय ऋषि–मुनियों एवं दार्शनिकों ने अपने चिन्तन–मनन के निस्यूत स्वरूप मनुष्य जीवन के चार–लक्ष्य सोपानक्रम से निर्धारित किये गये हैं। ये चारों लक्ष्य ही पुरुषार्थ–चतुष्ट्य (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष) के रूप में जाने जाते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि भारतीय मनीषियों ने धर्म के पश्चात् अर्थ को स्थान दिया है अर्थात् मानव जीवन में धर्म के उपरान्त अर्थ ही वह महत्त्वपूर्ण कारक है जो जीवन के संचालनार्थ अपरिहार्य है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु,

सामाजिक मानव प्रतिष्ठा के लिए धन की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता है। इसी कारण संस्कृत के महाकवि भर्तृहरि अपने नीतिशतक में कहते हैं–

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः सः श्रुतवान्गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः का×चनमाश्रयन्ते।।"[59]

अर्थात् जो धनवान् होता है वह व्यक्ति समाज में श्रेष्ठ माना जाता है। वह सब कुछ जानने वाला, सुनने योग्य तथा गुणवान् माना जाता है। वहीं कुशल वक्ता एवं दर्शनीय माना जाता है। अतः कहा जा सकता है कि सभी गुण धन का आश्रय लिये होते हैं।

वर्तमान युग के इस भौतिक परिवेश में जीवन अर्थ साध्य हो गया है। अर्थ के अभाव में जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ कदम रखा जा सके। एक ओर जहाँ जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओं–रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए आज का व्यक्ति संघर्षरत है, वहीं दूसरी ओर भौतिक सुख–सुविधाओं की मांग ने व्यक्ति के ईमान और नैतिक आस्था को बदल दिया गया है। हर आदमी में आर्थिक रूप से ऊँचा उठने की लालसा बलवती हो गई है। परिणामस्वरूप एक छद्मपूर्ण वातावरण का निर्माण हुआ है। अपरिग्रह, अस्तेय और नैतिकता मूल्यहीन होते जा रहे हैं। किसी भी गलत या सही तरीके से अर्थोपार्जन और उसका संग्रह करना ही मूल उद्देश्य रह गया है। परिणामस्वरूप सामान्य आदमी की कमर टूटती चली गयी। शोषण का यह रूप एक ओर जहाँ अमीर और गरीब के वर्ग के रूप में विकसित हुआ है, वहीं उच्च और निम्न वर्ण के रूप में। इस शोषण की प्रक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ है वर्ग–संघर्ष। जो अनेक रूपों में हमारे सामने आया है।

हमारे उपन्यासकारों, लेखकों व कवियों ने इस विषम स्थिति को बहुत ही करीब से समझा और अनुभूत किया तथा अपनी रचनाओं में इस यथार्थ को बड़े ही धारदार एवं मुखर शैली में अभिव्यक्ति दी।

इस प्रकार अर्थ अर्थात् धन से सम्बन्धित चेतना, आर्थिक चेतना कहलाती है। 'अर्थ' शब्द से 'इक' प्रत्यय[60] जुड़कर 'आर्थिक' शब्द निष्पन्न होता है। इसी प्रकार संस्कृत में 'अर्थ' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय[61] का योग होने पर 'आर्थिक' शब्द बनता है। जब कोई लेखक या रचनाकार समकालीन लोक परिवेश के आर्थिक पक्ष पर लेखनी चलाता है तो उसके द्वारा चित्रित वह स्वरूप आर्थिक चेतना के परिक्षेत्र में आता है।

हिन्दी भाषा की आधुनिक लेखिका एवं प्रख्यात व चर्चित उपन्यासकार नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों में जहाँ आधुनिक युगबोध–सम्पन्न मनुष्य की मानसिकता को अभिव्यक्त किया है, वहीं आधुनिक परिवेश में लोक–जीवन की इस यथार्थ स्थिति का आकलन भी बखूबी किया है, जिसमें उसकी आर्थिक विषमताएँ, कुरीतियाँ, समस्याएँ, औद्योगिकीकरण और राजनीतिक विद्रूपताएँ समाविष्ट हैं। स्वतन्त्रता के बाद आम आदमी ने जो खुशहाल जीवन का स्वप्न देखा था वह स्वप्न ही रह गया। आर्थिक संसाधनों व पूँजी का विकेन्द्रीकरण आवश्यक था। किन्तु इसके विपरीत पूँजी का केन्द्रीकरण होता चला गया जिसके परिणामस्वरूप गरीबी व अमीरी का फांसला बढ़ता चला गया। सरकारी योजनाएँ कागजों पर सिमट कर दिखावा मात्र बनकर रह गयी थी। नासिरा जी अपने उपन्यासों के पात्रों के माध्यम से पूँजी के विकेन्द्रीकरण की बात कही है। अपने 'अक्षयवट' उपन्यास में लेखिका ने वर्तमान आर्थिक हालातों पर तीखा प्रहार करते हुए अनेक प्रश्न पाठकों के सामने प्रस्तुत किये हैं, जो आम इन्सानों की रोजमर्रा की जिन्दगी से सम्बन्धित हैं– "जवान लड़के गुण्डे क्यों बनते हैं? लड़कियाँ आत्महत्या क्यों करती हैं? दुकानदार डण्डी क्यों मारता है? ग्राहक मिलावट भरा सामान क्यों खरीदता है? जनता टैक्स क्यों देती है? नल क्यों सूखे हैं? चुनाव क्यों होता है? हम वोट क्यों देते हैं? नौकरियाँ क्यों नहीं मिलती? आर्थिक स्थिति बदहाल क्यों है?"[62]

वस्तुतः यह सब सवाल केवल लेखिका के ही मन की उपज नहीं है अपितु हमारे 72 साल के लोकतन्त्र की सार्थकता पर खड़े हो रहे प्रश्नचिन्ह हैं, जिनका फलक बढ़ता ही जा रहा है। कल–कारखाने बन्द होते जा रहे हैं। महँगाई और बेरोजगारी चरम सीमा पर है, फसलें पाले–बाढ़–सूखे से बरबाद हो रही हैं। किसान की कमर टूट गयी है। जानवर और इनसान अपने वजूद को बचाने के लिए परस्पर संघर्षरत है। एक तरफ गन्दी, कीचड़ और कूड़े से अटी–पड़ी बस्तियाँ हैं तो दूसरी तरफ सफेदपोश चमचमाते इलाके।

इन सब स्थितियों में भी लेखिका एक आशा की किरण दिखलाती हैं युवा पीढ़ी के रूप में। नइ ऊर्जा से भरपूर युवा पीढ़ी देश व समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सकती है। अक्षयवट उपन्यास का नायक 'ज़हीर' ऐसी ही ऊर्जा सम्पन्न युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता दिखलाई पड़ता है। वह नाना–नाना प्रकार से जरूरतमन्दों की मदद करता रहता है। अन्त में वह 'मुस्कान'[63] नाम की एक संस्था खोलकर उसमें अनाथ शिशुओं को पालने और उन्हें शिक्षा देने का कार्य प्रारम्भ करता है और इसी दायित्व के कारण अपने भावनात्मक प्यार की कुर्बानी भी दे देता है।

ठीक इसी प्रकार 'कुइयाँजान' उपन्यास में नायक डॉ. कमाल भी अपने ढंग से गरीबों की आर्थिक मदद करता है। इस नेक कार्य में उसकी पत्नी समीना भी पूरा सहयोग देती है। डॉ.

कमाल इलाहबाद के पिछड़े इलाके में क्लिनिक खोलकर गरीबों का मुक्त इलाज करता है। वह अपनी व्यस्त दिनचर्या से समय निकालकर साफ पानी और सफाई के प्रति भी लोगों को जागरूक करता रहता है। आग के कारण उजड़ी हुई कच्ची बस्ती में पत्नी सहित जाकर वहाँ के लोगों के खाने–पीने के सामान की व्यवस्था कराते हैं। उसी भाँति बारिश के कारण इलाहबाद के गली–कूचों में जब पानी भर जाता है तब उन लोगों तक जरूरत की चीजें और चिकित्सकीय सुविधा भी पहुँचाते हैं। कमाल की इस दरियादिली पर कच्ची बस्ती की एक औरत कहती है कि– "आपको हमारी चिंता जाड़ा, गरमी, बरसात लगी ही रहत है....जाने कउन जनम का ऋण उतारत हो।"[64] साथ ही समीना स्कूल में नौकरी कर अपनी आय से कमाल के कदम से कदम मिलाकर चलती है।

नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में अर्थ को लेकर बहुत छोटे–छोटे कथोपकथनों के माध्यम से यह एहसास दिलाया है कि आज के दौर में इंसानी ज़ज्बात, अपनापन, रिश्तों की गर्मी, एहसास, तड़प सब, कुछ इस अर्थ के आगे कमजोर पड़ते जा रहे हैं। धन की लालसा अपनों से बेगाना बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

'कुइयाँजान' में ही शकरआरा और खुरशीदआरा इन दोनों सगी बहनों के सम्बन्ध में आयी दरार का कारण भी अर्थ रहा है। शकरआरा अमीर घराने और कलेक्टर की पत्नी होने के कारण विधवा बहन के घर जाने में अपनी तौहीन समझती है। यह रूपक मात्र है। प्रायः हर घर में रिश्तों में आयी दरार का कारण धनलोलुपता ही है। धन के घमण्ड में व्यक्ति अपनों से किस तरह बर्ताव कर रिश्तों को तार–तार कर देता है, यह सब शकरआरा द्वारा अपनी सगी बहन से कहे गये इन वाक्यों से जाना जा सकता है– "तुम हमेशा अपनी बड़ी बहन से टक्कर ले उसको नीचा दिखाना चाहती हो।.....मगर तुम कुछ भी कर लो, मेरे हुस्न और मेरे मियां के खानदान और धन–दौलत का मुकाबला कभी नहीं कर पाओगी....।"[65]

ठीक इसी तरह 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास का निजाम जिस जन्नत को पाने के लिए, जिस ऐशोआराम को पाने के लिए पाकिस्तान जाता है, वही सब वह भारत में गोलू के पास देखकर अपने आप से सवाल पूछ बैठता है, "जिस चीज को हासिल करने के लिए अपनी जिंदगी के पैंतालीस साल गंवा दिए, वह तो उसके हर रिश्तेदार के पास मौजूद है, फिर उसने हासिल क्या किया?"[66]

जिस व्यक्ति के पास अर्थ (धन) की शक्ति होती है, चाहे वह निर्बल हो, गरीब हो या अबला नारी, तो वह आत्मविश्वास से लबालब होकर स्वाभिमानपूर्ण जिंदगी जीने लगता है। एक आम स्त्री का प्रतिनिधित्व करती हुई 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख़ से जब रफ़त भाई साथ–साथ

एक घर के ख़्वाब की याद दिलाता है तब वह कहती है कि "घर का मतलब अगर ईंट, गारे, पत्थर की चहारदीवारी होता है और शौहर का मतलब जिन्दगी़ की बुनियादी जरूरतों का जरिया, तो फिर वे दोनों चीजें मेरे पास मौजूद हैं। यह दीवारें और नौकरी जो मेरा सहारा हैं।"[67]

इसी तरह जब रिटायरमेण्ट के बाद जब महरुख़ अपनी मूल बस्ती में आती है और बुजुर्गों के गुजर जाने के बाद सभी परिवार वाले पुस्तैनी मकान को बेचकर शहर की ओर रवाना होते हैं, तब सभी महरुख की तरफ देखकर उनके रहने के बारे में जिज्ञासा जाहिर करते हैं तब वह पूर्ण आत्मविश्वास से कहती है कि "एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो।.....मेरा अपना घर वही पुराना है, जहाँ मैं पिछले तीस साल रही हूँ। तुम लोग अपने–अपने घर लौट रहे हो, मैं अपने घर लौट रही हूँ। इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है?"[68]

महरुख़ की तरह ही 'शाल्मली' की नायिका शाल्मली भी एक नौकरीपेशा प्रशासनिक अधिकारी है, लेकिन पूर्ण संस्कारों से सुसज्जित होकर घर भी सँभालती है। परन्तु पति नरेश की आदतों और पैसे पानी की तरह बहाने से परेशान होकर वह नरेश से सैलेरी के बारे में पूछती है। नरेश के घरेलू खर्च के लिए रुपये नहीं देने पर वह कह उठती है कि "यदि आप कमाते हो तो मैं भी कमाती हूँ।....'मर्द बन रही हो तो उठाओं सारा बोझ' नरेश के ऐसा कहने पर वह भी कह उठती है तो फिर तुम औरत बनकर मेरा हाथ तो बटाओ।"[69] यह उस आत्मनिर्भर स्त्री की आवाज है जो अपने दम पर घर और ऑफिस बखूबी सँभाल रही है फिर भी पुरुष की नजरें उन्हें सम्मान नहीं देती।

'सात नदियाँ : एक समंदर' तथा 'अजनबी जज़ीरा' उपन्यासों में विपरीत परिस्थितियों में तंगहाली में जीवन जीते हुए तथा धन के अभाव में इंसानीयत, नैतिकता और स्वाभिमान को दाँव पर लगते हुए चित्रित किया गया है। हालात के चलते नैतिकता के मायने बदलते चले जाते हैं। अपने ही अपनों को नोंचने लगते हैं। जिसके पास पैसा है, वह सम्मानपूर्वक गुजर–बसर कर पाता है और विपरीत परिस्थितियों में सुकून की तलाश में धन के बल पर आसानी से नया बसेरा ढूँढने में सफल हो जाता है। वहीं एक दीन–हीन व गरीब व्यक्ति हर शक्ति सम्पन्न व ताकतवर के द्वारा रौंदा जाता है। सात नदियाँ : एक समन्दर में खुमैनी शासन से तंग आकर 'परी व खालिद' रिश्वत देकर सीमा पार कर पेरिस पहुँच जाते हैं और वहीं बच्चों के साथ एक नई जिंदगी की शुरूआत करते हैं। वहीं मलीहा जैसे पात्र भी हैं जो पाई–पाई के लिए तरसते हैं। पेट की भूख को शांत करने के लिए घर का सामान बेच–बेच कर दिन गुजारते हैं।

इसी तरह 'अजनबी जज़ीरा' में बगदाद पर अमरीकी आक्रमण से तहस–नहस जिंदगी व इंसानियत को दर्शाया है। समीरा जैसी अनेक औरतें घर परिवार को चलाने, खाने–पीने की जुगत करने, बीमारी के इलाज के लिए दवा–दारू की व्यवस्था करने के लिए तिल–तिल कर मजबूर हो रहीं हैं। सामान बेच–बेच कर गुजर–बसर कर रही हैं। पाठकों का दिल जब दहल जाता है जब एक औरत 'रुया' समीरा से अपनी मजबूरी व दर्द जाहिर करती हुई कहती हैं। "मैं अपना बदन नुचवाती हूँ..........अपने हम–शहरियों से........और क्या करूँ, ईमान को लेकर चाटूँ या इस्मत को लेकर नाचूँ? देखो, अब मेरे पास इतने रियाल हैं कि मैं हफ़्ता आराम से गुज़ार सकूँ........ अल–बाक़र मुझे गाली देता है, बदकार और बेवफा कहता है, शहवतरानी का इल्ज़ाम देता है, फिर मेरे पैरों पर गिरकर फूट–फूटकर रोता है जब इन पैसों से उसके पेट की आग बुझाती हूँ। उसके लिए पेनकिलर और मालिश का तेल खरीदती हूँ, ज़िन्दगी का इतना बदसूरत चेहरा देखने के हम हक़दार नहीं थे, जो हमने बोया नहीं वह हम क्यों काट रहे हैं?..........तू अभी बहुत जवान लगती है, फाँस ले किसी को, अब तो तू आज़ाद है.......सच अल–बाकर मेरी जान का अज़ाब न बना होता तो मैं दरबदर भटकने से बेहतर किसी के साथ हो लेती, इज्ज़त से रहती, लेकिन हर बार........मुझे समीरा अपने से घिन आने लगी है। अपनी चमड़ी को खुरच डालना चाहती हूँ और खुदा के सामने सिजदे से इनकार करना चाहती हूँ, जो यह सब देख चुप है, चुप!"[70]

गरीबी व बेरोजगारी के चलते पढ़े–लिखे शिक्षित युवक घरों से पलायन को मजबूर हैं। 'जीरो रोड' उपन्यास के प्रमुख पात्र सिद्धार्थ को अधिकारी की नौकरी का आश्वासन देकर अवैध रूप से दुबई भेजा जाता है लेकिन वहाँ जाकर मजदूरी कर संघर्षरत होते हुए सुपरवाइजर बन जाता है। सिद्धार्थ की तरह भारत से अनेक गरीब मज़दूर अवैध रूप से दुबई जाते हैं तथा वहाँ अनेक समस्याओं में फँस जाते हैं तथा बहुत ही दयनीय स्थिति में जीते हैं। इसके माध्यम से लेखिका ने देश की भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था, पासपोर्ट के घपले एवं दलालों के अवैध कामों का पर्दाफाश किया है। साथ ही बताया है कि अवैध रूप से विभिन्न कामों के लिए भेजी स्त्रियों की स्थिति पुरुषों से ज्यादा बदतर है। उनका कम्पनी मालिकों द्वारा शोषण किया जाता है। समाज के सारे रिश्ते–नाते अर्थ के इर्द–गिर्द घूमते हैं। विशेषकर मध्यवर्ग के परिवार आर्थिक समस्या से जूझते नजर आते हैं। जगतराम एवं रामप्रसाद बँधी आमदनी में जीने वाले व्यक्ति हैं। घर का सारा बोझ उन्हीं के कंधों पर है। जगतराम को बेटियों के विवाह को लेकर दूर–दूर तक कोई सहारा नज़र नहीं आता है। रामप्रसाद के पास जमा हुआ पैसा उन्हें न तो अभिजात्य होने देता है और न ही वास्तविक स्थिति में जीने देता है। मुन्ना हाफ़िज का परिवार एवं हामिद का परिवार भी बँधी आमदनी में जीते हैं। सिद्धार्थ की नौकरी से रामप्रसाद के खाते में बहुत पैसे जमा हो जाते हैं। वह स्वयं को मध्यवर्गीय स्तर से ऊँचा समझने लगता है। इस पर जगतराम कहते हैं कि

"ठीक तो है, अब अपना मित्र रामप्रसाद हमारे वर्ग का कहाँ रह गया है। हम ठहरे निम्न मध्यवर्गीय लोग मगर अब उसका जीवन स्तर हमसे ऊँचा हो गया है।.........अब उसका शुमार उच्च वर्गीय में होगा.........।"[71]

साथ ही लेखिका ने यहाँ यह भी दर्शाया है कि पैसे कमाने की अँधी दौड़ ने इनसान के आपसी अपनेपन व एहसास को सुखा दिया है। पैसे के मृगजाल में फँसकर व्यक्ति जीवन का सुख चैन खोता जा रहा है। 'ज़ीरो रोड़' उपन्यास में सिद्धार्थ के पिता रामप्रसाद पैसे को लेकर बहुत अधिक संवेदनशील दिखाई देते हैं। बेटा परदेस में तन्हाई की जिंदगी गुजार रहा है। उसके दिल का हाल जानने के बजाए वह उससे अधिक आय की उम्मीद करते हैं। फोन पर सिद्धार्थ का कुशल मंगल पूछने के बजाय वह यह कहते हैं कि "बैठे बिठाय सौ दो सौ का चूना लग जाएगा।"[72]

दूसरी तरफ 'शब्द पखेरू' उपन्यास में सूर्यकान्त की दोनों बेटियाँ मनीषा और शैलजा अपने–अपने तरीके से घर की माली हालात को सुधारने के लिए सपने बुनने लगती हैं। परन्तु 'शैलजा' इस अंधी दौड़ में अच्छे बुरे इनसान को पहचान भी नहीं पाती है और पैसे व सुखद जीवन के लालच में आकर साइबर अपराध में फँसती–फँसती बचती है। इस बात से परेशान शैलजा से उसके चिंतित होने का कारण जब मनीषा पूछती है तब शैलजा खीज भरे स्वर में पाठकों को जीवन–यथार्थ को समझाती सी कहती है कि "हाँ! यह पूरी दुनिया तकनीकी दृष्टि से जिस तेजी से बदल रही है वहाँ संवेदना की जगह पैसे का महत्त्व बढ़ रहा है और हम कुछ ज्यादा ही भावुक हैं। व्यावहारिक चाहकर भी नहीं हो पाते हैं।"[73] साथ ही सूर्यकान्त अपनी बीमार पत्नी साधना को बेटियों के भरोसे छोड़कर घरेलू खर्च, बेटियों की पढ़ाई एवं विवाह आदि के लिए पैसे की जुगत करने के लिए मजबूरीवश दूसरे शहर में नौकरी करने पर विवश हो जाते हैं।

लेखिका का उपन्यास 'काग़ज़ की नाव' का तो शीर्षक ही स्वयं में वर्तमान जीवन शैली और पैसे के पीछे सामाजिक दायित्वों को दरकिनार कर देने जैसी हकीकत को बयां करता है। "यह उपन्यास बिहार में रहने वाले उन परिवारों का वृत्तांत है, जिनके घर से कोई न कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया हुआ है। वतन से दूर रहने वाले यहाँ छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक का भरा–पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से आने वाले रुपए....और रिश्तों के अंधेरे उजाले। 'काग़ज की नाव' शीर्षक एक रूपक बन जाता है, यानी ज़रूरतों और ज़िम्मेदारियों के समंदर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश।"[74]

यह हकीकत है कि अरब देशों से आये पैसे से काफी हद तक जीवन स्तर में सुधार आया है। इसी बात को बाजार की चकाचौंध देखकर अमजद अपनी बेगम महजबीं से कहता है–

"हाँ, यह नकली नोटों का नहीं बल्कि यह कमाल बाहर से आई करेंसी की वजह से है। कहते हैं मिडिल ईस्ट से कारीगरों और मज़दूरों का भेजा मेहनताना करोड़ों के क़रीब है।"[75]

बेरोजगारी या कहें बेकारी कब इनसान को मजबूरी के तले दबाकर अपराध की ओर ले जाये, यह कहा नहीं जा सकता। ऐसा ही जीवन्त वाकया देखने को मिलता है 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में। कमर अपनी आर्थिक हालात से तंग आकर दोस्तों के साथ मिलकर दहेज के लालच में इन्जीनियर बनकर मास्टर जी की इकलौती लड़की से सगाई कर लेता है परन्तु फूफा एक अन्य शादी में उसे छोटे—मोटे लाईट का कार्य करते हुए देख लेता है और मास्टर जी को सारा मामला बता देता है। सुनकर क्रान्ति झा, फूफा और अन्य लोग मिलकर कमर को उठा लाते हैं और उसकी जमकर पिटाई कर पुनः रुपए लौटाने की कहकर उसे उसके घर पटक आते हैं। रुपये नहीं लौटाने पर एक दिन क्रांति झा और फूफा अचानक उसके घर पहुँच जाते हैं और उसे रुपये लौटाने के लिए धमकाते हैं। तब कमर गिड़गिड़ाता हुआ कहता है कि "आप कुछ भी करें, कोई भी सज़ा दें मगर पुलिस के पास मामला दर्ज न करें वरना हमारी दो बहनों के निकाह में अडंगा पड़ जाएगा। माँ—बाप कहीं मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहेंगे। वे बेगुनाह हैं। आपका गुनहगार मैं हूँ।" इतना कह वह उनके पैरों को पकड़कर फूट—फूटकर रोने लगा फिर सुबकियां भरते हुए बोला, "मैं अच्छे शरीफ़ ख़ानदान से हूँ। इकलौता लड़का हूँ। काम मिलता नहीं, ग़रीबी की वजह से आगे पढ़ नहीं पाया और काम शुरू किया तो आमदनी अठन्नी और ख़र्चा रुपया। थक गया था मैं ज़िंदगी की मार खा—खाकर, सोचा जब सीधी उंगली से घी नहीं निकल रहा है तो उंगली टेढ़ी कर लेता हूँ.......यह मेरी नादानी थी.....हमारी परेशानियाँ.......क्या करें हम जैसे लोग?".....रोते—रोते वह आगे कहने लगा, "आप लोग नहीं समझ सकते हमारी परेशानी। हमारे पास जुर्म के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है, जो बात आपको जुर्म लगती है उसमें हमको अपनी रोज़ी—रोटी की उम्मीद नज़र आती है। भूखा पेट कुछ भी करा सकता है.......कुछ भी।"[76]

इस प्रकार नासिरा शर्मा ने अपनी औपन्यासिक कथानकों व पात्रों के माध्यम से जीवन के विभिन्न यथार्थों से रूबरू कराया है। असमान वितरण व्यवस्था, भ्रष्टाचार, तानाशाही, प्रशासन की गलत नीतियों इत्यादि के कारण गरीबी व अमीरी के मध्य खाई बढ़ती जा रही है। बेरोजगारी व बेकारी बढ़ती जा रही है। गाँवों से शहरों, शहरों से महानगरों तथा विदेशों में वैध—अवैध प्रवासी मजदूरों की संख्या दिन—प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इन मजदूरों को बड़ी दयनीय अवस्था में जीवन—यापन करना पड़ता है। साथ ही घर से दूर रहने के कारण अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। रिश्तों में कडवाहट व शुष्कता आ जाती है। जिनका अंजाम कभी—कभी काग़ज़ की नाव की मलक़ानूर की भाँति देखने को मिलता है। जुर्म एवं अपराध को बढ़ावा मिलता है। अतः हमें चाहिए कि व्यक्ति को जीवन में संतुलन बैठाते हुए आगे बढ़ना चाहिए। इसके लिए

नई युवा पीढ़ी को आगे आना पड़ेगा। साथ ही संदेश दिया है कि कुइयाँजान के कलाम, दूसरी जन्नत की रुख़साना, अक्षयवट के ज़हीर की भाँति समाज को नई दिशा देने वाले युवक ही इस देश का भविष्य तय कर सकते हैं।

3. राजनैतिक चेतना

सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति राजनैतिक क्रियाकलापों के द्वारा अधिक देखने को मिलती है। इसलिए राज्य तथा व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों, राजनैतिक घटनाक्रमों और उनसे पड़ने वाले प्रभावों, राजनैतिक संगठनों व संस्थाओं के क्रियाकलापों इत्यादि का अध्ययन राजनैतिक चेतना के अन्तर्गत किया जाता है। राजनैतिक शब्द राजपूर्वक 'नीति' शब्द से गुणवाचक तद्धित प्रत्यय 'इक' के योग से बनता है।[77] भारतीय–शास्त्रीय दृष्टि के अनुसार राजपूर्वक 'नीति' शब्द से 'क' प्रत्यय जुड़कर 'राजनीतिक' शब्द निष्पन्न होता है।[78] राज अर्थात् राजा, प्रशासक या प्रशासन तथा नीति अर्थात् उपाय, योजना, कूटयुक्ति, व्यवहार, चाल–चलन, प्रबन्ध, निर्देशन, औचित्य, शालीनता इत्यादि। इस प्रकार राजा या प्रशासन द्वारा निर्धारित नियम, निर्देशन, दिग्दर्शन, कार्यक्रम, योजना, व्यवहार आदि को 'राजनीति' की संज्ञा दी जा सकती है और इस राजनीति सम्बन्धी ज्ञान को राजनैतिक ज्ञान कहा जाता है।

राजनैतिक के अंग्रेजी समानार्थक शब्द 'Political' का अर्थ है– 'of relating to or engaged politic अथवा belonging to or forming part of a civil administration.'[79]

इर्विंग होव अपनी पुस्तक 'राजनीति और उपन्यास' में लिखते हैं कि "राजनैतिक उपन्यास मैं उस उपन्यास को समझता हूँ जिसमें राजनैतिक विचार प्रमुख भूमिका निभाते हैं या जिनमें युग–वातावरण मुख्य निर्धारक शक्ति है।"[80]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी राजनीतिक चेतना और आधुनिक चेतना में सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहते हैं कि "आधुनिक चेतना परिवर्तन में विश्वास रखती है और वर्तमान काल में इस परिवर्तन को लाने में राजनैतिक दृष्टि इससे रहित हो ही नहीं सकती। उनका मानना है कि "एक सजग आधुनिक लेखक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह इस बात की जानकारी भी रखता हो कि उसके समय कि राजनैतिक गतिविधियों तथा तत्सम्बन्धी चिन्तन में कौन–सा पक्ष ऐसा है जो समाज के वृहत्तर हित की रक्षा करने में तथा उसको गति देने में सहायक हो सकता है। अर्थात् सच्चा राजनैतिक बोध राजनीति के सामाजिक आधार और उसके विकास की सही दिशा की पहचान का ही नाम है। चूँकि एक बड़ा लेखक समाज के पिछड़े हुए और दलित हिस्से के प्रति सच्ची रागात्मक सहानुभूति भी रखता है।"[81]

राजनैतिक चेतना का समाज, संस्कृति तथा साहित्य से बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। राजनैतिक हलचलों ने लोकजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। राजनैतिक चुनाव और दलगत राजनीति ने व्यक्ति–व्यक्ति को टुकड़ों में बाँट दिया है। राजनैतिक दलों के निरंकुश नेतृत्व और अनुशासनहीन शक्ति–प्रदर्शन के साथ निकृष्ट स्वार्थपरता की धुन्ध में सारे आदर्श तिरोहित हो गये हैं। परिणामस्वरूप चारों ओर छल–छद्म और अपना उल्लू सीधा करने के लिए कुछ भी करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। समूचे परिवेश के साथ ही लोकजीवन में साम्प्रदायिक विद्वेष, जातिगत–भेदभाव, भ्रष्टाचार इत्यादि का कारण राजनैतिक स्वार्थ ही है। लोकतन्त्र का उदय भारत देश के लिए नया सवेरा लेकर उपस्थित हुआ था किन्तु राजनैतिक चेतना के अभाव में आज लोकतन्त्र भी हमें घुटनभरा महसूस हो रहा है जिसका प्रभावी उपाय राजनैतिक चेतनापरक साहित्य का सृजन और अनुशीलन हो सकता है। हिन्दी–सृजनकारों की लेखनी से निःसृत राजनैतिक चेतनामूलक साहित्य की समृद्ध परम्परा रही है। समकालीन राजनैतिक घटनाक्रमों ने हिन्दी–लेखन को निश्चित ही प्रभावित किया है। वर्तमान समय की सर्वाधिक चर्चित और प्रख्यात कथाकार नासिरा शर्मा की रचनाएँ भी इससे अछूती नहीं हैं। नासिरा जी ने बड़ी ही मुखरता के साथ राजनीति और राजनेताओं के आचरण और आमजीवन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों का वर्णन अपनी रचनाओं में नाना–नाना सन्दर्भों में किया है। इसका स्पष्ट रूप हमें उनके उपन्यास–साहित्य में देखने को मिलता है। लेखिका ने अपनी लेखनी से पाठकों को समझाया है कि वर्तमान परिस्थितियों में राजनीति ने अपने नये रंग दिखलाये हैं। यह सामाजिक हित सम्बन्धी अपने दायित्व को पीछे छोड़कर स्वार्थांधवृत्ति को लेकर अपना कारवाँ बढ़ाती चली जा रही है। अपनी सफलता को हासिल करने के लिए बँटवारे के नासूर को खुरदने का काम करके साम्प्रदायिक विद्वेष का विषैला जहर लोकजीवन में घोल रही है।

नासिरा शर्मा का उपन्यास **'जिन्दा मुहावरे'** की पृष्ठभूमि बँटवारे के बाद का भारत–पाक समाज है। इसमें लेखिका ने पाठकों को इस सच्चाई व हकीकत से रूबरू करवाया है कि आज दोनों देशों में रहने वाली अधेड़ और जवान होती पीढ़ियाँ बँटवारे जैसी ऐतिहासिक हकीकत की चश्मदीद गवाह नहीं है, मगर उस फसाद की तपिश हमेशा हाथ जलाती आयी है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र निज़ाम है जो भारत–पाक बँटवारे के समय परिवारजनों के लाख समझाने पर भी भारत देश को छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है। इस आशा और स्वप्न लिए कि– "जहाँ जात है अब वही हमार वतन कह लइहे। नया ही सही अपना तो होइए। जहाँ रोज–रोज ओंकी खुद्दारी को कोई ललकारीये तो नाही। कोई ओके गरिबान पर हाथ डाले की जुर्रत तो न करि है।"[82]

जब निज़ाम नहीं मानता है और पाकिस्तान को अपना मुल्क कहता है तब उसकी भावज उसे समझाती है कि जानवर भी अपने घर से लगाव रखते हैं, वह तो इन्सान है। वह कहती है

कि– "जाओ भैया, तुम्हे बहुत गुमान है न, मगर याद रखो कि एक दिन बिलाई भी सूँघत–सूँघत अपने पुराने ठिकाने को लौटत है, चाहे बोरा में भर कोसों दूर छोड़ के आओ, तुम तो भला इन्सान ठहरे।"[83]

भारत–पाक बँटवारे ने किस कदर इन्सान को इन्सान से दूर कर दिया कि वे एक साथ उठने–बैठने से भी डरते हैं आपसी रिश्ते–नाते तो बहुत दूर की बात है। जब निजाम एक लम्बे अरसे बाद अपने मूल वतन भारत लौटता है तब वह अपने बेटे अख़्तर के लिए फैजाबाद में सैफ़उल्लाह के सामने उनकी लड़की का हाथ माँगता है तब सैफ़उल्लाह एकाएक सिर उठाकर सबीहा और निज़ाम से कहते हैं कि "आप इस शहर की हालत देख रहे हैं? ऐसी हालत में अपनी लड़की का हाथ कैसे किसी पाकिस्तानी लड़के के हाथ में थमा दूँ। पहले के लगाये दाग़ धोते–धोते चालीस–पैंतालीस साल गुजर गए और अब फिर वहीं बात.....। रिश्ते टूट चुके हैं, मियाँ,..........रिश्तों को अब कोई नहीं पहचानता। जब वह नई बात थी, तो दिल को मसलती थी। एक चने की दो दाल, आज हम दो दरख़्तों में बदल चुके हैं। हमारा माहौल, हमारी सोच, हमारी चुनौतियाँ, सब एक दूसरे से जुदा हैं.......।"[84]

इस सम्बन्ध में लेखिका स्वयं कहती हैं कि "सियासी नेताओं के व्यक्तिगत आकांक्षाओं और नफ़े नुकसान के हाथों अंजाम पाया गुनाह सिर्फ उनके जीवन तक सीमित नहीं रह जाता है बल्कि पूरी क़ौम सहती, सारा मुल्क झेलता और नई आने वाली नस्लें भी आरोपों के घेरे में फँसी सदियों तक तड़पती हैं। एक अमूर्त कसैलापन उनकी सोच का हिस्सा बन इन्सानी रिश्तों पर ज़हर बन बरसता है और इन्सानी गरिमा छीन जीने का सारा मज़ा सोख लेता है।........मेरी कोशिश इस उपन्यास के जरिए सिर्फ इतनी है कि मैं 'जिन्दा मुहावरे' के पाठकों को उस सेतु पर लाकर खड़ा कर सकूँ जो एक इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है।"[85]

'अक्षयवट' उपन्यास में लेखिका ने ज़हीर और दोस्तों के माध्यम से 'व्यवस्था और आम आदमी का संघर्ष' दिखलाया है। यह संघर्ष उस व्यवस्था का विरोध करता है जो कि स्वतन्त्रता के बाद बनायी तो आम आदमी के लिए है परन्तु चंद व्यवस्था के ठेकेदार उसका गलत इस्तेमाल कर जनसामान्य का जीना दूभर कर देते हैं। उपन्यास में लेखिका जिस तरह से भ्रष्ट पुलिस तन्त्र का पर्दाफाश करती है, उससे लगता है कि उनका अनुभव काफी गहराई लिये हुए हैं। ज़हीर के माध्यम से लेखिका पुलिस महकमे के चरित्र को उद्घाटित करती हुई लिखती हैं कि "अपहरणकर्ता, बलात्कारी, डाकाजनी, दंगा–फसाद, जिस्मफरोशी, नशाबाजी में या तो इनका हाथ होता है या फिर यह सीधे यह सब खुद करवाते हैं। यह भारतीय पुलिस है। स्वतन्त्र भारत की, भारत महान् की! सो हर मामले में आजाद और घमण्डी। बिक यह आसानी से जाती है। खरीदी

यह आसानी से जाती है। मौके पर यह चुप रह जाती है। कत्ल गारतगरी यह करती है। हर आफत से यह बच जाती है। फलती–फूलती यह है। इसका तो कोई सानी नहीं है इस दुनिया में. ....यह लोगों के लिए नहीं बल्कि लोग इनकी खुशहाली के लिए पैदा किये गये हैं।"[86]

आज किसी भी देश की शासन व्यवस्था को उठाकर देख लें, आम–जन की समस्याओं, मूलभूत सुख–सुविधाओं से उसका कोई लेना–देना नहीं है। केवल चुनावों के समय सामान्यजन याद आता है, जिसे लोक–लुभावन नारों–वादों के द्वारा बहला–फुसला दिया जाता है। इसी सत्य को उजागर करता हुआ मास्टरजी का यह चिन्तन बहुत ही सटीक बैठता है– "इराक युद्ध के लिए अमेरिकी कांग्रेस ने राष्ट्रपति बुश को बिना देर किए 75 अरब डॉलर देने की घोषणा कर दी; मगर ऐसी कोई तत्काल घोषणा उसने जल–समस्या पर नहीं की और ऐसा ही हाल हमारे अपने देश का है। यहाँ पर जन–मानस से जुड़ी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जगह परमाणु बम निर्माण और परीक्षण पर धन खर्च करना उसे ज्यादा तर्कसंगत लगता है। **सबसे ज्यादा खतरनाक मुद्दा जो आज हमारे सामने है, वह है समस्या के हल का निजी क्षेत्र में देखा जाना, जिससे निजी क्षेत्र अपने मुनाफे की बात कर सके।"[87]**

आज लोकतन्त्र का रूप पूर्णतः विकृत हो चुका है। नैतिक मूल्यों के ह्रास के कारण राजनीति में भी दिनों–दिन गिरावट आती जा रही है। आज राजनीति ही देश व समाज के लिए घातक सिद्ध हो रही है। लोकतन्त्र का मूलाधार निष्पक्ष चुनाव माना गया है लेकिन दूरदर्शी नेतृत्व और वोट की राजनीति ने देश को दिशाहीनता की ओर धकेल दिया है। आज चुनाव समाजसेवा हेतु नहीं लड़े जाते हैं अपितु भ्रष्टाचार, गुंडागिर्दी पर आधारित शुद्ध व्यवसाय का साधन बन गया है। ऊपर से लेकर नीचे तक इस विकृत मानसिकता का प्रभाव देखने को मिल रहा है। अपनी नासमझी, अशिक्षा, जागरूकता के अभाव इत्यादि के कारण गाँव सर्वाधिक प्रभावित हैं। लोगों का आपसी सौहार्द्ध, प्रेम, समरसता, मेलजोल न जाने कहाँ खो से गये हैं।

लेखिका के 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में गाँव के चुनाव का वर्णन आया है। महरुख़ जब घर पर काम करने वाली लछमिनिया को चुनाव के बाद गाँव में जरूर बदलाव आने की बात कहती है तब लछमिनिया महरुख़ से कहती है, "ई जमाना में कोउ भलामानुस नहीं है। जइसे सांपनाथ बइसे नागनाथ। कहत तो रहे गनपत काका कि ई मान–मनौवल तो बस समझो बोट वाले दिन तक है, फिर हम लोगन का ना सियाराम दाऊ, ना गनारामऊ पहचानिहे। तब लगिहे वही कुकुर वाली धुतकार और पीठ पर खुले आकास की धाम।"[88]

आज चुनाव की राजनीति इतनी गंदी हो चुकी है जिसके कारण प्रत्येक संस्था तहस–नहस हो चुकी है। व्यक्तिगत जीवन हो, चाहे सार्वजनिक, घर हो या समाज, जल, जमीन

या शिक्षा हो, चाहे राष्ट्रीय या वैश्विक मुद्दा, सबका राजनीतिकरण हो चुका है। **आज गाँव के एक छोटे स्कूल से लेकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के उच्च शैक्षिक प्रतिष्ठान, सर्वत्र राजनीति की कुदृष्टि पड़ी हुई है। संस्थानों में पढ़ने वाले विद्यार्थी हों, चाहे कार्यरत कार्मिक व शिक्षक सब राजनैतिक कदाचार के शिकार है, विबस हैं। इस कारण सभी शैक्षणिक संस्थान मूल उद्देश्य से भटक से गये हैं।** अपने 'अक्षयवट' उपन्यास में इस स्थिति का विद्यार्थियों के पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा जीवन्त वर्णन करते हुए लिखती हैं कि "विश्वविद्यालय परिसर बिलकुल बदल गया था। चुनाव की गहमागहमी ने मेले का दृश्य उत्पन्न कर दिया था। अपने दल–बल के साथ उम्मीदवार हॉस्टलों के कमरों में जा–जाकर वोट माँग रहे थे।.....इत्र बसा कार्ड और परचा बँट रहा है। बहस, भाषण, तू–तू मैं–मैं सभी तरह के रस देखने को मिल रहे थे। जिन लड़कों को दिलचस्पी नहीं थी वह दूर बैठे बिना पैसे का तमाशा देखकर मजा ले रहे थे।.........इस बार कुछ राजनीतिक पार्टियाँ भी बढ़–चढ़कर इस चुनाव में हिस्सा ले रही हैं। ढेरों पैसा दिया गया है तभी जीपें और कारें दौड़ रही हैं।" एक ने चिन्तित स्वर में कहा।

"मगर यार, यह हो बुरा रहा है। इससे परिसर का वातावरण दूषित हो उठेगा।" दूसरा गम्भीर स्वर में बोला..........। 'तुम ठीक कह रह हो। अगर यहाँ देश की राजनैतिक पार्टियों का प्रभाव बढ़ा तो समझो दंगे–फसाद और जाने क्या–क्या नहीं होंगे।' चौथा अफसोस से बोला।

"अब यह यूनियन चुनाव है जो पिछले एक माह से क्लासेस बायकाट किये हुए हैं, मगर मैं रोज आता हूँ इस उम्मीद में कि शायद कोई टीचर दिख जाए। क्लास हो जाए! जहीर ने माथे के बाल हाथ से हटाते हुए कहा।"[89] यह वार्तालाप पाठकों को साफ–साफ समझा देता है कि यदि राजनीतिकरण इस तरह ही बढ़ता गया तो निश्चित ही आने वाला समय अंधकारमय है।

'सात नदियाँ एक समंदर' लेखिका द्वारा ईरान की क्रांति पर लिखा गया उपन्यास है। इसमें लेखिका ने पाठकों को समझाया है कि सत्ता जब भी निरंकुश व तानाशाही रूप लेकर आती है तब उसके दमनचक्र में फँसकर इंसानियत मारी जाती है। और जब धार्मिक कट्टरता उसका सहारा भी बन जाती है तो आम–नागरिक अपनी प्रगतिशील सोच को लेकर पिंजरे में बन्द पंछी की तरह फड़फड़ाकर दम तोड़ देता है। उद्योग–धन्धे, कल–कारखाने, कम्पनी बन्द होकर जाती है। कर्मचारी बेरोजगार होकर सड़क पर आ जाते हैं। ऐसा ही हुआ शाह शासन के खिलाफ क्रांति और खुमैनी साम्राज्य की स्थापना हेतु हुई ईरानी क्रांति के दौरान। "तेहरान के ज़्यादातर इलाक़ों में सत्ता–विरोधी गुटों पर निगाह रखने के लिए सड़क पर नुकीले स्पीड–ब्रेकर दूर तक बना दिए गए थे।........सुरक्षा के नाम पर इन कठिनाईयों को सहने की आदत भी डालनी थी। बड़े–बड़े ख़ाली घरों की क़तारें पूरे ईरान में थी। अपने घर और वतन को छोड़कर शाही अनुयायी भाग गए थे। उन पर कुछ मौलवियों और सत्ताधारियों ने क़ब्ज़ा कर लिया था।"[90]

"ख़ूज़िस्तान का नाम पिछले दो वर्षों से ख़ूनीन शहर पड़ गया था और आज उसी ख़ूनीन शहर में घमासान लड़ाई हो रही है। जहाँ तक नज़र उठाओ लाशें–ही–लाशें बिखरी हैं। इराक़ी–ईरानी एक–दूसरे से गुँथे उलटे–सीधे मुरदा पड़े हैं।"[91]

'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में भी लेखिका ने यही सब चित्रित किया है। अमेरिकी शांति सेनाओं ने सम्पूर्ण इराक़ को नेस्तनाबूत कर दिया। विदेशी आक्रमणकारियों की प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष निगरानी में साँस लेते नागरिक, छोटी–से–छोटी चीज़ को तरसते और उसके लिए विरासतों–धरोहरों–यादगारों को बाज़ार में बेचने को मजबूर होते लोग; जिन्दगी बचाने के लिए सब कुछ दाँव पर लगाती औरतें–ऐसी अनेक स्थितियों–मनःस्थितियों को साकार कर लेखिका ने राजनीति व प्रशासन के क्रूर चेहरे को पाठकों के समक्ष रखा है। "सभ्य कहे जाने वाले आधुनिक विश्व में विध्वंस का यह यथार्थ स्तब्ध कर देता है। विध्वंस की इस राजनीति में क्या–क्या नष्ट होता है, इसे नासिरा शर्मा की बेजोड़ रचनात्मक सामर्थ्य ने 'अजनबी जज़ीरा' में अभिव्यक्त किया है।"[92]

समीरा की ज़बान से इस खौफनाक स्थिति को बयां करवाती हुई नासिरा जी लिखती हैं– "युद्धग्रस्त समाज की कठिनाईयाँ कितनी नई परेशानियों से हमारा परिचय कराती हैं तब पेट के आगे अपना बदन बेचना, यहाँ तक कि अपने बच्चों तक को बेचना मुश्किल काम नहीं लगता बल्कि मौत को नजदीक पाकर जीने की तमन्ना ज्यादा बढ़ जाती है, मुझे ही देखो, जवान बेटियों की भूख के आगे मैं अपनी भूख को दबा नहीं पाती।"[93]...... "जिस्मफ़रोशी से मुझे हालात ने महफूज़ रखा वरना वह भी मुझे करना पड़ता.......हालात अच्छाई और बुराई के मायने बदलकर रख देते हैं.......पेट भरे लोगों के लिए उँगली उठाना कितना आसान होता है मगर भूखे के लिए रोटी हर फ़लसफे से बढ़कर अहम हो उठती है।"[94]

अपने 'ज़ीरो रोड़' उपन्यास में लेखिका ने भारत के राजनैतिक–सांस्कृतिक विवेचन के साथ ही साथ मध्यपूर्वी एशिया एवं यूरोप की राजनीति का विवेचन किया है। डॉ. सुधा सिंह के अनुसार "मूल चीज यह है कि यह एक स्त्री उपन्यासकार का राजनैतिक उपन्यास है।......... राजनीति और राजनीतिक विमर्श इस उपन्यास के केन्द्र में है। इसमें राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति भी बहुत गंभीरता के साथ विवेचित है।"[95]

टी. घनश्याम अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि "जीरो रोड़ उपन्यास के सभी पात्र केरल के रामचन्द्रन, श्रीलंका के श्रीनिवासन, ईरान के फिरोज मिखची, बांग्लादेशी सुदर्शन घोष, सूरत के डॉ. शाहआलम, पाकिस्तानी बरकत उस्मान, लतीफ फराम, दुबई का रमेश शुक्ला, लेबनानी ईमाद, अफ़गानिस्तान का गुलफाम आफ़रीदी, मोरक्कुन नबीला सभी अपने घरों से उखड़े हुए लोग हैं।

इन्हें किसी न किसी तरह के हादसे का शिकार होकर दुबई आना पड़ा है। इसमें से कई सीधे उत्पीड़ित हैं तो कई ऐसी जाति, धर्म या समुदाय से संबंधित है जो फासीवादी उत्पीड़न झेल रहे हैं। इसमें एक पात्र भी राजनीति से सीधा जुड़ा नहीं है पर सबके राजनैतिक सरोकार हैं। वे राजनीति पर सबसे ज्यादा बहस करते हैं क्योंकि राजनीति ने उनकी दुनिया के निजत्व को खत्म किया है। उपन्यास में इन पात्रों के माध्यम से राजनीति की विवेचना की गई है।"[96]

डॉ. शाह आलम मित्रों को बताते हैं कि "मैं सूरत से हूँ। मेरा खानदान बुनकरों का था।.... .अभी मैं पढ़ ही रहा था कि सूरत में भयानक घटना घटी, जैसी अभी कुछ माह पहले मालेगाँव में घटी। हमारा खान–दान तबाह हो गया। छोटी बहन को दंगाई उठा ले गये। माँ–बाप भाई मारे गये।..........ये कहना फजूल है कि मेरा खानदान तबाह हुआ। मेरा घर ज़मीन दोज हुआ क्योंकि अकेले मेरा नहीं, मेरे साथ लाखों लोगों का सब कुछ तबाह हो गया।"[97]

इस प्रकार इस उपन्यास में देश की राजनीति एवं विश्व राजनीति के पॉवर गेम में पिसते आदमी के जीवन का मार्मिक चित्रण विभिन्न पात्रों के मुँह से बयां करवाया है।

स्पष्ट है कि नासिरा शर्मा एक संवेदनासम्पन्न एवं मार्मिक कथाकार है। उनकी औपन्यासिक रचनाओं में उन्होंने एक आम इन्सान की नज़र से राजनीति के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश डाला है। साथ ही स्पष्ट किया है कि वर्तमान दौर में राजनीति गलत रास्ते पर चल पड़ी है। इसके द्वारा इनसानियत को रौंदा और कुचला जा रहा है। मानवता शर्मसार हो रही है। आज स्वच्छ राजनीति नदारद है। वह रास्ते से कहीं भटक सी गई है। दुनिया के किसी भी देश को उठाकर देखें तो पायेंगे कि आम इन्सान का जीवन पूरी तरह राजनीति के पराधीन हो चुका है। साथ ही संदेश भी छोड़ा है कि पाठक इस विषय में सोचे, चिन्तन करें और आगे बढ़ें।

4. सामाजिक चेतना

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होता है। अतः कोई भी लेखक, साहित्यकार, कथाकार अथवा कवि प्रथमतः व्यक्ति होने के नाते समाज का ही एक अंग होता है। समाज की एक इकाई या घटक के रूप में लेखक दिन–रात जो कुछ भी जीता है, अनुभूत करता है, वह सब उस संवेदनशील हृदय–गह्वर में प्रवेश कर साहित्य के रूप में प्रस्फुटित हो उठता है। युग परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन का वह साक्षी होता है। इसी बदलाव का सच हमें समकालीन साहित्य में देखने को मिलता है। नासिरा शर्मा जी का साहित्य भी समकालीन समाज तथा उसके अन्तर्मन को मुखरता के साथ अभिव्यक्त करता है। उनकी औपन्यासिक कृतियों के अध्ययन करते समय पाठक स्वयं उस परिवेश में खो सा जाता है। लेखिका ने हिन्दू–मुसलमान दोनों समाज के वास्तविक स्वरूप, सोच व मन्तव्य को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है तथा पाठक को यह सोचने

पर मजबूर कर दिया है कि आप और हम जो सुनते हैं, समझते है या मानते हैं, सच उससे अलग भी हो सकता है।

आज के दौर में नई पीढ़ी ज्यादातर भटकाव का शिकार है। पश्चिम के प्रभाव से वह अपने मूल संस्कारों से दूर होती जा रही है। उसके आचार–विचार, पहनावा, खान–पान, उठने–बैठने का ढंग दिखावे की प्रवृत्ति का शिकार हो चली है। नववर्ष के आयोजन को ले या किसी और आयोजन व त्योहार को, सभी के मनाने के तरीके व मायने बदल गये हैं। आज की पीढ़ी पूर्णतः उन्मुक्त व स्वच्छन्द विचरण कर रही है। उसमें आत्मबोध की न्यूनता दृष्टिगोचर हो रही है। इसी की ओर संकेत करती हुई नासिरा जी अपने उपन्यास 'अक्षयवट' में आंग्ल नववर्ष के समय उपस्थित एक दृश्य का जहीर की नजर से वर्णन करती हुई लिखती है कि "इन सारी रंगीनियों को देखने जहीर और मित्र मण्डली भी पहुँची हुई थी। वे सब जवान थे, मगर इन नवजवानों को देखकर, जो पन्द्रह से बीस तक की उम्र के थे वे अपने को बुजुर्ग महसूस कर रहे थे। इस बीच समय किस तेजी से बदला है, इसका अन्दाजा उन्हें आज हो रहा था कि हर लड़की–लड़के का कोई न कोई ब्वॉयफ्रेण्ड और गर्लफ्रेण्ड था, जिसके साथ वह नये आने वाले वर्ष का सपना देख रहे थे। इनमें से जाने कितने जोड़े विवाह मण्डप तक पहुँचे और कितनों कि मित्रता साल के मध्य तक जाते–जाते टूट गयी। सम्बन्धों का इतनी जल्दी खिलना और उतनी ही शीघ्रता से कुम्हला जाना शायद ही आज का यथार्थ है?.......वहाँ आये सभी लड़के–लड़कियों ने अच्छे कपड़े पहन रखे थे। कुछ जवान लड़कियों ने ऐसी पोशाकें पहन रखी थीं जिसको देखकर यह गुमान हो रहा था कि यह दिसम्बर माह की सर्द रात नहीं बल्कि जून माह की गर्म दोपहर है. ....।"[98]

साथ ही लेखिका ने यह भी समझाया है कि इस भटकाव की शिकार नई पीढ़ी को यदि माँ–बाप चाहें तो सही और गलत के मायने समझाकर, अच्छे संस्कार देकर पुनः रास्ते पर ला सकते हैं। पर इसके लिए बड़े–बुजुर्गों को चाहिए कि वे अपनी औलादों के सामने आदर्श बनकर खड़े हों। जैसे 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में महजबीं अपनी बेटी महलक़ा को समझाती हुई कहती है– "मैंने तुम्हें कई बातों में ग़लत मशविरे दिए, वह मेरी ममता की खुदगर्ज़ी थी। अब मेरी आँखें खुल चुकी हैं। जैसे मैंने अपनी ग़लती मान ली है, अब तुम भी मान लो और तौबा करो। तौबा का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। उस नेक बंदे को जो तुम्हारे शौहर का बाप है उसकी ख़िदमत कर अपना कफ़्फ़ारा अदा करो वरना मैं तुम्हें दूध बख़्शने वाली नहीं हूँ, यह मेरा आख़िरी फ़ैसला है।"[99]

आज सामाजिक ताना–बाना टूटता जा रहा है। इसका एक कारण बाजारवाद व भौतिकवाद है। सारे–रिश्ते–नाते स्वार्थपरक होते जा रहे हैं। परिवार में जो कमाता है उसके साथ

सारे लोग चिपके रहते हैं। इस प्रकार के अर्थ–प्रधान समाज का चेहरा हमारे सामने रखते हुए नासिरा जी लिखती हैं कि "इस शहर को बाज़ार ने बिगाड़ा है और बाज़ार आया कहाँ से? बात सिर्फ़ पैसे की है। हमारा इलाका पैसे का लालची हो चुका है। बाहर का आया पैसा जो मर्दों के खून–पसीने की कमाई है, उनकी कुर्बानी और तन्हाई का निचोड़ है। वह अपनी जगह से चल हमारे बैंकों में जब पहुँचता है तो कभी दुगना तो कभी चौगुना हो जाता है। उस मेहनतकश इनसान के कुनबे वाले उससे सिर्फ़ पेट नहीं भरते हैं बल्कि अय्याशी में लग गए हैं। गुलछर्रे उड़ाते हैं। इस पैसे ने हमारे रिश्तों में दरारें डाल दी हैं। माँ हो या बाप, भाई हो या बहन, सास हो या ससुर, नंद हो या फूफी, सब सोने के अंडे देने वाली मुर्गी को अपना बनाकर रखना चाहते हैं, कोई लुतेरेपन से तो कोई भुस में चिंगी डालकर तो कोई शैतानी अमल करवाकर। और मारा जाता है वह इनसान जो रात–दिन मेहनत करता है अपने खानदान के लिए ताकि सारे लोग घर के पढ़ सकें, साफ़–सुथरे घर में रह सकें। माँ का इलाज हो सकें, बाप की आँख खुल सके, बहन की डोली उठ सके और रहन पड़ी ज़मीन छूट सके...... ।"[100]

लेखिका ने मलक़ानूर के चरित्र के माध्यम से पाठकों को यह भी समझाया है कि समाज में पीढ़ीगत अन्तराल व सोच में परस्पर तालमेल बिठाना अत्यावश्यक है। नौजवान पीढ़ी नई सोच व ज़ज्बात लिए आगे बढ़ रही है और बुजुर्ग लोग पुरानी रीतियों व मर्यादाओं का हवाला देते हुए उन्हें बाँधना चाहते हैं। यहाँ चाहिए कि दोनों को एक–दूसरे के ज़ज्बातों, समय की जरुरतों व मर्यादाओं को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना होगा। नहीं तो मलकानूर की तरह परिवार नष्ट होते चले जायेंगे और हम एक–दूसरे को, समकालीन परिस्थितियों को दोष देते हर जायेंगे। पीढ़ीगत सोच को उजागर करती हुई लेखिका मलकानूर से कहलवाती है कि "हम नौ कक्षा पास हैं, अंग्रेजी मीडियम स्कूल में पढ़े और शादी यहां कर दी जहां कोई कुछ नहीं समझता।....छत की सीढ़ी वाले दरवाज़े में ताला डाल दिया। बाहर निकल ही नहीं पाती थी। छत पर भी जाना बंद हो गया। घर फ़ोन पर मां से बताया तो वह सास से बात करने के उलटे हमें समझाने लगीं। मायके जाने को कहा तो इनकार। इनका फ़ोन आया तो बोले, हमारे मां–बाप की बात मानो। हमारा दुःख सुनने का किसी के पास टाइम न था। बच्चे को हमसे दूर रखती थीं। इस सबके बाद हम उस घर में रहकर क्या करते? शादी से पहले तय हुआ था हम आगे पढ़ाई जारी रखेंगे मगर अब कहते हैं हमें कुछ भी याद नहीं।...........देखा, कैसा घुटा–घुटा घर है? कमरे की खिड़की जो गली की तरफ खुलती थी उसे चुनवा दिया। गर्मी और हब्स से बच्चा सारी रात रोता था तो भी हमें बातें सुनातीं–बच्चा पालना नहीं जानती, मायके वालों ने वायदा किया था कि मोटर साईकिल के साथ नक़द लाख रुपया देंगे मगर अस्सी हज़ार देकर कुड़क मुर्गी हो गए।"[101]

समाज में भ्रष्टाचार इस कदर बढ़ गया है कि मानो वह मानव–जीवन का हिस्सा हो। किसी भी महकमें की गिरेबां में झांक कर देखो, सबका हाल–बेहाल है। बिना जान–पहचान और मुट्ठी गर्म किये किसी भी कार्य का करवाना बहुत कठिन है। इसमें पुलिस महकमा तो बेहद बदनाम है। 'सात नदियाँ एक समंदर', 'अजनबी ज़ज़ीरा', 'ज़ीरो रोड़', 'अक्षयवट', इन सभी उपन्यासों में बड़ी मुखरता के साथ इस यथार्थ को लेखिका ने उजागर किया है। देश की सीमा पार कराना हो, बीजा बनवाना हो, नौकरी दिलवानी हो या कोई भी काम निकलवाना हो तो पैसे सबसे महत्त्वपूर्ण साधन दर्शाया गया है। सिपाही रामस्वरूप अपने पट्टीदारी के विवाद से तंग आकर अपने साथी बलवीर से कहता है– "पुलिस की जात तो तुम जानत हो, दरोगा हरपाल सिंह बड़ा हरामी है। खाये–पिये के आगे ओका कुछ औस सूझत नाही है। ठाकुर का लौण्डा बोतल–वोतल देय–दिलाय के और मुट्ठी गर्म कर सच्चाई दबाय दीस,.....पुलिस के मोहकमा में आये के, जानो आँख खुल गयी। सब समझ के भी हाथ कटवाये का पड़त है। अब का बोलें?"[102]

आज गाँवों से शहरों की ओर पलायन होने के कारण समाज अनेक प्रकार की समस्याओं का शिकार होता जा रहा है। युवकों के काम–धन्धे की तलाश में शहर व परदेश में लम्बे समय के लिए चले जाने के कारण पीछे रह जाते हैं असहाय व बूढ़े मां–बाप, अबोध व अजन्मे बच्चे, और अनेक बंदिशों व विरह वेदना से पीड़ित पत्नी। इस कारण परस्पर विश्वास, प्रेम, त्याग, सेवा, मेलजोल इत्यादि शुष्क होते चले जाते हैं। 'कागज़ की नाव' के जहूर मियाँ व मलक़ानूर हो, चाहे 'जीरो रोड' का सिद्धार्थ सभी इस समस्या से त्रस्त हैं। लगभग यही रिश्तों की दूरी का जीते–जागते उदाहरण हैं, शाल्मली की 'शाल्मली', ठीकरे की मंगनी की 'महरुख़' और पारिजात का 'रोहन'।

पर अनेक समस्याओं के बावजूद भी लेखिका ने पाठकों को समझाया है कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्ताँ हमारा'। निज़ाम बँटवारे के बाद पाकिस्तान चला गया और अपनी मेहनत के बाद बड़ा अमीर आदमी बनता है, घर परिवार बसाता है और मौज से रहता है पर जब वह लम्बे अरसे बाद अपने मूल वतन भारत लौटता है और अपने भतीजे की जीवन–शैली को देखता है, तो वह कुंठित सा हो जाता है और पछताते हुए कहता है "पछतावा.....बहुत पछतावा हो रहा है, बेटे! तुम से क्या छिपाना। कुछ मज़ा नहीं आया ज़िन्दगी में सब कुछ पाकर भी। क्या खोया, यह आज समझ में आया। आज तक हिन्दू–मुसलमान फसाद की खबरें तो पाकिस्तान में पहुँचती रही थीं, मगर यह इत्तला वहाँ नहीं पहुँची थी कि एक मुसलमान अफसर के नीचे हजारों मातहत हिन्दू भी हो सकते हैं और..........दंगे–फसाद से मारे जाने के बाद भी इस मुल्क में उनकी खुशहाली पिछले चालीस वर्षों में पनप उठी है, जो बहुत कुछ न कहकर थी बहुत कुछ बताती है कि असलियत वह नहीं, जो बताई है, बल्कि सच्चाई वह है, जो नज़र आ रही है।"[103]

समाज में शांति, सदाचार, समानता तथा मानवता की रक्षा के लिए हमें सदा तत्पर रहना चाहिए। नर की सेवा ही नारायण की सेवा है। जरुरतमन्दों, गरीबों, दीन–दुःखियों, अनाथों व असहायों की सेवा ही ईश्वर या अल्लाह की सच्ची सेवा है, पूजा है। सुधी पाठकों को यह समझाने के लिए अपने उपन्यासों में अक्षयवट के ज़हीर कुइयाँजान के कमाल काग़ज़ की नाव के रमज़ान और दूसरी जन्नत की रुख़साना सरीखे पात्र लेखिका ने रचे हैं। ज़हीर 'मुस्कान' संस्था के द्वारा अनाथ बच्चों की सेवा, पालन–पोषण, शिक्षा आदि की व्यवस्था कर, कुइयाँजान के कमाल कच्ची बस्तियों में जा–जाकर जरुरत मन्दों को निःशुल्क दवाई, खाने की वस्तुऐं, कपड़े आदि की व्यवस्था कर तथा रमज़ान असहायों की सहायता कर मानवता की रक्षा करने का संदेश देते हैं।

वहीं रुख़साना अपने चिकित्सकीय पेशे के द्वारा सन्तानहीन माँ–बाप के जीवन में खुशियाँ लाने का प्रयास करती है। लेखिका ने फ़रहाना और गुलज़ार की कहानी के द्वारा समाज के सामने अनेक प्रश्न उपस्थित कर सोचने को विवश किया है। मुस्लिम समाज में व्याप्त बुराईयों, स्त्री–पुरुष असमानता, इनसानी जिंदगी, धर्म और ज़रूरत के मध्य तालमेल बैठाना इन सब विषयों पर बहस करना आज समय की जरुरत है, यह बताया है। अतः लेखिका लिखती हैं कि **"लंबी बहस के बाद यह तय पाया कि हमको कमेटी बना आलिमों व मौलवियों से मिलकर इस बाबत दरख़्वास्त करनी चाहिए कि जब धर्म का दखल हम, इन्सानी जीवन में रोक नहीं सकते हैं और मेडिकल साइंस के बढ़ते कदम को भी नकार नहीं सकते हैं। ऐसी हालत में वह इस समस्या को औरत को नज़र में रखते हुए एक नया रास्ता निकालें ताकि औरतें सताई न जाएं।"**[104]

स्वातंत्र्योत्तर काल में समाज में जमीदार पद्धति का उन्मूलन हुआ और उसके स्थान पर पूँजीपति व्यवस्था पनप गई। शोषक का सिर्फ नाम बदला है। पूँजीपति, महाजन या साहूकार के शोषण से त्रस्त गाँवों में रहने वाला मजदूर, किसान व आम आदमी अपनी थोड़ी सी जमीन को भी अपने अधिकार में रखने में असमर्थ है। ठीकरे की मंगनी उपन्यास में इस शोषण की समस्या को उठाया गया है। महरुख़ जिस ग्रामीण इलाके में अध्यापन कराती है, वहाँ पर कृषकों, निम्न वर्गों व मजदूरों का शोषण होता हुआ दिखलाया है। महरुख़ गणपत काका और उसके परिवार को शोषण से मुक्त होने का मार्ग दिखलाती है तब जो संवाद होता है वह शोषण के स्वरूप को उजागर करने में काफी है। लेखिका कामता के मुख से कहलवाती है "देखो बड़की दीदी, अब गलत बात नाहीं सहनी....ठीक है, इस गांव का हर फैसला पक्के मकान वाले और पत्थर वाले लाला के घर तय होता है। मगर इसका यह मतलब नहीं है कि हम सब लोगन हथियार डाल के बैठ जाये। हमारी बात भला वह क्यों समझिए! वह तो हमें का करनी पड़िहे, अब कौनो चारा नाहीं है। एके सिवाय हम खुदय अपनी लड़ाई लड़ैं।"[105] तब गणपत काका कहते हैं कि "अत्याचारी का कौनो धर्म नाहीं होत बेटवा–ई राक्षस तो हम लोगन का निगले के वास्ते सदा रहिहैं।"[106]

समाज में धीरे–धीरे जन–जागृति व शिक्षा के प्रसार के परिणामस्वरूप जातिगत बंधन कुछ ढीले अवश्य हुए हैं। आपसी भेदभाव व छुआछूत कुछ कम हुआ है परन्तु अभी भी यह कलंक भारतीय समाज के माथे पर लगा हुआ है। कुछ राजकीय मजबूरीवश कहें या कुछ अन्तर्मन से इस कुरीति से स्वयं को मुक्त अवश्य मानते हैं परन्तु आज भी निम्न जातियों, गरीबों के साथ वही भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जा रहा है। विशेषकर गाँवों में आज भी पिछड़ी जातियों के लोगों के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता है। कुछ कथित ऊँची जाति के लोग भले ही राजकीय पदों पर प्रतिष्ठित हो गये हैं और दिखावे के लिए समानता का व्यवहार करते हैं परन्तु उनके मन का कीडा अभी मरा नहीं है। ऐसे लोगों की नजरों में निम्न जाति के लोग हेय हैं, उनके लिए कोई सम्मान नहीं है। आज भी गाँवों में आये दिन निम्न वर्गों की बहू–बेटियों, औरतों के साथ कदाचार हो रहे हैं, परन्तु कुछ ही मामले उजागर हो पाते हैं, अधिकांश मामले तो दबंगों द्वारा वहीं दबा दिये जाते हैं। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में हरिजन लड़की बिन्दो को अंधेरे में काशी अपने कमरे में घसीट ले गया था उसका वृत्तान्त इस प्रकार है– "घर लौटती बिन्दो को अंधेरे में काशी अपने कमरे में घसीट ले गया था। इसमें कौन–सी नई बात थी? हरिजनों पर यह जुल्म तो ढाया ही जाता रहा है। रो–धोकर, ग़म–ग़ुस्से को पीकर सब कुछ सह लिया जाता है, मगर नई बात जो हुई थी, वह यह थी कि बिन्दो के भाई ने काशी की आतें बाहर निकाल ली थीं और बिन्दो कुएं में समा गई थी।"[107] इस घटना के सम्बन्ध में जो सरकारी महकमे के सिपाही आपस में वार्तालाप करते हैं, वह बेहद शर्मनाक और वर्तमान समाज की हकीकत को बयां करता है। साथ ही संकेत करता है कि सरकारी स्तर पर भी इनके साथ कितना न्याय होता है? इसका विस्तृत विवरण दलित चेतना के अन्तर्गत दिया गया है।

समाज में धीरे–धीरे पेशेवर कारीगर, मजदूर, मिस्त्री, कलाकार अपने–अपने पुश्तैनी काम–धन्धों को छोड़कर रोजी रोटी की तलाश करते हुए दूसरे काम–धन्धे करने लगे हैं। जिसके कारण किसी कार्य को करने वाले पेशेवर दक्ष कामगारों का अभाव होता जा रहा है। 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में जब अमज़द अपनी बेटी महलक़ा के मकान की मरम्मत करवाने कारीगर की तलाश करते हैं और इसके लिए अपने दफ़्तर में पूर्व कार्यरत व सेवानिवृत सहायक कर्मचारी भोलानाथ जो आजकल ठेकेदारी करने लगा था, को फोन कर बुलाते हैं, तब वह कहता है कि "क्या बताएं सर जी, बड़ा बुरा हाल है। कारीगर अब कारीगर नहीं रहा, सब नौसिखिए हैं। न हाथ साफ़ है और न मन, बस दिहाड़ी चाहिए। जो पुराने एक–दो हैं वे बीमार होकर बाहर से लौटे हैं और मेरी तरह ठेकेदारी कर रहे हैं।"[108]

यही हाल 'कुईयाँजान' के कमाल को अपने मूल गाँव मुस्तफाबाद जाने पर पता चलता है। हातिम उसे मोहल्ले–दर–मोहल्ले घूमता हुआ गाँव की स्थिति को बयां करता हुआ कहता है

कि "जो सबसे अजीब बात उसे लगी, वह यह थी कि कोई भी हुनरमन्द अपने आबाई पेशे से नहीं जुड़ा था। तालाब में सिंघाड़ा बोने वाले तालाबों के पट जाने और नल लग जाने के कारण, अब घर–घर पानी पहुँचाने की जगह रेडीमेड कपड़ों की रेड़ी लगाने लगे थे। कहार और कुम्हार कटाई–बोआई में लग गए थे। दर्जियों की हालात थोड़ी बेहतर थी। मगर उनके लड़कों का रुझान पीसीओ और केबिल की दुकान खोलने की तरफ लगा था। मिस्त्री और प्लंबर मध्यपूर्वी देशों में काम ढूँढ रहे थे। सारा निजाम तितर–बितर नजर आ रहा था। समस्या पेट की थी, खानदानी हुनर की नहीं। जहाँ जिसको कमाई नजर आती, वह वहीं रहने लगता।"[109]

लेखिका अपनी औपन्यासिक रचनाओं के कथानकों के माध्यम से पाठकों को समझाती हैं कि औद्योगिक विकास के साथ–साथ समाज में मध्यवर्ग का तीव्र गति के साथ उदय और विकास हुआ है। इसमें क्लर्क, वकील, डॉक्टर, शिक्षक आदि आते हैं। इस वर्ग के लोगों में पर्याप्त भिन्नता होती है। इस वर्ग की यह मजबूरी होती है कि ये अपने को बढ़ा चढ़ाकर प्रदर्शित करने की कोशिश करते हैं। बच्चन सिंह जी भी इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि "मध्यवर्ग की एक बहुत बड़ी कमजोरी है–अपनी स्थिति से बढ़कर अपने को प्रदर्शित करने की स्पृहा।"[110] 'जीरो रोड' उपन्यास में जब रामप्रसाद के घर दुबई से सिद्धार्थ के मित्र विश्वप्रसिद्ध फोटोग्राफर रमेश शुक्ला और फिल्म निर्माता ईयाद आने वाले थे। तब "रामप्रसाद जी का घर दीपावली से पहले पुता था, अब फिर उसकी सफाई सुथराई बड़ी तेजी से चल रही थी। घर का जो कोना ज़रा भी उपेक्षित पड़ा दिखाई दिया उसे रगड़कर चमका दिया गया। फूलों के गमले भी कंपनी बाग से लाकर बरामदे में रख दिये गये। चाय और डिनर सेट के साथ फूलदार चादरें और प्लास्टिक मेज पोश भी राधारानी बाजार जाकर खरीद लायी थीं....।"[111]

इसी मध्यवर्ग की जीवन–शैली का एक पक्ष यह भी लेखिका ने उद्घाटित किया है कि नौकरी की तलाश तथा ऊँचा उठने की स्पृहा ने मध्यवर्ग के परिवारों को अपनी जड़ों से दूर शहरों में ले जाकर अलग–थलग सा कर दिया है। जब तक सब कुछ अनुकूल होता है तब तक वह अपने को धन्य समझता है परन्तु जब भी विपरीत समय होता है या दुःख–दर्द आता है तब वह सहारे की तलाश में अपनों को याद–करता छटपटाता है। क्योंकि अजनबी शहर में वह अपने नाते–रिश्तेदारों, परिवार वालों से दूर होता है। ऐसी ही स्थिति 'शब्द पखेरू' उपन्यास में देखने को मिलती है। सूर्यकान्त की पत्नी 'साधना' के बीमार होने पर घर की नींव हिलने लगती है। एक तरफ दोनों बेटियों की पढ़ाई और उनके सपने, दूसरी तरफ पत्नी की देखभाल और नौकरी में से किसी एक का चुनाव क्योंकि उसका स्थानान्तरण दूसरे शहर में हो जाता है। साधना की सुधबुध लेने तथा उसके मन को समझने के लिए किसी के पास समय नहीं होता है। पर धीरे–धीरे "सिर्फ़ साधना को ही नहीं बल्कि पूरे परिवार को यह बात समझ में आ गयी थी कि रोगी का रोग केवल

शारीरिक नहीं होता बल्कि संवेदनाएँ भी शरीर को क्षतिग्रस्त बना देती हैं। जिसकी तरफ़ किसी का ध्यान नहीं जाता है कि उसे हौंसले की, बढ़ावे की, प्यार की सख़्त ज़रूरत होती है। साधना के रिश्तेदारों ने ऐसी पटक–झटक दिखाई थी। नौकरों ने उसकी ऐसी गत बनाई थी कि वह रोग की जगह जीवन–मुक्ति की कामना हर समय करती थी.........सूर्यकान्त भी कर्तव्य को निभाने के चक्कर में उससे दूर होते चले गये। उसे एक मुर्दा औरत समझ बैठे जिसे डॉक्टर, दवा की ज़रूरत थी, प्यार और स्पर्श की ज़रूरत बाकी नहीं रह गयी थी। बेटियाँ भी तब दूर–दूर से देखती और कमरे से भाग जाती थीं। कितनी व्यथा, कितनी वेदना, कितनी पीड़ा सही है उसने। आखिर वह इस तरह जीकर करती भी क्या? लेटे–लेटे वह ननद की बातें सुनती– "भैया अब दूसरी शादी का सोचो हम भी कब तक अपनी गृहस्थी को छोड़–छोड़कर आते रहेंगे?"[112]

नासिरा जी हमेशा से स्त्री–पुरुष समानता की बात करती आई हैं और यही सोच उनके उपन्यास–लेखन में हमें देखने को मिलती है। वे एक समाज की परिकल्पना करती हुई 'शाल्मली' की शाल्मली से कहलवाती है कि– "मेरे मन–मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है, फिर एक बार मैं बता दूँ कि मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है।"[113]

इस प्रकार नासिरा जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों के विभिन्न कथानकों चरित्रों व पात्रों के माध्यम से समकालीन समाज के यथार्थ को उजागर किया है। समाज के विविध स्वरूपों व विविध पक्षों पर प्रकाश डालकर पाठकों को सोचने पर विवश किया है कि उन्हें समाज में किन–किन पक्षों पर सुधार करने की जरूरत है? और किन–किन बातों को साथ लेकर चलना है? बदलते परिवेश व युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उन्हें बदलना है। संक्षेप में कहें तो एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना लेखिका ने प्रस्तुत की है।

5. ऐतिहासिक चेतना

साहित्य शून्य में पैदा नहीं होता है अपितु उसका अस्तित्व समाज के भीतर होता है। इसलिए साहित्य और समाज में अनिवार्यतः एवं स्वाभाविक सम्बन्ध होता है। दोनों विकासशील और परिवर्तनशील हैं। इसी कारण किसी भी साहित्यिक कृति का युग–प्रभावानुसार महत्त्व बदलता रहता है। साहित्य और समाज के इस बदलते संबंध को समझने के लिए इतिहास दृष्टि या ऐतिहासिक चेतना का होना आवश्यक है। इतिहास की सहायता के अभाव में साहित्य और समाज के बदलते सम्बन्ध को समझना बेहद कठिन है। साहित्य लेखन और अनुशीलन, दोनों के लिए इतिहास की समझ होनी चाहिए। इसी भाँति ऐतिहासिक चेतना से शून्य एक आलोचक भी

रचनागत मूल्यों की सार्थकता और प्रासंगिकता की पहचान नहीं कर सकता है। ऐतिहासिक चेतना से रचनाकार को को राष्ट्रीय चेतना, वर्गीय चेतना और मानवीय चेतना का बोध होता है।

एक ऐतिहासिक बोध सम्पन्न कथाकार या उपन्यासकार अतीत को अनावृत्त कर जीवन के शाश्वत सत्यों और मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति ही अपना लक्ष्य समझता है। हिन्दी के अनेक कथाकारों ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में इन सत्यों और मूल्यों को अतीत के सन्दर्भों से जोड़कर एक नया अर्थ दिया है। ऐसी ही कथाकार व प्रसिद्ध लेखिका है, नासिरा शर्मा। नासिरा जी ने अपनी रचनाओं विशेषतः उपन्यासों में अपनी प्रखर कल्पना, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा और गहरी सामयिक सम्पृक्ति के कारण इतिहास के झरोखों से मानवतावादी चिंतन को उपस्थित किया है। भारत के गौरवमय और समृद्ध अतीत को एक प्रमाणिकता के साथ लेखिका ने अपने उपन्यासों में स्थान दिया है।

'इतिहास' शब्द 'इति+ह+आस'[114] से मिलकर बना है, जिसका सामान्य अर्थ है– 'ऐसा निश्चय ही हुआ'। 'इतिहास+ठक्' प्रत्यय के योग से पुनः निष्पन्न होता है– 'ऐतिहासिक' शब्द। अर्थात् इतिहास से सम्बन्धित।[115] हिन्दी भाषा के अनुसार 'इतिहास' शब्द से गुणवाचक तद्धित प्रत्यय 'इक' जुड़कर 'ऐतिहासिक' शब्द बनता है।[116]

नासिरा जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में ऐतिहासिक तथ्यों, घटनाओं, रचनाओं व कथानकों का समावेश कर पाठकों को आत्ममूल्यांकन हेतु विवश किया है। इतिहास के झरोखे में समस्या विशेष के लिए क्या समाधान थे? और वर्तमान में क्या हैं? दोनों में सही–गलत का फैसला पाठकों पर छोड़ दिया है।

अपने 'कुइयाँजान' उपन्यास में लेखिका ने सदी के सबसे बड़े खतरे 'पेयजल की कमी' की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए मास्टर जी के मुँह से कहलवाया है–

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून।"[117]

इसके बाद एक अखबार के सम्पादकीय लेख 'जल ही जीवन है' के माध्यम से वे लिखती हैं कि "सबसे खतरनाक मुद्दा जो आज हमारे सामने है, वह है समस्या के हल का निजी क्षेत्र में जाना, जिससे निजी क्षेत्र अपने मुनाफे की बात कर सके। उनका विचार है कि बिक्री योग्य वस्तु बना देने से पानी का संरक्षण सुचारू रूप से हो पायेगा। विश्व बैंक कह ही चुका है कि पानी की कीमत तय करो, बाजार में बिक्री के लिए उसे रखो और बाजार को उसका भविष्य तय करने दो। ध्यान रहे कि पानी एक 'मानवीय आवश्यकता' है, न कि मानवीय अधिकार भर है।"[118]

इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारतीय इतिहास में यह समृद्ध परम्परा रही है कि आमजन व प्रत्येक प्राणी के लिए पेयजल का प्रबन्ध करना पुण्य का कार्य माना जाता रहा है। सेमिनार के एक लेख के माध्यम से लेखिका कहती हैं कि "संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवि बाण अपनी कृति कादंबरी (सातवीं शताब्दी) में पोखर–सरोवर खुदवाने को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। लोक–कल्याण हेतु इस प्रकार के खुदवाए गए जलकोष को चार वर्गों में विभाजित किया गया है– (1) कूप.........कहने का अर्थ केवल यह है कि हमारे भारतीय समाज में पोखर केवल भौगोलिक मजबूरी नहीं, बल्कि परम्परा रही है। हमारे सोच का हिस्सा रही है। पोखर की चर्चा ऋग्वेद में भी है। जब से गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र की रचना–संकलन प्रारंभ हुआ (800 से 300 ई.पू. की) अवधि में तब से इसे धार्मिक मान्यता और संरक्षण प्राप्त है। इन सूत्रों के अनुसार, किसी भी वर्ग या जाति का कोई भी व्यक्ति, पुरुष या स्त्री पोखर खुदवा सकता है और यज्ञ करवाकर समाज के सभी प्राणियों के कल्याण–हेतु उसका उत्सर्ग कर सकता है। आज भी यह काम पुण्य कमाने का समझा जाता है! मगर जो इस तरह के काम करने के लायक है वे अब धन इन जन–कल्याणकारी कार्यों में नहीं खर्च करते हैं।.......ऐसी मानसिकता के समय में मध्य बिहार की पपड़ियाई जमीन क्या कुछ नहीं झेल रही है, इसको शब्दों में बयान करना मेरे लिए कठिन है?"[119]

"इसी तरह पहाड़ी नदियों से खेतों तक पानी पहुँचाने के लिए पइनों का प्रयोग किया जाता था। यह पइन 20–30 किलोमीटर तक लंबे होते थे और प्रशाखों में बंटकर सौ से भी अधिक ज्यादा गांवों के खेतों की सिंचाई करते थे। दक्षिण की नदियाँ गर्मी में सूखी और बरसात में उफनती थीं सो उनका बढ़ा पानी बाढ़ की जगह ढाल से बह पइनों एवं आहरों में भर अपनी राह बना लेता था। आज हम विकल्पों की ओर भागते है और अपनी व्यवस्था से मुंह मोड़ लेते हैं। आहर–पईन प्रणाली जातक युग से ही हमारी सिंचाई–व्यवस्था में शामिल रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'आहरोदक–सेतु' से सिंचाई का जिक्र है। मेगास्थनीज के यात्रा–विवरण में भी बिहार की बंद मुंह वाली नहरों से सिंचाई का उल्लेख मिलता है। हम नए से नए विकल्प ढूँढने के स्थान पर अपनी पुरानी प्रणाली की तरफ ध्यान दें, क्योंकि वह हमारे इलाके की भौगोलिक बनावट के अनुकूल थी।"[120]

इसके अलावा लेखिका ने विभिन्न चर्चाओं व सेमिनारों के बहाने पानी की महत्ता व संरक्षण के प्रति पाठकों को जागरूक करने के लिए 'ढोलामारू रा दूहा' में मारवाड़–निंदा प्रकरण,[121] आभानेरी बावड़ी[122], अयोध्या के घाट पर 'राम की पौड़ी'[123] जैसलमेर के पास त्रिकूट पर्वत पर तपस्यारत उत्तुग ऋषि द्वारा भगवान श्रीकृष्ण से वरदान स्वरूप क्षेत्र में जल का अभाव न होना[124], तथा औरंगजेब की साली महावरपर द्वारा गंगा तट पर घाट व शिकारगाह का निर्माण[125] इत्यादि ऐतिहासिक तथ्यों के माध्यम से पाठकों को जल–संरक्षण हेतु प्रेरित किया है।

गंगा–जमुनी संस्कृति का प्रतीक 'इलाहाबाद' शहर अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का साक्षी रहा है। इलाहाबाद की महत्ता पर प्रकाश डालने के लिए लेखिका एक विद्यार्थी से कुछ ऐतिहासिक तथ्यों को पढ़वाती हैं– "इलाहाबाद में राजकुमार नूरउद्दीन जहाँगीर ने अपने पिता मुगल सम्राट अकबर के खिलाफ पहली बार विद्रोह किया था और अबुल फजल, जो कि अकबर का सन्देश लेकर जा रहे थे, उन्हें रास्ते में रोककर कत्ल कर दिया था।..........इलाहाबाद में ही पहली बार 1931 के मुस्लिम लीग अधिवेशन में अल्लामा इकबाल ने पाकिस्तान का तजकिरा दिया था।.......अमृत–मन्थन, जो कि चार स्थानों पर हुआ था, उनमें से एक इलाहाबाद है। बाकि उज्जैन, नासिक एवं हरिद्वार हैं; इसी कारण से यहाँ हर बारह वर्षों बाद महाकुम्भ मेला आयोजित किया जाता है।"[126]

इसके अलावा मकरसंक्रान्ति व कुम्भमेले के अवसर पर संगम स्नान, दशहरे पर आयोजित विश्व स्तरीय रामलीला आदि का विशेष रूप से जिक्र किया गया है।

'दूसरी जन्नत' उपन्यास में लेखिका ने बांझपन की समस्या से जूझ रहे निःसन्तान दम्पत्तियों विशेषकर मुस्लिम समाज को आई.वी.एफ. तकनीक के इतिहास व फायदों से रूबरू करवाया है। लेखिका ने डॉ. रुखसाना के माध्यक से मुस्लिम समाज को आई.वी.एफ. तकनीक से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी उपलब्ध करवाई है और फैसला स्वयं पाठकों पर छोड़ दिया है। डॉ. रुख़साना एक बैठक में समाज के लोगों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि "मजहब और साइंस दोनों का नज़रिया इंसान की भलाई और जीवनमूल्यों, यानि कि ज़िन्दगी सम्मान के साथ अपने स्थानीय परिवेश–माहौल के साथ, उसके मुताबिक़ गुज़ार सकें। इन्सानी दुःखों में एक दुःख बाँझपन का भी है जो मर्द–औरत को गहरे मायूसी दे जाता है। मजहब उसके लिए दोनों को सब्र की हिदायत देता है। मगर साइंस ने बाँझपन से आज़ाद होने का रास्ता खोल दिया है। आपको यह सुनकर हैरत होगी कि 1980 में इजिप्ट, जार्डन, लेबनान और सऊदी में आई.वी.एफ. क्लीनिक खुल चुके थे। अल–अज़हर युनिवर्सिटी ने इसको लीगल बनाने के लिए 'फतवा' पास किया कि मुसलमानों को इस तकनीक से बच्चा पैदा करने की इस हद तक एजाज़त है, जब तक इसमें तीसरी पार्टी की हिस्सेदारी न हो? अब सवाल है कि यह तीसरी पार्टी कौन है? यानीकि वह मर्द–औरत जो आपके निकाह में न हो। मतलब साफ़ था सिर्फ़ मियाँ–बीवी। लेकिन 1990 में जब ईरान के आय्यतउल्लाह ख़ामिनेई ने ईरान में इस बात की इजाजत दे दी कि इसमें तीसरी पार्टी शामिल की जा सकती है। सुन्नी शिया आपस में यह लेन–देन कर सकते हैं मगर कुछ शर्तों के साथ....। पहला टेस्ट ट्यूट बेबी 1978 में हुआ जिसके कारण पूरी दुनिया में इसकी माँग बढ़ी और अब तो इसने एक इन्डस्ट्री का रूप पूरे विश्व में ले लिया है.........।"[127]

'काग़ज़ की नाव' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने बंधुवा मजदूरों के शोषण को उजागर किया है। सदियों से हो रहे अत्याचारों, प्रताड़नाओं व शोषण के बारे में पाठकों को बताया है कि किस कदर का जीवन वे जीते हैं, किस कदर उनकी मजबूरी का फायदा उठाया जाता रहा है। 'राजेश' की मनोव्यथा के माध्यम से लेखिका बताती है कि "वह तो बंधुवा मज़दूर है। सामंती व्यवस्था में बंधुवा मज़दूरों के संग कोई ढिलाई कभी बरती गई तो फिर पूंजीवादी समाज में, औद्योगिक दौर में, आधुनिक व्यवस्था के मज़दूरों को ढील देकर उत्पादन दर गिरानी है क्या? उससे ऐसी उम्मीद पालना पानी से घी बिलोने जैसा है।.........मगर अंदर की स्थितियाँ तो वही ढाक के तीन पात हैं। जब तक इनकी चाकरी है सारी सुविधाएँ हैं और नौकरी गई तो फिर वही रात–दिन की किचकिच........आख़िर काग़ज़ की यह नाव कितनी दूर चलेगी।"[128]

अपने 'पारिज़ाज' उपन्यास में लेखिका ने इलाहाबाद की अन्य खूबियों के साथ–साथ 'इलाहाबादी अमरूद' के इतिहास से भी पाठकों को रूबरू कराया है। लेखिका लिखती है कि "सुनते हैं, अमरूद पुर्तगाल से यहाँ आया था। एक पुर्तगाली दल मुग़ल बादशाह जहाँगीर से मिलने आया तो तोहफ़े में कुछ अमरूद के पौधे भी साथ ले आया था। हिंदुस्तान में इन्हीं पौधों से इस फल की नस्ल फली–फूली।".....इलाहाबादी अमरूद की खूबी के पीछे बाग़वानी के शौक़, हुनर और तजुर्बे का लंबा इतिहास है। इसमें मेहनत का पसीना और रईसों का पैसा पानी की तरह बहा है। फल मीठे हों, इसके लिए सुना है, बीजों को घंटों शीरे में डुबोकर रखा जाता था। पौधों को फूलों की खाद और खुशबूदार पानी से सींचा जाता था। इसीलिए इलाहाबादी अमरूद की इतनी क़िस्में हैं। बिना दाने वाला अमरूद, पक्का मुलायम अमरूद ऐसा कि दो उँगली से दबाएँ तो दो टुकड़े हो जाए और खुशबू तो घर क्या पूरे मोहल्ले में फैल जाए। सफ़ेदा अमरूद मक्खन जैसा रंग, शहद जैसी मिठास। यह फल पहली बार नवाब अबुबकर के बाग़ में फला था।[129]

"सुन मोर रजवा झुलनी न लेवै, बाला न लेबै
सुन मोर बलमा गहना न लेबै, गुरिया न लेबै
सुन मोर सजना लहँगा न चाही, ओढ़नी न चाही
लै आयो इलाहाबादी सफ़ेदा की डलिया।"[130]

अपने 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में लेखिका ने भारत–पाक बंटवारे के ऐतिहासिक घटनाक्रम और उससे उपजे नवीन परिवेश व सोच को 'निज़ाम' की जिन्दगी के द्वारा साफ–साफ वर्णित किया है।

'सात नदियाँ एक समंदर' और 'अजनबी जज़ीरा' इन दोनों उपन्यासों में क्रमशः ईरान और ईराक को इतिहास के पन्नों में देखने की कोशिश की है। ईरानी–क्रांति और खुमैनी शासन की स्थापना तथा ईराक पर अमरीकी व विदेशी सेनाओं के आक्रमण के द्वारा दोनों देशों में इंसानियत

को तड़पते व बिलखते दिखलाया। एक आम इन्सान की नजर से दोनों परिवर्तनों को दिखलाया है। शाह के तख्तापलट के बाद उसके समर्थकों को चुन–चुन मारने से जगह–जगह लाशों का मंजर दिखलाया है। आम इन्सान को जरुरत की हर छोटी से छोटी चीज के लिए संघर्ष करता हुआ दिखलाया है।

इस प्रकार अपनी रचनाओं में अपने कथ्य को लेखिका ने पाठकों के सम्मुख इतिहास के द्वारा मजबूती से रखा है। इससे सम्पूर्ण ताना–बाना जीवन्त हो पाठक की आँखों में घूमने लगता है। वह हर उस घटना को तथा तात्कालिक परिस्थिति को समझ कर सही निर्णय पर पहुँच जाता है।

6. दलित–चेतना

दलित पद 'दल्' धातु से 'क्त' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है।[131] धात्वर्थ के अनुसार दलित शब्द का तात्पर्य है–टूटा हुआ, दबा हुआ, कुचला हुआ, पिसा हुआ, उपेक्षित, अधिकारों से वंचित एवं शोषित व्यक्ति। सामाजिक अर्थ में 'समाज का वह वर्ग जो दबा हुआ है, कुचला हुआ है, पिसा हुआ है और शोषित है, दलित कहलाता है। हिन्दी भाषा में व्युत्पत्ति के अनुसार 'दल+इत' प्रत्यय के योग से 'दलित' शब्द बनता है।[132]

'दलित' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण है– 'Depressed class'[133] Depress का अर्थ है Push or pull down; lower, make dispirited or dejcted तथा depressed का अर्थ है dispirited or miserable, suffering from depression (based on latin 'pressare' to keep pressing)[134]

इस प्रकार दलित समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसे षड्यन्त्रपूर्वक वर्चस्व सम्पन्न वर्ग ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इन आधारों पर मोटे रूप में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों, लघु तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन, मजदूरों एवं परम्परागत श्रमजीवी शोषित लोगों को दलित वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के प्रखर विद्वान् आचार्य हर्षदेव माधव जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्र 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' के अन्तर्गत दलित चेतना का निरूपण बड़े ही विस्तार के साथ एवं उपपत्तिपूर्वक करते हैं–

"शोषितदलितजनगतानां पीड़ाव्यग्रतारोषादीनां
निरूपणं दलितचेतना।"[135]

अर्थात् शोषित, दलित लोगों की पीड़ा, व्यग्रता, रोष आदि का निरूपण दलित चेतना है।

उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में माधव जी आगे लिखते हैं– दलित अर्थात् मृदित, पिष्ट (पिसा हुआ), शोषित (सोख लिया हुआ)। दल् धातु से क्त प्रत्यय से उत्पन्न यह शब्द खण्डित, पेषित, पीड़ित, विदीर्ण वस्तुओं का संकेत देता है। इसके अनुसार जो अन्त्यज, अस्पृश्य जो व्यक्ति है, वह दलित है। दलित शब्द से शोषण, पीड़ा, व्यथा, दु:खादि से मृदित, कष्टापन्न लोगों का अर्थ सूचित होता है। समाज व्यवस्था–वर्णव्यवस्था से, समृद्ध वर्गों के शोषण व बल से, जिन्होंने कष्ट पाया है, वे दलित हैं। दलितों के लिए आत्मगौरव बोध व उनके अधिकार ज्ञान के लिए जो क्रान्ति है, वह दलित चेतना है। दलितों ने शारीरिक कष्ट सहे। उन्होंने बहिष्कार की यातना पाई। गरीबों का धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, शारीरिक शोषण हुआ। मानवाधिकारों से भी इन्हें वञ्चित किया गया। धनिकों ने गरीबों की अवज्ञा (तिरस्कार) की। वे भी दलित हैं।

दलित लेखक केवल भारती कहते हैं– "दलित वह है जिसे कठोर और गन्दे काम करने के लिए बाध्य किया गया, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और जिस पर सवर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की है, वही दलित है।"[136]

अवंतिका प्रसाद मरमट के अनुसार– "जिसका दलन हुआ हो अथवा जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो, ध्वस्त या नष्ट किया गया हो।"[137]

चन्द्र कुमार वरठे के अनुसार– "दलित वह व्यक्ति है, जो विशिष्ट सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है, जिसके जीने के अधिकार को छीना गया है। मात्र जन्म के आधार पर जिनको समाज में एक विशेष प्रकार का जीवन मिला है। मनुष्य के रूप में जिनके अधिकारों को ठुकराया गया है।"[138]

डॉ. माता प्रसाद ने दलित आन्दोलन को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि "दलित आन्दोलन का उद्देश्य दलित की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक असमानताओं को दूर कर सभ्य समाज का निर्माण करना है।"[139]

इस प्रकार उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित वह वर्ग विशेष है जिसका युगों–युगों से विभिन्न कारणों एवं विभिन्न प्रकारों से शोषण किया जाता रहा है तथा जिसके कारण वे समाज की मुख्य धारा से विच्छिन्न होकर हाँसिये पर पहुँच गये। इसी वर्ग की आवाज जो सदियों से दबायी जाती रही है, उसको अभिव्यक्ति देना समकालीन बुद्धिजीवियों, लेखकों, चिन्तकों, उपन्यासकारों तथा कथाकारों ने अपना युगधर्म समझा है। ऐसी ही युगधर्मी एवं लोकधर्मी लेखिका हैं– 'नासिरा शर्मा'। इनकी रचनाओं में समाज की इस विसंगति पर प्रकाश डालकर उसे सही दिशा देने का प्रशंसनीय कार्य किया है। समाज में व्याप्त धनिकों और पूँजीपतियों की तानाशाहीपूर्ण सामन्ती व्यवस्था पर प्रहार करते हुए एवं आर्थिक एवं सामाजिक समता पर बल देते

हुए नासिरा जी ने बड़ी साफगोई के साथ लेखनी चलाई है तथा पाठकों को आत्मानुशीलन के लिए विवश किया है। उनके समकालीन कथा साहित्य में मानवीय संवेदनशीलता का प्राधान्य है।

अपने 'अक्षयवट' उपन्यास में नासिरा जी ने इलाहाबाद की सांस्कृतिक विरासत को चित्रित करने के साथ–साथ वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक ताने–बाने में आई विकृतियों और प्रशासनिक स्तर पर फैले भ्रष्टाचार का वर्णन बड़ी ही मुखरता के साथ किया है। साथ ही अनेक स्थलों पर गरीब, वंचित एवं अभावग्रस्त वर्ग को अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत दिखलाया गया है। जब अन्याय, कदाचार और शोषण अपनी हद पार कर जाता है तो वही शोषित वर्ग कोई रास्ता न पाकर अत्याचारों व अन्याय के खिलाफ उठ खड़ा होता है, इसका जीवन्त चित्रण इस उपन्यास में है। जब प्रशासन जमादारों की समस्याओं पर ध्यान नहीं देता है तब सभी जमादार सामूहिक हड़ताल पर उतर आते हैं जिससे सम्पूर्ण शहर की सफाई व्यवस्था ठप हो जाती है– "शहर में एक तरफ रामलीला खेली जा रही थी तो दूसरी ओर दलित सेना जैसी संस्थाएँ जमादारों की हड़ताल को लेकर चिन्तित थीं। पिछले एक सप्ताह से कुछ इलाकों में नाली कीचड़ से भर गयी थीं और कूड़े के ढेर टीले बन गये थे। सीवर की सफाई और जगह–जगह बिजली के लटकते तार दलों के निकलने में कई तरह की अड़चनें पैदा कर सकते थे। नगर निगम, जल–संस्थान, बिजली विभाग की उदासनीता को लेकर कार्यकर्ता चिन्तित थे। उनका आक्रोश इस बात पर अधिक था कि चौड़ी सड़कें और बड़े मोहल्ले साफ हो जाते हैं मगर गलियों का बुरा हाल रहता है..........।"[140]

श्रमजीवी मजदूरों व गरीबों की सुध–बुध लेने वाला कोई नहीं रहता है न प्रशासन और न ही धनिक वर्ग। उनकी मजबूरी को सहज रूप में अपराध की श्रेणी में रखकर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है। जब जनवरी माह में शीत से पीड़ित कुछ मजदूर लोग स्वयं को बचाने का जतन करते हैं तब कैसे उनके साथ व्यवहार किया जाता है, वह दृश्य है– "उन्हीं दिनों राजापुर में एक दिल दहलाने वाली घटना गुजरी। होली के अलाव को लोग जमा करते हैं सड़क किनारे और चौराहों पर, यह कोई नयी बात न थी। उसी में दीमक लगा एक खोखला तना भी था जिसको किसी ने अपने घर के सामने आँगन से निकाल डलवा दिया था। उसको सर्दी की तेजी के कारण कुछ मजदूर जला बैठे जिसके कारण मकान मालिक को इतना गुस्सा चढ़ा कि उसने आव देखा न ताव, मजदूरों की जी भरकर पिटाई की और फिर उनके खिलाफ चोरी की रिपोर्ट दर्ज करा दी। इस तरह जाड़े से बचने की कोशिश के जुर्म में तीनों मजदूर धर लिये गये।.....मानवीय–अमानवीय घटनाओं से भरी शीतलहर हफ्ता भर बाद सारे शहर को हिलाकर चली गयी। उसके जाने से जो राहत गरीबों को नसीब हुई उससे हफ्ते भर भोगा कष्ट सब भूल गये। इन्सान की यह सबसे बड़ी

खूबी है कि वह हर जख्म की हर पीड़ा को समय के गुजरने के साथ बिसरा देता है और जिजीविषा उसको फिर से जीने के लिए तैयार कर देती है।"[141]

जब मालिन की लड़की मुनिया जो दूसरों के घरों में साफ–सफाई का काम करती थी, वह धीरे–धीरे अपने सपनों व घर की जरूरतों को पूरा करने के लिए गलत लोगों का संग करने लगती है और गर्भवती हो जाती है। एक दिन दूसरे मोहल्ले में उसकी कुचली लाश पड़ी मिली। मुरली और ज़हीर इकट्ठी भीड़ में जाकर सारा माजरा समझ लेते हैं। मुरली द्वारा मुनिया के चाल–चलन पर प्रश्न उठाने पर जहीर उसे समाज के उस कड़वे यथार्थ से अवगत कराता है, जिसकी ओर प्रशासन की निगाह भी नहीं जाती, बस केवल उसका अपराध नजर आता है। जहीर कहता है कि "वे भी क्या करें? आस–पास जो घट रहा है, उससे कट तो नहीं सकती हैं। सिर्फ इसलिए कि वह निचले तबके की है या गरीब हैं और चारों ओर फैली सुख–सुविधाओं से वंचित हैं।.....जिन्हें इसकी पाने की ललक होती है, वह कुछ भी कर गुजरती हैं। याद है 'नजाकत' ब्यूटी पार्लर की रेड?"[142]

प्रशासन किस कदर एक आम गरीब इन्सान का जीते जी तो शोषण करता ही है अपितु उसकी लाश को भी अपनी रोटी सेकने का साधन बना लेता है। लगता है मानवीय संवेदना व इन्सानियत उनके अन्दर मर चुकी है। उन्हें केवल अपना स्वार्थ नजर आता है। जब श्यामलाल त्रिपाठी के थाने में दो सिपाही एक भिखारी को जेबकतरा साबित करने के लिए लाते हैं तब हालात से मारा वह भिखारी उनकी डाँट, लताड़ व मार से प्राण छोड़ देता है। दूसरे दिन वास्तुविद् ओमेश पारुथी, जिसने सप्ताह भर पहले भूख से बेहाल उस व्यक्ति को खाना खिलाया था परन्तु अखबार में प्रकाशित खबर से बेहद परेशान पारुथी जानता था कि यह झूँठी खबर है क्योंकि वह भूख से मरा है। जबकि अखबार में उस भिखमंगे की लाश की फोटो इस खबर के साथ छपी थी कि "नशीले पदार्थ का सेवन नगर में बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। यह लावारिस लाश स्टेशन के पास पायी गयी, जिसकी जेब में स्मैक का खाली पैकेट पाया गया।"[143]

अपने 'कुइयाँजान' उपन्यास में लेखिका ने चित्रित किया है कि कुछ स्वार्थी व दबंग लोग गरीब व झोपड़पट्टियों में रहकर गुजर–बसर करने वाले लोगों के जज्बातों से आये–दिन खेलते रहते हैं उनके लिए ऐसे लोगों के जीवन का कोई मूल्य नहीं होता है। शायद वे इस वर्ग के लोगों को इन्सान भी नहीं मानते तभी तो जमना किनारे वाली झोपड़पट्टी में जब लोग सो रहे थे, अचानक आग लगा दी जाती है। सब कुछ जलकर खाक हो जाता है, फिर भी सिर्फ दो पुलिस वालों के द्वारा खाना–पूर्ति करने के अलावा कोई भी उनकी सहायता व सांत्वना देने आगे नहीं आया। कमाल और समीना जब उधर से गुजरते हैं और पास जाकर पूछते हैं, तब एक औरत रोते हुई कहती है कि "किसी को कुछ नहीं पता, बाबू। हम सब सोबत रहे। जब आग ने जोर पकड़ा

तो गरमी से हमारी आंख खुल गई। फिर भगदड़ मची। जिसके पास जितना पानी था, डाला, मगर आग न बुझी।.........कुछ बचा नहीं, चावल आग मा भुन गवा, तेल जल गवा..........बस तसला, बाल्टी, पतीला बचा है, वह भी पहचान मा नहीं आवत।"[144]

प्राकृतिक आपदाओं जैसे पानी की कमी, अनावृष्टि, बाढ़, तूफान, महामारी फैलना इन समस्याओं से धनिक व दबंग वर्ग तो जैसे–तैसे पैसे के बल पर अपना समय निकाल लेते हैं किन्तु एक गरीब व दलित वर्ग का व्यक्ति स्वयं को नहीं सँभाल पाता क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं के साथ–साथ कुछ दबंग लोग उनको चूसने में कोई कसर नहीं छोड़ते। परिणामस्वरूप वह वर्ग अकाल काल का ग्रास बन जाता है। एक पानी को ही लें, यह तो प्रकृति का उपहार है और इस पर प्राणीमात्र का अधिकार है। फिर भी दलितों को इसे खरीद कर पीना पड़ रहा है। इस सच को उजागर करता एक व्यक्ति पानी की समस्या पर बहस करते हुए कहता है, "आपकी परेशानी अपनी जगह, हमारी धरती पर किए गए अत्याचार अपनी जगह। आप लोग प्रबुद्ध हैं। परन्तु मैं आपके सामने कह सकता हूँ कि गांव–कस्बों में 'ठाकुर का कुआं' आज भी जीवित है। उन गांवों में जहां मीठे पानी से कुएं लबालब–भरे हैं, वहां दलितों को आज भी तीन रुपए घड़ा उसी गांव का आदमी बेचता है, आप इस समस्या का समाधान कैसे ढूंढेंगे?"[145]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में लेखिका ने बताया है कि लोकतन्त्र के इतने समय बाद भी ज्यादातर गाँवों व दलित बस्तियों का वही हाल है, जो अन्तर आया है वह न के बराबर है। महरुख़ जब गाँव में अध्यापिका बनकर जाती है तो वहाँ का दृश्य देखकर वह बेहद दुःखी होती है। उसका व्यथित मन कह उठता है कि "अजीब नामहरुमी से भरी जिन्दगी है यह! खाना है, तो कपड़ा नहीं, कपड़ा है, तो घर नहीं और अगर तीनों हैं, तो पढ़ाई और नौकरी की सहूलियतें नहीं हैं, मगर ये सारी कमियाँ तो बस इस तबक़े की तक़दीर बन गई हैं, वरना एक तबक़ा हिन्दुस्तान में ऐसा भी है, जहाँ ये चीजें न सिर्फ़ बहुतायात से हैं, बल्कि बरस रही हैं। यह फ़र्क़ क्या कभी मिटेगा?"[146]

लेखिका आगे लिखती हैं कि हमारे भारतीय समाज में ऊँच–नीच व छुआछूत इस कदर बसी हुई है कि व्यक्ति के मन से ये भाव निकलना ही नहीं चाहते। समाज में ऊँचे पदों पर बैठे व्यक्ति ही इस निम्न सोच से ग्रस्त हों तो समाज में न्याय की अपेक्षा करना बेमानी लगती है। समाज में दबा–कुचला वर्ग अन्याय व जुल्म सहकर थका–हारा चुपचाप अपने घर में बैठ जाता है। यदि कोई आवाज उठाने की कोशिश करता है, तो दबंगों के साथ–साथ प्रशासन द्वारा भी वह कुचल दिया जाता है। 'ठीकरे की मंगनी' का यह वृत्तान्त व वार्तालाप इस व्यवस्था के नकाब को उतारने के लिए काफी है। गाँव में आतंक का माहौल छाया है। पासी टोले में मुर्दा–घर जैसी खामोशी है। शाम से पुलिस ने इस टोले को घेर रखा है। लोगों को बात पुरानी लगकर भी कुछ

नई–सी लग रही थी। हुआ क्या था? यही न कि घर लौटती बिन्दो को अंधेरे में काशी अपने कमरे में घसीट ले गया था। इसमें कौन–सी नई बात थी? हरिजनों पर यह जुल्म तो ढाया ही जाता रहा है। रो–धोकर, ग़म–गुस्से को पीकर सब कुछ सह लिया जाता है, मगर नई बात जो हुई थी, वह यह थी कि बिन्दो के भाई ने काशी की आंतें बाहर निकाल ली थीं और बिन्दो कुएं में समा गई थी।

"दिमाग़ बहुत खराब हो गया है? नस्लों का सुधार इनकी समझ में नहीं आता" खाट पर लेटे सिपाही ने पासियों के टोले की तरफ नजर उठाकर कहा।

"लौंडिया का जिगरा देखो, पूरा शरीफों–सा व्यवहार। अरे, बेकार पड़ी थी, काम में आ गई, तो कौन–सी अपवित्र हो गई!" लेटे हुए सिपाही ने करवट बदल कर कहा।

"नया खून है, चन्द दिन का शौक! चमार, पासी जहाँ है, वहीं ठीक हैं। सर पर बिठाने का मजा आ तो रहा है।" कान खुजाते और ज़मीन पर थूकते हुए दूसरे सिपाही ने कहा।

"कल की मार से इन सबको छठी का दूध याद आ गया होगा।" उठकर बैठते हुए जोर से अंगड़ाई ली पहले ने।[147]

अपने 'जीरो रोड़' उपन्यास में नासिरा जी ने विश्व के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्वरूप को पाठकों के समक्ष रखा है। यह उपन्यास एक वैश्विक गाँव (ग्लोबल विलेज़) दुबई की स्थिति को उजागर करता है। दुबई एक औद्योगिक एवं व्यापारिक शहर है। यहाँ सैंकड़ों राष्ट्रों के लोग अपनी रोजी–रोटी के जुगाड़ में आते हैं। भारत में भी हालात से उखड़े हुए लोग मजदूरी के लिए मध्यपूर्वी देशों की ओर जाने लगे हैं ताकि उनके घर का कर्ज चुक सके, गिरवी रखे खेतों को छुड़ा सकें, बहन–भाईयों की शादी हो सके। लेकिन दुबई में पहुँचकर वे दोहरी मार झेलते हैं। यह हसीन शहर वास्तव में ताजिरों और मज़दूरों का है। लेकिन ताजिरों के लिए जन्नत है और मज़दूरों के लिए नरक। उनके रहन–सहन की स्थिति बेहद तकलीफदेह की होती है। सिद्धार्थ देखता है कि "वहाँ सौ कनटेनर लाईन से लगे थे जिसमें दो हजार मजदूर जगह–जगह से आकर रह रहे थे। कनटेनर जो चालीस फीट लंबे 7.6 फीट चौड़े और आठ फीट ऊँचे थे, जिसके दो हिस्से करके हर हिस्से में आठ लोगों को रहना पड़ता था। उसी में ए.सी. लगे थे। आग बुझाने का सिलेण्डर मौजूद था। बाथरूम और किचन भी। सडी गर्मी, ढेरों लोग, अजीब हालात थी।"[148]

कंपनी मालिक लेबर लॉ को ताक पर रखकर मजदूरों से ऑवर टाईम तक काम करवाते हैं। गर्मी से चक्कर आ जाए, आदमी बेहोश हो जाए, उल्टी कर दे तो भी इन मालिकों का दिल नहीं पसीजता। आधे दिन की छुट्टी तो दूर आधे घंटे की भी छुट्टी नहीं देते। क्रोध में आकर एक

मजदूर कहता है– "अब हमको चू........बनाने के लिए पाँच दिन काम और दो दिन की छुट्टी देने की बात कर रहे हैं। वह भी काम के घंटे बढ़ाके। तुम खुद सोचो, सुबह साढ़े छह से साढ़े तीन बजे तक बिना सुस्ताये हम बेदम हो जाते हैं। साला हमें लोहे का समझा है जो अब हमसे साढ़े छह से साढ़े पाँच तक काम करने की बात कर रहे हैं।"[149]

पेट की आग व्यक्ति को कुछ भी करने को विवश कर देती है। जब बात पेट की हो और जीवन–मरण का प्रश्न हो तो उस समय नैतिकता के मायने बदल जाते हैं। बस आपद्धर्म ही दिखाई पड़ता है। 'सात नदियाँ एक समंदर' और 'अजनबी जज़ीरा' इन दोनों औपन्यासिक रचनाओं में यही सब कुछ दिखलाया है। व्यक्ति न चाहते हुए भी वह काम कर बैठता है जो समाज की नजरों में गलत है, अपराध है, बदचलन है किन्तु उस स्थिति को जो जीता है, वही जान सकता है कि यह अपराध नहीं अपितु पेट की आग की तपन है तो सही नहीं जाती। विदेशी सेनाओं के आक्रमण और बम हमलों से ईराक पूरी तरह तहस–नहस हो जाता है। फौजी शासन के तले लोगों को जरूरत की चीजों के लिए घरेलू सामान बेचना पड़ता है। अधिकांश ईराकी समर्थक मारे जा चुके हैं। काम–धन्धे सब चौपट हैं। लोग घरों–मकानों की खिडकियों तक को बेच कर जरूरत का सामान कहें तो खाने की वस्तुऐं खरीदकर गुजर–बसर करते हैं। ऐसे भीषण समय में जब एक बूढ़ी औरत जो अपने दो छोटे नवासों की एकमात्र संरक्षक है, ने बच्चों की भूख को शांत करने के लिए बाजार में दो कुब्बे (रोटी) छुपाकर अपने अबा में डाल ली और पकड़ी गई। तब वह समीरा से अपना दुःखड़ा रोती हुई कहती है कि "मेरे दो नवासे हैं, कल से भूखे हैं, चारा क्या था मेरे पास?"[150] यह औरत भी इस समय दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही है क्योंकि जो समर्थ थे, जिनके पास पैसा था, वे तो विदेशों में पलायन कर गये। बचे हैं तो केवल बिबस व लाचार लोग।

लेखिका इसी सत्य को पुनः समीरा के मुँह से कहलवाती हैं– "युद्धग्रस्त समाज की कठिनाइयाँ कितनी नई परेशानियों से हमारा परिचय कराती हैं तब पेट के आगे बदन बेचना, यहाँ तक कि अपने बच्चों तक को बेचना मुश्किल काम नहीं लगता बल्कि मौत को नज़दीक पाकर जीने की तमन्ना ज्यादा बढ़ जाती है, मुझे ही देखो, जवान बेटियों की भूख के आगे मैं अपनी भूख को दबा नहीं पाती.......।"[151]...... "जिस्मफरोशी से मुझे हालात ने महफूज रखा वरना वह भी मुझे करना पड़ता........हालात अच्छाई और बुराई के मायने बदलकर रख देते हैं.........पेट भरे लोगों के लिए उँगली उठाना कितना आसान होता है मगर भूखे के लिए रोटी हर फ़लसफ़े से बढ़कर अहम हो उठती है।"[152]

इसके अतिरिक्त दलित वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करने वाली उत्पीड़ित नारी का चित्रांकन अन्तिम बिन्दु में है– "लेकिन इन सब बदहालियों, गरीबी, लाचारी, अत्याचार, अन्याय, शोषण और

उत्पीड़न के बीच पाठकों को खड़ा कर लेखिका उनको एक आशा की चिनगारी व रोशनी भी दिखलाती हैं। वे कहती हैं तथा अपनी रचनाओं के कुछ चरित्रों द्वारा समझाती हैं कि इस विकृत मानसिकता और अमानवीयता से छुटकारा इसी समाज के युवकों द्वारा संभव है। आज की युवा पीढ़ी की सोच धीरे–धीरे बदलने लगी है। यदि इसको समाज का साथ मिले और प्रशासन सहारा बने तो दलित वर्ग शोषण व अत्याचारों से मुक्त हो सकता है। अक्षयवट के जहीर और उसके साथी, कुइयाँजान के डॉ. कमाल और समीना, ठीकरे की मंगनी की महरुख़, दूसरी जन्नत की रुख़साना ऐसे ही नव–युवकों व नई पीढ़ी का प्रतीक हैं जो अपनी–अपनी तरह से समाज को बदलने की चेष्टा करते हैं, समाज में व्याप्त शोषण, गरीबी, अत्याचार व अन्याय को दूर भगाना चाहते हैं। यदि समाज ऐसे पात्रों से प्रेरणा लेकर तथा सबको साथ लेकर चलने की चेष्टा करे तो निश्चित ही एक सुनहरे भारत का निर्माण हो जायेगा।"

7. नारी–चेतना

किसी भी समाज की प्रगति का मानदण्ड नारी की स्थिति से आँका जा सकता है। यह मान्यता सहसा चौंकाने वाली लग सकती है किन्तु किंचित् गंभीरता से विचार करेंगे तो पाएँगे कि उन्नत समाज की प्राथमिक बुनियाद स्वतन्त्र, शिक्षित, आत्मनिर्भर और संस्कारित औरत है, क्योंकि उस पर प्रत्येक नयी पीढ़ी को सँवारने का दायित्व होता है। वह देश के भविष्यत नागरिक, बच्चे को शिक्षा, व्यक्तित्व व संस्कार देती है।

इसी कारण बिना नारी के काव्ययोजना की परिकल्पना असम्भव है। भले ही वह सौंदर्य का अध्याय हो अथवा प्रेम की परिणति। नारी पात्र के बिना सब कुछ अपूर्ण है। नारी के अनेक रूप हमें काव्यलेखन में दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं नारी विरहिणी के रूप में अश्रु प्लावन करती है तो कहीं संयोग में रति बन जाती है। कहीं क्रोध में दुर्गा तो प्रेम में मीरा का रूप धारण कर लेती है। यदि वह विवश है तो स्वतन्त्र भी है। यदि कहीं निरूपाय है तो कहीं शक्तिपु×ज भी। इस प्रकार कभी–कभी वह अपने पारम्परिक रूप का परित्याग करने को भी उद्यत हो जाती है और कभी अपनी वेदना को हृदय में छुपाकर मुस्कराती है। इस प्रकार अपने बहुआयामी चरित्र और व्यक्तित्व से सम्पूर्ण काव्य–जगत् पर नारी ने सदैव से दस्तक दी है।

'वागर्थाविवसम्पृक्तौ'[153] कहकर कालिदास तथा 'गिरा अर्थ जल बीचि सम'[154] द्वारा तुलसीदास जी यही कहना चाहते हैं कि पुरुष तथा नारी की वैवर्तिक भूमिकाएँ देश, काल, समाज, संस्कृति, परिस्थिति सापेक्ष भिन्न हो सकती हैं किन्तु उन्हें सिद्धान्ततः अद्वैतभाव प्राकृतिक रूप से प्राप्त है। नारी चेतना की दृष्टि से प्रायः तीन आयामों पर विचार करना समुचित प्रतीत होता है–

(i) नारी की वैदिक काल से लेकर आज तक की जीवन–यात्रा का सर्वेक्षण करना।

(ii) वर्तमान समय में नारी–जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा लोकतान्त्रिक आदि विविध पक्षों की समीक्षा करना।

(iii) नित–नये सोपानों को पार करती हुई उसके कदमों में स्फूर्तिदायक शक्ति भरना।

भारतीय संस्कृति स्त्री एवं पुरुष को समान महत्ता देती आई है परन्तु युग–प्रभाववश स्त्री की स्थिति पतित होती चली गई। इस पतन के पीछे विविध कारक और परिस्थितियाँ रहीं। धीरे–धीरे नारी की कोमलता को उसकी कमजोरी मानते हुए उसे मानवोचित पद से पतित कर, उसकी क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को क्षीण कर मानव सभ्यता के आधे भाग को जीर्ण–शीर्ण एवं खोखला कर दिया गया। इस प्रकार पूरी दुनियाँ को अपने भीतर आकार प्रदान करने वाली उसको परवरिश एवं संस्कार देने वाली स्त्री को भावहीन एवं पाषाण–शिला बनाने का प्रयास किया गया। यह प्रयास एक सामाजिक विकृति का रूप धारण कर गर्भ से लेकर कब्र तक स्त्री के साथ अन्याय का आधार बना। इस सामाजिक संरचनागत दोष के कारण कन्याभ्रूण–हत्या, लिंग–भेद, बालिका–अशिक्षा, बाल–विवाह, यौन–उत्पीड़न एवं दुराचार, बहु–विवाह, वन्ध्यत्व की अवधारणा, वैधव्य जीवन की भयावहता, वेश्यावृत्ति, सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा तथा स्त्री के भोग्या स्वरूप की अवधारणा जैसे विकार उत्पन्न होते चले गए।

समकालीन समाज सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं को सुरक्षित रखते हुए स्त्री के अस्तित्व के लिए तथा उसकी स्थिति में सुधार लाने हेतु निरन्तर प्रयासरत है। स्वाधीन भारत में स्त्री पुरुष को समान संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए है, परन्तु अवसर, स्थान, सुविधा एवं अधिकार प्राप्ति की दृष्टि से वह समाज में अभी भी कमजोर स्थिति में है।

'साहित्य समाज का दर्पण है' इस उक्ति के अनुसार साहित्य में दर्पण की भाँति समग्र संसार प्रतिबिम्बित होता है। तदनुसार समाज में विद्यमान स्त्री–पुरुष विषयक विचलन भी एक संवेदनशील साहित्यकार की दृष्टि से बचा नहीं रह सकता। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री–विमर्श अथवा नारी–चेतना की बात करना साहित्यकार का लोकधर्म है। यहाँ विषय पर आने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि नारी–चेतना का स्वरूप क्या है?

साहित्य लेखन में नारी–चेतना के लिए, नारीवाद, नारी–विमर्श या स्त्री–विमर्श इत्यादि अनेक शब्द उपलब्ध हैं। रचनाकारों ने इसे अपनी–अपनी नजरों से देखने का प्रयास किया है और इसे अपने–अपने अनुसार शब्दों में रूपायित किया है। विभा रानी श्रीवास्तव के अनुसार "विमर्श का शाब्दिक अर्थ लिया जाये तो सलाह (परामर्श).....नारी विमर्श पश्चिमी देशों से आयातित और

अमेरिका में उन्नीसवीं शताब्दी में फेमिनिस्ट मूवमेंट से इसकी शुरुआत हुई। यह आन्दोलन लैंगिक समानता के साथ–साथ समाज में बराबरी के हक के लिए एक संघर्ष था, जो राजनीति से होते हुए साहित्य, कला एवं संस्कृति तक आ पहुँचा, बाद में यह आन्दोलन विश्व के कई देशों से होता हुआ भारत तक पहुँचा।"[155]

पल्लवी सक्सेना के अनुसार "समाज में नारी के प्रति जाग्रति लाना तथा नारी के अस्तित्व को, पहचान को स्थापित करने के प्रयास को ही नारीवाद अथवा नारी–विमर्श कहा जाता है।"[156]

गुंजन झाझरिया 'गुंज' के शब्दों में "नारी–विमर्श क्या है? पुरुष की नजर में कहूँ तो इस विमर्श का सम्बन्ध नारी–सौंदर्य, नारी का पहनावा, नारी–उत्पीड़न, नारी का दुःख, नारी की कमजोरियों से ही होता है और नारी की नजर में नारी–विमर्श का सीधा सम्बन्ध अपनी शक्तियों से परिचित करवाने से हैं।"[157]

सुनीता पाण्डेय इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करती हुई कहती हैं कि "जब कहीं नारी–विमर्श की बात चलती है तो वहाँ अत्याचार चाहे स्त्री द्वारा हो या पुरुष द्वारा, सिर्फ नारी पर होते अत्याचार की बात ही सामने आती है। बहुत कम जगहों पर नारी उत्थान की बात उसमें शामिल होती है और इस प्रकार चर्चा अधूरी रह जाती है।"[158]

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के प्रमुख कवि, प्रखर चिन्तक एवं क्रान्तिकारी लेखक डॉ. हर्षदेव माधव जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' में नारी–चेतना या नारीवाद का निरुपण करते हुए लिखते हैं कि 'नारी चेतना और नारी–संवेदना नारीवाद हैं।

"नारीचेतना नारीसंवेदना च नारीवादः।।"[159]

इस सूत्र की वृत्ति में वे नारीवाद पर विस्तृत दृष्टि डालते हुए लिखते हैं कि करुणा–उपेक्षा से जन्मा नारीवाद मानता है कि पुरुष शासित भाषाओं से नारियों का शोषण हुआ है। नारीवाद पुरुष प्रभुत्व वाली संस्कृति की निन्दा करता है। ऋतुधर्म, गर्भाधान, प्रसवपीड़ाओं का अनुभव महिलाएँ ही करती हैं। उनके भावावेग पुरुषों से सर्वथा ही भिन्न हैं। धर्मों में भी महिला विरुद्ध तत्त्व त्याज्य हैं। साहित्य में नारी संवेदनायुक्त कृतियाँ रची जा रही हैं। नारी के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव प्रयोजन है। नारी–पीड़ा के प्रति करुणा 'नारी संवेदना' कही जाती है, किन्तु जब नारी स्वयं अपनी भावनाओं को रचती है, तब वह 'नारी–चेतना' होती है। नारी मीमांसा वहाँ जुड़ी हुई है.........। समाज और परिवार में पितृ–प्रधान मूल्यों का अस्वीकार, सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान महिलाओं के अधिकारों की स्वीकृति, स्त्रियों में आत्मगौरव का जागरण, उनके प्रति किये जाने वाले अत्याचार, अपमान, शोषण आदि का प्रतिरोध–ये नारीवाद के प्रमुख लक्षण हैं।

आज नारी–चेतना पर पूर्ण गम्भीरता और परिपक्वता के साथ लिखा जा रहा है। अधिकांश लोगों का मानना है कि वर्तमान नारी–लेखन पश्चिमी लेखिकाओं के साहित्य का परिशिष्ट है जिसके मूल में पश्चिम के नारी–मुक्ति आंदोलन की प्रेरणा है किन्तु नासिरा शर्मा इस भ्रम को तोड़ती हैं ओर यह सिद्ध करती हैं कि हिंदी लेखिकाएँ अपनी ज़मीन खुद बना रहीं हैं और इसके लिए संघर्षरत हैं। नासिरा जी ने नारी–जीवन से जुड़े उन ज्वलन्त प्रश्नों को उठाया है, जो उसकी प्रगति के रास्ते में रोड़ा बन कर खड़े हैं।

इस सम्बन्ध में डॉ. मेराज अहमद अपने एक लेख में लिखते हैं कि "अपने अनवरत लेखन के अनंतर उन्होंने नारी जीवन के विविध आयामों को बड़ी गहराई के साथ समझा, जाँचा–परखा फिर उसे अभिव्यक्त किया है। इस क्रम में उन्होंने एक से बढ़कर एक क़द्दावर नारी चरित्रों का सृजन किया है। यद्यपि नासिरा जी लेखन को स्त्री–लेखन और नारी विमर्श के विशेषण के द्वारा सीमित करने के पक्ष में नहीं, लेकिन उनकी सृजन–प्रक्रिया में स्त्री का वह रूप उभरकर सामने आया है जो उसकी ताक़त की पहचान करके उसकी अस्मिता को स्थापित करता है।"[160]

स्त्री मुक्ति या नारीवाद के सम्बन्ध में एक साक्षात्कार के दौरान अपना मन्तव्य स्पष्ट करती हुई स्वयं नासिरा जी कहती हैं कि "यह सिर्फ प्रतिक्रियावाद से संभव नहीं है कि सदियों पहले से चली आ रही नारी अब बदला ले। उसकी पूरी जिंदगी को बड़ी संजीदगी से देखना होगा, क्योंकि अभी औरत के पास विद्रोह की दृष्टि के विकास की थीसिस और जीवन का लक्ष्य ही स्पष्ट नहीं है। मैं नारी के पक्ष में खड़ी हूँ, क्योंकि मैं खुद नारी हूँ लेकिन नारीवाद होने का अर्थ प्रोग्रेसिव होना नहीं है।

जहाँ तक नारीवादी होने की बात है उसकी पहली शर्त है कि वह अपने द्वारा पैदा किए गए बच्चे को अपने खिलाफ न खड़ा करे, बल्कि उसे औरत के प्रति दृष्टिकोण को समझाए, तभी मानव की महत्ता को पाया जा सकता है। इसलिए मानवतावादी होना नारीवादी होने से ज्यादा बेहतर समझती हूँ।"[161]

स्वयं के स्त्रीवादी सम्बन्धी प्रश्न के प्रत्युत्तर में वे पुनः अपना मन्तव्य रखती हुई कहती हैं कि "हाँ, गलत समझे जाने का खतरा उठाकर भी मैं फिर कहना चाहूँगी कि मैं स्त्रीवादी नहीं हूँ, न ही सिर्फ स्त्रियाँ मेरे लेखन के केन्द्र में रही हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि मुझे नहीं लगता कि स्त्री की समस्याएँ–उनका रूप कुछ भी हो–सिर्फ स्त्री की समस्याएँ हैं। वे सीधे–सीधे हमारी समूची सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं और उन्हें सीमित दायरे में देखने की जगह व्यापक संदर्भों में देखा जाना चाहिए। इसलिए मैं जो कुछ भी लिखती हूँ, इनसान के लिए, मानवमात्र के लिए और कहती हूँ कि लेखन को खानों में मत बांटिए और चीजों को खुले नजरिए से देखिए,

इनसानी समझदारी के साथ.....इसके उलट स्त्रीवादी लेखन के साथ समस्या यह है कि वह एकदम एकतरफा हो रहा है। स्त्रीवादी होने के नाम पर लोग व्यक्तिवादी हो रहे हैं। इस कारण स्त्रीवादी के नाम पर जिस तरह की स्त्रियों को सामने लाया जा रहा है, मैं उन्हें 'एप्रीशिएट नहीं करती।"[162]

अपने इसी नजरिए को लेखिका ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में उतारा है। जब 'शाल्मली' उपन्यास में नरेश के द्वारा प्रताड़ित 'शाल्मली' को उसकी साथी 'सरोज' उसको तलाक लेने की सलाह देती है तब शाल्मली के मना करने पर वह उसे पूछती है कि "दूसरे शब्दों में मैं यह अर्थ लगाऊँ कि तुम पुरुष समाज की दासी बनकर और जीना चाहती हो?" इसके जवाब में शाल्मली के द्वारा अपना रुख स्पष्ट करती है "तुम्हारी सोच तो केवल एक मुद्दे पर आकर जड़ हो गई है। मेरा यह अर्थ हरगिज नहीं है। मैं पहले भी कई बार कह चुकी हूँ कि मेरे मन–मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है, फिर एक बार मैं बता दूँ कि मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है।...........तुम्हारे सामने समस्या केवल पति से निपटने और उससे मुक्त होने की है, मगर मेरी नजर में सही नारी मुक्ति और स्वतन्त्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुम से टकराएगा। चाहे वह सब्जीवाला हो या तुम्हारा बॉस, अखबार वाला हो या तुम्हारा पति। संक्षेप में होगा वह पुरुष ही। पति से मुक्ति पाकर क्या इनसे भी मुक्ति पा लोगी? या सबको नकारती चली जाओगी?"[163]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नासिरा शर्मा स्त्रीवाद या नारीवाद के नाम पर स्वयं को बांधने की बजाय स्वयं को एक इनसानियत की पक्षधर और मानवतावादी लेखक मानती हैं। उनके साहित्य में स्त्री पर होने वाले अत्याचारों, अन्यायों व शोषण के तरीकों का बड़ी मुखरता से वर्णन किया है लेकिन कहीं भी पुरुष–नारी को एक–दूसरे के प्रतिरोध में खड़ा नहीं किया है। वे समाज को तोड़ने की बजाय जोड़ने की बात करती हैं। डॉ. आदित्य प्रचंडिया इसी बात को स्पष्ट करते हुए अपने एक लेख में लिखते हैं कि "नारी मनोविज्ञान का सफल चित्रण करने वाली एवं नारी जीवन के आधुनिक यथार्थ का सही मूल्यांकन करने वाली नासिरा शर्मा वर्तमान युग की सिद्ध–प्रसिद्ध कथाकार हैं। उनके उपन्यास 'नारी लेखिका होने की रियासत' बिलकुल नहीं चाहते। नैतिक–अनैतिक से परे यथार्थ निर्भ्रांत निगाहों से देखते जाना उन्हें नया और आधुनिक बनाता है।"[164]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में लेखिका ने मुस्लिम परिवार की एक शिक्षित लड़की के सौम्यतापूर्णविद्रोह को प्रस्तुत किया है जो अपने मंगेतर, अपने परिवार, माँ की अभिलाषाओं तथा

आकांक्षाओं को दरकिनार कर एक गाँव में साधारण शिक्षिका के रूप में अकेले अपना जीवन–बसर करती है। सब कुछ इतने सहज रूप में जैसे उसके साथ कुछ घटित ही नहीं हुआ हो। उपन्यास के प्रारम्भ में लेखकीय 'कथन' में स्वयं लेखिका ही कहती हैं कि "हालात की मार से पैदा हुई एक लड़की 'महरुख़' की यह कहानी है और दूसरी तरफ़ यह कहानी रफ़त भाई की भी है, मगर दोनों में जो बुनियादी फ़र्क है, वह नजरिए का है। हालात प्रत्येक व्यक्ति को एक बार ज़िन्दगी के चौराहे पर लाकर खड़ा कर देते हैं और यही समय होता है, जहाँ पर पहुँच कर इन्सान अपना रास्ता चुनता है। कुछ अपने को हालात के हवाले कर देते हैं, कुछ सर झुका देते हैं, कुछ अपने को मिटा देते हैं और कुछ इस टूटन को नया अर्थ देकर यह बताते हैं कि यही जीवन का अन्तिम चौराहा नहीं है, इस लम्बी ज़िन्दगी में बहुत सारे चौराहे आपको मिलेंगे और यह आप होंगे, जो अपने रास्ते को पहचानते नाक की सीध में चलते हुए अपनी मंजिल पर पहुँचेंगे। इन्हीं रास्तों पर चलने वाला पात्र है 'महरुख़' जो ज़िन्दगी को अपने नजरिए से देखकर उसको एक पहचान, एक अर्थ देती हुई जनसमुदाय की आवाज़ में उदय होती है।"[165]

जैदी खानदान में चार पुश्तों के बाद जब महरुख का जन्म हुआ तो सबके दिल खुशी से झूम उठते हैं। सब अपनी–अपनी तरह से खुशियाँ मनाते हैं। तब लेखिका परिवारजनों के पारस्परिक संवाद द्वारा घर, परिवार, समाज तथा समूची दुनियाँ में एक लड़की का महत्त्व बताती है। संवाद के कुछ अंश निम्न प्रकार हैं– "सच कहा है किसी ने, लड़की घर की बरकत होती है।"[166], "बरकत की खूब कही। सच पूछो तो नगर की रौनक़ और दुनिया की आबादी इन्हीं के दम से है।"[167] इत्यादि।

किन्तु ज्यों–ज्यों महरुख़ बड़ी होने लगती हैं, उस पर एक लड़की होने के नाते तरह–तरह की पाबंदियाँ लगाना शुरू कर देते हैं। जो समाज में प्रचलित लड़के व लड़की के पालन–पोषण के भेदभाव को दर्शाता है। दादाजी के जीते जी महरुख़ ने पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ जीवन जिया लेकिन दादाजी की मृत्यु के बाद दादाजी परिवारजनों के समक्ष स्वयं को बेबस महसूस करती है– "महरुख़ की हुकूमत खत्म हो गई थी, यह बात दादी समझ चुकी थीं, मगर इस हक़ीकत को वह महरुख़ को नहीं समझा सकती थीं, जो मौत का मतलब तो समझती नहीं सल्तनत के उजड़ने का मतलब क्या समझती?"[168]

'ठीकरे की मंगनी' इस शीर्षक द्वारा ही लेखिका पाठकों को बताती हैं कि समाज में लड़कियों को आज भी पूरी तरह स्वतन्त्रता नहीं है। लड़कियाँ अपनी मर्जी से अपना जीवन–साथी चुनने के लिए भी स्वयं को परवश महसूस करती हैं। साथ ही समाज के वर्गों में प्रचलित बाल–विवाह की ओर भी संकेत मिलता है कि ऐसे रिश्ते आगे चलकर सम्बन्धों में दूरियों का कारण बन जाते हैं। साथ ही समाज की उन दुर्व्यस्थाओं की ओर भी हमारा ध्यान खींचती हैं

जिनके कारण तंग आकर माँ–बाप जल्दी से जल्दी अपनी बेटियों के हाथ पीले कर स्वयं को खुशनसीब समझते हैं। बचपन में हुई 'ठीकरे की मंगनी' की बात जब महरुख़ को अपनी नानी और उनकी पडोसन के मध्य हुए वार्तालाप से पता चलती है तो वह मन ही मन आक्रोश से भर उठती है और आकर अपनी दादी से प्रश्नों की बौझार कर देती है– "दद्दा, आपने हमें बताया नहीं? घर लौटकर जब महरूख़ आई, तो दादी से शिकायत–भरे लहजे में पूछा, जिसमें हक़ीक़त जान लेने की बेचैनी भी छिपी हुई थी।"[169]

'शाल्मली' उपन्यास की शाल्मली के साथ भी यही सब घटित हुआ। वह अपने पैरों पर खड़ी होने से पूर्व ही माँ दबाव में ब्याह दी गई। पिता के बार–बार समझाने पर भी शाल्मली की माँ नहीं मानती थी। उसे बस 'शाल्मली' की शादी के अलावा कुछ सूझता भी नहीं था। माँ–बाप के संवाद के कुछ अंश इस प्रकार हैं– "जवान लड़की घर में बैठी हो, तो किस माँ को नींद आएगी?" अकसर रात के अंधेरे में वह मां की फुसफुसाहट सुनती। "कितनी बार कहा कि शाल्मली केवल बेटी नहीं, बेटा भी है। ऐसी लड़की के विवाह की चिन्ता......?" पिता हंस पड़ते।

"बेटा, बेटी जो भी उसे समझो तुम, मैं नहीं रोकती, मगर, मेरी नजर में वह लड़की है और उसके हाथ पीले करने हैं।" मां उकताहट भरे लहजे से कहतीं।........

"औरत की वही पहचान है।" मां दार्शनिक अंदाज में कहती।...........

"देख रहा हूँ। मुझे भी बेटी की चिन्ता है। तुम्हारी तरह मुंह से नहीं कहता, तो तुम समझती हो कि मैं चिन्ता मुक्त हूँ।" पिताजी चिढ़ गए थे।

"मेरी इच्छा है कि लड़का भी देखते जाओ और इस बीच यह जितना पढ़ना चाहे, पढ़ती जाए, जैसे ही लड़का अच्छा मिला, मैं इसको ब्याहने के पक्ष में हूँ। तुम्हारी एक नहीं सुनूंगी।" मां ने फैसला सुनाया।"[170]

यही सब 'सात नदियाँ : एक समंदर' की महनाज़ के साथ घटता है। उसके माँ–बाप भी महनाज़ के साथ उसके रिश्ते के सम्बन्ध में बात एक करना मुनासिब नहीं समझते। वे आपस में बातचीत करते हुए कहते हैं–

"तुम्हें कुछ अंदाज़ा लगा?"

"मुझे लगता है, महनाज़ को सुलेमान पसंद है।"

"तो फिर मैं अख़्तर मिर्जा से कह देता हूँ। मुझे भी यक़ीन हो गया है। अब तो पूछना भी बेकार है महनाज़ से।"

"पूछना क्या है! सुलेमान में कमी क्या है?"[171]

बालविवाह एक सामाजिक बुराई ही नहीं बल्कि अपराध है। इसके परिणामों से अवगत करवाती हुई लेखिका अमजद से कहलवाती है कि "इसलिए अब्बू मरहूम बचपन में तय शादियों के खिलाफ़ थे। एक बन्दिश–सी हो जाती है। जब़ान और क़ौल देकर आदमी फंस जाता है। मेरा कहने का मतलब है, इस चक्कर में अच्छे रिश्ते भी लौट जाते हैं।"[172]

आज स्त्री के जीवन में जो कुछ भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है, घर–दफ़्तर दोनों को सँभल रही है, अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है, स्वाभिमान और आत्मविश्वास से भरपूर नजर आने लगी है, इन सब के पीछे 'शिक्षा' है। जैसे–जैसे बालिका–शिक्षा को प्रोत्साहन मिला है, वैसे–वैसे ये बदलाव नजर आने लगे हैं। रफ़त भाई के द्वारा महरुख़ को शादी से पहले ही अपने साथ दिल्ली ले जाकर आगे की पढ़ाई करवाने की बात पर घर में एक तूफान सा उठ खड़ा होता है। सभी का कहना है कि पहले दोनों की शादी करें फिर साथ जाने में कोई हर्ज नहीं किन्तु रफ़त भाई पहले पढ़ाई पर जोर देता है तब महरूख़ की अम्मी अपने पति से कहती है कि "मैं औरत हूँ, खूब अच्छी तरह से जानती हूँ कि इस नए दौर में औरत के लिए मज़बूती क्या होनी चाहिए। जमाने के कहने से क्या हमने लड़कियाँ स्कूल से निकलवा ली थीं? अपने ही दोस्त के घर नजर डालो, नसरीन के मियां ने छोड़कर दूसरी कर ली। बीवी चुपचाप मायके आन बैठी। उसी जगह सालेहा को देखो, पढ़ी–लिखी है, मियां को नकेल घसीटकर रखती है। कहने को दोनों चचाज़ाद बहनें हैं, एक ख़ानदान, एक माहौल और एक तरह की परवरिश, मगर तालीम से समझ तो बढ़ी, अपना हक तो पहचाना–ग़लत तेज़ी की तरफ़दार तो मैं भी नहीं हूँ, मगर लड़की अपना अच्छा–बुरा समझे यह अक़्ल तो तालीम ही दे सकती है।"[173]

इसी तरह महरुख़ की दादी भी समझाती हुई कहती है कि "वह जमाना कब का लद चुका है, जब औरत नए–नए पकवान बनाकर, ससुराल वालों की खिदमत करके मियां का दिल जीतती थीं, आज तो उसे इन सबके साथ बाहरी दुनियां में भी अपने पैर जमाने हैं। घर–बाहर दोनों जगह अपनी खूबी का सिक्का जमाना होता है, फिर पढ़ी–लिखी लड़कियाँ किसी पर बोझ बनकर नहीं रहतीं, बल्कि गिरे वक़्त में घर को मर्द की तरह संभालती भी हैं।"[174]

नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में शाल्मली, महरुख़, समीना, रुख़साना जैसे स्त्री पात्रों के माध्यम से पाठकों को समझाया है कि शिक्षित स्त्री समाज को बेहतर दशा और दिशा दे सकती हैं। विपरीत परिस्थितियों में वह खुद को और दूसरों को बेहतर तरीके से संभाल सकती है। एक शिक्षित नारी में एक भरपूर ऊर्जा और आत्मविश्वास देखने को मिलता है। वह अन्याय और अत्याचार का प्रतिरोध कर सकती है। साथ ही गृहस्थ व समाज हित के कार्यों में पति का बखूबी साथ दे सकती है।

महरुख़ को रफ़त भाई के बारे में पता चलता है कि उसने विदेश में 'वैलरी' नाम की महिला को अपनी पत्नी बनाकर रखा है तो महरुख़ बहुत टूट जाती है तथा अपनी पीएच.डी. को अधूरा छोड़ एक गाँव के स्कूल में अध्यापिका की नौकरी करने लगती है। घर वालों व रफ़त भाई के द्वारा समझाने पर भी वह रफ़त भाई के साथ शादी से स्पष्ट मना कर देती है। वह रफ़त भाई से स्पष्ट कहती है कि "घर का मतलब अगर ईंट, गारे, पत्थर की चहारदीवारी होता है और शौहर का मतलब जिन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों का ज़रिया, तो फिर वे दोनों चीजें मेरे पास हैं। यह दीवारें और नौकरी जो मेरा सहारा हैं।"[175].......... "यह नौकरी, जो मेरी पहचान है, जो मेरा भविष्य और वर्तमान है।"[176]

इसी तरह जब सभी परिवारजन गाँव के पुश्तैनी मकान को बेचकर जाने लगते हैं, तब सभी महरुख़ के ठिकाने को लेकर चिन्तित होते हैं तथा उसे अपने साथ ले जाने के लिए कहते हैं। महरुख़ उनकी परेशानी को समझकर जो जवाब देती है, वह एक आधुनिक आत्मनिर्भर नारी का संदेश है। वह कहती है– "एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो.....।"[177]

'शाल्मली' उपन्यास में जब शाल्मली अपने पति नरेश से उसकी सैलरी के बारे में पूछती ताकि कार की किस्त, घर का किराया, बिजली के बिल, नौकरों की तनख्वाह, राशन–पानी इत्यादि का भुगतान किया जाए। लेकिन नरेश खर्च होना बताता है और पैसे देने से मना कर देता है। तब वह कहता है–

"कह दिया, नहीं.......मर्द बन रही हो, तो उठाओ बोझ सारा।"

"अच्छा, तो फिर तुम औरत बनकर मेरा हाथ तो बटाओ।"

शाल्मली बात को टालने के अन्दाज में हँसती हुई कहती है।

"मैं कमाता हूँ।"

"तो मैं भी कमाती हूँ।"[178]............

इसके अलावा जब नरेश कहता है कि तुम औरत हो, बातों की गहराई को नहीं समझती। तब वह गम्भीर होकर नरेश से कहती है– "एक तो तुम से विनम्र निवेदन है कि बार–बार औरत कहकर मुझ पर टीका टिप्पणी मत किया करो। दूसरे; औरत की अक्ल पर शक करना छोड़ दो। एक स्तर के बाद हम औरत–मर्द नहीं रह जाते हैं, बल्कि हमारा काम हमारी पहचान होती है, हमारी अक्ल हमारी कसौटी होती है।"[179]

एक नरेश से जो अपनी कमियों के छुपाने के लिए शाल्मली पर आरोप लगाता रहता है तो दूसरी तरफ 'दूसरी जन्नत' का शहाब है जो शादी से पूर्व किये वादे के मुताबिक रुख़साना के लिए क्लीनिक खोलकर उसके सपनो को साकार करता है। एक–दूसरे की भावनाओं को समझने पर उनका जीवन खुशहाल रहता है। जब रुख़साना कहती है कि "आप जानते हैं डॉक्टर की ज़िन्दगी दरअसल उसकी अपनी नहीं रहती है।" तब शहाब कहता है "तो क्या हुआ मैं और मेरा ख़ानदान हमेशा आपका बना रहेगा, बस और क्या कहूँ आपसे।"[180]

'कुइयाँजान' की समीना एक नायाब उदाहरण पेश करती है। वह अपने पति डॉ. कमाल के भलाई के कामों में हाथ बँटाने के लिए नौकरी करती है। वह सोचती है कि "मुझे 'मिस मेरी स्कूल' का वह ऑफर कुबूल कर लेना चाहिए, वरना बिना नौकरी के छोटी–छोटी जरूरतों के लिए मुझे बड़ी अम्मी के आगे हाथ फैलाना पड़ेगा। कमाल जो कमाते हैं वह मरीजों पर खर्च कर देते हैं। उन्हें मना करने का अर्थ है, नेकी से हाथ खींचना, जो मैं नहीं चाहती हूँ; मगर इस समस्या का तो हल करना पड़ेगा। माली तौर से जब तक हम मजबूत न होंगे, किसी भी शख्स की मदद सही तरीके से नहीं कर पाएंगे।"[181]

नारी–चरित्र के मनोवैज्ञानिक निरूपण में नासिरा जी अपने आपमें अद्‌भुत हैं। नारी–मनोविज्ञान को स्वानुभूति के रूप में ढालकर पूरी संवेदनशीलता और मार्मिक ढंग से उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है जिससे वे सीधे जाकर पाठक के हृदयगह्वर में प्रवेश कर जाती है। उनके उपन्यासों में नारी–मन के नवीन मत और पुरानी रुढ़ियों का चित्रण है, नारी की स्वतन्त्र भावुकता का निरूपण है तथा उन्होंने नारी मन की गहराईयों को समझा है। पत्नी, बहिन, माँ, दादी, नानी, सास, देवरानी, जेठानी, बुआ, सेविका इत्यादि अनेक रूपों में नारी–जीवन और उसकी मनोव्यथाओं एवं भावनाओं को चित्रित किया गया है। यहाँ 'ओदनभाण्डपरीक्षण' न्याय के अनुसार एक उदाहरण प्रस्तुत है जो नारी–मन की अभिव्यक्ति बहुत सुन्दर ढंग से करता है। जब 'शाल्मली' उपन्यास में नरेश अपनी पत्नी शाल्मली से कहता है कि "मैंने तुम्हें नौकरी करने की छूट दी, इसका यह अर्थ नहीं कि तुम अपने को पूर्ण स्वतन्त्र समझने लगो", "तुम्हें अधिकार देने वाला मैं हूँ, समझीं।" तब जो प्रत्युत्तर शाल्मली देती है, वह आम नारी की आवाज है– **"मैं तुम्हारी छाया, तुम्हारी प्रतिध्वनि, तुम्हारा विस्तार नहीं हूँ, नरेश! इस भ्रम में मैं नहीं जीती। इसे मेरी कमी कह लो या खूबी कि मैं अपनी अच्छाई और बुराई दोनों को जानती हूँ। यह भी जानती हूँ कि मैं कोरा कागज नहीं थी, जिस पर तुम अपने अधिकार का हस्ताक्षर कर सकते। मैं तो फुलवारी का वह रेखाचित्र थी, जिससे बचपन से पिताजी ने बड़े जतन से खींचा था। प्रत्येक रेखा में उनकी आत्मा का उजाला भरा है।..........मान लो आज मैं सारे जतन करके तुम्हारी दृष्टि को आँख बन्द करके अपना लूँ और एक लम्बे समय तक तुम्हारी खुशी के लिए अपन पिछला जीवन भूल जाऊँ।**

जब तुम्हारी मेहनत की महक की आदत पड़ जाएगी, तो एक दिन बेटा अपनी इच्छा के अनुसार मुझे ढालने की कोशिश करेगा। बताओं, हम औरतें क्या हैं? गीली मिट्टी? कितनी बार हम अपने को मिटाकर नए–नए रूप में ढलें? यानी हमारा कोई अस्तित्व नहीं, अधिकार नहीं, विवाह का अर्थ है, अपना जन्म स्थान भुला देना और एक मनुष्य की इच्छा और रूचि का दास बन जाना?"[182]

आज की नारी की स्थिति में कुछ बदलाव जरूर आये हैं परन्तु निम्न व गरीब तबके की स्त्रियों की दशा जस की तस है। समाज में अशिक्षा व जागरूकता के अभाव में वे अपने लोगों द्वारा तो शोषित होती ही हैं, अपितु उच्च व धनिक वर्गों के मर्दो के लिए तो वे खिलौना हैं। मर्जी आये तब उनके जज्बातों से खेल लिया, मर्जी आये तब उसे फैंक दिया या तोड़ दिया। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में पासी, चमार, धोबी आदि वर्गों की स्त्रियों की यही दशा बतलायी है। जब काशी घर लौटती बिन्दो को जबरन कमरे में घसीट कर ले जाता है और बिन्दो का भाई काशी की आँतड़ियाँ निकाल देता है तथा बिन्दो कुएँ में गिरकर आत्महत्या कर लेती है, तब बस्ती में डेरा डाले पुलिस वाले पासी टोले की लड़कियों को देखकर कहते हैं– "अब इनकी इज्जत भी बड़ी क़ीमती हो गई, गुरु।", "लौंडिया का जिगरा तो देखो, पूरा शरीफ़ों–सा व्यवहार। अरे बेकार पड़ी थी, काम में आ गई, तो कौन सी अपवित्र हो गई।"[183]

आज के दौर में यदि वास्तव में हम नारी को बराबरी का दर्जा देना चाहते हैं तो राजनीति में भी उसका बराबर का हिस्सा होना चाहिए। लेखिका महरुख़ के माध्यम से कहती हैं कि "राजनैतिक भागदारी तो औरत के बुनियादी अधिकारों में से एक है। एक ही घर का मर्द वोट डाले और औरत वोट न डाले, आखिर क्यों? शायद इसलिए कि मर्द सियासत लड़ाता है और औरत उसके बनाए क़ानून पर चलती है। सही और गल़त की कसौटी 'औरत' होती है, मजहब और रीति–रिवाजों की जिम्मेदार भी और होती है, राजनीतिक बदलाव को दर्शाने वाली भी औरत होती है। परिवार और कुल की मर्यादा औरत होती है। कुल मिलाकर इस दुनिया को जिन्दा रखने वाली शै भी औरत होती है, फिर औरत को इतनी हिकारत की नज़र से क्यों देखा जाता है? क्या सिर्फ़ इसलिए कि एक गुलाम, एक वेज़ुबान कनीज़ की जो आदत सदियों से पड़ गई है, उसे कोई छोड़ना नहीं चाहता है। वरना सम्बन्धों की तानाशाही किस पर चलेगी और तानाशाही का अपना एक मजा होता है। क्या स्वयं में यह दृष्टिकोण एक प्रकार की राजनीति नहीं है? फिर उससे औरत दूर क्यों रहे? उस राजनीति में उसका बराबर से हिस्सा होना चाहिए। उसकी माँग, जरूरत और पुकार को तभी दूसरा पक्ष समझ पायेगा।"[184]

इरानी क्रांति को जीवन्त करती हुई उनकी औपन्यासिक कृति 'सात नदियाँ : एक समंदर' में इमाम खुमैनी के शासनकाल में महिलाओं पर हुए अत्याचारों का लोमहर्षक वर्णन है। इस कृति में सात नदियों का प्रतीक सात सखियाँ–मलीहा, सूसन, परी, अख़्तर, सनोवर, तैय्यबा व महनाज

हैं। शाह को अपदस्थ करके इमाम खुमैनी धर्मरक्षक के रूप में ईरान की सत्ता पर काबिज हुआ। इस सत्ता परिवर्तन में महिलाओं की बहुत बड़ी भूमिका रही। स्वयं नासिरा जी ने उपन्यास के प्रारम्भ में 'दो शब्द' के रूप में अपना मन्तव्य रखते हुए लिखा है कि "इमाम खुमैनी ने कई बार अपने भाषणों में कहा कि यदि औरतें बँधी मुठ्ठी लिये बाहर न निकलतीं तो यह क्रांति वजूद में न आती; क्योंकि उन्होंने अपने मर्दों और बच्वें को शाही व्यवस्था के विरोध में एकजुट कर बग़ावत की आग उनके सीनों में भरी। यह सच 'अर्धसत्य' बना; क्योंकि शाही व्यवस्था इस्लामिक व्यवस्था में ज़रुर बदली, मगर वही औरत, जो पिछली व्यवस्था में प्रताड़ित थी, वह पहले से अधिक बुरी दशा को झेलने के लिए बाध्य हुई। उसकी उपयोगिता केवल नारे–जुलूस तक सीमित रख, उसे घर की चहारदीवारी में क़ैद कर, उसके लिए प्रत्येक क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण पदवी वर्जित बना दी गई।"[185]

खुमैनी के शासन में आते ही सम्पन्न परिवारों की इन युवतियों को अपनी उच्च शिक्षा बीच में ही छोड़नी पड़ी। अपनी प्रगतिशील सोच व विचारों के चलते इनको प्रताड़ित किया जाता है। अपने स्वतन्त्र लेखन के चलते तैय्यबा को तथा उसके साथियों को जेल में रुह कँपाने वाली यातानाएँ दी जाती हैं और अन्त में गोलियों से भून दिया जाता है। जो समर्थ थी उन्होंने ने विदेशों में शरण ले ली। औरतों का तरह–तरह से शारीरिक शोषण किया गया। धर्म के नाम पर लोगों को सजना–सँवरना बन्द करवा दिया गया। खुलेआम लूटमार मचती रही और इनसानियत मरती रही। आम इन्सान और औरतों का खुशहाल एवं लहलहाता जीवन एकाएक 'बहिश्त–ए–ज़हरा' में तब्दील होकर रह जाता है।

परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हो, सर्वाधिक प्रभावित होती है एक स्त्री। निजाम के गाँव छोड़कर पाकिस्तान चले जाने पर उसकी मँगेतर सुगरा की वेदना असहनीय हो जाती है वह शादी से बार–बार मना करती है परन्तु उसके घर वाले उसका ब्याह खुसरु के संग कर देते हैं। उसकी एक नहीं चलती है। उधर पुत्र–बिछोह में निजाम की मां चल बसती है। निजाम की सास बीमारी के कारण अपनी नवासी नाहिद का विवाह जल्दी से जल्दी देखना चाहती थी। जब निजाम कहता है कि शादी की क्या जल्दी है? अब जमाना बदल गया है, तब उसकी सास कहती है कि **"जमाना औरत के लिए हमेशा से एक ही रहता है। बेटे अच्छा लड़का मिलते ही ब्याह कर दो।"[186]** यह कथन नारी–जीवन से जुड़ा हुआ सार्वभौम सत्य है।

अपने 'कुइयाँजान' उपन्यास में लेखिका ने जहाँ डॉ. कमाल और समीना के माध्यम से आदर्श पति–पत्नी के सम्बन्ध से पाठकों को प्रेरित किया है, वहीं खुर्शीदाआरा और शकरआरा इन दोनों बहिनों के माध्यम से एक नारी का एक नारी के प्रति वैमनस्य दर्शाया गया है। शकरआरा धन–दौलत के घमण्ड में अपनी सगी बहिन खुर्शीदआरा को खरी–खोटी सुनाकर नीचा दिखाती रहती है।

स्त्री जीवन की भयावहता को उजागर करता यह सच कि अपना व अपने बच्चों व परिवार का भरण–पोषण करने के लिए स्त्री किस कदर देह व्यापार की ओर चली जाती है। 'अक्षयवट' की हंगामा बेगम अपने पति के मरने के बाद अपनी तीन लड़कियों को बचाने के लिए स्वयं अपने प्रति लोगों को आकर्षित करने लगती है। ठीक इसी तरह माली की पुत्री 'मुनिया' परिवार की स्थिति को सुधारने के लिए घरों में साफ–सफाई का काम करती हुई देह–व्यापार व अवैध सम्बन्धों का शिकार हो जाती है और पेट से होने पर एक दिन गली में किसी वाहन से कुचली लाश के रूप में मिलती है। लेखिका मुनिया के चरित्र से परिचय करवाती हुई लिखती हैं कि "मुनिया पन्द्रह–सोलह साल की एक सुन्दर लड़की थी, जिसका पिता माली था। मुनिया की माँ सारे दिन पालथी मारे बैठी गजरे गूँथा करती थी। कुछ दिनों से माली को लगने लगा था कि फूल के कारोबार से पेट नहीं भर पाएगा। मगर और जानता भी क्या काम था? इन्हीं दिनों जब माली परेशान था तो मुनिया ने घरों में काम करने की ठानी। मालिन ने मना किया मगर मुनिया अपने हठ पर अड़ी रही। साल भर तक खूब अच्छा चलता रहा। पैसा घर आया तो स्थिति भी सुधरी और मुनिया को थोड़ी सी स्वतन्त्रता भी मिल गयी।.........चौंकने वाली बात थी भी और नहीं भी। सिनेमा वह बेशक किसी के साथ भी देख सकती थी मगर जिसके साथ वह बैठी थी वह आदमी ठीक न था।"[187] इस वर्ग की विवशता को जहीर के मुँह से कहलवाती हुई लेखिका लिखती हैं कि "वे भी क्या करें? आसपास जो घट रहा है उससे कट तो नहीं सकती हैं। सिर्फ़ इसलिए कि वह निचले तबके की हैं या गरीब हैं और चारों ओर फैली सुख–सुविधाओं से वंचित हैं।..........जिन्हें इसकी पाने की ललक होती है, वह कुछ भी कर गुजरती हैं।"[188]

इसी विवशता और मजबूरी की मारी है 'रुया' और उसके जैसी अनेक निर्बल–बेबस औरतें। जो ईराक पर विदेशी सेनाओं के आक्रमण व बमबारी से तहस–नहस जीवन के चलते एक–एक निवाले के लिए तरस रही हैं। अपने बच्चों व परिवार का जीवन बचाने के लिए पेट क्या–क्या नहीं करवा देता हैं? न चाहते हुए भी व्यक्ति अपराध की ओर चल देता है। क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में नैतिकता–अनैतिकता के मायने बदल जाते हैं। 'रुया' अपनी स्थिति का बयान 'समीरा' से करती है कि "मैं अपना बदन नुचबाती हूँ.....अपने हम–शहरियों से.......और क्या करुँ, ईमान को लेकर चाटूँ या इस्मत को लेकर नाचूँ? देखो, अब मेरे पास इतने रियाल हैं कि मैं हफ़्ता आराम से गुज़ार सकूँ.......अल–बाक़र मुझे गाली देता है, बदकार और बेवफ़ा कहता है, शहवतरानी का इल्ज़ाम देता है, फिर मेरे पैरों पर गिरकर फूट–फूट कर रोता है जब इन पैसों से उसके पेट की आग बुझाती हूँ। उसके लिए पेनकिलर और मालिश का तेल ख़रीदती हूँ, ज़िन्दगी का इतना बदसूरत चेहरा देखने के हम हक़दार नहीं थे, जो हमने बोया नहीं वह हम क्यों काट रहे हैं।"[189]

इसके विपरीत ऐसे नारी–पात्र भी बखूबी चित्रित हैं जो विपरीत परिस्थितियों में भी रात–दिन संघर्षरत रहते हुए मेहनत करते हुए अपने परिवार को सँभालती हैं और अपने सम्मान

पर आँच नहीं आने देती हैं। 'अक्षयवट' में जहीर की दादी फिरोजजहाँ और माँ सिपतुन अपनी युवावस्था से ही वैधव्य जीवन जी रही हैं और परिवार को चलाने के लिए क्रमश प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना और सिलाई कार्य करना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार 'अजनबी जज़ीरा' की समीरा भी घर का हर छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा कीमती सामान बेचकर अपनी पाँचों बच्चियों को दुनियाँ की नज़रों से बचा पाती है और सबकी भूख मिटाती है तथा सबको एक सुखद जीवन देने में सफल भी होती है।

अपने उपन्यास 'कागज़ की नाव' के अनेक स्त्री–पात्रों द्वारा नारी–जीवन के नाना–नाना स्वरूपों से अवगत कराया है। महजबीं एक ऐसा स्त्री पात्र है जो आमिलों और तान्त्रिकों के चक्कर में पड़कर अपने घर की संयुक्त गृहस्थी को तो तोड़कर रख ही देती है और बेटियों के परिवारों पर भी जादू–टोना करवाने से नहीं चूकती। पर जब मियां अमजद की फटकार पाकर जब उसकी आँखें खुलती हैं तब वह आत्मग्लानि से भरकर समाज में मौजूद नारियों के विभिन्न चरित्रों के विषय में चर्चा के दौरान अपने मियां अमजद से कहती हैं– "मैंने अपनी लड़की को ग़लत रास्ता दिखाया। यह तो हुई एक ख़ास क़िस्म की औरत जो होश आने पर तौबा कर अपनी गलतियों को सुधार लेती है मगर सारी औरतें ऐसी नहीं होती हैं। बाहर शहरों या फिर अपने मोहल्ले–टोले वाली औरतों को जो देखती हूँ तो महसूस होता है कि औरतें तीन–चार तरह की होती हैं। पहली जो सिर्फ़ मुहब्बत देना जानती हैं, उनमें कुर्बानी, सब्र और सबको मिलाकर रखने की ललक होती है और इस ललक के चलते वे हर जुल्म–ज़्यादती को सह लेती हैं। दूसरी वे होती हैं जो ख़ुदग़र्ज़, नासमझ और जलन से भरी होती है। उन्हें सिर्फ़ वे ख़ुद दिखती हैं या फिर अपना शौहर और बच्चे, कभी–कभी वे शौहर को ठेंगे पर रख बच्चों तक को अपने फ़ायदे में भुना लेती हैं। तीसरे क़िस्म की औरतें बड़ी चालाक और नफ़े–नुक़सान को समझने वाली होती हैं। उनके पास दोमुंही ज़बान होती है। वे रिश्तों की जड़ों को पानी और खून से नहीं ज़हर से सींचती हैं। उन्हें अपने ऊपर ज़रूरत से ज़्यादा एतमाद और घमंड होता है। वे खुद चैन से रहती हैं मगर किसी को चैन से रहने नहीं देती हैं। आप खुद देखें, एक ख़ानदान में तीनों तरह की औरतें आपको नज़र आ जाएंगी। इसमें आज की औरत और कल की औरत को अलग कर नहीं देख सकते हैं।"[190]

पर कोई भी घर औरत के बिना घर नहीं कहलाता है। और उसकी सार–संभाल व संचालन असम्भव है। महजबीं अपना अनुभव रखती हैं कि "सारी बातों का निचोड़ सिर्फ़ इतना जानती हूँ कि घर बिना औरत के नहीं चल सकता है। वह चाहे तो घर रहेगा, वह नहीं चाहेगी तो घर कभी बनेगा नहीं। और आज एक नए लिबास की नई औरत की एक क़िस्म हमारे इलाक़े में देखने को मिल रही है जो सास–ससुर का घर तोड़ अपना घर तामीर करना चाहती है। इसी

नई औरत की एक और शाख है जो शादी न करके भी ममता से भरी है। वह अपने और ग़ैरों के लिए, यहाँ तक कि पूरे औरत समाज के लिए नए रास्ते खोल रही है। उनके दुःख–सुख में उनका साथ दे रही है।"[191]

'काग़ज़ की नाव' जैसा कि शीर्षक से ही विदित है कि अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों और ज़रूरतों के समंदर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश। यह उपन्यास बिहार प्रान्त में रहने वाले उन परिवारों की कहानी है जिनके घर से कोई न कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया है। वतन से मीलों दूर रहने वाले अपने पीछे छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर अजन्मे एवं अबोध बच्चों तक का भरा–पूरा संसार। घर का प्रत्येक सदस्य किसी न किसी समस्या को झेलता है किन्तु सर्वाधिक समस्या का जो सामना करती हैं वे हैं स्त्रियाँ। कुछ के पति तो जब से गये हैं तब से वर्षों बाद भी लौटे नहीं। क्योंकि अवैध रूप से एजेन्टों के द्वारा भेजे गये मजदूरों का कोई रिकार्ड सरकार के पास नहीं होता तथा कुछ के पति बहुत लम्बे समय बाद कुछ समय के लिए आकर चले जाते हैं। पीछे से पारिवारिक जिम्मेदारियों, बच्चों का लालन–पोषण, बुजुर्गों की देखभाल, सामाजिक व्यवहार इत्यादि सैंकड़ों दायित्वों को निभाती जवान औरतों पर मनचलों की कुदृष्टि। यदि बाहर के लोगों से बचे तो स्वयं परिवारजनों द्वारा शोषण, आखिर किससे अपनी व्यथा कहे। महलक़ा, मलक़ानूर, सुग़रा, कान्ता, शान्ता, महुवा पासिन की बहू गंगा ऐसी अनेक असहाय युवतियाँ हैं जो घर और बाहर दोनों तरफ के झंझावातों को झेलती हैं।

"गंगा का पति रामलखन तो पिछले साल मज़दूर बन मिडिल ईस्ट के किसी मुल्क में गया था। दो–तीन महीने तक उसका फ़ोन आता रहा फिर आना बंद हो गया। बेचारी कहाँ कैसे पता लगाती। ससुर ने उस आदमी को बहुत ढूँढा जिसने पैसा लेकर उसके जाने का जुगाड़ बनाया था मगर वह तो दुकान ही बढ़ा गया। उसके साथ पाँच और लड़के गए थे। उनका भी कुछ पता नहीं।"[192]

नदीम जब घर लौटता है तब उसे अपने दोस्त के द्वारा कही बातें याद आती हैं जो बताती हैं कि बिना पुरुष के समाज में किस–किस तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं– "यार नदीम, हम अपनी नई–नवेलियों को छोड़कर, किसी एतमाद के तहत यहाँ आते हैं कि वह हमारे पीछे शौहर की इज़्ज़त का पास और घरवालों का ख़याल रखेंगी, घरवाले बहू को प्यार और इज़्ज़त देंगे, मगर दोस्त होता कुछ और है। या तो हमारे पीछे पॉवरगेम चलता है या फिर बेवफ़ाई।"[193]

ऐसी ही समस्या मिलती है नदीम को अपने घर पर। उसकी पत्नी मलक़ानूर अपने दुधमुँहे बच्चे को घर पर छोड़कर किसी गाँव में एक घर पर नौकर बनकर रहती है। इसमें मलक़ानूर की

सबसे मार्मिक गाथा सामने आयी है। लेखिका ने मलक़ानूर के पात्र द्वारा ऐसी स्त्री का जीवन संघर्ष दिखलाया है "जो अपने अस्तित्व की रोशनी तलाश रही है, उन अंधेरों के बीच जो सदियों से औरत के नसीब का हिस्सा बने हुए हैं। मलक़ानूर की इस तलाश का अंजाम वर्णित करते हुए नासिरा जी ने विमर्श और वृत्तांत की ऊँचाईयों को छू लिया है।

नदीम के परदेश जाने के बाद मलक़ानूर पर उसके सास–ससुर द्वारा कड़ी नज़र और चौकसी रखी जाने लगी। शादी के पूर्व किये वादे के मुताबिक आगे की पढ़ाई छुड़वा दी गई। शक़ करने के कारण घर की खिड़कियाँ चुनवा दी गई। छत पर ताला लगा दिया गया। रोज़–रोज़ के तानों से तंग आकर वह एक दिन घर छोड़कर चली जाती है और बन्धुआ मजदूर की तरह शरीफ़ सिद्दकी के घर पर रहती है। महजबीं और महलका के समझाने पर भी वह तैयार नहीं हुई। जिसको सुनकर दोनों सुन्न सी रह जाती हैं। नदीम के समझाने पर वह कहती है कि या तो मुझे तलाक़ दो या फिर मुझे अलग रखो या अपने साथ ले चलो।"[194] क्योंकि नदीम के साथ घर लौटने पर उसके साथ क्या सलूक किया जायेगा? वह कहती है– "कभी नहीं, जानती हूँ वहाँ जाकर आपके बड़के चचा और उनके दामाद हमारे साथ क्या करेंगे.....नफ़ीसा भाभी की जलती लाश हम भूले नहीं हैं.........कह दिया बाढ़ में बह गई। हर साल नेपाल का छोड़ा बाढ़ का पानी बहुत कुछ बहा ले जाता है, मुझे भी बहा ले जाएगा।"[195] होता भी यही है। एक दिन सदमे से छत से नदीम अपने बेटे के ऊपर आकर गिरता है और दोनों के चल बसने के दुःख में नदीम की माँ भी। अब मलक़ानूर का बचना असम्भव था। कुछ ही दिनों में मलक़ानूर की लाश दूसरे गाँव के बहते नाले में नजर आती है।

लेखिका ने अपने 'ज़ीरो रोड़' उपन्यास के माध्यम से बताया है कि भारत और दुबई ही नहीं दुनिया में हर जगह स्त्री शोषित और पीड़ित है। उस पर तरह–तरह के अत्याचार किये जाते हैं। रोजी–रोटी कमाने के लिए जो लड़कियाँ दुबई जाती हैं, उनका कम्पनी मैनेजर तरह–तरह से शोषण करते हैं। दुबई एक आधुनिक शहर है। लेकिन यहाँ की स्थानीय स्त्रियाँ बुर्खा प्रथा से मुक्त नहीं हो पाई हैं। ग्लोबल संस्कृति में रहने के बावजूद भी वहाँ की स्त्री पारम्परिक जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। वहाँ स्त्री के सम्बन्ध में पुरुष की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है। इसी प्रकार अफ्रीका की फौज द्वारा इथोपिया के खानाबदोश प्रान्तों में रहने वाली स्त्रियों पर अत्याचार किये जाते हैं। 'असद' कहता है– "औरतें अपने बदन की हिफ़ाजत के लिए एक तरफ पिस्टल रखती हैं तो दूसरी ओर उन्हें हथियार रखने के जुर्म में इस आरोप में पकड़ा जाता है कि वे आतंकवादियों को पनाह देती हैं।........हालात यह है कि बूढ़ी औरतों तक का बलात्कार होता है और जवान माँओं के निपुल चिमटीं से मरोड़कर उनसे बातें कुबूलवायी जाती हैं।"[196]

भारत में भी मध्यवर्गीय पारिवारिक स्त्री के जीवन को इस उपन्यास में बखूबी चित्रित किया है। अनमेल एवं विधवा पुनर्विवाह, आर्थिक पराधीनता, अशिक्षा इत्यादि अनेक समस्याऐं पाठक के सामने आती हैं। इस वर्ग की लड़कियाँ चाहकर भी पढ़ नहीं सकतीं। अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने के लिए वे आज़ाद नहीं होतीं। इस वर्ग के माता–पिता लड़कियों को लेकर चिंता में रहते हैं। जितनी जल्द हो सके उसका ब्याह कराकर मुक्त होना चाहते हैं। इस हकीकत को बयान करती पूनम कहती है– "मेरी मुक्ति तो बाबूजी–अम्मा मेरी विदाई में देखते हैं। अगर कक्षा में टाप भी कर लूँ तो मेरा भविष्य तो बदलेगा नहीं।"[197]

'शब्द पखेरू' उपन्यास की 'शैलजा' व 'मनीषा' इन दो बहिनों के द्वारा भी मध्यवर्गीय लड़कियों की सोच को दर्शाया है जो अपने–अपने तरीके से आत्मनिर्भर होकर परिवार को सपोर्ट करना चाहती हैं परन्तु 'शैलजा' अपनी ऊँची उड़ान के चलते यथार्थ के धरातल को नहीं पहचान पाती है और साईबर अपराध के जाल में फँसती–फँसती बचती है। यहाँ लेखिका ने पाठकों को समझाया है कि नवयुवकों, नवयुवतियों व अबोध बालिकाओं को सोझ–समझकर आगे बढ़ने की ज़रूरत है। परिवार का विश्वास लेकर आगे बढ़ें।

'पारिजात' उपन्यास में नासिरा जी ने 'रोहन' और 'रूही' की शादी के द्वारा 'हिन्दू–मुस्लिम एकता' एवं साम्प्रदायिक सौहार्द्ध को विकसित किया है। साथ ही स्त्री–पुरुष को एक–दूसरे का भावनात्मक सम्बल बनकर रहना चाहिए ताकि पारिवारिक तारतम्य बना रहे। तभी तो लेखिका रोहन की नयी पत्नी रूही से कहलवाती है कि "मेरे माबूद! मेरी गोद मेरी बड़ी औलाद से सजा दे! पारिजात जहाँ कहीं भी हो, उसे रोहन के सीने से लगा दे। अगर ऐसा न हुआ तो रोहन की तड़प कभी मिटेगी नहीं और हमारा छोटा बेटा बाप के सीने में सुलगती तपिश को ही हमेशा महसूस करेगा।"[198]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नासिरा शर्मा समकालीन हिन्दी साहित्य की बहुत सजग, संवेदनशील एवं सफल कथाकार हैं। उन्होंने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में चित्रित स्त्री पात्रों के माध्यम से नारी–चेतना की ऊँचाईयों को छू लिया है। उनके स्त्री–पात्रों की जीवन–गाथाओं को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे ये सभी पात्र हमारे चारों ओर मौजूद है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि लेखिका ने नारी–चित्रण में पूरी तटस्थता व निष्पक्षता के साथ अपनी बात रखी है। स्वयं को नारी के प्रति कहीं भी नहीं झुकाया है अपितु एक संवेदनशील रचनाकार के रूप में पूरी सच्चाई के साथ यथार्थ से पाठक को रूबरू करवाया है। इनके उपन्यासों में हमें स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की प्रधानता देखने को मिलती है। इनके उपन्यास सिर्फ़ एक कहानियों का संग्रह या जाल न होकर पूरा का पूरा ज़िंदगीनामा हैं, जो शब्दों के द्वारा तर्कपूर्ण विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं। अंत में निस्यूत स्वरूप यहाँ मैं डॉ. आदित्य प्रचंडिया के कथन को उद्धरित करना समीचीन

समझती हूँ कि "नारी मनोविज्ञान का सफल चित्रण करने वाली एवं नारी जीवन के आधुनिक यथार्थ का सही मूल्यांकन करने वाली नासिरा शर्मा वर्तमान युग की सिद्ध–प्रसिद्ध कथाकार हैं। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'नारी लेखिका होने की रियायत' बिल्कुल नहीं चाहते। नैतिक–अनैतिक से परे यथार्थ निर्भ्रांत निगाहों से देखते जाना उन्हें नया और आधुनिक बनाता है।.........यथार्थ जीवन का निरूपण करने वाली नासिरा शर्मा ने नैतिकता और अनैतिकता की भ्रांतियों से दूर तटस्थ रहकर आधुनिक नारी का वास्तविक चित्रण किया है। अब तक उपन्यासों में नारी जीवन का चित्रण पुरुष की आकांक्षाओं से प्रेरित होकर किया जाता रहा है। किंतु नासिरा शर्मा ने नारी को उसी के व्यक्तित्व के परिवेश में देखा है। उन्होंने एक स्वाभाविक मानवी के रूप में नारी को प्रस्तुत करके उसके गुण–अवगुण, सुख–दुःख की वास्तविकता बताई है।"[199]

इस प्रकार नासिरा शर्मा जी के उपन्यासों का सामाजिक चेतना मूलक दृष्टि से अनुशीलन करने के बाद कहा जा सकता है कि नासिरा जी उन विरले रचनाकारों में से एक हैं जिनकी हर कृति का कैनवास बहुत विराट है। इनके उपन्यासों में गहरे शोध और अन्तर्मनन की छाया है। उनका अध्ययन करते समय पाठक महसूस करता है कि यह घटनाक्रम तो मेरे आस–पास भी घट रहा है। यहाँ नासिरा जी की जो सबसे बड़ी खूबी कहेंगे कि जिन सन्दर्भों पर लेखनी चलाने से अक्सर लेखक या कथाकार झिझकते हैं, उन विषयों पर उन्होंने निर्भीकता से साफ–साफ शब्दों में वर्णन किया है। लेकिन उनके अन्दर की सच्चाई लेखन में भी झलकती है। समाज में व्याप्त समस्त अच्छाईयों और बुराईयों को इस कदर उपन्यासों के ताने–बाने में पिरोया है कि वे सब स्वाभाविक व सहज बनकर पाठक को प्रभावित कर गयीं। सामाजिक परिदृश्य में व्याप्त प्रत्येक पहलू उनकी रचनाओं में स्थान पाकर जीवन्त हो उठे हैं। समाज में व्याप्त समस्त रिश्ते जैसे माता–पिता, भाई–बहिन, पति–पत्नी, सास–बहू, पिता–पुत्र, शत्रु–मित्र, बुआ–फूफा, देवरानी–जेठानी, देवर–जेठ, आमजन–खास यहाँ तक समस्त मानवीय रिश्तों को नाना–नाना संदर्भों में जगह दी है तथा विभिन्न परिस्थितियों में उनकी गरिमा व मर्यादा को चित्रित किया है। हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्ध, घरेलू और कामकाजी औरत, भ्रष्ट पुलिस व प्रशासनिक तंत्र, सामान्य जनजीवन, तीज़–त्योहार, बेरोजगार युवक और उनका संघर्ष, जातिगत ऊँच–नीच, भ्रष्टाचार, गरीबी, शोषण, अनाथ व अभावग्रस्त बच्चे, कच्ची बस्तियाँ, स्वास्थ्य की समस्या, धर्म और राजनीति का घालमेल, उपनिवेशवाद, साम्यवाद, रिश्तों में आती दूरियाँ, बाजार की चकाचौंध, साइबर अपराध, पर्यावरण व पानी की समस्या, ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि ऐसे अनेक मुद्दे हैं जिन पर लेखिका ने अपने विचार रखे हैं और पाठक को उनके प्रति सोचने के लिए विवश किया है। संक्षेप में कहें तो 'साहित्य समाज का दर्पण है' इस उक्ति को बखूबी चरितार्थ किया है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. महेन्द्र भटनागर, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ.–17
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–1030
3. भर्तृहरि, नीतिशतक, मूर्खपद्धति/6
4. चन्दवरदाई, पृथ्वीराजरासो, दोहा सं. 2575
5. तुलसीदास, दोहावली, दोहा सं. 513
6. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–848
7. अभिधानरत्नमाला, पृ.–58
8. वृहद् हिन्दी कोश, सं. मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, कालिका प्रसाद, पृ.–997
9. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृ.–788
10. सर मोनियर विलियम, ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ.–1153
11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्व प्रप×च की भूमिका, पृ.–9
12. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्र, पृ.–74
13. सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', सर्जना और संदर्भ, पृ.–17
14. शंभुरत्न त्रिपाठी, समाजशास्त्र के आधार, पृ.–33
15. डॉ. सम्पूर्णानन्द, समाजवाद, पृ.–19
16. एच.पी.फेयर, चाइल्ड डिक्शनरी ऑफ सोश्योलॉजी, पृ.–300
17. पारसन्स, इंसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साईन्स, वॉल्यूम 14, पृ.–231
18. ई.पी. रयूटर, हैंडबुक ऑफ सोश्योलॉजी, पृ.–157
19. प्रो. गिडिंग्स, प्रिंसिपल्स ऑफ सोश्योलॉजी, पृ.–27
20. मैकाईवर एण्ड पेज, सोसाइटी, पृ.–03
21. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–1098
22. डॉ. राघव प्रकाश, व्यावहारिक सामान्य हिन्दी, पृ.–184
23. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–378 एवं धर्मेन्द्र कुमार गुप्त, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, प्रथम भाग, पृ.–1982
24. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, वॉल्यूम–6, पृ.–364
25. http : en.oxforddictionaries.com
26. डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', भाषा शब्दकोश, पृ.–582
27. सं. डॉ. नगेन्द्रनाथ बसु, हिन्दी विश्वकोश, खण्ड चतुर्थ, पृ.–282
28. डॉ. जयनाथ नलिन, साहित्य का आधार दर्शन, पृ.–16

29. World University Encyclopidia-New York, Washington, Page no. 1295

30. सं.रामप्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, खण्ड–4, पृ.–282

31. कुंवर पाल सिंह : साहित्य समीक्षा और मार्क्सवाद–रामविलास शर्मा का लेख–यथार्थ जगत् और साहित्य, पृ.–69

32. डॉ. कुंवरपाल सिंह, हिंदी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ.–118

33. डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, उग्र और उनका साहित्य, पृ.–307

34. डॉ. सोमनाथ शुक्ल, बीसवीं शती की सामाजिक चेतना, पृ.–15

35. डॉ. सुषमा गुप्त, हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना, पृ.–33

36. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, पृ.–17–18

37. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ.–xi

38. सं. एम. फीरोज अहमद, नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, पृ.–53

39. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–482

40. डॉ. राघव प्रकाश, व्यावहारिक सामान्य हिन्दी, पृ.–184

41. नासिरा शर्मा, राष्ट्र और मुसलमान, पृ.–57–58

42. राष्ट्र और मुसलमान, पृ.–58–59

43. राष्ट्र और मुसलमान, पृ.–60

44. अक्षयवट, पृ.–10

45. अक्षयवट, पृ.–23

46. अक्षयवट, पृ.–24

47. ज़ीरो रोड, पृ.–220

48. ज़ीरो रोड़, पृ.–286

49. ज़ीरो रोड़, पृ.–285

50. ज़ीरो रोड़, पृ.–286

51. ठीकरे की मंगनी, पृ.–90

52. कुइयाँजान, पृ.–45

53. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–127

54. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–63

55. 'ईरान की खूनी क्रांति से सबक'–अमरीश सिंह दीप–वाङ्मय–नासिरा शर्मा विशेषांक–संपा. डॉ. एम. फीरोज अहमद, जून–2009, पृ.–90

56. पारिजात, पृ.–367

57. कागज़ की नाव, पृ.–21

58. दूसरी जन्नत, पृ.–33–34

59. भर्तृहरि–नीतिशतक, श्लोक सं. 41

60. डॉ. राघव प्रकाश, व्यावहारिक सामान्य हिन्दी, पृ.–184

61. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–162

62. अक्षयवट, पृ.–377

63. अक्षयवट, पृ.–483

64. कुइयाँजान, पृ.–139

65. कुइयाँजान, पृ.–163

66. ज़िंदा मुहावरे, पृ.–131

67. ठीकरे की मंगनी, पृ.–125

68. ठीकरे की मंगनी, पृ.–197

69. शाल्मली, पृ.–106–107

70. अजनबी जज़ीरा, पृ.सं.–27

71. टी. घनश्याम, नासिरा शर्मा कृत ज़ीरो रोड़ एक अध्ययन, पृ.–88

72. ज़ीरो रोड, पृ.–96

73. शब्द पखेरू, पृ.–92

74. कागज़ की नाव, आवरण पृष्ठ से

75. कागज़ की नाव, पृ.–35

76. कागज़ की नाव, पृ.–164–165

77. डॉ. राघव प्रकाश, व्यावहारिक सामान्य हिन्दी, पृ.–184

78. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–818 (राज्+कनिन्, र×जयति र×ज्+कनिन् नि. वा)। तत्पुरुष समास के अन्त में 'राजन्' का रूप बदलकर 'राज' बन जाता है।

79. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ.–633

80. चमनलाल गुप्ता : यशपाल के उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, पृ.–73

81. मंजु तँवर : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास और आधुनिक चेतना, पृ.–36

82. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–11

83. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–10

84. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–123

85. ज़िन्दा मुहावरे, पृ. दो शब्द से
86. अक्षयवट, पृ.–292
87. कुइयाँजान, पृ.–89
88. ठीकरे की मंगनी, पृ.–82
89. अक्षयवट, पृ.–172–176
90. सात नदियाँ एक समंदर, पृ.–92
91. सात नदियाँ एक समंदर, पृ.–263
92. अजनबी जज़ीरा, पृ. कवर पेज से
93. अजनबी जज़ीरा, पृ.–78
94. अजनबी जज़ीरा, पृ.–120
95. टी घनश्याम, नासिरा शर्मा कृत जीरो रोड़ एक अध्ययन, पृ.–107
96. टी घनश्याम, नासिरा शर्मा कृत जीरो रोड़ एक अध्ययन, पृ.–107
97. ज़ीरो रोड़, पृ.–88
98. अक्षयवट, पृ.–28–29
99. काग़ज़ की नाव, पृ.–49
100. काग़ज़ की नाव, पृ.–66
101. काग़ज़ की नाव, पृ.–79
102. अक्षयवट, पृ.–102–103
103. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–126–127
104. दूसरी जन्नत, पृ.–90
105. ठीकरे की मंगनी, पृ.–169–170
106. ठीकरे की मंगनी, पृ.–170
107. ठीकरे की मंगनी, पृ.–101
108. काग़ज़ की नाव, पृ.–88–89
109. कुइयाँजान, पृ.–413
110. उपन्यास का काव्यशास्त्र, बच्चन सिंह, पृ.–57
111. ज़ीरो रोड, पृ.–69
112. शब्द पखेरू, पृ.–54–55
113. शाल्मली, पृ.–165
114. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–175

115. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–228

116. डॉ. राघव प्रकाश, व्यावहारिक सामान्य हिन्दी, पृ.–184

117. कुइयाँजान, पृ.–88

118. कुइयाँजान, पृ.–89

119. कुइयाँजान, पृ.–388

120. कुइयाँजान, पृ.–385

121. कुइयाँजान, पृ.–309

122. कुइयाँजान, पृ.–310

123. कुइयाँजान, पृ.–310

124. कुइयाँजान, पृ.–312

125. कुइयाँजान, पृ.–414

126. अक्षयवट, पृ.–18

127. दूसरी जन्नत, पृ.–83–90

128. काग़ज़ की नाव, पृ.–201

129. पारिजात, पृ.–14–15

130. पारिजात, पृ.–16

131. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–45

132. डॉ. राघव प्रकाश, व्यावहारिक सामान्य हिन्दी, पृ.–186

133. डॉ. हरदेव बाहरी, बृहत् शिक्षार्थी अंग्रेजी–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–200

134. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ.–219

135. डॉ. हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/2.20, पृ.–181

136. युद्धरत आम आदमी (अंक 41–42) वर्ष 1998, पृ.–41, पंचशील शोध प्रभा में उद्धृत, पृ.–125

137. पत्रिका क्रान्ति, 27 मार्च से 2 अप्रैल, 2005, पृ.–12

138. डॉ. चन्द्र कुमार वरठे, दलित साहित्य आन्दोलन, पृ.–67

139. पत्रिका हंस, जून 2002 डॉ. माता प्रसाद, पृ.–84

140. अक्षयवट, पृ.–16

141. अक्षयवट, पृ.–32

142. अक्षयवट, पृ.–106

143. अक्षयवट, पृ.–267

144. कुइयाँजान, पृ.—43—44

145. कुइयाँजान, पृ.—105

146. ठीकरे की मंगनी, पृ.—88—89

147. ठीकरे की मंगनी, पृ.—101

148. ज़ीरो रोड़, पृ.—32

149. ज़ीरो रोड़, पृ.—254

150. अजनबी जज़ीरा, पृ.—24

151. अजनबी जज़ीरा, पृ.—78

152. अजनबी जज़ीरा, पृ.—120

153. कालिदास, रघुवंशम् 1/1

154. तुलसीदास, रामचरितमानस—बालकाण्ड

155. Pragyan-Vigyan.blogspot.com- 'नारी—विमर्श के अर्थ' का निहितार्थ—2, रविवार, 7 अप्रेल, 2013

156. Pragyan-Vigyan.blogspot.com- 'नारी—विमर्श के अर्थ' का निहितार्थ—2, रविवार, 7 अप्रेल, 2013

157. Pragyan-Vigyan.blogspot.com- 'नारी—विमर्श के अर्थ' का निहितार्थ—2, रविवार, 7 अप्रेल, 2013

158. Pragyan-Vigyan.blogspot.com- 'नारी—विमर्श के अर्थ' का निहितार्थ—2, रविवार, 7 अप्रेल, 2013

159. डॉ. हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/2.7

160. सं. ललित शुक्ल, नासिरा शर्मा शब्द और संवेदना की मनोभूमि—स्त्री के तीसरे घर की पहली पुख़्ता बुनियाद, पृ.—53

161. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत—औरत के बहाने एक मुलाकात नासिरा शर्मा से, साक्षात्कार—सुमन गुप्ता, पृ.—196

162. वही—स्त्रीवादी क्यों नहीं है नासिरा शर्मा?, साक्षात्कार—कृष्ण प्रताप सिंह व रघुवंशमणि, पृ.—101

163. शाल्मली, पृ.—165—166

164. डॉ. आदित्य प्रचंडिया—'युगबोध' के बीचधार स्त्री—चेतना का सरगम—सं. ललित शुक्ल, नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि, पृ.—44—45

165. ठीकरे की मंगनी, लेखकीय कथन से

166. ठीकरे की मंगनी, पृ.—12

167. ठीकरे की मंगनी, पृ.—12

168. ठीकरे की मंगनी, पृ.—14

169. ठीकरे की मंगनी, पृ.–17

170. शाल्मली, पृ.–19–20

171. सात नदियाँ : एक समंदर, पृ.–34–35

172. ठीकरे की मंगनी, पृ.–20

173. ठीकरे की मंगनी, पृ.–22

174. ठीकरे की मंगनी, पृ.–26

175. ठीकरे की मंगनी, पृ.–125

176. ठीकरे की मंगनी, पृ.–127

177. ठीकरे की मंगनी, पृ.–197

178. शाल्मली, पृ.–106–107

179. शाल्मली, पृ.–56

180. दूसरी जन्नत, पृ.–37

181. कुइयाँजान, पृ.–45

182. शाल्मली, पृ.–74–75

183. ठीकरे की मंगनी, पृ.–101

184. ठीकरे की मंगनी, पृ.–178

185. सात नदियाँ : एक समंदर, पृ.–8–9

186. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–71

187. अक्षयवट, पृ.–105–106

188. अक्षयवट, पृ.–106

189. अजनबी जज़ीरा, पृ.–27

190. काग़ज़ की नाव, पृ.–67–68

191. काग़ज़ की नाव, पृ.–68

192. काग़ज़ की नाव, पृ.–73

193. काग़ज़ की नाव, पृ.–240

194. काग़ज़ की नाव, पृ.–243

195. काग़ज़ की नाव, पृ.–243

196. ज़ीरो रोड़, पृ.–226

197. ज़ीरो रोड़, पृ.–147

198. पारिजजात, पृ.–498

199. सं. ललित शुक्ल–नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि, पृ.–44–45

चतुर्थ अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना के विविध आयाम

"पिंजड़ा खाली हो गया। नए वतन में पुराने साथी, साथ छोड़ गए। उसका ख़्वाब बिखर गया कि वह कराची शहर में लालमुनियाओं के घोसलों से पेड़ों को भर देगा। उसकी चहचहाहट से माहौल गूँजता रहेगा, मगर वह क्यों नहीं साथ निभा पाई? क्यों नया दाना चुग न पाई? यहाँ भी तो आसमान का वही रंग था। इन्सानों की वही शक्लें। शायद कुछ था जरूर, जो उन्हें रास न आया? क्या था वह......?"

— ज़िन्दा मुहावरे / 57

चतुर्थ अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना के विविध आयाम

'साहित्य, समाज और संस्कृति' इन तीनों में परस्पर आधार–आधेय सम्बन्ध है और एक–दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं। अतः इन तीनों में आपसी सामंजस्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साहित्य का आदि और अन्त समाज से होता है। इसी प्रकार समाज की अभिव्यक्ति साहित्य का प्रारम्भिक उद्देश्य है तो समाज को सुसंस्कृत व संस्कार सम्पन्न बनाना उसका अंतिम ध्येय है। साहित्य अपनी विभिन्न विधाओं के द्वारा समाज के आचार, विचार और व्यवहार को चित्रित करने व संवारने में लगा रहता है। 'उपन्यास' एक ऐसी ही अन्यतम साहित्यिक विधा है जो व्यष्टि और समष्टि को रूपायित करने में पूर्णतः समर्थ है। इसमें व्यक्ति और समाज के अन्तः एवं बाह्य स्वरूप का चित्रण होता है। प्रत्येक व्यक्ति और समाज का अन्तः यदि उसका मनोविज्ञान एवं संस्कृति बोध है तो बाह्य उसका सामाजिक बोध। इस अन्तः और बाह्य स्वरूप में काल–प्रभाव से विभिन्न क्रियाएँ–प्रतिक्रियाएँ अनवरत जारी रहती है। इन सभी क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं का व्यापक एवं गहन चिन्तन, मनन व चित्रण युगीन साहित्य में निश्चित ही होता है। जब एक साहित्यकार युगीन समाज के अन्तः और बाह्य, उभयविध रूपों का पूर्ण तटस्थ व निष्पक्ष भाव से चित्रण करता है, तब वह यथार्थ चित्रण कहलाता है। इस यथार्थ चित्रण के पीछे उस साहित्यकार या उपन्यासकार का मन्तव्य होता है– समाज में आयी विकृतियों से पाठकों को परिचित करवाकर उनका परिष्कार और परिमार्जन तथा सद्विचारों व सुसंस्कारों का प्रतिष्ठापन। साहित्य और समाज पर हम पूर्व अध्यायों में विचार कर चुके हैं। अतः यहाँ संस्कृति, उसके अर्थ एवं स्वरूप इत्यादि का अनुशीलन करना आवश्यक हो जाता है।

(क) संस्कृति : अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

मनुष्य अपने चिन्तन, मनन व सृजन अर्थात् विवेकशीलता के कारण अन्य प्राणियों से इतर एक सुव्यवस्थित समाज का निर्माण कर रहता है। साथ ही वह इसी चेतनामूलक शक्ति के बल पर सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना और युगानुकूलन उनमें संशोधन एवं परिवर्धन करता रहता है। तथा उनका अनुपालन कर स्वयं को सुसंस्कृत एवं सभ्य समाज का सदस्य मानता है। कहने का आशय यह है कि "जिन तत्त्वों से मानव अपना मानसिक एवं शारीरिक परिष्कार करता है और परिष्कार के उपरान्त अपनी उज्ज्वल वृत्तियों से समाजोन्नयन तथा राष्ट्रोत्थान करता है, वह संस्कृति है।"[1]

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ धातु' से 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है– 'सम्यक् क्रियाकलाप', 'उत्तम प्रकार से किये गये कार्य', 'सुधरी हुई दशा' इत्यादि। तदनुसार मानव की बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों के सुसंस्कृत या परिष्कृत समूह को ही 'संस्कृति' कहा जाता है और इन बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों में मानव के विचार, भावनाएँ, परम्पराएँ, कल्पनाएँ, चेष्टाएँ, आदर्श आदि बातें सन्निहित हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृति का सम्बन्ध मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा जाति, समाज और राष्ट्र के सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं एवं आदर्शों के समुचित निर्वाह के लिए की जाने वाली चेष्टाएँ 'संस्कृति' कहलाती है।[2] हिन्दी शब्दसागर में संस्कृति के लिए शुद्धि, सफाई, संस्कार, सुधार, मानसिक विकास, सजावट, सभ्यता, शाहस्तगी आदि अर्थ बताए गए हैं।[3]

'संस्कार जन्मा संस्कृति' अर्थात् जिसमें संस्कारों का योगदान हो, उसे ही हम संस्कृति कह सकते हैं और ये संस्कार परम्परागत होने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी मानव को प्राप्त होते रहते हैं। नर विज्ञान वेत्ता Biolagist के शब्दों में "It is the culture that concludes all acquired behaviour." अर्थात् "संस्कृति सब सीखा हुआ व्यवहार होता है।"[4]

'संस्क्रियन्ते अनन्या सा संस्कृतिः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिस जीवन–पद्धति से आत्मा सुसंस्कृत होकर पूर्ण विकसित हो और उसके अन्तस् से राग–द्वेष, मोह, मत्सर आदि विकार निर्मूल होकर सम्पूर्ण गुण सम्पन्न एवं प्रकाशमय हो वह संस्कृति है।[5] इस दृष्टि से संस्कृति न केवल मानव के भौतिक एवं लौकिक जीवन को समृद्ध तथा सुखद बनाती है अपितु उसके आध्यात्मिक एवं पारलौकिक जीवन को भी प्रशान्त एवं आनन्दमय बनाने में प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती है।

विभिन्न विद्वानों ने 'संस्कृति' को अपने–अपने ढंग से परिभाषित एवं रूपायित किया है। डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी के शब्दों में "मानव मात्र के श्रेष्ठ आदर्श तथा अनुकरणीय आचार–विचार संस्कृति की परिधि में समाविष्ट होते हैं। संस्कृति मानव–जीवन की संवाहिका है। किसी भी राष्ट्र की जीवनधारा का प्राणस्रोत है।"[6]

श्री राजगोपालाचारी के अनुसार "किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है।"[7]

रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "संस्कृति एक ऐसा गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग–युगान्तर में होता है।"[8]

डॉ. सम्पूर्णानन्द के शब्दों में "संस्कृति उसे कहते हैं जिससे कोई समुदाय विशेष जीवन की विविध समस्याओं पर दृष्टिपात करता है।"[9]

काका कालेलकर के शब्दों में "संस्कृति उसे कहते हैं जिसे हजारों लाखों वर्षों के पुरुषार्थ से मनुष्य जाति ने अर्जित किया है। वस्तुतः संस्कृति विभिन्न युगों में अर्जित सम्पत्ति ही है।"[10]

डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने संस्कृति शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'संस्कृति' जीवन की उन अवस्थाओं का नाम है, जो मनुष्य के अन्दर व्यवहार, ज्ञान और विवेक पैदा करती है। यह मनुष्यों के व्यवहारों को निश्चित करती है, उनकी संस्थाओं को संचालित करती है, उनके साहित्य और भाषा को बनाती है, उनके जीवन के आदर्श और सिद्धान्तों को प्रकाश देती है।[11]

महादेवी वर्मा के अनुसार "संस्कृति मानव–चेतना का ऐसा विकास क्रम है जो उसके अंतरंग और बहिरंग को परिष्कृत करके विशेष जीवन–पद्धति का सृजन करता है। संस्कृति मानव चेतना की प्राकृतिक ऊर्ध्वगति का प्रकाशन है। मानव की अन्तः भूमि और प्रसुप्त विशेषताओं की परिष्कृति और अभिव्यक्ति है।"[12]

राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "एक पीढ़ी आती है। वह अपने आचार–विचार, रुचि–अरुचि, कला–संगीत, भोजन–छाजन या किसी और दूसरी आध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और आगे बहुत–सी पीढ़ियाँ आती जाती रहती हैं और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अपनी पीढ़ी पर छोड़ती जाती है। यही प्रभाव (संस्कार) संस्कृति हैं।"[13]

डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में "संस्कृति वह वस्तु है जो स्वभाव, माधुर्य, नीरोगता एवं आत्मिक शान्ति को जन्म देती है।"[14]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।"[15]

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार "संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकाश है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही 'संस्कृति' है।"[16]

रामधारी सिंह दिनकर पुनः प्रकाश डालते हुए कहते है "संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिनमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए है अथवा जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी है, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति के अंग

बन जाते हैं और मरने के बाद अपनी वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को छुए हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्मान्तर तक करती हैं।"[17]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सारांशतः कहा जा सकता है कि संस्कृति एक परम्परा से प्राप्त निधि है। संस्कृति और समाज में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। कोई एक व्यक्ति संस्कृति का निर्माण नहीं कर सकता अपितु उसके लिए तो समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग अपेक्षित है। दूसरे रूप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक सम्प्राप्तियों के समूह को ही 'संस्कृति' कहा जाता है। वस्तुतः संस्कृति ही हमारे विवेक की संचालित शक्ति है। इसी से हमारी उस रुचि की, उस ज्ञान की सर्जना होती है जिस पर हमारी सभ्यता अवलम्बित रहती है। समग्र रूप में संस्कृति वह पुष्प है जो मानव विचार रूपी वृक्ष पर प्रस्फुटित होता है।

संस्कृति का क्षेत्र अति व्यापक है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, दार्शनिक, बौद्धिक, साहित्यिक, कला इत्यादि जीवन के विभिन्न पहलुओं से है। संस्कृति के स्वरूप पर अनेक विद्वानों ने गम्भीरतापूर्वक विचार–मन्थन किया है। संस्कृति मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियों और योग्यताओं तथा समाज के विकास की ऐतिहासिकता का एक निर्धारित स्तर है। कतिपय विद्वानों ने संस्कृति के दो स्वरूप माने हैं– अंतरंग और बहिरंग। मनुष्य के जो कार्य बाह्य संसार के परिष्कार तथा परिवर्तन प्रधान हैं वे बहिरंग कहलाते हैं तथा जो कार्य मनुष्य की आत्मा के परिष्कार या शुद्धि के लिए किए जाते हैं वे अंतरंग हैं। दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। डॉ. रत्नचन्द्र शर्मा के अनुसार "बाह्य विश्व उपभोगों अथवा भौतिक प्रगति को प्रमुखता देना भौतिक संस्कृति का कार्य है और आत्मिक गुणों के विकास द्वारा मानवीय प्रकृति का अभ्युत्थान करना आध्यात्मिक संस्कृति का कार्य है।"[18]

डॉ. मनमोहन सहगल संस्कृति और उसके विस्तार क्षेत्र का सूक्ष्म चिन्तन करते हुए लिखते हैं कि "मनुष्य के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक उन्नति के उपकरणों का विकास ही सांस्कृतिक प्रगति कहलाता है। इसका विस्तार क्षेत्र व्यष्टि न होकर समष्टि है। इसलिए राष्ट्र की इन समष्टिगत सम्यक् उपलब्धियों को संस्कृति कहा जा सकता है। जो युग–युग तक जाति की आदर्श पथ–प्रदर्शिता बनी रहती है। अतः संस्कृति समाज की उस स्थिति का नाम है जिसमें जन–मानव प्रशिक्षित हो, जीवन के आदर्श मूल्यों को पहचानता और सुधी व्यवहार बनाता है। दूसरे शब्दों में जीवन को जीने योग्य बनाने वाले प्रतिक–उपकरणों को ही संस्कृति कहते हैं।"[19]

वस्तुतः 'संस्कृति' शब्द अर्थ की दृष्टि से विकासशील रहा है क्योंकि जीवन के नवीन सौंदर्यबोध, नैतिक मापदण्ड, यथार्थ के नूतन संदर्भ और परिवर्तित जीवनमूल्यों के कारण यह शब्द

सुनिश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता। वस्तुतः सभी मनीषी परिष्करण की प्रक्रिया के माध्यम से जीवन के समग्र उन्नयन को संस्कृति मानते है। लगभग सभी चिन्तक परिष्कार की प्रवृत्ति, जीवन–पद्धति की परम्परा, आचार–व्यवहार के तत्त्व और गतिशीलता पर एक मत हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि "किसी देश की संस्कृति अपने को धर्म, दार्शनिक चिन्तन, कविता, संगीत, कला, शासन–प्रबंध आदि के रूप में अभिव्यक्त करती है। मनुष्य जिस रूप में जो जिस प्रकार से सृजन करता है और अपने सामूहिक जीवन को हितकर व सुखी बनाने के लिए जिन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं व प्रथाओं को विकसित करता है उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।"[20]

(ख) सांस्कृतिक चेतना : अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

'संस्कृति' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय लगकर 'सांस्कृतिक' शब्द बनता है। सांस्कृतिक चेतना अर्थात् संस्कृति से सम्बन्धित चेतना। कोई भी राष्ट्र अपने किसी वैशिष्ट्य के कारण ही विश्व–समाज में अपनी पहचान बनाता है और समादृत होता है। भारत देश मानवीय चिन्तनधारा और जीवन–विषयक सर्वतोमुखी उद्दात्त दृष्टिकोण के कारण एक विशेष जीवन–पद्धति का आविष्कर्ता और प्रवक्ता रहा है। राष्ट्रीय जीवन में लम्बे काल–प्रवाह में उसने जो सांस्कृतिक चेतना अर्जित की है वह मानवता की उच्च्च मनोभूमि और विकासशील सामाजिक सभ्यता की कहानी है। अनेक विदेशी जातियों के आक्रान्ताओं ने भौतिक दृष्टि से उसे जितना झकझोरा है, जीवन–पद्धति और दृष्टिकोण के स्तर पर अपने निर्धारित जीवन मूल्यों का परीक्षण कर उसने स्वयं को उतना ही गतिशील बनाये रखा है। भारतीय संस्कृति प्राणीमात्र के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की बात करती है। यह आत्मा, मन, बुद्धि एवं कर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। इसी कारण जिसका ज्ञान–बोध प्रखर होगा, उसकी आत्मिक शक्ति उतनी ही विकसित होगी और उसकी सांस्कृतिक चेतना उतनी ही उद्‌बुद्ध।

सांस्कृतिक चेतना व्यक्तिगत स्तर पर अनुभूत होकर भी 'स्व' से ऊपर उठकर सामाजिक हित की बात करती है। इसी कारण एक साहित्यकार सृजन के दौरान 'स्व' का इस तरह विस्तार करता है कि सम्पूर्ण विश्व के सांस्कृतिक तन्तु उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त एक तत्त्व का दर्शन करने लग जाता है। यही चेतना का सर्वोत्कृष्ट रूप है, जिसे सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है।[21]

परन्तु साहित्य–सृजन में यह चेतना किस प्रकार से उभर कर सामने आती है, इस पर विचार करना यहाँ प्रासंगिक हैं। चूँकि साहित्यकार समाज का चित्रण करता हुआ उसमें 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की सृष्टि करता है, अतः प्रत्येक साहित्यिक रचना आवश्यक रूप से सांस्कृतिक

भूमिका अदा करती है परन्तु इसकी अभिव्यक्ति साहित्य के तीनों पक्षों– लेखक–कृति–पाठक के आधार पर तीन स्तरों पर होती है। इन तीनों पक्षों या कहें उपकरणों के माध्यम से ही कोई भी साहित्यिक कृति सांस्कृतिक चेतना की संवाहिका बनती है।

प्रथम स्तर पर कतिपय लेखक चेतन–सम्पन्न होने पर भी संस्कृति का परिष्कृत रूप नहीं दे पाता। वह युगीन संस्कृति का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत कर देता है। द्वितीय स्तर पर लेखक सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न होने के साथ–साथ अपनी रचना में भी उस दृष्टि का उन्मेष करता चलता है। वह घटनाओं, पात्रों अथवा संवादों का संयोजन इस प्रकार करता है कि पाठक सहज रूप में ही जागरूक हो जाता है। तीसरी स्थिति में लेखक सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न होते हुए भी कृति के कोई उपदेशक, सुधारक अथवा क्रांतिकारी के रूप में न आकर वस्तु–स्थिति का चित्रण करते हुए एक सूक्ष्म–सा संकेत दे जाता है। यह संकेत ही कृति का मुख्य उद्देश्य होता है। इसमें लेखक दोनों स्थितियों को सामने रखकर पाठक को स्वयं ही सोच कर निर्णय लेने पर विवश–सा कर देता है। यह निर्णय लेने की मानसिक उपलब्धि ही चेतना–सम्पन्न होती है।[22]

इस तरह से तीनों स्थितियों में यद्यपि लेखक, कृति तथा पाठक का सम्बन्ध–सूत्र बना रहता है तथापि प्रथम दो में लेखक और कृति महत्त्वपूर्ण होते हैं और तृतीय में पाठक का प्रबुद्ध होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक अन्य स्तर भी है जहाँ लेखक वस्तुस्थिति और सामाजिक–बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखकर परोक्ष रूप से चेतन करने की प्रासंगिकता पर विचार करता है। संक्षेप में कहें तो सांस्कृतिक चेतना साहित्यकार की प्रतिभा पर निर्भर करती है। एक प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार घटनाओं, कथानकों व वृत्तान्तों का अपनी रचना में इस तरह से ग्रन्थन या गुम्फन करता है, जिससे पाठक की आत्मिक चेतना स्वतः स्फूर्त होकर लेखक के मन्तव्य के साथ एकाकार हो जाये।

(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना : विविध आयाम

साहित्य समाज का दर्पण है और प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। इसलिए समाज के चित्रण के साथ–साथ संस्कृति स्वतः ही साहित्य में परिलक्षित हो जाती है। नासिरा शर्मा समकालीन हिन्दी साहित्य की एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके उपन्यास साहित्य में विभिन्न सन्दर्भों व कथानकों के अन्तर्गत उनके सामाजिक बोध के साथ–साथ सांस्कृतिक बोध अपने आप ही चित्रित हो आया है। उनकी बात कहने की शैली ही कुछ इस प्रकार की है कि उनके कथ्य की सम्प्रेषणीयता देखते ही बनती है। नासिरा जी घटनाओं का वर्णन इस प्रकार से करती है कि पाठक स्वतः लेखकीय मन्तव्य को समझ जाता है। नासिरा जी परिवेशगत घटनाओं का वर्णन तत्कालीन सन्दर्भों में इस प्रकार करती हैं कि पाठक स्वयं आत्मावलोकन व अनुशीलन

करे कि परिस्थिति विशेष में पात्र विशेष का व्यवहार व लोगों की प्रतिक्रिया समुचित थी अथवा नहीं। सीधे–सीधे कोई निर्णय वे पाठकों के सम्मुख नहीं रखती हैं। वे पाठकों को इस मुहाने पर लाकर खड़ा कर देती हैं ताकि वे स्वयं अच्छे–बुरे का निर्णय करे तथा स्वयं के साथ–साथ औरों को भी प्रेरित करे, जागरूक करे। जैसा कि 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास के सन्दर्भ में लेखिका द्वारा कहे गये उनके शब्दों को यहाँ उद्धृत करना सार्थक प्रतीत होता है। साथ ही उनकी प्रत्येक औपन्यासिक रचना के लेखकीय उद्देश्य पर भी सही घटित होता है– "मेरी कोशिश इस उपन्यास के जरिए सिर्फ इतनी है कि मैं 'जिन्दा मुहावरे' के पाठकों को उस सेतु पर लाकर खड़ा कर सकूँ जो एक इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है।"[23]

अपने साक्षात्कार के दौरान एक प्रश्न का जवाब देती हुई और अपने लेखन के वैशिष्ट्य को परोक्ष रूप में समझाती हुई नासिरा जी ललित शुक्ल से कहती हैं कि "दरअसल साहित्य घटना, दिनांक और नामों का ब्योरा नहीं है बल्कि जनमानस की ज़बान का बयान होता है जिसमें इतिहासकार की क़लम से ज़्यादा सच्चाई होती है, जो व्यथा के तालाब से और आँसुओं के क़तरों से नहाकर निकलती है, जिसमें ज़मीनी बातें होती हैं। एक पात्र द्वारा कहे मामूली से संवाद द्वारा हम समय की धड़कन को पकड़कर उस समय की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का अंदाज़ा बख़ूबी लगा सकते हैं। यदि ऐसा न होता तो पुराने ग्रन्थों को विरासत की तरह संभालने का चलन भी न होता और वर्तमान की जटिलता को हम अतीत के संदर्भों से मापते भी नहीं और न समय के बदले परिप्रेक्ष्य को ही समझ पाते।"[24]

नासिरा जी ने अपनी उपन्यास रचनाओं में समकालीन सांस्कृतिक तन्तुओं को गहराई से छूकर अपनी विशिष्ट शैली के माध्यम से उसके मायनों को पाठकों को समझाया है। समकालीन समाज में चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों के खान–पान, रीति–रिवाज, रस्में, रहन–सहन, तीज–त्योहार, आचार–विचार, जीवन–पद्धति, परम्पराएँ, साज–सज्जा, आभूषण, सांस्कृतिक मूल्य इत्यादि का कुशल चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। **यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नासिरा जी के सभी उपन्यास अलग–अलग पृष्ठभूमि, परिवेश, विषय एवं कथानकों पर आधारित हैं। साथ ही ये विभिन्न कालखण्डों में लिखे गये हैं। अतः स्वाभाविक है कि सबके सांस्कृतिक मूल्यों व तत्त्वों में भी कुछ विभिन्नताएँ अवश्य होंगी। अतः रचनागत सांस्कृतिक चेतना का अनुशीलन भी प्रत्येक रचना का भिन्न–भिन्न होना समुचित रहेगा।** प्रत्येक उपन्यास में परिलक्षित सांस्कृतिक बोध का वर्णन रचनाक्रम से निम्न प्रकार है–

1. शाल्मली : सांस्कृतिक चेतना

नासिरा शर्मा प्रणीत 'शाल्मली' नारी वैशिष्ट्य से परिपूर्ण एक महत्त्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है। 'शाल्मली' एक शिक्षित, पढ़ी–लिखी, संस्कार सम्पन्न तथा सद्विचारों वाली नारी है। वह बड़ी अफसर होने के बावजूद अफसराना अंदाज से पूर्णतः दूर है। अपने दफ्तर के साथ–साथ परिवार को भी बखूबी संभालती है परन्तु उसका पति नरेश उसके इस स्वरूप को स्वीकार नहीं कर पाता है। अपनी गलत आदतों में लिप्त होकर वह शाल्मली को ही तरह–तरह से प्रताड़ित करता रहता है। इस सबके बावजूद भी वह पूर्णतः शान्त रहकर तालमेल बिठाकर चलने का प्रयास करती है। वह अपने ऊपर पुरुष सत्ता को हावी नहीं होने देती है। साथ ही रिश्तों को तोड़ने की बजाय वह रिश्तों को संजोने, संभालकर चलने के लिए प्रेरित करती है। इसी कहानी से उपनिबद्ध इस उपन्यास में पाठक विभिन्न सांस्कृतिक तन्तुओं से भी रूबरू होता हुआ आगे बढ़ता है। इस उपन्यास में भारतीय समाज में चली आ रही परम्परागत सोच कि 'कन्या निश्चित ही पराया धन होती है' तथा **'लड़का–लड़की दोनों समान** होते हैं' इस आधुनिक सोच इन दोनों के मध्य पारस्परिक संघर्ष दिखलाया है। साथ ही आधुनिक समाज को एक स्वप्न भी दिखलाया है कि एक समय ऐसा भी आयेगा जब वह पुरानी व महत्त्वहीन मान्यताओं से निजात पाकर प्रगतिशील एवं सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ेगा और यह सब होगा शिक्षा के प्रसार के बलबूते। जब शाल्मली की माँ अपने पति से कहती है कि "लड़की पराया धन है, पति के घर सुख से रहे, यही सबसे बड़ा आशीर्वाद है, बाकी तो.....।"[25] तब शाल्मली के पिताजी उससे कहते हैं कि "तुम नहीं बदलोगी, श्यामल, आज औरत का कर्तव्य पत्नी बनने तक सीमित नहीं है। समय बदल रहा है।"[26] सच तो है। स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा के प्रसार का आन्दोलन गाँव–गाँव पहुँचा था। पिताजी बताते हैं कि उस समय जो बच्चों को पाठशाला नहीं भेजता था, उससे जवाब तलब किया जाता था। पेशेवर लोगों के बच्चे भी पढ़ने आने लगे थे, जिन्हें पता था कि उन्हें बाप–दादा का पेशा ही करना है, फिर आज उसी शिक्षा के नाम पर कटाक्ष क्यों? पुरानी मान्यताएँ सड़–गलकर लुप्त हो चुकी हैं, उनकी आज दुहाई क्यों? समाज को आगे जाना है या पीछे?[27] इस प्रकार पुरानी बातों को शाल्मली स्मरण कर अपना आक्रोश जाहिर करती है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य सिर्फ और सिर्फ सरकारी नौकरी रह गया है। अर्थोपार्जन करना ही जीवन का लक्ष्य रह गया है। जीवन जीने की कला सिखाकर एक सुयोग्य नागरिक का निर्माण करने से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। साथ ही पुश्तैनी कार्य करने के लायक भी नहीं छोड़ती है। आज की बेरोजगार पीढ़ी को पेशेवर कार्यों को करने में लज्जा महसूस होती है। यह विचार लड़का व लड़की दोनों तरफ गहराता जा रहा है। शाल्मली ऐसी ही नई पीढ़ी की प्रतीक है जो सरकारी नौकरी के लिए निरन्तर चिन्तित रहती है। इसी सम्बन्ध में नासिरा जी

लिखती है कि "शाल्मली इस विचार से भयभीत हो जाती कि वह इतना पढ़–लिखकर केवल गृहणी बनकर रह जाएगी। पता नहीं नौकरी मिले या न मिले, भगवान जाने! लाखों एम.ए. किए विद्यार्थी बेकार बैठे हैं। इस कम्पिटीशन में आ गई, तो उसका जीवन बदल जाएगा। वह घर–बाहर बहुत कुछ कर सकती है, वरना हर बात पर पति के आगे हाथ फैलाना पड़ेगा। जैसा उसके बचपन की सखी ज्योति बताती है। बी.ए. करके वही झाडू–पोंछा, बच्चों का लालन–पालन। बता रही थी कि उसकी डिग्रियाँ तक चूहे काट गये।....ऐसा जीवन मैं कभी नहीं गुजारूंगी, कभी नहीं।"[28]

शाल्मली के माध्यम से ही लेखिका पुनः वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर प्रहार करती है। शाल्मली अपनी सहकर्मी 'सरोज' के साथ पति–पत्नी जैसे मानवीय सम्बन्धों पर चर्चा करती हुई कहती है कि ""मैं आजकल एक बात सोचती रहती हूँ कि हमारी इस शिक्षा से क्या लाभ, जो हममें सहनशक्ति समाप्त होती जा रही है। एक तरफ हम बड़ी–बड़ी डिग्रियों और मोटे–मोटे शोध–ग्रन्थों से दबे जा रहे हैं, दूसरी तरफ मानवीय सम्बन्ध की पकड़ हमारे हाथों से छूटती जा रही है। उसके लिए समय निकालना समय का दुरुपयोग लगता है। ऑफिस, घर हर स्थान पर दूसरे को समझने की चेष्टा के स्थान पर अपने को लादने का जोर बढ़ गया है, सो दूसरे को अपना दर्पण समझ लेते हैं। छाया दिखी, तो ठीक, वरना दर्पण उठाकर पटक दिया। जहाँ भावना की जरुरत है, वहाँ व्यावहारिक बनेंगे और जहाँ व्यावहारिक बनना है, वहाँ भावुक.....![29]

इसी क्रम में नासिरा जी, शाल्मली के माध्यम से आगे लिखती है कि "बहुत लोग बड़ी–बड़ी डिग्रियों से सुसज्जित है, उनका मस्तिष्क भी खूब शिक्षित हो चुका है, मगर वे स्वयं वहीं हैं, जहां उनके पूर्वज थे। व्यवहार और सोच को वह एकदम नहीं बदल पाये हैं। ऐसा लगता है, उन्हें देखकर, जैसे वे कह रहे हों कि शिक्षा, शिक्षा के लिए व्यवहार, तो बस व्यवहार तक। उन्हें शिक्षा और व्यवहार का आपसी सम्बन्ध नहीं पता। उन्हें यह भी नहीं पता कि शिक्षा का अर्थ है व्यवहार में व्यापकता और सोच की जटिलता को तोड़कर उसमें विस्तार लाना।"[30]

नासिरा जी ने भारतीय संस्कृति के उस पवित्र रिश्ते की ओर इशारा किया है, जो अग्नि को साक्षी मानकर दो अनजान हृदय **पति–पत्नी के रिश्ते** में बंधकर एक हो जाते हैं। तथा सात जन्मों तक साथ निभाने की कसम खाते हैं। परन्तु आखिर इस सम्बन्ध की कसौटी क्या है? इस सम्बन्ध में श्रीमती वर्मा, जो बुढ़ापे में बीमार पति की सेवा के लिए गाँव से शहर आती है भले ही वर्मा जी के जीवन में अनेक औरतें आती–जाती रहीं, को देखकर शाल्मली सोचती है कि "जीवन भर पति को छूने की लालसा, बुढ़ापे में उनके कपड़े का स्पर्श करके अपने जख्मों पर मरहम रखकर संतोष करने वाली औरत कौन हैं? और उत्साहित दिनों का कोई साथी वर्मा जी के पास उनको सहारा देने के लिए इस बीमारी में नहीं ठहरा, तो वह कौन थी? और अब थके दिनों में

केवल एक बूढ़ी औरत जन्म–जन्म की साथी अग्नि को साक्षी मानकर खाई सौगन्ध को आज भी निभा रही है और वर्मा जी किस चीज की तलाश में उस सौगन्ध को भूल बैठे थे? क्या दिमागी ताल–मेल सम्बन्धों की कसौटी होता है या कुछ और? और क्या?"[31]

इस मूल रूप से **स्त्री–पुरुष सम्बन्ध** एवं पति–पत्नी के रिश्तों तथा उनके मध्य अन्तः संघर्ष को उजागर करता यह उपन्यास वर्तमान शिक्षा प्रणाली, पारम्परिक संकुचित सोच, सामाजिक रिश्तों में धैर्य एवं व्यावहारिकता इत्यादि विभिन्न पक्षों पर भी दृष्टिपात करता है।

2. ठीकरे की मंगनी : सांस्कृतिक चेतना

हालात की मार से पैदा हुई एक लड़की 'महरुख़' की कहानी है यह 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास। हालात प्रत्येक व्यक्ति को एक बार ज़िन्दगी के चौराहे पर लाकर खड़ा कर देते हैं और यही समय होता है, जहाँ पर पहुँच कर इन्सान अपना रास्ता चुनता है। कुछ अपने को हालात के हवाले कर देते हैं, कुछ सर झुका देते हैं, कुछ अपने को मिटा देते हैं और कुछ इस टूटन को एक नया अर्थ देकर यह बताते हैं कि यही जीवन का अन्तिम चौराहा नहीं है, इस लम्बी ज़िन्दगी में बहुत सारे चौराहे आपको मिलेंगे और यह आप होंगे, जो अपने रास्ते को पहचानते नाक की सीध में चलते हुए अपनी मंजिल पर पहुँचेंगे।

इन्हीं रास्तों पर चलने वाला पात्र है 'महरुख़' जो जिन्दगी को अपने नज़रिए से देखकर उसको एक पहचान, एक अर्थ देती हुई जनसमुदाय की आवाज में उदय होती है। ऐसा ही नजरिया हमें सांस्कृतिक क्षेत्र में भी देखने को मिलता है, जो हमें सोचने को मजबूर करता है साथ ही सही–गलत का निर्णय कर हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

संतान के जन्म लेते ही चाहे वह लड़का हो या लड़की सम्पूर्ण परिवार में खुशी की लहर दौड़ पड़ती है। इसलिए संतान के जन्म के समय मनाई जाने वाली खुशियों जैसे **दान देना, गाना–बजाना, मिठाईयाँ बाँटना, सोहर गीत** इत्यादि का वर्णन हमें 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में देखने को मिलता है। "महरुख़ जब पैदा हुई, तो सबके दिल झूम उठे थे। जिसकी जो समझ में आया उसने वैसे खुशियां मनाई। कहीं पैसे निछावर हुए, तो कहीं लड्डू बंटे, तो कहीं दाई को चांदी के कड़े बख़्शे गये।....छठी के दिन महरुख़ की नानी के घर से आये थाल में चांदी के चटवे, झुरझुने, पाज़ेब से लेकर सोने के बुन्दे तक थे। हर तरफ़ जश्न था। हर तरफ़ लाल–पीली झंडियों की तरह ख़ूबसूरत जुमलों की बहार थी।"[32]

नासिरा शर्मा ने **पुत्र जन्म पर मनाई जाने वाली खुशियों** का ही वर्णन नहीं किया है अपितु उन्होंने अपने उपन्यासों में पुत्री के जन्म के लिए अभिभावकों को दुआएँ माँगते और खुशियाँ मनाते भी दिखाया है जिसके द्वारा वह परिवार में पुत्र–पुत्री समानता का संदेश देती है। महरुख़

की बहन सनोबर ने पुत्र को जन्म दिया तब 'सोहर' गाने के साथ नेग की माँग शुरू हुई। दोनों समधिनों ने भाटिनों की झोली भरी थी।[33]

नासिरा जी ने 'ठीकरे की मंगनी' शीर्षक से समाज में **बोसीदा हो चुकी रस्मों को छोड़कर आगे बढ़ने की भी प्रेरणा दी है।** 'खालिदा, आज से यह लड़की मेरी हुई।' कानपुर वाली खाला ने उसकी पैदाइश के फ़ौरन बाद गन्दगी से भरे ठीकरे पर चांदी का चमचमाता रुपया फेंककर कहा था। "यह 'टोटके' की रस्म थी, ताकि लड़की जी जाए, इसके ददिहाल में तो लड़कियां जीती ही न थीं। शाहिदा ने पैदा होते ही उसे गोद ले लिया था, मगर यह टोटके की रस्म सच पूछो, 'ठीकरे की मंगनी' में बदल डाली थी।"[34]

लेकिन जब महरुख़ के मंगेतर रफ़त भाई ने महरुख़ से शादी, पढ़ाई के बाद में करने को कहा और महरुख़ को भी बिना शादी किये अपने साथ दिल्ली ले जाकर पढ़ाई करवाने के लिए कहा। तब एक सामाजिक संदेश देते हुए महरुख़ के अब्बू दुःखी मन से अपनी बेगम से कहते हैं कि "इसलिए अब्बा मरहूम **बचपन में तय शादियों के खिलाफ़** थे। एक बन्दिश–सी हो जाती है। ज़बान और क़ौल देकर आदमी फंस जाता है। लड़के का अच्छा–बुरा निकलना सब क़िस्मत पर छोड़ दिया जाता है। मेरा कहने का मतलब है, इस चक्कर में अच्छे रिश्ते भी लौट जाते हैं।"[35]

इसी तरह रोज़े के पश्चात् मस्जिद में **इफ़तारी** भेजने का इंतजाम महरुख़ की माँ खालिदा करती है। यह इफ़तारी भेजने की परम्परा लम्बे समय से ज़ैदी खान–दान में चली आ रही है लेकिन महरुख़ बिलकुल भी इसके पक्ष में नहीं है। वह एक पढ़ी–लिखी आधुनिक विचारों से युक्त महिला है। उसका मानना है कि व्यक्ति को परिस्थिति अनुकूल निर्णय लेने चाहिए। इसीलिए अपने परिवार की आर्थिक दशा के लिए वह अत्यधिक चिन्तित दिखाई देती है। वह अपनी माँ से कहती है– "घर की ख़स्ताहाली पर आप लोगों का ध्यान नहीं जाता है। दिन–ब–दिन छतों की हालत गिरती जा रही है। दो साल से पिछला दालान टपक रहा है। उसे पटवाने की जगह कभी कोलतार, कभी प्लास्टिक डलवा दी जाती है, मगर रमजान में पचास लोगों की 'अफ़तारी' जरूर मस्जिद में भेजी आपने, जबकि सिर्फ़ दस लोगों की 'अफ़तारी' भेजने से काम चल जाता।"[36]

बिस्मिल्लाह की रस्म मुस्लिम संस्कृति का अंग है। यह रस्म तब मनाई जाती है जब बालक–बालिका बोलने लगते हैं। इसमें कुरान पढ़ने से पूर्व 'काएदा' के शब्द पढ़ते हैं। महरुख़ चूँकि जैदी खानदान में चार पीढ़ियों के पश्चात् जन्मी पुत्री है इसलिए "जब पाँच साल की महरुख़ ने 'आम का सिपारा' पढ़ा।"[37] तो सम्पूर्ण परिवार प्रसन्नता से भर जाता है। इसी तरह गाँव में सलमान साहब के परिवार में एक छोटी लड़की 'सबा की बिस्मिल्लाह'[38] की रस्म का भी उल्लेख मिलता है। इस रस्म को मौलवी साहब द्वारा पूरा करवाया जाता है।

विवाह के अवसर पर की जाने वाली विभिन्न रस्मों जैसे उबटन लगाना, मेंहदी लगाना, सुहाग के गीत गाना आदि का भी यहाँ विशेष उल्लेख मिलता है। 'शाहीन' के विवाह के समय सलमान साहब का आँगन सुहाग के गीतों से गूँज रहा था। उबटन की महक आहिस्ता–आहिस्ता चाँदी के कटोरे से उठ कर फिज़ा में फैल रही थीं।........शाहीन मांझे बिठा दी गई, रस्में खत्म हुई। महरुख़ ने नेग का रुपया चौंकी के सामने रखे थाल में डाल शाहीन के सिर पर प्यार से हाथ फेरा।[39]

हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही संस्कृतियों में विभिन्न धार्मिक अवसरों, तीज–त्योहारों पर अपनायी जाने वाली परम्पराओं, उनके स्वरूपों तथा निहतार्थों से पाठकों को बखूबी रूबरू करवाया है। मुस्लिम शिया मत में **मुहर्रम** का विशेष महत्त्व है। हजरत इमाम हुसैन की शहादत तथा कर्बला में उसकी आल–औलाद का तीन दिनों तक भूखे–प्यासे रहने की याद में मुहर्रम के अवसर पर सोग मनाया जाता है। नासिरा जी लिखती हैं कि– "मोहर्रम का चांद दिख गया था। मकान के बीच बन्द चारों दरवाजों पर लगी कुंडियां खुल गई थीं और चारों भाईयों का ख़ानदान पूरे मकान में फैलकर अपने कामों को संभालने लगा था। रेशमा और सनोवर बड़े–बड़े तसलों में काला रंग घोलकर घर वालों के सफ़ेद कपड़ों को रंगने में व्यस्त हो गई थीं। घर की चारों बहुएं इमामबाड़े में अलम खड़े करके चूडियां बढ़ाने लगी। नाक की कील छोड़कर सारे ज़ेवर उन्होंने उतार कर रख दिए। मातम हो जाने के बाद तय हुआ कि रात के खाने के बाद इमामबाड़ा सजाया जाएगा।"[40]

'ईद' मुस्लिम समाज का पवित्र त्योहार है। रमजान के पूरे महीने में मुसलमान रोज़े रखकर पूरा महीना अल्लाह की इबादत में गुजार देते हैं और रोज़े समाप्त होने के बाद जिस दिन चाँद दिखाई देता है, उस दिन को छोड़कर दूसरे दिन ईद का त्योहार मनाया जाता है। इस अवसर पर मुसलमान ईदगाह में इकट्ठे होकर नमाज़ पढ़ते हैं। नमाज़ अदा करने से पूर्व अपनी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा गरीब, अनाथ एवं विधवाओं में बाँटा जाता है, इसे 'ज़कात' या 'फितरह' कहते हैं। ईद की खुशी में सेवइयाँ और शिरखुरमा बनाए और बाँटे जाते हैं। घर के बुजुर्ग बच्चों को ईदी देते हैं। 'ठीकरे की मंगनी' में ईद का चाँद दिखाई देने पर "चारों तरफ़ से मुबारक–सलामत का शोर उठा। जहाज़नुमा घर के चारों दरवाज़े खुल गए और सेवई भुनना, गिरी कटना और मेहंदी लगना शुरू हो गई। बड़ी चची और ताया के घर बहुओं और रेशमा के घर दामादों के स्वागत के लिए आंखे बिछाने की तैयारियां हो रही थीं। महरुख़ को लगा, उसने अच्छा ही किया, जो घर आ गई, फिर बड़े चाव से बैठकर उसने छोटी बहनों के हाथ में मेहंदी रचाई।"[41]

'दीपावली' हिन्दुओं का अत्यन्त पवित्र और धूमधाम से मनाया जाने वाला त्योहार है जो कार्तिक मास की अमावस्या को आता है। दीपावली के प्रति लोगों की सांस्कृतिक आस्था को प्रकट करते हुए नासिरा जी उपन्यास में लिखती है– "दिवाली का दिन है। घर में खील–बताशों का अम्बार लग गया है। दो दिन पहले से घर का कच्चा हिस्सा लछमिनिया ने गोबर मिट्टी से पोत कर चिकना बना दिया और घर के कोने में काजल पारने के लिए परई औंधा दी है। अब इस वक़्त वह दियों में बाती बंट कर डाल रही है।"[42]

नासिरा जी ने अपने इस उपन्यास के विभिन्न कथानकों के माध्यम **सामाजिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द** का पाठ पढ़ाया है। महरुख़ जिस गाँव में शिक्षिका की नौकरी करती है, वहाँ अधिकतर हिंदुओं के घर हैं, जो हर समय महरुख़ को सर–आँखों पर बिठाये रखते हैं। उसकी हर समस्या को अपना मानते हैं। गणपत काका उसे बिट्टो रानी कहकर पुकारते हैं और इसका धर्म भी निभाते हैं। जब संजय और इशरत दोनों मिलकर रात में आकर महरुख़ के दरवाजे की कुंडी खटखटाते है तब गणपत काका के परिवार ने उनकी जमकर पिटाई की। इसी प्रकार महरुख़ भी सभी धर्मों को मानती है। वह हर घर में आयोजित धार्मिक आयोजनों कीर्तन आदि में भाग लेती है और प्रसादी प्राप्त करती है।

महरुख़ जब स्कूल में प्रिंसीपल का ओहदा संभालती है तो वह स्कूल में आमूल–चूल परिवर्तन लाकर **शिक्षा का सकारात्मक माहौल** विकसित करने में लग जाती हैं जब महरुख़ यह फैसला लेती है कि 15 अगस्त और 26 जनवरी के अलावा कोई भी धार्मिक त्योहार स्कूल में नहीं मनाए जायेंगे, तो जैसे बवाल उठ खड़ा होता है। पर लोगों की बातों का महरुख़ जो नपा तुला जवाब देती है उस पर वर्तमान सरकारों, समाज के पहरेदारों एवं हर शिक्षक को गौर करना चाहिए– "मैं विद्यालय को दानिश और विद्या का घर समझती हूँ। उन्हें ज्ञान देना, इल्म देना हमारा काम है, न कि यह बात बताना कि कौन किस मजहब और जात से है। क्लास में आकर हर बच्चा हमारे लिए हमारा शागिर्द है। उनका मजहब, उनका दीन उनके दिल में महफूज है और वह आजाद है अपने त्योहारों को अपने खानदान, घर और दोस्तों के साथ मनाने के लिए। मगर स्कूल में वही मुद्दे उठाए जायेंगे जो उन्हें आगे ले जायें.........।"[43]

इसके अलावा महरुख़ का मानना है कि "विद्यालय कोर्स की किताबें युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसरों से न लिखवा कर स्कूल–टीचरों से लिखवाई जायें, जिनमें लड़कों की मानसिकता और बौद्धिक विकास की समझ ज्यादा होती है।"[44]

नासिरा शर्मा जी ने इस ओर भी पाठकों का ध्यान खींचने का प्रयास किया है कि बुढ़ापे में **बड़ों का सहारा बनना**, उनकी देखभाल करना भारतीय संस्कृति का अमूल्य हिस्सा रहा है परन्तु आज की नई पीढ़ी अपने इस दायित्व को भूलती जा रही है। इसलिए नासिरा जी महरुख से

कहलवाती हैं कि "बस्ती में लौटकर महरुख़ को अच्छा लगा। इस घर को उसकी ज़रूरत है। सारे बुजुर्ग बूढ़े और माजूर हो रहे हैं। उनका सहारा बनने का एक अलग सुख है।"[45]

इस प्रकार नासिरा जी ने इस उपन्यास के माध्यम से सर्वधर्म समभाव, पारस्परिक सौहर्द एवं प्रेमभाव तथा मानव सेवा इत्यादि सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा दी है।

3. ज़िन्दा मुहावरे : सांस्कृतिक चेतना

जब किसी भी ज़बान का कोई बोलने वाला नहीं बचता तो वह ज़बान 'मुर्दा' कहलाती है मगर उस ज़बान के चन्द मुहावरे दूसरी किसी भाषा में जाकर ज़िन्दा हो उठते हैं और समय के गुज़रने के साथ उनका प्रयोग उस ज़बान में इस तरह खप जाता है कि वे उस ज़बान का हिस्सा लगने लगते हैं मगर इस तरह घुलने–मिलने के बावजूद यह **'ज़िन्दा मुहावरे'** अपनी **'मुर्दा ज़बान'** का पुरातन इतिहास अपने में सजोए होते हैं। ठीक उसी प्रकार महाजिर भी तो उस मोहब्बत की ज़बान के 'ज़िन्दा मुहावरे' ही हैं जो मुल्क के बँटवारे से पहले पूरे हिन्दुस्तान में बोली जाती थी। इसी सोच को लेकर लिखे गये नासिरा शर्मा के इस उपन्यास 'ज़िन्दा मुहावरे' का उद्देश्य भी यही है कि पाठक उस सेतु पर आकर खड़े हो सकें। जो एक इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है। इस प्रकार सांस्कृतिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

उपन्यास में नासिरा शर्मा लिखती हैं कि किसी भी देश, समाज या राष्ट्र अपनी धन–दौलत आदि भौतिक समृद्धि से श्रेष्ठ नहीं होता। यह उसका पैमाना नहीं है। जब जावेद पाकिस्तान जाकर बस गये निजाम की समृद्धि, गाड़ी, घर, दौलत का बखान कर इमाम से पाकिस्तान चलकर मिलने की बात कहता है। तब इमाम कहता है कि "यह सब सिर्फ दिखावा है। वहाँ पर जो दौलत है, वह सिर्फ कुछ लोगों के पास है और फिर सारा खेल बाहर की इमदाद पर है।"[46] **"कोई मुल्क, कोई क़ौम धन–दौलत, मोटर गाड़ी से अज़ीम नहीं बनती, बल्कि उसकी तहजीब और तरीक़े..... ।"[47]**

हर प्राणी का अपनी जगह, **अपनी जमीन या सरज़मीं से बेहद प्रेम होता है, उससे आत्मिक जुड़ाव होता है।** इसी कारण अपनी सरजमीं से बिछोह को वह सहन नहीं कर पाता। वह जी नहीं पाता है और जैसे–तैसे जी भी गया तो वह मुर्दा ज़िस्म के समान ही होता है। नासिरा जी ने इस उपन्यास के अनेक वृत्तान्तों के द्वारा इसी बात को आमजन को समझाने का प्रयास किया है। कहीं जीवन्त एवं भावनात्मक वर्णन के द्वारा तो कहीं प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से इस विचार को मूर्तरूप दिया है। निजाम जब पाकिस्तान जाता है तो वह अपने साथ अपनी पसंदीदा एवं प्रिय लाल मुनियाओं के पिंजरे तथा कंगनी के झोले को साथ ले जाना नहीं भूलता।

पर पाकिस्तान जाकर वे जीवित नहीं रह पाती– "पिंजड़े में कुल बारह मुनियाएँ थीं। जब तक झोली में 'कंगनी' के दाने रहे, वे खाती रहीं और गाती रहीं, फिर कंगनी के अलावा उन्होंने किसी दाने को न छुआ। गेहूँ और चावल कूटा, मगर बेकार। आटे की गोली दी, सूखी रोटी का चूरा दिया, मगर उन्होंने कुछ न खाया। चार दिन तक वे खाली पेट आदत के मुताबिक़ गाती रही और वह गली–गली, दुकान–दुकान कंगनी के दाने ढूँढता रहा। उसके गले से भी रोटी फँस–फँस कर उतरती और पाँचवें दिन जोड़े टूटने लगे। हर चिड़िया को वह उठाकर सहलाता, उसकी लाल चोंच और लाल काले डैनों पर पड़े सफेद मोतियों को थपकता, फिर उस सुहागिन चिड़िया के मुर्दा जिस्म को ज़मीन में गाड़ देता।

पिंजड़ा खाली हो गया। नए वतन में पुराने साथी, साथ छोड़ गए। उसका ख़्वाब बिखर गया कि वह कराची शहर में लालमुनियाओं के घोसलों से पेड़ों को भर देगा। उनकी चहचहाहट से माहौल गूँजता रहेगा, मगर वह क्यों नहीं साथ निभा पाई? क्यों नया दाना चुग न पाई? यहाँ भी तो आसमान का वही रंग था। इन्सानों की वही शक्लें। शायद कुछ था जरूर, जो उन्हें रास न आया? क्या था वह......?"[48]

बँटवारे के बाद अपनी जड़ों से दूर गया हर शख़्स उन लालमुनियाओं की भाँति स्वयं के अन्दर एक अजीब सी तड़पन और बेचैनी महसूस करता है। अपनों से मिलने के लिए तड़पता रहता है। पर अधिकांश की इच्छा, इच्छा ही रह जाती है और शरीर के साथ ही दफन हो जाती है। निज़ाम के सास–ससुर की भी यही स्थिति होती है। वे मरने से पहले एक बार अपने पुश्तैनी घर को देखने की इच्छा व्यक्त करते हैं परन्तु उनकी यह इच्छा अधूरी ही रह जाती है। निजाम के ससुर अपनी बेटी से कहते हैं, "सबीहा बेटी, मरने से पहले एक बार हिन्दुस्तान जाकर अपने घर को देखने की तमन्ना रह गई है।"[49]

नासिरा जी ने **सांस्कृतिक अधःपतन के सूचक धर्म के बाजारीकरण** की ओर भी पाठकों का ध्यान खींचा है। लोग धार्मिक अवसरों को भी निजी स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनाने से भी नहीं चूकते। धर्म आचरण से हठकर दिखावेपन का शिकार होता जा रहा है। लेखिका लिखती हैं कि "ईद के दिन निज़ाम के यहाँ बड़ी चहल–पहल थी। शहर के कई ताजिर, वज़ीर और फौजी अफसर उसके यहाँ ईद मिलने आए थे। रात को उसने बहुत बड़ी दावत का इंतजाम भी किया था। सच पूछा जाए तो ईद सिर्फ बहाना थी, दरअसल निज़ाम एक्सपोर्ट–इम्पोर्ट का सिलसिला शुरू करना चाहता था। इसलिए वह खालिस ताजिराना दावत थी।"[50]

धार्मिक उन्माद और साम्प्रदायिकता के परिणाम बड़े वीभत्स होते हैं। इनका धर्म के मूल तत्त्व से कोई लेना–देना नहीं होता है। सिर्फ और सिर्फ मानवता शर्मसार होती हुई दिखाई देती है। अतः विभाजन के समय हुए साम्प्रदायिक दंगे भी एक मानवीय त्रासदी रहे हैं। दोनों ही पक्षों

की संकीर्ण सोच के परिणामस्वरूप उपजे इन दंगों में हजारों–लाखों निर्दोष लोग मारे गये। हजारों घर उजड़ गए। नासिरा जी के शब्दों में, "बीच सफर में जाते हुए कुछ काफिले पर कुछ हथियार बंद टूट पड़े और गाफिर मुसाफिरों को लूटा, मारा और कत्ल किया। कुछ जवान औरतें और लड़कियाँ गायब हो गयीं। शायद उनकी किस्मत का पड़ाव यही था। उनके मर्दों की लाशें खून में लिथड़ी पड़ी थी।"[51]

जब इन्सान चारों तरफ से समस्याओं से घिर जाता है और उसे कुछ समाधान नजर नहीं आता है **तब वह असहाय सा अपने ईश्वर के प्रति देखता है।** उससे प्रार्थना करता है कष्टों को हरने के लिए। भारत–पाक विभाजन तथा विभाजन पश्चात् हुए दंगों से तंग आकर निज़ाम के गाँव के लोग जुमे की नमाज़ के दिन अपने राशे वाले कांपते हाथ उठाकर बुलन्द आवाज में ईश्वर से सामूहिक प्रार्थना करते हैं– "हमारे गुनाह माफ़ कर! हमारी गलतियाँ दर गुज़र कर मेरे माबूद! हमें अपनी ज़मीन पर इज्ज़त बख्श! तू तो सारी कायनात का मालिक है, अपने बंदों का इम्तहान इतना सख्त मत ले। हमारा सब्र न आज़मा! हम पर रहम खा!"...... "अल्लाह पाक! हमवतनों के दिलों से नफ़रत धो! उसमें हमारी मोहब्बत के बीज बो, या फिर हमें अपने पास बुला लो!"[52]

इसके अलावा हिन्दू–मुस्लिम या कहें दुनिया की हर संस्कृति में अपने **ईश्वर से मन्नत माँगना**, मन्नत पूरी होने पर मन्नत वाले स्थान **पर चढ़ावा या भेंट चढ़ाना**, **धार्मिक यात्रा** कर ईश्वर की नजदीकी महसूस करना इत्यादि रिवाज चले आ रहे हैं। अली नकी के पिता लखनऊ के इमामबाड़े में मन्नत माँगते हैं जो पूरी हो जाती है। विभाजन के उपरान्त वह स्वयं वहाँ जाने में असमर्थ है इसलिए उन्हें जब निज़ाम की हिंदुस्तान यात्रा के बारे में पता चलता है तो उससे कहते हैं– "मैंने बड़े इमामबाड़े में मन्नत मांगी थी। वह पूरी हो गई, मगर चाँदी का शमादान चढ़ाने न जा सका। भूला हुआ था।.....तुम यह कर्जा उतार देना।"[53]

इसी तरह उपन्यास के नायक निज़ाम के मन में यह अभिलाषा है कि वह बहुत धन कमाकर अपने पिता को हज करवाएगा। वह सोचता है– "मक्का–मदीना, इराक, ईरान हर इबादतगाह की ज़्यारत कराने ले जाऊँगा।"[54]

एक विशेष रस्म जो इस उपन्यास में देखने को मिली वह है मुस्लिम समुदाय की रस्म **'दूध बख़्शना'**। माता का दूध संतान के लिए एक ऋण होता है, उससे कोई उऋण नहीं हो सकता है। अतः माता स्वयं अपनी संतान को इससे मुक्त कर देती है और इसे ही मुस्लिम समाज में 'दूध बख़्शना' कहा जाता है। निज़ाम के पाकिस्तान चले जाने के कारण उसकी अम्मी फ़ात्मा बी बड़ी दुःखी होती है। उसके चले जाने के बाद "फ़ात्मा बी तिल–तिल करके ऐसा घटी की मौत

की दहलीज पर आन टिकी। आँखें बंद करने से पहले वह इमाम, ऱज्जो के साथ नन्हें (निज़ाम) का दूध बख़्शना नहीं भूलीं।"[55]

इस प्रकार सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर मानवीयता को झकझोर कर रख देने वाला नासिरा शर्मा का यह बहुत ही मार्मिक उपन्यास है जो बताता है कि किसी प्राणी को भले ही उसकी जड़ों से दूर कर दिया जाये पर उससे उसका आत्मिक विलगाव संभव नहीं है और यही वह अदृश्य शक्ति है जो इंसान को इंसान से जोड़कर रखती है।

4. सात नदियाँ एक समन्दर (बहिश्ते ज़हरा) : सांस्कृतिक चेतना

पूर्व में 'सात नदियाँ एक समन्दर' नाम से प्रकाशित नासिरा शर्मा कृत 'बहिश्ते ज़हरा' उपन्यास ईरान क्रान्ति पर लिखा गया है। राजनीति, आज इन्सानी ख़ून में प्रवाहित है। उसके प्रकोप से इन्सानियत बीमार है; दम तोड़ती नज़र आती है। संक्षेप में राजनीति सिर्फ़ 'पॉवर गेम' है। यही राजनीति है जो किसी की अच्छाई और बुराई को तय करती है, सच्चाई के मुँह पर नकाब डालती है और बुराई के झण्डे गाड़ती है। ज़िन्दगी, आज राजनीति के कारावास में क़ैद है। इस क़ैदी को मुक्त कौन कराएगा? राजनीतिज्ञ या रचनाकार? इसलिए आज लेखक का फर्ज़ बनता है कि वह क़लम को राजनीति की गुलाम न बनाकर उसे राजनीति के प्रहार से ज़ख़्मी इन्सानी ज़िन्दगियों की पर्दाकुशाई में समर्पित कर दे।

इन्सानियत, आज ईरान के राजनीतिक पाटों में पिस रही है। अतः ईरानी क्रान्ति पर लिखा गया यह विश्व का पहला ऐसा उपन्यास है जो एक तरफ पचास साल पुराने पहलवी साम्राज्य के उखड़ने और इस्लामिक गणतंत्र के बनने की गाथा कहता है तो दूसरी तरफ मानवीय सरोकारों और आम इन्सान की आवश्यकताओं की पुरजोर वकालत करता नज़र आता है। ज़बान और बयान की आज़ादी के लिए संघर्षरत बुद्धिजीवियों का दर्दनाक अफ़साना सुनाना नहीं भूलता जो इतिहास के पन्नों पर दर्ज उनकी क़ुर्बानी व नाकाम तमन्नाओं का एक खूनी मर्सियाह बन उभरता है। जिसका गवाह तेहरान का विस्तृत क़ब्रिस्तान 'बहिश्ते ज़हरा' है। जहाँ ईरान की जवान पीढ़ी ज़मीन के आगोश में दफ़न है। इस प्रकार अपने धारा–प्रवाह आगे बढ़ते कथानक के माध्यम से ईरानी संस्कृति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विचार झर–झर कर सामने आते हैं।

धर्म जो मनुष्य को दया, ममता, त्याग, धैर्य और सहिष्णुता का पाठ पढ़ाता है, का मूल भाव कहीं खो गया है। कभी राजनीतिज्ञों द्वारा, तो कभी धर्म के ठेकेदारों द्वारा लोगों की धार्मिक भावनाओं को उकसाकर धार्मिक उन्माद को बढ़ावा दिया जाता है और उनके मनो–मस्तिष्कों में ऐसे भाव भर दिये जाते हैं कि वे अपने धर्म को श्रेष्ठ मानते हुए किसी भी हद तक जा सकते हैं। राजनीतिज्ञों द्वारा फैलाए जाने वाले धार्मिक विद्वेष को लेखिका ने अपनी इस रचना में दर्शाया है

जहाँ अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु करवाई गई क्रांति को धार्मिक क्रांति का रूप दे दिया गया। ईरान में फैलाये जा रहे **धार्मिक उन्माद** की चिंगारी को हवा देते हुए एक पासदार कहता है– "यदि जवान लड़के–लड़कियाँ इस्लाम की रोशनी तले नहीं है तो माँ–बाप का फर्ज़ बनता है कि उनको सीधे रास्ते पर लाएँ और उनके मन में युद्ध की गरिमा की भावना जगाएँ और उन्हें रणक्षेत्र की ओर जाने के लिए प्रेरित करें। हमारा युद्ध धर्मयुद्ध है।"[56]

इन्सान के लिए धर्म एक ऐसी वस्तु है जिसके लिए वह किसी भी प्रकार का बलिदान और त्याग करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है। इसी भावना को भुनाते हुए अय्यातुल्ला खुमैनी के समर्थक ग्रामीण लोगों की धार्मिक भावनाओं को उकसाकर उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं और धर्म की रक्षा करना उनका कर्त्तव्य बताते हैं– "अय्यातुल्ला, धर्म के रक्षकों को ये नास्तिक बम से उड़ाते हैं.....ये हमारा देश, विदेश के हाथों बेच देना चाहते हैं। आप हमारी सहायता करें.....इस्लाम की रक्षा........धर्म की रक्षा हर देशभक्त का कर्त्तव्य है।"[57] इसलिए उस समय धर्म के नाम पर "बच्चे और बूढ़े सब लड़ने–मरने को तैयार थे। किसलिए? दूसरे भाई को मारने के लिए? उनका उत्तर था, "खुदा की राह में धर्म की खातिर यह युद्ध है।"[58]

धर्म एवं शास्त्र व्यक्ति को सन्मार्ग का पथ–प्रशस्त करता है परन्तु आधुनिक काल में धार्मिक क्षेत्र में अनेक प्रकार की **रूढियाँ एवं अन्धविश्वास** समाहित हो गए हैं जो व्यक्ति के मानस को कुंठित कर समाज के विकास को अवरुद्ध कर रहे हैं। इसी तरह ज्योतिष विद्या का दुरुपयोग कर कुछ स्वार्थी लोग जन सामान्य का शोषण कर अपनी जेबें भरने में लगे हुए हैं। इसी प्रकार का एक दृश्य हमें 'सात नदियाँ एक समन्दर' उपन्यास के प्रारम्भ में देखने को मिलता है। एक फालगीरन कहवे के तलछट के द्वारा लोगों का भाग्य बताकर पैसे ऐंठती हुई दिखाई देती है। लेकिन तय्यबा जो क्रांतिकारी विचारों से युक्त है और भाग्य की बजाय कर्म पर बल देती है, उसकी मान्यता है कि– "भाग्य यदि हाथ में लिखा होता तो आज संसार में कोई दुःखी और बेचारा न बचता, सब भाग्य रेखा को पढ़कर अपनी राह बदल लेते।"[59] जब फालगीरन उसकी ओर मुखातिब होती है तो तय्यबा कहती है, "नहीं! मुझे समय बरबाद नहीं करना है। मैं स्वयं पेंटिंग करती हूँ.........चाहो तो तुम्हारा भूत और भविष्य रेखाओं की विभिन्न अभिव्यक्तियों द्वारा खींच दूँ।..... .मेरा भाग्य इतना आसान नहीं पढ़ना। उसकी भाषा तुम्हारे लिए अनजान है। मेरा भाग्य मेरा करम है, न कि कहवे की तलछट।..........नहीं ये मेरे भाग्य की रेखाएँ नहीं है। यह ईरान का मानचित्र है जो मेरे हाथ में है। यह पहाड़ ये नदियाँ, यह मैदान और यह विश्वविद्यालय, यह कारावास और यह घर इसे मुझे संवारना है। इसे तुम क्या पढ़ पाओगी?"[60]

व्यक्ति चाहे जिस धर्म व मजहब को मानने वाला हो, वह **ईश्वर की सत्ता** को स्वीकार करता है। जब भी वह मुसीबतों से घिरता है और उसका स्वयं का सामर्थ्य जवाब देने लगता है,

तब वह स्वयं को उस पराशक्ति के समक्ष समर्पित कर देता है और उसी से मार्गदर्शन चाहता है। मलीहा एक ऐसी महिला पात्र है जिसके पति को देशद्रोही घोषित कर सजा दी जाती है। मलीहा बिल्कुल अकेली हो जाती है लेकिन विपरीत परिस्थितियों में भी वह नमाज़ पढ़ना नहीं भूलती। वह अल्लाह से दुआ मांगती है "मेरे माबूद! मुझे सीधा रास्ता दिखा। मेरे दिल और दिमाग को इतनी ताकत दे कि मैं सच्चाई के रास्ते पर चलने से न डगमगाऊँ!"........ "मेरे खुदा! मुझे सहारा दे। मैं थकती जा रही हूँ। मुझे ताकत अता कर।"[61]

उपन्यास की एक अन्य महिला पात्र सूसन, जिसके पति अब्बास को पदच्युत कर झूठे आरोप में फंसाने का प्रयास किया जाता है, भी "कमरे में जानमाज़ बिछाकर खुदा की दरगाह में अपने पति के लिए दिल से दुआ मांगती है।"[62]

इसी तरह और भी अनेक **धार्मिक क्रियाओं** का इस उपन्यास में चित्रण किया गया है, जो ईरानी संस्कृति का हिस्सा रही हैं। इस्लाम धर्म के प्रत्येक अनुयायी को, चाहे वह किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो; दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ना अनिवार्य है। ईरानी क्रांति के दौरान युद्ध की भयावह परिस्थितियों में भी मुस्लिम धर्म के अनुयायियों के द्वारा 'पाँचों वक्त की नमाज़ पढ़ने'[63] का उल्लेख किया गया है। ईरान में धार्मिक प्रभुता के कारण प्रत्येक स्थान पर नमाज़ रूपी धार्मिक क्रिया का पालन करना अनिवार्य था, यही कारण था कि अज़ान की आवाज़ सुनते ही 'नमाज़ शुरू हो गई। सारा दफ़तर इस समय नमाज़ पढ़ रहा था।[64]

इसी तरह **'मन्नत'** मांगने का रिवाज भी ईरान समाज में खूब प्रचलित है। उपन्यास में लोगों द्वारा विभिन्न स्थलों पर जाकर मन्नत मांगने का वर्णन मिलता है। ईरान में "हज़रत रेज़ा का हरम, सोने के कलस, गुंबद आदि तेज़ रोशनी में झिलमिल–झिलमिल कर रहे थे।.....दूर–दूर से आए धर्मनिष्ठ यात्री सिजदे में गिरे थे। मन्नत मांग रहे थे। जरी से लिपट रो रहे थे।"[65]

'नौरूज़' ईरानी संस्कृति का अभिन्न अंग है। पारसी तथा ईरानी समाज में नौरूज़ बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। नासिरा जी 'नौरूज़ पर्व' के सम्बन्ध में लिखती है कि "नौरूज़ का यह त्योहार जमशेद बादशाह के शासन काल से मनाया जाता है। सासनी साम्राज्य में इस दिन का अर्थ खुशी मनाने से लिया गया था।........नववर्ष की इस शुरूआत के दिन हर ईरानी 'सप्तसीन' सजाता है, जिसमें सात (प्रतीक) वस्तुओं का रहना अत्यन्त आवश्यक है– जो हर परिवार में सजाई जाती हैं जो फारसी के अक्षर सीन (स) से आरम्भ होते हैं। जैसे–सब्जी (साग या गेहूँ के अँखुए), सेब, सिरका (खमीर का निशान), सीर (लहसुन, प्रेतात्मा को भगाने के लिए), सीख (सोने व चाँदी की सलाख, जो लक्ष्मी का प्रतीक है), सूमक (एक मसाला जो चुल्लूकबाब पकाने के काम आता है। यह सुखी जीवन का द्योतक है) व सेमानु (हलवे की तरह मीठा पकवान)। इसके साथ कुरान शरीफ, रंगे हुए अंडे, आटा और प्याले में सुनहरी मछली रखी जाती है।"[66]

ईरानी क्रांति के पश्चात् इस पर्व पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। ".....नौरूज़ शाही त्योहार है, भला हम ईरानी न हो गये अहमक़ हो गए.......हमारे पुराने रीति–रिवाज़ हमारे नहीं बल्कि पहलवी काल के हुए।"[67]

नौरूज़ के तेहरवें दिन **'सीज़दे बदर'** का दिन मनाते हैं। "इस दिन को ईरानी अशुभ मानते हैं। वे सुबह ही घर छोड़कर पार्कों, बागों में चले जाते हैं, ताकि पहाड़ों, मैदानों की हरियाली उनके जीवन में खुशहाली भर दे। हर घर उस दिन खाली होता है। जाते समय वे गेहूँ, प्याज़ की सारी हरियाली, जो नौरोज़ के दिन के लिए होते हैं, बरतन सहित ले जाते हैं। इसी दिन कुंवारी लड़कियाँ घास में गाँठ बाँधकर अच्छा पति पाने की मन्नत मानती है।"[68] 'सात नदियाँ एक समंदर' में इसका वर्णन करती हुई लेखिका लिखती हैं कि "आज सीज़दे बदर का दिन था, रिवाज़ के अनुसार कोई भी घर पर नहीं था। अपशकुन जो माना जाता था। नौरूज़ के लिए जो गेहूँ शहरी तश्तरी या प्याली में बोते थे उसे उठाकर जंगल में फेंकने जाना होता था क्योंकि विश्वास ऐसा बना है कि नए वर्ष 'नौरूज़' के बाद ऐसा करने से घर की सारी मनहूसित दूर हो जाती है। इस दिन लड़कियां घास (उसी गेहूँ के फुटाव) में गाँठ बाँधकर अपने भावी पति को पाने की मनोकामना करती थी।"[69]

सारी सहेलियों के अपने–अपने घरवालों के साथ शहर से दूर बाग़ों में चले जाने पर क्रान्तिकारी व प्रगतिशील विचारों की पोषक तय्यबा छत पर पेंटिंग बनाती हुई सोचती है– "घर की मनहूसित को फेंकने लोग जंगल की ओर जाते हैं पर अपने अन्दर की मनहूसियत को कहाँ उगलेंगे? झूठे कहकहों, दावतों, फैशन और तेज़ फ़र्राटे भरती कारों में.....?"[70]

'शबे यल्दा' भी ईरानी संस्कृति का विशेष अंग है जिसके विषय में लेखिका कहती हैं कि "शबे यल्दा पच्चीस दिसम्बर की लम्बी रात को कहा जाता है जिसे ईरानी पूरी रात जागकर, साज–आवाज़ के साथ काटते हैं।"[71]

"शबे यल्दा कल है। आज दुकानों में तरबूज के लिए लाइन लगी है। इतनी भीड़ है कि बस! सबका ख्याल है जिसने शबे यल्दा की रात को तरबूज खाया वह गर्मी की तपिश से बचा रहा। जाड़े की ऋतु में तरबूज मिलना नामुमकिन है मगर इस ईरानी विश्वास के कारण लाखों की संख्या में तरबूज कोल्ड स्टोरेज में रखे जाते हैं और आज इनकी क़ीमत दो या तीन तुमान नहीं बल्कि पूरे सौ तुमान है तो भी सब खरीदना चाहते हैं।"[72]

पारस्परिक अभिवादन हेतु किया जाने वाला सलाम, अदब–आदाब ईरानी जनता के हृदय में समाया हुआ था, किंतु सत्ता परिवर्तन के बाद ईरान के "पासदार बदतमीजी से बात करते हैं।.... ....उस बात को सुनकर न केवल जमाल आगा की आँखें, बल्कि सबकी आँखें नीचे झुक गई।

अदब और आदाब, जो ईरानी समाज का गहना था, क्या हुआ उसको।"[73] अतः जो लोग अपनी संस्कृति का सम्मान करना नहीं जानते, उन्हें लोग हेय समझते हैं। इसी प्रकार **अतिथि सत्कार की भावना** भी ईरानी समाज में खासी देखी जाती है। इसलिए "सारे मोहल्ले वालों के मन में था कि शहनाज़ की ख़ाला के घर बड़े लोग मेहमान आये हैं। अच्छी तरह खातिर होनी चाहिए सो जो भी कुर्दी सामान था, सबने भेज दिया था।"[74]

लोकगीत संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि इनके अन्दर तद्–तद्देश की संस्कृति एवं वास्तविक झाँकी समाहित रहती है। लेखिका ने ईरानी लोकगीतों का वर्णन किया है। मलीहा ने पुराना लोकगीत गाया, जो वास्तव में कोरस हो गया।

"ओ शिराज़ी हसीना, आँखें हैं तेरी या काग़ज़ी बादाम?
बादाम का नाम मत लेना, बाज़ार में है बहुत महँगा।
ओ शिराज़ी हसीना, तेरे होंठ हैं या शहद?
शहद का नाम मत लेना, बाज़ार में है बहुत महँगा।"[75]

शहनाज़ की ख़ाला कहती है कि– "जब इन्हें कुर्दी गाना पसन्द है तो रौशन वग़ैरह को बुलवा लो, कुछ कुर्दी लोकनृत्य हो जाए!"[76] कुर्दी नृत्य के बाद परी, अख़्तर और शहनाज़ ने शिराज़ी संगीत पर नृत्य किया। इसके अलावा सिनेमा, ताश खेलना आदि भी मनोरंजन के प्रमुख साधन ईरानी समाज में प्रचलित हैं।

मुस्लिम संस्कृति में पाए जाने वाले **मृत्यु संस्कारों** का वर्णन अन्य उपन्यासों की भाँति यहाँ भी मिलता है। मुस्लिम संस्कृति में मृतक को दफनाया जाता है। सबसे पहले मृतक को गुस्ल (स्नान) करवाकर, कफन पहनाकर उसके जनाज़े की शांति के लिए फातेहा पढ़ा जाता है। तीन दिन बाद 'सेवुम' तथा चालीस दिन बाद 'चेहलुम' मनाया जाता है।[77] ईरानी क्रांति के दौरान जब तीन युवकों की मृत्यु हो जाती है और उनका 'जनाज़ा आगे बढ़ा। मस्जिद में पहुँचा। तीन कब्रों के लिए तकियादार से कहकर सब नमाज़े जनाज़ा के लिए सफ में खड़े हुए। नमाजें जनाज़ा के बाद तीनों जनाज़े दफना दिए गए।"[78]

इस प्रकार ईरानी समाज के सांस्कृतिक पहलुओं पर दृष्टिपात करने वाला यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

5. अक्षयवट : सांस्कृतिक चेतना

गंगा–जमुनी तहज़ीब का जीवन्त दस्तावेज है– अक्षयवट उपन्यास। नासिरा शर्मा कृत यह उपन्यास प्रतीक है उस अविराम भावधारा का, उस अक्षर विरासत का, जिसका इलाहाबाद शहर की धमनियों में निरन्तर विस्तार है। इसमें इलाहाबाद शहर अपने नये–पुराने, चटक–मद्धिम रंगों

और आयामों के साथ जीवन्त रूप में उपस्थित है। इसमें शहर की धड़कन में रची–बसी ऐसी युवा जिन्दगियों की मर्मस्पर्शी कहानी है जो विरासत में मिली तमाम उपलब्धियों के बावजूद वर्तमान व्यवस्था की सड़ांध और आपाधापी में अवसाद–भरी जिन्दगी जीने के लिए अभिशप्त हैं। इसमें समग्र इलाहाबाद अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक विरासत के साथ उपस्थित है। नासिरा शर्मा ने इलाहाबादी संस्कृति की सूक्ष्मतम इकाईयों को आधार बनाकर सम्पूर्ण इलाहाबाद के जीवन की तस्वीर विभिन्न रंगों एवं छवियों में मुखरित की है।

गंगा–जमुनी संस्कृति इस उपन्यास की ताक़त भी है और आत्मा भी, जिसकी वजह से उपन्यास अक्षयवट बनता है। इस उपन्यास में **हिन्दू–मुस्लिम की मिली–जुली संस्कृति, रीति–रिवाजों, परम्पराओं और उत्सवों** को चित्रित किया गया है। उपन्यास का आरम्भ ही इलाहाबाद में दशहरा मनाने की तैयारियों से होता है। इलाहाबाद को चमकाया तथा सजाया जा रहा है। शहर में अलग–अलग उत्सवों और कार्यक्रमों की तैयारियाँ चल रही है। इन तैयारियों से महसूस ही नहीं होता कि कब किसका उत्सव है, लेकिन अगर कुछ महसूस होता है तो वो है– मानवीय संबंधों में जीवन्तता। जिसे देखकर सभी सम्प्रदाय और धर्म के लोग खुश होते हैं– "जीवन का एकाकीपन इन्हीं उत्सवों से टूटता है और थकान उतारने का बहाना देता है। अमीर–गरीब, हिन्दू–मुसलमान शहर के इस हँसमुख चेहरे को देखकर मगन हो उठे थे।"[79]

उपन्यास में **रामलीला** के मंचन का रंग भी निराला ही है। दर्शकों को इकट्ठा करने के लिए नये–नये तरीके अपनाये जाते हैं, संगीत के द्वारा दर्शकों को एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है। दर्शक सभी धर्म, सम्प्रदाय की दीवारों को तोड़कर, एक साथ बैठकर रामलीला का आनन्द लेते हैं– "मीरापुर के पार्क में रामलीला का आयोजन चल रहा था। जमीन पर बिछी दरी पर धोबी, नाई, मजदूर, आकर अपनी–अपनी जगह ले चुके थे।"[80]..... "रामलीला की यह चौकियाँ देखने इलाहाबाद के आस–पास के नगर और कस्बे का हर व्यक्ति लालायित रहता है, चाहे वह किसी धर्म–विचार–वर्ग का हो। यह एक ऐसा सच है जिसे देखे बिना उस पर विश्वास करना कठिन है और यही इलाहाबाद है।"[81]

'**विजयादशमी**' का पर्व इलाहाबाद में ही नहीं सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। गंगा–जमुनी तहज़ीब को अंग्रेजी सरकार ने विखण्डित करने की काफी कोशिश की और हिन्दू–मुस्लिम धर्मों में दूरियाँ पैदा करने की कोशिश की, लेकिन अफसोस वे कामयाब न हो सके। नाकामयाबी के अनेक कारणों और उत्सवों में विजयादशमी का पर्व भी है। उपन्यास में नासिरा शर्मा ने स्पष्ट लिखा है कि "विजयादशमी का पर्व पूरे भारत में मनाया जाता है। मगर जो एकता इलाहाबाद में नज़र आती है वह कहीं और नहीं। इसी एकता को तोड़ने और हिन्दू–मुसलमान को दो धर्मों के खाँचों में बाँटने की अंग्रेजों ने बड़ी कोशिश की थी।"[82] इसी क्रम

में वे आगे लिखती हैं कि "इलाहाबाद के लिए दशहरा केवल धार्मिक पर्व भर नहीं है, यह स्थानीय परिवेश से निकली एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो अपनी ही बोली–बानी में इन्सानी दुःख को बयान करती है। आम इन्सान की जिन्दगी से इतनी मिलती–जुलती उसकी व्यथा है कि हर कोई उसमें अपने को शामिल पाता है। उसमें सरोकार मानवीय, सामाजिक चिन्ता एवं जमीनी रंग बड़े चटख हैं, जो बरबस ही अपनी तरफ खींच लेते हैं। जिसमें भाव और विचार की समानता होती है, नैतिक और अनैतिक का भेद तर्क के साथ सामने आता है। जिसमें दुःख–सुख इतने सहज लगते हैं, कि हर वर्ग का इन्सान जीवन के किसी न किसी स्तर पर उससे गुजरा जरूर होता है।"[83]

दुर्गापूजा महोत्सव का आयोजन इलाहाबाद के हर मोहल्ले में होता था। साथ ही हर वर्ष पोलोग्राउण्ड में पतंगबाजी का विशेष आयोजन होता था। इसमें पतंगबाजों से ज्यादा दर्शक होते थे। लेखिका वर्णन करती हुई कहती है– "पोलोग्राउण्ड में सुबह से पतंगबाजी के शौकीनों का जमघट लगने लगा था। आज पेंच लड़नी थी। लखनऊ का मशहूर पतंगबाज आगा भय्यू, टोनी मिश्रा से पेंच लड़ाने आने वाला था।....लटाई, मंझा, पतंग उठाये जगह–जगह जवान खड़े थे। देखने वालों में वकील, अध्यापक, इंजीनियर और सब लोग जो गम्भीर नौकरियों में जुटे थे, किसी तमाशबीन की तरह खड़े थे।"[84]

हिन्दु धर्म में प्रचलित **श्राद्ध–परम्परा** और उसके माहात्म्य का वर्णन करती हुई नासिरा जी लिखती हैं कि "संगम–तट पर नगर व बाहर से आये श्रद्धालु अपने पितरों के श्राद्ध करने में तल्लीन थे। श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराने की भी परम्परा है। इस क्रिया के द्वारा अपने पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है। शास्त्रों में मनुष्य के लिए देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण बनाये गये हैं। तीनों में से पितृऋण को श्राद्ध द्वारा उतारना आवश्यक माना गया है। इसलिए अपने सुख और सौभाग्य आदि की वृद्धि के लिए जिन माता–पिता ने अपना जीवन निछावर किया है, उनके प्रति सम्मान तो व्यक्त करना ही चाहिए।"[85]

इसी तरह **रमजान का पवित्र महीना** आने पर हर जगह तैयारियाँ शुरू होती हैं फिर चाहे वे घर हो या मस्जिद। बाज़ार और घर सजाये जाने लगते हैं और रोजों में हम सभी ऊँच–नीच की दीवारों को टूटता हुआ देख सकते हैं। ईद–बकरीद का दिन तो देखने लायक होता है। सभी एक–दूसरे को बधाई देने के लिए एक–दूसरे के पास जाते हैं। ज़हीर के घर मेला–सा लग जाता है। दोस्त अपना फर्ज़ निभाता है और ज़हीर की दादी अपना फ़र्ज अदा करती है। "आदाब अर्ज है दादीजान, दादी आपको ईद मुबारक हो। मुरली झेंपी हँसी हँसा। लो पकड़ो अपनी ईदी, ईद तुम्हें भी मुबारक हो। दादी ने दस रुपया मुरली को थमाया।"[86] इसी तरह के दृश्य हमें होली–दिवाली–राखी के त्योहारों पर भी देखने को मिलते हैं। होली के अवसर पर ज़हीर, रमेश के घर जाता है। जिसे देखकर रमेश की माँ और बहन बहुत खुश होती हैं और बड़े उत्साह से

ज़हीर की मेहमान नवाजी करती है। घर से चलते हुए ज़हीर रमेश की बहन से पूछता है– "हमारी दुकान पर कब आ रही है? राखी बँधवाओ तो आऊँ भी। रमेश और मुझमें फर्क है क्या? ज़हीर ने खुलूस से कहा।"[87]

इलाहाबाद के परिवेश में **शिया और सुन्नी समुदाय भी परस्पर सौहार्द्रता** के साथ रहते हैं। शिया सम्प्रदाय के **ताजिये** के मौके पर आस्था का ध्यान सभी धर्म और सम्प्रदाय रखते हैं और शिया सम्प्रदाय की खुशी में सभी शरीक होते हैं। ताजिये के पश्चात् बँटने वाले प्रसाद को सभी आस्था के साथ लेते हैं– "इस समय मोहल्ले के हिन्दू–सुन्नी–शिया सब अपने–अपने हाथों में प्रसाद लिये खड़े थे।"[88]

कुंभ एवं माघ मेले के समय की जाने वाली तैयारियों, विविध अनुष्ठान, गंगा स्नान, पूजा–पाठ इत्यादि का विस्तृत विवरण अक्षयवट उपन्यास में मिलता है। नासिरा जी लिखती हैं कि "कुम्भ मेले की तैयारियाँ युद्ध स्तर पर चल रहीं थीं। कुम्भ मेले का प्रचार–प्रसार जमकर किया जा रहा था। सभी के मन में इस पावन मेले में सम्मिलित होने की ललक जाग उठी थी कि अगला मेला फिर बारह वर्ष बाद लगेगा, पता नहीं तब तक आदमी जिए या मरे।"[89]

"बड़े–बड़े आचार्यों और साधु–संतों के लिए तंबुओं की व्यवस्था बनाई जा रही थी। नागा बाबाओं के ठहरने का अलग तरह से इंतजाम किए जाने की योजना पर विचार–विमर्श चल रहा था। घाटों की मरम्मत और साज–सज्जा का भी काम चालू था।......जैसे–जैसे कुम्भ मेले के आरम्भ होने की तारीख पास आ रही थी, लोगों में उत्साह और उमंग बढ़ती जा रही थी।.....उधर संगम पर कुम्भ मेले के पावन पर्व के प्रथम दिवस पर लोग गंगा के जल में डुबकी लगा रहे थे। घाट का वातावरण अखण्ड कीर्तन के झाँझ–मंजीरे से गूँज रहा था, जिसके बीच वैदिक श्लोकों की गुनगुनाहट शताब्दियों की यात्रा के बाद भी अपनी गर्मी व गरिमा खो नहीं पायी थी।"[90]

भारतीय परिवेश में व्याप्त माघ मेले का वर्णन भी बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। "माघ मेला शुरू हो गया था। संगम पर नहान जारी था। कुछ नहान के बाद लौट रहे थे। कुछ बसन्त पंचमी तक रुकना चाह रहे थे ताकि मकर–संक्रांति और अमावस्या के दिन भी डुबकी मार तीनों महत्त्वपूर्ण नहानों से अपने तन–मन को शुद्ध कर लें।"[91]

ईसा मसीह के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में पच्चीस दिसम्बर को दुनियाभर के ईसाई समुदाय द्वारा **क्रिसमस पर्व** के रूप में धूमधाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर चर्च में विशेष प्रार्थना एवं विविध कार्यक्रमों का आयोजन होता है। कौशल जोन व उसके परिवार के माध्यम से लेखिका ने क्रिसमस का सुन्दर चित्रांकन किया है। क्रिसमस की शाम उनके घर में पार्टी का आयोजन किया गया है। अतः "कौशल ज़ोन का बगीचा, ड्राइंगरूम क दरवाजा खुलने से एक हो गया था।

पेड़ों में लगे कुमकुमे और मद्धिम लय पर चलती अंग्रेजी संगीत लहरी पूरे माहौल को रूमानी बनाये हुए थी......समय जैसे–जैसे गुजर रहा था वैसे–वैसे लोग पीने और बातों में डूब रहे थे। अन्दर कुछ जोड़े डांस कर रहे थे। बरसों बाद दालचीनी के स्वाद वाला केक जहीर को सेन्ट जोजेफ वाले दिनों की याद दिला गया।"[92]

युगीन परिवेश में व्याप्त परिवर्तनों की सजग रचनाकार नासिरा जी ने इस उपन्यास में नववर्ष के नवीन संस्करण का भी भली–भाँति चित्रण किया है। "पहली बार जनवरी यानी की नया वर्ष इलाहाबाद में नये अंदाज़ से मनाया जाने वाला था। जिसकी तैयारी कई दिनों से सिविल लाइंस में चल रही थी, जिसमें बाजार की भूमिका मुख्य थी। सड़क के दोनों तरफ बिजली के रंग–बिरंगे बल्बों के साथ ट्यूब लाइट की कतार सजायी जा रही थी।.....इकत्तीस दिसम्बर की रात जितनी सर्द थी उतनी ही गर्म भी थी। जवान जोड़े चहक रहे थे। ग्रुप में डांस चल रहा था। कुछ बड़ी उम्र और अधेड़ लोग भी इस नये बाजारीकरण इलाहाबादी संस्करण देखने निकल आये थे......... ।"[93]

लेखिका ने संतान के जन्म लेने के समय व उसके उपरान्त दिए जाने वाले दान का वर्णन 'अक्षयवट' उपन्यास में जहीर की दादी के माध्यम से किया है। फिरोज़जहाँ को ज़हीर के जन्म का वह समय याद आया। "जब उन्होंने पूरे मोहल्ले में मोतीचूर के लड्डू बँटवाये थे। गरीबों में कपड़े बाँटे थे। यतीम लड़कियों को तालीम के लिए कुछ स्कूलों में फंड जमा कराए थे। पिछवाड़े की नंगी सड़क पर किनारे की तरफ पाँच नीम के पेड़ लगवाये थे।"[94] इस प्रकार **जन्मोत्सव मनाने की सार्थक प्रेरणा** पाठकों को प्राप्त होती है तथा व्यक्ति को समाज व प्रकृति से जोड़े रखने की सहज पहल करती है।

साथ ही नासिरा जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से पाठकों का ध्यान इस ओर भी खींचा है कि **धर्म के क्षेत्र में बढ़ती दिखावे की प्रवृत्ति और बढ़ता अपराधीकरण** निश्चित ही चिंता का विषय है। धर्म के प्रति श्रद्धाभाव लुप्त हो रहा है और इसी कारण अपराधी तत्त्व धर्म को अपने संरक्षण का माध्यम मानते हैं जिससे कि सभी उनके द्वारा किए कुकृत्यों को भुलाकर उन्हें अच्छा इन्सान समझने लगे। रचनाकार के शब्दों में "सुधीश टार्जन, कासिम उर्फ़ खूनी पंजा, रंजन उर्फ सुतली बम, सुधनवा उर्फ टिपरा, गौहर उर्फ खंजर ने पैंतरा बदल लिया। शरीफों की पंक्ति में बैठने के लिए न केवल अपना हुलिया बदला बल्कि अपने गुरगों से चारों तरफ यह उड़वाया कि उस्ताद ने तौबा कर ली है और नेकी के कामों में बाकी ज़िन्दगी गुजारने का फैंसला किया है। सो पाँचों वक्त की नमाज पढ़ते हैं, अल्लाह के नाम पर खैरात करते हैं और बिना बाप की बच्चियों की शादी करा विधवाओं और यतीमों की सरपरस्ती करते हैं।"[95] अतः धर्म के क्षेत्र में छद्मी व पाखण्डी लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है।

क्षेत्रीय लोकगीतों व लोकनृत्यों के प्रति भी नासिरा जी ने पाठकों का ध्यान खींचा है। **लोकगीत एवं लोकनृत्य** मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विविध पक्षों को जीवन्त रूप में प्रकट करते हैं। विभिन्न अवसरों पर भिन्न–भिन्न गीतों व नृत्यों का वर्णन मिलता है। विवाह के अवसर पर गाली गाने के रिवाज का वर्णन करती हुए लेखिका कहती है कि "आँगन में मिरासन ढोलक लेकर बैठ गयी थी। दो–तीन पासिनों ने आकर नाचना शुरु कर दिया था। उसी में वे गालियाँ भी खा रही थी। कुछ देर गंदे हँसी–मजाक के बाद लड़कियों को गोल बैठा जिसने फिल्मी और सुहाग गीत को मिलाकर नये तर्ज़ के नाच–गाने की शुरूआत की जिसको सुनने बड़ी–बूढ़ियाँ भी घेरे में आकर न सिर्फ बैठी बल्कि तालियाँ भी आखिरी बंद पर ढोलक के साथ बराबर से उन्होंने बजायीं।

'मेरे नोशे के सेहरे में,
फूलों की सौ–सौ लड़ियाँ हैं
अम्मा, बाबा के अरमानों से
मालन ने गूँथी कलियाँ हैं
मेरे नोशे.............'"[96]

इसी तरह **गंगा–स्नान** हेतु गाँव देहात से औरतों के झुण्ड मुँह अँधेरे उठ गंगा–गीत गाता इलाहाबाद में दाखिल हो संगम की तरफ चल पड़ा था–

गंगा का जल लहराये चलो सखि गंगा नहाये।
गंगा नहाये, संगम नहाये, चलो सखि गंगा नहाये।
हे गंगा मइया तुमका चढ़ाउब पीयर चुनरी रंगाये।
चलो सखि गंगा नहाये।"[97]

इन लोकगीतों में न केवल संस्कृति की झलक मिलती है अपितु अपनी संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा भी अभिव्यक्त होती है। इसके अलावा इलाहाबाद में विभिन्न ऋतुओं में खाये जाने वाले पकवान व खाद्य पदार्थों का वर्णन हमें मौसमानुकूल भोजन की प्रेरणा देता है ताकि तन–मन स्वस्थ रहे। 'आलू की सलसली सब्जी, पूरी और सूजी का हलवा[98], शीत ऋतु में जहाँ एक ओर तिल के लड्डू और बाजरे की मीठी टिकिया, काली गाजर का बना हब्सी हलवा और मेवा पड़े गजरौला को खाकर जाड़े से कांपते यह दिन कुलांचे भरने लगते।[99] वहीं दूसरी ओर गर्मियों में ककड़ियाँ, तरबूज और बर्फ की चिरइयाँ बड़ा सुकून देती थीं। फालसे और तुख्में बालंगा के शरबत का कहना ही क्या? तरबूज, खरबूज, खिन्नी का भी अपना मजा था।[100]

विवेच्य उपन्यास में पहनावे के रूप में नासिरा जी ने स्त्रियों के **आभूषणों व श्रृंगार** का भी वर्णन किया है। जब रामलला की चौकियाँ लगती हैं तब उन्हें देखने आने वाली "सारी औरतें और

लड़कियाँ एक–दूसरे के श्रृंगार और वेशभूषा को गौर से देख रही थीं। कुछ औरतों ने सीरियल की हीरोइनों का हुलिया बना रखा था। कान में तो एक से ज्यादा झुमके, कर्णफूल नहीं पहन सकती थीं मगर गरदन में मनचाहे हार लटका रखे थे। मेंहदी हथेलियों से बढ़कर कोहनी तक पहुँच गयी थीं। चूडियाँ इतनी पहन रखी थीं कि वे खनक ही नहीं सकती थीं। माथे की बिंदी मांग तक पहुँच गयी थी और बनावटी पलकें आँखों को छुपा रही थीं।"[101]

इस प्रकार **इलाहाबादी संस्कृति** के सूक्ष्म–से सूक्ष्मतम पहलू का सजीव चित्रांकन कर नासिरा जी ने एक महनीय स्थान प्राप्त कर लिया है। साथ ही मजहब, पंथ, जाति, सम्प्रदाय इत्यादि के वैचारिक मतभेदों को भुलाकर एक मानवीय दृष्टिकोण की प्रेरणा दी है। इसी में समाज व राष्ट्र का विकास निहित है। यही सोच वह अक्षयवट है जिसकी आगोश में नानाविध और नानावर्णीय संस्कृति की अद्भुत छटा देखने को मिलती है।

6. कुइयाँजान : सांस्कृतिक चेतना

गुइयां रे गुइयां
ओय, मेरी प्यारी कुंइयां!
अपने खजनवा से
दे दो मोको पनिया
गुइयां रे गुइयां
रूठो, न मेरी बहनिया
कान्हा है मोरा नटखट
रखता है मोको झटपट
बिसारा है न मैंने तोको
अब मान भी जाओ गुजरिया
दे दो मुझे पनिया
ओ मेरी गुइयां...............

'यह हमारी गुइयां 'कुइयां रानी' है! यह हमरी जान है, बेटवा! जाड़े में गरम और गरमी में ठंडा पानी दे हमें निहाल कर देत है!'

'बुआ जब यह तुम्हारी जान है तो इनका नाम रख दो, कुइयांजान!'[102]

उपन्यास के अन्त में बेहोसी की हालत में देखे गये स्वप्न में डॉ. कलाम और उसकी बुआ के मध्य हुए इस बचपन के वार्तालाप के माध्यम से नासिरा शर्मा ने अपने पाठकों को दिनों–दिन विकराल से विकराल होती जा रही **जल–समस्या** से रूबरू करवाया है। नहीं तो हम सब यह

स्वप्न देखने के लायक भी भावी पीढ़ी को नहीं छोड़ेंगे। इसी ताने–बाने पर लिखे गये इस विशाल उपन्यास के द्वारा हमें विभिन्न सांस्कृतिक ताने–बानों को समझने का अवसर मिलता है।

हर प्रदेश व क्षेत्र की जलवायु के अनुसार ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक ताना–बाना विकसित होता है। प्रत्येक जगह का **खान–पान, पहनावा, रीति–रिवाज**, संस्कृति यहाँ तक कि **लोकगीत** के बोल भी वहाँ की प्रादेशिक स्थिति के आधार पर विकसित एवं पल्लवित होते हैं। राजस्थानी लोक–काव्य 'ढोलामारू रा दूहा' में मारवाड़–निंदा प्रकरण में मालवणी अपने पिता से राजस्थान की जल–समस्या से चिंतित होकर कहती है–

'बाबा म देइस मारूवां, वर कुंआरी रहेसि।
हाथि कचोजउ सिर घड़उ, सीचति य मरेसि।'[103]

अर्थात् हे पिता! मुझे मारू देश (राजस्थान) में मत ब्याहना, चाहे कुंवारी रह जाऊं। वहाँ हाथों में कटोरा (जिससे घड़े में पानी भरा जाता है) और सिर पर घड़ा, इस प्रकार पानी ढोते–ढोते मैं तो मर जाऊंगी।

आगे वह कहती है कि– "पहिरण ओढया कंबला साठे पुरिसे नीर!"[104]

अर्थात् यहाँ के लोगों के पास पहनने–ओढ़ने के लिए कंबल होते हैं और पानी यहाँ साठ पुरुष नीचे यानी करीब 300 से 400 फुट गहरे मिलता है।

राजस्थान की वीर–प्रसूता धरती पर बादल भी बरसने से घबराते हैं–

'पानी री कांई पिवै, रगत् पियौड़ी रज्ज।
सके मन में आसमझ, घण न बरसै गज।।'[105]

अर्थात् वीरों का भरपूर रक्त पी चुकी यह भूमि पानी क्या पिएगी, यही संकोच करते हुए इस पर बादल अधिक नहीं बरस पाते हैं। राजस्थान के विषय में कम वर्षा होने पर शंकरदान साभोर द्वारा यह रचना लिखी।

पहले कम वर्षा के कारण पानी की बेहद कमी थी। एक अधेड़ औरत डॉ. कमाल से कहती है कि पहले की बात ही अलग थी। कहते हैं, जैसलमेर क्षेत्र में प्रचलित कथानुसार एक नवविवाहिता सजावट भली प्रकार कर सके सो होली पर स्नान कर लिया, फिर दीवाली पर दुबारा नहा ली। उसकी सास को जब पता चला तो उसने इन शब्दों में उलाहना दिया–

"आई होली हिनान, आई दियाली हिनान,
तू लुगाई है के जल–कूमड़ी।"[106]

अर्थात् **होली में नहाय, दीवाली में नहाय,**
बहू लगे है जलमुर्गी।

इसी संदर्भ में रहीम जी का दोहा भी सटीक बैठता है जिसका उल्लेख नासिरा जी ने विशेष रूप से किया है–

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून।।"[107]

'सोरठ और मांड' राजस्थान के सुप्रसिद्ध राग हैं। ढोला–मारू में जिस दोहे का प्रयोग किया गया है, उसे 'सोरठियो दूहो' कहते हैं। मारवाड़ में यह प्रसिद्ध है कि–

"सोरठियो दूहो भलो, भल मरवण री बात।
जोबण छाई धण भली, तारां छाई रात।।"[108]

अर्थात् सोरठिया दोहा अच्छा होता है। मारवण की कहानी अच्छी होती है। इसी तरह यौवनवती स्त्री तथा तारों–भरी रात सुहावनी होती है।

कवि कल्याण सिंह राजावत की कविता के बोल भी राजस्थान की संस्कृति को विशिष्ट बनाते हैं–

'म्हारौ राजस्थान रंगीलौ, इण री मीठी भासा।
इण रै रंग में सभी रंगीजे, प्रेम, प्रीत परिभासा।।'[109]

क्षेत्रीय प्रभाव के साथ–साथ व्यक्ति की परिस्थिति भी **कला व संगीत** को जन्म देती है। बरसात के मौसम में भुट्टे सेक कर बेचने वाला छोकरा ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अपना गाना रच लेता है–

ओ बाबू भोले–भाले!
भुट्टा तो खा ले।
बड़ा मिलेगा तीन रूपइय्या
छोटा मिलेगा दो रूपइय्या
ओ बाबू भोले–भाले![110]

हर जगह की जमीन का पानी स्वाद में भिन्न–भिन्न होता है। सारी दुनिया में बीकानेरी भुजिया–पापड़ की धूम मची है। इनका मसाला सदा बीकानेर के कुओं के पानी से गूँधा जाता था, जिसमें कुदरती नमक की अपनी विशेष मात्रा होती है।[111]

हमारे जो **ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थल** है, उनके प्रति उपेक्षा भाव देखा जाता है। इनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व को पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाने में हम असमर्थ हैं। इस कारण हमारी धरोहर, जो हमारी जीवन–शैली का हिस्सा थी, वह काल का ग्रास बनती जा रही है। इस ओर ध्यान देने की बहुत जरूरत है। नासिरा शर्मा लिखती है– "अयोध्या का घाट 'राम

की पौड़ी' याद आया जहां राम ने जलसमाधि ली थी। उस घाट की जो दशा थी उसे देख कमाल को गहरा धक्का लगा था। सीढ़ियों पर गोबर और सरयू नदी के जल पर मच्छरों का जाल....।"[112] यही हाल राजस्थान की आभानेरी बावड़ी और भीनासर के मीठे पानी के कुए इत्यादि धरोहरों का भी है।

'गोद भराई' की रस्म एवं उससे जुड़े **रीति–रिवाज़ों** का उल्लेख इस उपन्यास में समीना और रत्ना के माध्यम से हुआ है। समीना के परिवारजनों को जब उसके गर्भवती होने का समाचार प्राप्त हुआ तो उन्होंने उसकी गोद भराई करने का निर्णय किया और इसीलिए इस रस्म में "....... पूरी कोठी हरे रंग की झालर से जगमगा रही थी। लॉन के बड़े–छोटे पेड़ भी पीले कुमकुमों से सजे हुए थे। मेहमान लॉन में पड़ी कुर्सियों पर बैठे शरबत, कॉफी, चाय के घूँट भर रहे थे।........ पाँच बजे के करीब सीमा पुरोहित ने चौक पूरा/नेग लेने में उनके और जमाल खां के बीच खूब नोंक–झोंक चली, जिसे सुनकर कहकहे फूट रहे थे।........रस्म शुरू हुई......फलों से समीना की गोद भरी गई। उसकी मांग और कोख में चंदन लगा सीमा पुरोहित ने सभी औरतों की मांग और पेट पर चंदन लगाया।"[113]

बच्चे के जन्म के बाद **जच्चा (बच्चे की माँ) को समयानुसार विभिन्न प्रकार के भोजन खिलाये जाते थे।** पन्नालाल सुनार के घर पैदा हुए पुत्र के समय जच्चा को दी जाने वाली सामग्री "सुबह पींडी, गोंद और हल्दी के हलवे की महक से घर गमक उठा था।"[114] "पुत्रजन्म की खुशी में पन्नालाल दुकान के सामने पतले से चबूतरे पर बैठा, मंद–मंद मुस्कराता घर के अंदर से गूँजते सोहर गीत को सुन रहा था। आज उसका कलेजा सौ गज का हो गया था.......जो भी आते–जाते उसे बधाई देता, वह उत्साह में भरकर उसे छठी पर आने का न्यौता दे बैठता था। अंदर रसीले की ढोलक की थाप और रंगीले का नाच खत्म हुआ.....।"[115] लोगों में **टोने–टोटके, तंत्र–मंत्र, झाड़–फूँक** इत्यादि अन्धविश्वासों के प्रति गहरी आस्था भी नासिरा जी की रचनाओं में प्रचुरता के साथ देखी जाती है। चाहे वह हिन्दू समाज हो, चाहे मुस्लिम समाज, लेखिका ने बड़ी स्पष्टवादिता पूर्ण वर्णन किया है। राबिया की माँ कुइयांजान उपन्यास की ऐसी ही पात्र है जो शकरआरा को समीना के लिए संतान प्राप्ति हेतु ताबीज़ बनवाने को कहती है क्योंकि विवाह के कई वर्षों पश्चात् भी समीना संतान सुख से वंचित है। उसका कथन है– "मैं तो कहती हूँ, बेगम साहिबा! एक बार दुल्हन की गोद–भराई के लिए आप मौलाना से मिलकर देखें। साल के अंदर घर में किलकारी न गूँजने लगे तो मेरा नाम बदल देना।"[116]

इसी तरह **मन्नत माँगने** के रिवाज का भी उपन्यासों में जगह–जगह उल्लेख मिलता है। कुइयांजान उपन्यास में लेखिका द्वारा हिन्दू धर्म के अनुयायी से दरगाह पर मन्नत माँगने का वर्णन करते हुए सर्व धर्म समभाव का संदेश दिया है। पन्नालाल सुनार के घर संतान न होने पर वह

रमजानी के कहने पर ख्वाजा साहब की दरगाह पर मनौती माँगता है और अठारह वर्षों पश्चात् संतान का जन्म होने पर "पन्ना सुनार को बेटे की मन्नत पूरी करने अजमेर जाना था।...उन्हीं की कृपा से यह दिन देखना इस उम्र में उन्हें नसीब हुआ था।"[117]

आज **तकनीक के नाम पर प्रकृति के साथ छेड़छाड़** करने की जो गलत परम्परा चल पड़ी है उस पर नासिरा जी ने अपने विचार व्यक्त कर पाठकों को चेताया है कि हमें प्रकृति ने जो उपहार जिस स्थिति में दिये हैं उन्हें सहेजना, सुरक्षित रखना ही हमारा कर्त्तव्य है न कि उनमें अपने अनुसार बदलाव लाना। लेखिका कहती हैं कि "प्रकृति ने जो हमें दिए हैं, उन स्रोतों को हम सहेजें, न कि नई तकनीक का ओछा प्रयोग करने की ललक में कान को गाल पर लगा दें और आँख को सिर के पीछे और कहें कि यह हमारी मेडिकल उपलब्धियाँ हैं। बात इन्सान की मुक्ति की है, उसे पूज्य बनाने की नहीं। इसलिए इस धरती की देख–रेख हम उचित तरीके से करें, न कि उसे अपनी इच्छाओं की प्रयोगशाला बना उसका सत्यानाश कर डालें।"[118]

इस प्रकार नासिरा जी ने इस औपन्यासिक कृति के माध्यम से अपने पाठकों को गहराते जल संकट की ओर ध्यान खींचा है। साथ ही संदेश दिया है कि किसी भी संस्कृति को सही तरीके से पुष्पित एवं पल्लवित होने के लिए जल एवं प्राकृतिक संसाधनों की महती आवश्यकता होती है। वर्तमान में इनका संरक्षण ही एक उपाय है।

7. ज़ीरो रोड़ : सांस्कृतिक चेतना

नासिरा शर्मा प्रणीत ज़ीरो रोड उपन्यास मध्यपूर्व एशिया और भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति को दर्शाता है। इलाहाबाद के पिछड़े मोहल्ले 'चक' से शुरू होकर दुबई जैसे अत्याधुनिक शहर का इसमें वर्णन है। दुबई वह नगर है, जहाँ दुनियाभर के कोने–कोने से रोजी–रोटी की तलाश में लोग जमा होते हैं। अपने देश में विभिन्न हालातों से उखड़े हुए लोगों के यथार्थपरक जीवन का चित्रण उपन्यास में किया गया है। दुबई में अलग–अलग धर्म एवं संस्कृति के लोग रहते हैं। सभी लोगों को अपने **धर्म एवं संस्कृति** के अनुसार जीने की स्वतन्त्रता है लेकिन अपनी मान्यताओं को यहाँ सार्वजनिक बनाय नहीं जा सकता है। दुबई में धर्म–संस्कृति को उतना महत्त्व नहीं है जितना व्यापार को है। दुबई की कुल आबादी में स्थानीय लोगों की संख्या बीस प्रतिशत है। बाकी अस्सी प्रतिशत मजदूर लोग हैं और वे विदेशी हैं। दूतावास में सिद्धार्थ को बताया जाता है कि "इस समय दुबई में लगभग चौदह लाख भारतीय मज़दूर हैं।"[119]

ताजिरों का यह शहर दुबई अब सबके लिए बाहें फैलाये खड़ा रहता है। यहाँ पर पाकिस्तानी मज़दूर, भारतीय टैक्सी ड्राइवर, श्रीलंका से आयी घरेलू काम करने वालियाँ, अंग्रेज व्यापारी, आस्ट्रेलियाई नर्सें, जार्डेनियन टीचर्स, फिलिपनो वेटर्स, क़दम–क़दम पर देखने को

मिलेंगे। एक तरफ पूर्व व पश्चिम और दूसरी ओर एशिया के रहन–सहन और कल्चर की मिली–जुली तस्वीर उभरती है। यद्यपि यहाँ **इस्लाम धर्म है मगर धर्म की जकड़न नहीं है।** अजान सुनते ही लोग नमाज़ को जाते हैं मगर दूसरों पर बोझ लादते नहीं हैं। यहाँ **सार्वजनिक रूप से अपनी निजी मान्यताओं को प्रस्तुत भी नहीं किया जा सकता।** जो कोई ऐसा करता है उसे कड़ी सजा दी जाती है। सिद्धार्थ कहता है कि "किसी ने दिया जला क्रीक के पानी में बहाया था। उस पर जुर्माना हुआ और बताया गया कि उस तरह की व्यक्तिगत आस्थाओं और रीति–रिवाजों को आप पब्लिक जगहों पर व्यक्त नहीं कर सकते हैं, क्योंकि यहाँ अन्य विश्वास वाले भी रहते हैं। उनकी भावनाओं का भी हमें सम्मान करना चाहिए।"[120]

दुबई में बोली जाने वाली **भाषा** का एक रूप दिखाई नहीं देता। इस सम्बन्ध में नासिरा शर्मा लिखती हैं कि "उच्च वर्ग तो अंग्रेजी बोलता है। यूरोप व अन्य देशों के व्यापारी लोग शायद अपनी लोकल भाषा के बाद अंग्रेजी भी दिक्कत से बोलते होंगे मगर अरब शाही ख़ानदान अंग्रेजी जानता है और हिन्दुस्तानी भी। आम पब्लिक चाहे वह जिस देश से आयी हो हिंदुस्तानी ही बोलती है, चाहे साफ़, चाहे लड़खड़ाती–सी। मगर मैं जिसको हिंदुस्तानी कह रही हूँ दरअसल वह पाकिस्तानी उर्दू है जिसमें पंजाबी का असर है।"[121]

दुबईवासियों का अतीत बहुत ही कष्टप्रद रहा है। उनका मुख्य आधार **ऊँट** था जो वहाँ रेगिस्तान का जहाज है और दूसरा **गाफ का वृक्ष**। वे अपनी धरोहर के रूप में इन्हें आज भी आदर से देखते हैं। दुबई की आधुनिक रेलमपेल में भी ऊँट और गाफ का वृक्ष दिखाई देते हैं। दुबईवासियों का विकास ऊँट से मर्सिडिज कार तक भले ही हुआ हो लेकिन वे अपनी गरीबी को भूलते नहीं है। सिद्धार्थ यही सोचता है कि "तभी से हवाई अड्डे पर बड़ी–सी लालटेन का ढाँचा खड़ा है और इस बार रमज़ान में तो हर रूप, हर शक्ल, हर साइज में लालटेन–ही–लालटेन हर तरफ नजर आ रही है।"[122]

एक समय ऐसा भी था जब दुबईवासी आटे की लोई को तपते बालू में रखकर पीली रोटी खाते थे लेकिन आज यहाँ के **खान–पान में स्थानीय विशिष्टता** कुछ भी रह नहीं गयी है। व्यापार के कारण दुनिया के सब जगह का खाना यहाँ उपलब्ध होता है। सिद्धार्थ से परिवार के लोग खान–पान के बारे में पूछते हैं, तब वह कहता है कि– "मैं यहाँ का और वहाँ का दोनों खाना खाता हूँ। कभी सैंडविच, कभी पराँठा, कभी दाल तो कभी अफ़गानी लेबनानी नान। वहाँ तो मक्के की रोटी और साग भी पैकेट में मिलता है। लाओ, खोलो, गर्म करो और खा लो।"[123]

दुबई में **विवाह की प्रथा** भारत से अलग है। भारत में लड़की वाले लड़के को विवाह में दहेज देते हैं लेकिन वहाँ लड़के वालों को लड़की को दहेज देना पड़ता है। इसलिए स्थानीय युवक विदेशी लड़कियों से शादी करते हैं क्योंकि विदेशी लड़कियाँ विवाह में दहेज नहीं लेतीं।

इस कारण दुबई में अविवाहित औरतों की संख्या बढ़ने लगती है। इस समस्या के निवारणार्थ स्थानीय सरकार नवविवाहित जोड़े को सत्तर हज़ार दिरहम देती है। इस संदर्भ में कैथरिन सिद्धार्थ को बताती है– "यहाँ लड़के वाले दहेज देते हैं, पर विदेशी लड़की तो दहेज लेती नहीं सो इस बढ़ती बीमारी पर रोक लगाने के लिए यहाँ की सरकार ने एक तरकीब निकाली। खासी कामयाब भी हुई।"[124]

दुबई की **स्थानीय संस्कृति** तो अपनी जगह है मगर व्यापार ने बहुत–सी संस्कृतियों को भी इस रेगिस्तान में फलने–फूलने का मौका दिया है, जो शादी–ब्याह और **दुबई शॉपिंग फेस्टीवल** के मौके पर देखने को मिलती है। बाहर से आगत अनेक सांस्कृतिक गीत–संगीत दुबई का हिस्सा बन जाते हैं। इसी तरह पूर्वी अफ्रीका के गुलामों के साथ आया **लीवा नृत्य** दुबई का अहम सांस्कृतिक हिस्सा बन गया है। "इस समय लीवा नृत्य अपने में समा बाँधे था। पूर्वी अफ्रीका के गुलामों के साथ आया यह नृत्य अपने में दुबई का अहम सांस्कृतिक हिस्सा बन चुका है। ड्रम की बीट पर स्वाहीली भाषा में गाना अपने शोर–शराबे से सबका ध्यान आकर्षित कर लेता है। मोहल्ले में शादी के अवसर पर चल रहे रंगारंग कार्यक्रम में से एक यह भी प्रोग्राम था।"[125]

यहाँ पर **सार्वजनिक समारोह एवं कार्यक्रमों में सहज रूप से औरतों की उपस्थिति** बराबर से नजर आती है। जहाँ आपस में मिलने की ही नहीं बातचीत और घूमने फिरने की आज़ादी है। जहाँ **औपचारिकता वश हाथ मिलाना व गालों का चुंबन लेना** उसी तरह मान्य है जैसे हाथ जोड़ नमस्ते करना या सिर व कंधे पर हाथ रखना। यह संस्कृति दुबई के व्यापारिक शहर में आम है। लेकिन स्थानीय शेख इस संस्कृति से अपनी स्त्रियों को दूर रखते है। परम्परा और आधुनिकता की यह द्वन्द्वात्मक स्थिति दुबई संस्कृति की विशेषता बनी हुई है। रमेश शुक्ला यहाँ के शेखों की वास्तविकता को बताते हैं– "व्यापार की जरूरतों पर खरा उतरने की जद्दोजहद में यह अपने खानदान को दाँव पर नहीं लगा सकते हैं सो ज़्यादातर स्थानीय शेख काम दुबई में करते हैं और परिवार अबुधाबी में रखते हैं, जहाँ सऊदी अरब जैसी व्यवस्था है। पर्दा जरूरी, शराब पर पाबंदी इत्यादि।"[126]

दुबई में प्रत्येक वर्ष आयोजित होने वाली **'फन ड्राइव'** का वर्णन में लेखिका ने किया है जिसे रमेश शुक्ला और ईयाद अत्यन्त रोचक और आकर्षक स्वीकारते हैं तथा सिद्धार्थ को भी इस ड्राइव का आनन्द उठाने को प्रोत्साहित करते हैं और बताते हैं, "फन ड्राइव इसी माह की आठ तारीख को होने वाली है।....रेत पर गाड़ी चलाना अपने आप में एक फन है।.........इस बार की फन ड्राइव 160 किलोमीटर, दिन भर की है जो शामिल होने वालों को टीलों पर से घुमाते, वादी में उछालते रेगिस्तान के ट्रेक पर से ले जाएँगे और खत्म करेंगे हट्टा फोर्ट होटल पर जिसके चारों

तरफ हजार पहाड़ियाँ हैं।.......वंडरफुल एक्सपीरियन्स! एक्सट्रीम ड्राइविंग, चैलेंजिग रूट्स, रोरिंग इंजेन, इनक्रेटिबल सीनरी एण्ड इन्ट्रसटिंग वैदर–कुल मिलाकर तुम एक नयी दुनिया देखोगे।"[127]

वहीं **इलाहाबाद धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत** का केन्द्र है। इस समय यहाँ सदी का कुंभ मेला लगने वाला है। **गंगा नदी में नहान** के लिए विविध क्षेत्रों से लोग आते हैं। इस कुंभ मेले में दुबई से ईयाद एवं रमेश शुक्ला भी आते हैं। ईयाद के लिए भारत देश नया है। यहाँ की संस्कृति एवं मान्यताएँ उन्हें आश्चर्यचकित कर रहीं थीं। ईयाद यात्रियों से उमड़ी बस, मेले में आने वाले यात्रियों को परख रहा था। कुछ पल वे पूरे माहौल को आँकने के अंदाज से खड़े रहे फिर कह उठे "मैं तो कभी सोच भी नहीं सकता हूँ कि यात्रा इस तरह भी की जा सकती है।"[128]

इस प्रकार अपने ज़ीरो रोड़ उपन्यास के माध्यम से नासिरा जी ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरी इलाहाबाद तथा ग्लोबल सिटि एवं औद्योगिक नगरी दुबई के सांस्कृतिक ताने–बाने पर गहराई के साथ प्रकाश डाला है।

8. काग़ज़ की नाव : सांस्कृतिक चेतना

नासिरा जी हिन्दी कथा साहित्य में अपनी अनूठी रचनाओं के लिए सुप्रसिद्ध हैं। उनकी कथा रचनाएँ समय और समाज की भीतरी तहों में छिपी सच्चाइयाँ प्रकट करने के साथ–साथ समकालीन सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को परखने व जानने का महत्त्वपूर्ण माध्यम होती हैं। 'काग़ज़ की नाव' इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने बिहार में रहने वाले उन परिवारों के वृत्तांत को बताया है, जिनके घर का कोई न कोई पुरुष खाड़ी देशों में नौकरी करने गया हुआ है। वतन से दूर रहने वाले यहाँ छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक का भरा–पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से आने वाले रुपए.......और रिश्तों के अंधेरे उजाले। 'काग़ज़ की नाव' शीर्षक एक रूपक बन जाता है, यानी ज़रूरतों और ज़िम्मेदारियों के समंदर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश।

उपन्यास महजबीं और अमजद की बड़ी बेटी महलक़ा के पारिवारिक तनाव को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ है। उपन्यास में महजबीं को अपनी बेटियों के ही घर बरबाद करने के लिए आमिलों, तांत्रिकों आदि के चक्कर काटते देखा जा सकता है। जो बताता है कि निम्न एवं **मध्यमवर्गीय परिवारों में व्याप्त अंधविश्वास** को भुनाने के लिए ये लोग सक्रिय हैं और एक व्यवसाय के तौर पर यह धन्धा करने लगे हैं। आमिल बदरुद्दीन महजबीं से कहता है– "मेहनताना तो देना ही पड़ता है। आप जानती हैं कि हम ख़ैरात लेने के क़ायल नहीं हैं और न मुफ़्त में तोहफ़े–तहायफ़।"[129]

तब महजबी कहती है– "आपकी दुआ से बेटी की नंद का ऐसा घर बर्बाद हुआ कि उसने तो गर्दन में फांसी लगा ली, मियां उसका मर–खप गया मगर ससुर जेल में झूठे मुक़दमे में ज़रूर फंसा है। मेरी बेटी का एक शाने का बोझ तो हलका हुआ, अब उस बूढ़े गिध का भी कुछ हला–भला कर दें।"[130]

खाड़ी देशों में रहकर रुपये भेजने के साथ–साथ **संस्कृतिगत आदान–प्रदान** भी होता है। उस क्षेत्र में आज "बड़ी तादाद में साउदी के यह काले कढ़े बुर्क़े हिंदू लड़कियों में भी फ़ैशन के एक लिबास की तरह कुबूल हो चुका है। अगर अब भी शक हो तो दुकानदारों के बीच सर्वे कर सच पता लगा लो"[131], रमज़ान कहता है। जब बेटियाँ अपनी ससुराल में सही मार्ग पर नहीं चलती है तो माँ चाहे तो उसे सही रास्ते पर ला सकती है। इसी संदर्भ में 'दूध बख़्शने' की रस्म का उल्लेख किया गया है महलक़ा अपने ससुर की देखभाल ठीक से नहीं करती है और उसके साथ बुरा वर्ताव करती है तब महज़बी सख़्ती के साथ अपनी बेटी से कहती है– "उस नेक बंदे को जो तुम्हारे शौहर का बाप है उसकी ख़िदमत कर अपना कफ़्फ़ारा अदा करो वरना मैं तुम्हें दूध बख़्शने वाली नहीं हूँ, यह मेरा आख़िरी फ़ैसला है।"[132]

खेलकूद जीवन का अभिन्न अंग है और सर्वांगीण विकास हेतु जरूरी भी। लेकिन जब यह लत लग जाये तो भी अच्छा नहीं। कैलाश अमजद से कहता है– "आपके आशीर्वाद से तीन लड़के हैं। अच्छे स्कूल में नाम लिखवाया मगर पढ़ाई से ज़्यादा क्रिकेट में मन लगता है। गाँव में महामारी की तरह क्रिकेट पहुँच गया है। एक साल का बच्चा भी माँ की गोद से उतर चलना सीखेगा तो सीधे क्रिकेट के मैदान की ओर भागेगा।"[133]

बिहार क्षेत्र में **अशिक्षा एवं बेरोजगारी** विकराल है। लड़के और लड़कियों के पालन–पोषण, शिक्षा, सामाजिक भागीदारी इत्यादि में बेहद फर्क देखने को मिलता है। जो वर्तमान दौर में निश्चित ही चिंतनीय है। इस सम्बन्ध में जावेद अपने मित्र जाकिर से कहता है कि– "पहले तो हमारे यहाँ लड़कियाँ पढ़ नहीं पाती, पढ़ती हैं तो पांचवा–छटा जैसे–तैसे पास कर लिया। चलो इलाक़ा पिछड़ा है मगर जनाब जहाँ लड़कियाँ बी.ए., एम.ए. हैं, हम उन्हें घर की मैना बना देते हैं। काम मर्दों के लिए नहीं है तो उन्हें क्या मिलेगा। यह प्रॉब्लम अपनी जगह है मगर बात हमारी सोच की भी है कि हम लड़कियों की आज़ादी से डरते हैं। एक हिस्सा रोज़ नए तजरबे से गुजरता है, दूसरा घर की सियासत में डूबा कुएं का मेढक बना है। जवान दोनों हैं मगर बराबरी से जीने का हक़ आधी आबादी को नहीं है। जो लड़के माहौल बदलना चाहते हैं तो माँ–बाप आड़े आते हैं.......मगर वह सब सिर्फ़ हमारे बिहार का नहीं इस पूरे मुल्क का सच है........।"[134]

इस प्रकार 'क़ाग़ज की नाव' उपन्यास के जरिये नासिरा जी ने बिहार के पिछड़ेपन, बेरोजगारी, अशिक्षा, खाड़ी देशों में पुरुषों के पलायन के कारण उत्पन्न विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक विसंगतियों पर प्रकाश डाला है।

9. अजनबी जज़ीरा : सांस्कृतिक चेतना

नासिरा शर्मा के उपन्यास अजनबी जज़ीरा में विदेशी मल्टीनेशनल आर्मी के आक्रमण से नेस्तनाबूत इराक़ और आम नागरिकों के जीवन–संघर्ष को दिखलाया गया है। समीरा और उसकी पाँच बेटियाँ तथा अंग्रेज फ़ौजी मार्क जो कि इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं, कि नज़र से लेखिका ने क्षत–विक्षत इराक़ की विशिष्ट परिस्थितियों एवं समकालीन सांस्कृतिक पहलुओं को अपनी बेजोड़ रचना–सामर्थ्य के बल पर अभिव्यक्त किया है। परिस्थिति एवं परिवेशगत भिन्नता के कारण अपने 'सात नदियाँ एक समंदर' उपन्यास की भाँति यहाँ भी पाठकों को एक विशिष्ट सांस्कृतिक ताने–बाने को समझाया गया है। इराक़ पर उस समय बमवारी के कारण सम्पूर्ण जीवन अस्त–व्यस्त हो गया है। पूर्व सत्ता समर्थकों व उनके सम्बन्धियों को चुन–चुनकर मारा गया। परिणामस्वरूप अपना घर–बार छोड़कर लोग विदेशों में जाकर बस गये। सारे उद्योग–धन्धे व कारखाने बन्द हो गये। बाजार, दुकानें, इमारतें, मकान सब कुछ बमवारी में नष्ट हो गया। खाली खण्डरनुमा इमारतें, जिनके दरवाजे, खिड़की, सब गायब हैं, चीख–चीख कर अपनी दुर्दशा बयान कर रही हैं। बिना काम–धन्धे के जन–जीवन ठप हो गया है। जिनका कोई सहारा नहीं रहा वे तिल–तिल मरने को मजबूर हैं। जो कुछ अपने पास है, उसे बेच कर पेट की आग बुझा रहे हैं।

ऐसी ही स्थिति से गुजर रही हैं समीरा और उसकी पाँच लड़कियाँ। समीरा का पति अलबनाही पूर्व पार्टी का मेम्बर व कार्ड होल्डर था। इसलिए समीरा अपने बीमार पति व बच्चियों को एक ऐसे इलाके में अपने चचा के मकान में रखती है जहाँ उनको कोई पहचानने वाला न हो। पर बारूदी कणों से संक्रमित हवा के कारण अलबनाही का दबा हुआ 'दमा' उभर आता है और बिना दवाई व इलाज के कारण उसका इन्तकाल हो जाता है। पर समीरा उसके अंतिम संस्कार व कफन तक की व्यवस्था करने की हालात में नहीं होती है। इसके बाद शुरू होती है असली संघर्ष गाथा।

इन्हेलर की असफल तलाश में भटकती हुई समीरा जब घर पहुँचती है, तब तक अलबनाही इस दुनिया को छोड़ चुका होता है। अपने जहाँ के लुट जाने पर वह दोनों हाथों से सिर पकड़े बैठ हुई सोचती है कि अब आगे की जिम्मेदारी कैसे पूरी करे और किसको मदद के लिए बुलाए। उस वक़्त उसकी बेटी सबा उसको अलबनाही के आख़िरी पैगाम के बारे में बताती है– "या उम्मी अबु ने किसी को भी इत्तला करने को मना किया है, जो करना है घर के पीछे हमें

ही करना होगा।"[135] इस प्रकरण से लेखिका ने उस संस्कृति की ओर इशारा किया है जिसमें प्रत्येक मजहब में मरने वाले की अंतिम इच्छा का पूरा सम्मान किया जाता है। समीरा सोचती है– "अब वह चीख़ भी नहीं सकती है, न दहाड़ें मारकर सियापा कर सकती है। जाते–जाते उसके वकील शौहर ने आख़िरी पैग़ाम में वह सब कह दिया था जो उसे अंजाम देना था।......उसने अपना पर्स उठाया। पैसे गिने और फ़िक्र में डूब गई। वह नहीं चाहती थी कि शौहर की आख़िरी ख़्वाहिश के ख़िलाफ़ जाए वरना चचा को वह ज़रूर फ़ोन करती। इस वक़्त सब कुछ आसानी से निपट जाता।"[136] इस पर वह अकेली ही घर के पीछे पति को दफनाने की जगह तैयार करने का प्रयास करती है। पर पति के अंतिम निर्णय के विरुद्ध जाना नहीं चाहती है।

आर्थिक नाकाबन्दी के कारण त्रस्त जनजीवन के बीच जब समीरा बाज़ार में घुसती है तो सामानों, सब्जियों की महँगाई की सुनकर चकराने लगती है। इसी बीच दुकानदारों का शोर उठा। एक बूढ़ी औरत दो कुब्बे (रोटी) छुपा अपनी अबा में डाल लेती है। वह पकड़े जाने पर थर–थर काँपने लगती है और आँखों से बेहताशा आँसू की लड़ियाँ गिरने लगती हैं। उसकी प्रताड़ना समीरा से देखी नहीं जाती और खुद तंगहाली में जीवन जीते हुए भी उसकी सहायता के लिए आगे बढ़ती है, जो **मानव मात्र को अपनी रोटी बांटकर खाने, सच्ची सेवा व इंसानियत** का पाठ पढ़ाती है। "समीरा आगे बढ़ी और बूढ़ी औरत को तसल्ली देने के लिए उसका शाना थपका तो उसके सूखे होठों से कुछ अल्फ़ाज निकले जो समीरा की समझ में नहीं आए। उसने दुकानदार से रोटी की क़ीमत पूछी और उसे अदा करते हुए, 'यह मेरे साथ हैं', मैं माफ़ी चाहती हूँ।'......... 'कुछ और चाहिए माँ?' समीरा के पूछने वह फफककर रो पड़ी फिर धीरे से बोली, 'मेरे दो नवासे हैं, कल से भूखे हैं, चारा क्या था मेरे पास?' इस पर समीरा उसे दो लालीपाप खरीदकर भी देती क्योंकि शरबत खरीदकर देने पर अपनी बच्चियों के लिए कुछ नहीं ले जा पाती।"[137]

इस उपन्यास में **वेशभूषा व व्यवहार** की स्थिति के सम्बन्ध में पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृट करती हैं। लेखिका लिखती हैं कि पूर्व में शानो शौकत की ज़िन्दगी जीने वाली समीरा हालात की मार से जब ख़रीदारी करने तथा जब कोई कीमती सामान बेचने जाती है तब उसकी विशेष वेशभूषा होती है। समीरा स्वयं की स्थिति पर सोचती है– "उसने अपने हाल पर नज़र डाली और सोचा कि पहले फक़ीर औरतों का यह पहनावा होता था। बिना एड़ी के चप्पल, काला गन्दा लिबास, चेहरा उजाड़, बाल बिखरे और होंठ सूखे। ख़रीदारी करते हुए अगर में यह हुलिया न बनाऊँ तो दुकानदार दाम सस्ता देगा ही नहीं। हालात ने हमें किस तरह की चालाकी सिखाई है।"[138]

वहीं दूसरी तरह जब वह **रोजी–रोटी** की जुगत के लिए कीमती क़ालीन बेचने के लिए बाजार जाती तब स्थिति अलग होती है– "सुबह–सुबह माँ ने बाहर जाने की तैयारी कर ली।

छींटदार चादर से झाँकता उसका चेहरा बहुत मासूम लग रहा था। आँखों में गहरा काजल और शोख़ लिपिस्टिक रंगे होंठ उसे उम्र से लगभग दस साल कम दिखा रहे थे।.......'माँ को जब कुछ बेचना होता है तो वह इसी तरह सज–धजकर निकलती हैं ताकि क़ीमती सामान देख चोरी का इल्ज़ाम न लगा दिया जाए और...........' लैला चिन्ता से भर उठी।.....माँ के पैरों पर साजदा की नज़रें चिपक गई। जहाँ फटी चप्पलों की जगह आज लाल नाख़ूनों पर सुनहरे सफ़ेद पट्टों की पेंसिल हील थी। माँ की घिसटती चप्पलों की भद्दी आवाज़ की जगह खटखट की ध्वनि सुन उसके दिल में हूक–सी उठी।"[139] एक प्रकार से चमकदार ऊँची हील की चप्पल, मंहगी कालीनें, लिपिस्टिक, काजल मेकअप, जंजीर, चैन, लॉकेट, अंगूठी, टॉप्स ये सब अमीर तबके के पहचान–चिन्ह थे।

नासिरा जी लिखती हैं कि **हालात के दबे तले समस्त संस्कृतिगत नैतिक–अनैतिक मानदण्ड** धाराशायी हो जाते हैं। उनके मायने बदल जाते हैं। उच्च सांस्कृतिक आदर्श भरे–पेट इंसान पर ही शोभायमान होते हैं। भूखे–पेट व्यक्ति को सिर्फ और सिर्फ 'रोटी' सर्वोच्च होती है। देह–व्यापार प्रत्येक देश व मजहब की संस्कृति में अनैतिक व कदाचार माना जाता है। परन्तु इराकी जनता को रोटी के एक–एक निवाले के लिए तरसते दिखलाया है। ऐसे में औरतों के पास कोई दूसरा रास्ता नहीं बचता है। उनके अपने लोग जो आर्थिक रूप से ठीक हैं, वे ही उनका शोषण करने में लगे हुए हैं तो बाहर वालों को क्या हिचक हो सकती है? जब एक तंग गली से गुजरते समय समीरा की मुलाकात उनकी पूर्व परिचित सहेली 'रुया' से होती है, तब वह समीरा से अपना दर्द बयान करती हुई कहती है कि "मैं अपना बदन नुचवाती हूँ........अपने हम शहरियों से........और क्या करूँ, ईमान को लेकर चाटूँ या इस्मत को लेकर नाचूँ? देखो, अब मेरे पास इतने रियाल हैं कि मैं हफ़्ता आराम से गुजार सकूँ........अल–बाक़र मुझे गाली देता है, बदकार और बेवफ़ा कहता है, शहवतरानी का इल्ज़ाम देता है, फिर मेरे पैरों पर गिरकर फूट–फूटकर रोता है जब इन पैसों से उसके पेट की आग बुझाती हूँ। उसके लिए पेनकिलर और मालिश का तेल ख़रीदती हूँ, ज़िन्दगी का इतना बदसूरत चेहरा देखने के हम हक़दार नहीं थे, जो हमने बोया नहीं वह हम काट रहे हैं?"[140]

समीरा अपनी मनोव्यथा व्यक्त करती हुई सोचती है कि "युद्धग्रस्त समाज की कठिनाईयाँ कितनी नई परेशानियों से हमारा परिचय कराती हैं तब पेट के आगे बदन बेचना, यहाँ तक कि अपने बच्चों तक को बेचना मुश्किल काम नहीं लगता बल्कि मौत को नज़दीक पाकर जीने की तमन्ना ज़्यादा बढ़ जाती है।"[141]...... "जिस्मफ़रोशी से मुझे हालात ने महफ़ूज़ रखा वरना वह भी मुझे करना पड़ता......हालात अच्छाई और बुराई के मायने कैसे बदलकर रख देते हैं.....पेट भरे लोगों के लिए उँगली उठाना कितना आसान होता है मगर भूखे के लिए रोटी हर फ़लसफ़े से

बढ़कर अहम हो उठती है।"[142]...... "जिन बड़ी–बड़ी बातों को बोलते–बोलते लोग चले गए, वह मौजूदा हालात के आगे कितने हलके और बेमानी बनकर रह गए है। उन हथियारों से यह लड़ाई जीती नहीं जा सकती है।"[143]

पेट की लड़ाई से जूझती हर महिला को लोगों ने एक ही नजर से देखना शुरु कर दिया था। हर दुकानदार व गार्ड औरत की मजबूरी का फायदा उठाने के लिए लालायित दिखाई पड़ता था। जब समीरा एक फुटपाथी पुस्तक विक्रेता से पसंदीदा पुस्तकों का मोलभाव करती है परंतु खाली पर्स को देख वह मना करके आगे बढ़ती है। तब पास खड़ा लोकल गार्ड उस किताब–फरोश के पास आकर बोला, "वह आएगी ज़रूर यार। क्योंकि यह औरत सारे–सारे दिन सड़कों, कूचों में भटकती रहती है।"[144] इस कटाक्ष को सुनकर समीरा मन ही मन बोलती है– "ताल्लुक़ात बनाने का यह अन्दाज़ रिवाज पकड़ता जा रहा है। हाथ पकड़ पौंचा पकड़ने की यह कोशिश कई बार मैं झेल चुकी हूँ। एक ख़ामोशी में हज़ार बला टाली जा सकती हैं। वरना डराने धमकाने में यह किसी बाहरीवालों से कम नहीं है।"[145]

यद्यपि प्रत्येक देश, प्रान्त व स्थान का **खान–पान** स्थानीय भौगोलिक स्थिति, जलवायु व वस्तुओं की उपलब्धता पर निर्भर करता है। परन्तु जब परिस्थितियाँ विपरीत हो और लोग दाने–दाने के लिए मोहताज हों, ऐसी स्थिति में कण–कण का स्वाद बढ़ जाता है। समीरा एवं उसकी पाँचों लड़कियों के सामने भी यही समस्या है। घरेलू सामानों यहाँ तक खिड़की के पल्लड़ों को भी बेचकर जैसे–तैसे खाने की सामग्री लाकर पेट भरना पड़ रहा है। अतः जो भी कच्चा–पक्का मिलता था, वे अपना पेट भर रहीं थी। बच्चियाँ भी अपनी आदतों से समझौता कर चुकी थीं। पर उनकी दबी हुई इच्छाएँ अनायास ही प्रकट हो जाती थी। एक दिन जब समीरा बच्चियों से खाना–खाने के लिए कहती है, तब वे इस प्रकार अपनी भावनाएँ व्यक्त करती हैं– "चावल में स्वाद हो या न हो मगर खुशबू थी और अब तो इस फीके उबले चावल में भी छुपा स्वाद भी उन्होंने खोज लिया था। इसलिए सब बड़े चाव से खा रही थीं।......'उम्मी, तुम खाना पकाना भूली तो नहीं हो न?' लैला बोली।.... 'दजला में तैरती मछलियों को अंगारों पर उसी तरह भूनकर नमक–नींबू के साथ हमें खाने को दोगी न?' वफ़ा ने शक दूर किया।..... 'कोहड़े और आलू की सब्ज़ी की तरह दूसरी सब्जियाँ भी पहले की तरह मज़ेदार बनाओगी न?' नेदा ने पूछा।.. ..... हाँ, भई हाँ, ज़ैतून डाल सलाद भी बनाऊँगी और सूप भी, केक और पेस्ट्री भी, वह सब–कुछ जो तुम सबको पसन्द है।"[146]

इराकी समाज की एक महत्त्वपूर्ण बात जो उभर कर सामने आयी है, वह है **'विधवा विवाह का जरूरी होना'।** लेखिका लिखती हैं कि "बग़दाद के बारूदी माहौल, बीमारी, आर्थिक नाकाबन्दी, बेकारी इत्यादि के कारण औरतें और मर्द समय से पहले बूढ़े हो रहे थे और वह (समीरा) भी तो,

बत्तीस वर्ष की विधवा। यह हालात न होते तो माँ–बाप उस पर दूसरी शादी का ज़ोर डालते। आख़िर जवान विधवा 'फ़ितना' होती है। आगे–पीछे घूमने वाले उसे शौहर का ग़म भी नहीं मनाने देते। इसीलिए विधवा की दूसरी शादी इराक़ी समाज में ज़रूरी है मगर ऐसी हालत में.....ऐसी हालत में ही तो घर के रक्षक की ज़रूरत पड़ती है। बिना छत की दीवारें घर नहीं कहलातीं।"[147]... .... "समीरा को याद आया कि उसकी दोस्त ज़ैनब शादी के दूसरे साल बेवा हो गई थी। यह उसकी दूसरी शादी थी जिससे उसके दो बच्चे भी हैं। तब माहौल मुल्क का, ख़ानदानों का अलग था।"[148]

समीरा के द्वारा अंग्रेजी फ़ौजी मार्क के साथ शादी करने सम्बन्धी मशविरा जब लड़कियों के साथ किया तो लड़कियाँ विफर पड़ती हैं, उन्हें हमलावर सैनिक से शादी करना बिलकुल गंवारा नहीं था परन्तु कुछ पल बाद उन्हें पछतावा भी होता है। तब साजदा वफ़ा से आपसी चर्चा में कहती है– "जो क़ायदा है विधवा के दूसरे विवाह का उसे पूरा तो करना चाहिए।"[149]

तात्कालिक इराकी समाज का एक पक्ष यह भी था कि आबादी की कमी के चलते ज़्यादा बच्चे पैदा करने के लिए सरकार प्रोत्साहन स्वरूप सुविधाएँ मुहैया कराती थी। परन्तु युद्धग्रस्त इराक में तंगहाली के चलते एक–एक बच्चे को पालना दूभर हो रहा था। समीरा अपनी दोस्त ज़ैनब से कहती हैं– "उस वक़्त आबादी की कमी की वजह से **ज़्यादा बच्चे पैदा करने के लिए सरकारी पॉलिसी कई तरह की सहूलियतें देती थीं।** हम भी मगन थे। आज वह गिनती ज़्यादा लगती है।"[150]

इस सबके बावजूद इराकी समाज में **शिक्षा का प्रसार** हुआ है तब से लड़कियाँ भी पढ़ने लगी हैं। इसका समाज में प्रभाव अनेक रूपों में देखने को मिल रहा था। जिनमें से एक 'शादी की उम्र में इजाफ़ा होना' भी है। समीरा अपनी स्थिति व उम्र पर विचार करती हुई कहती है कि "वह अब भी (पैंतीसवा ख़त्म करने पर भी) साजदा और लैला की बड़ी बहन ही लगती थीं। इधर कुछ वर्षों से तालीम बढ़ जाने से इस उम्र में लड़कियाँ शादी करने लगी थीं। जबकि साजदा की अगर शादी हो जाती तो इस उम्र में वह नानी बन चुकी होती और अपनी चार पीढ़ी को देखकर माँ मरती, मगर अब सब–कुछ बदल रहा है।"[151]

उस समय कानून व पैरोकार या हाकिम के अभाव में एक प्रकार का जंगलराज चल रहा था। जवान लड़कियाँ व औरतें बिलकुल सुरक्षित नहीं थी। ख़ुद इराकी या बगदादी बाशिंदों के साथ विदेशी सैनिकों के द्वारा उनका शोषण होना आम बात थी। शुरू–शुरू में दूध–रोटी लेने समीरा की बेटी साजदा और लैला चारों में लिपटी बाजार तक हो आती थीं मगर एक–दो दुर्घटना के बाद उनके बाहर निकलने पर पाबन्दी लगा दी थी क्योंकि "वतन पर क़ाबिज विदेशी सड़कों तक ही बर्दाश्त किए जा सकते हैं, मगर घर की चौखट पार कर में दाखिले की उन्हें

इजाज़त देना हिमाक़त है। कलेजे में लगे ज़ख़्म को नासूर नहीं बनने देना है। जो औरतें बेपर्दा घूमती थीं वह भी काली चादरों में छिपी नज़र आतीं।"[152]..... "जिस समाज में जवान माँ पर नज़रें गड़ी हों वहाँ पर कमसिन लड़कियों की क्या सुरक्षा है।.....अपने–पराए तो कमसिन लड़कों को भी नहीं छोड़ रहे...... ।"[153]

पर प्रायः हर समाज की भाँति आज भी इराकी जनता **अपमान को मृत्यु से बढ़कर और देश की खातिर मृत्यु को सम्मान** मानती है। जब एक दिन साजदा अपनी माँ समीरा से पूछती है कि "सच उम्मी! तुम्हें किससे ज़्यादा डर लगता है? समय की बदली सियायत से, जिसमें हम हुक्मराँ नहीं मुजरिम मान लिये गए हैं या फिर इन नौजवानों से जो सारे दिन बन्दूक़ लिये हमारे चौराहों और सड़कों पर खड़े रहते हैं?"[154] इस पर समीरा बेटी को समझाईश की शैली में कहती है कि "शायद दोनों से..........एक की सज़ा मौत है और दूसरे की सज़ा भी मौत, एक में सम्मान दूसरे में अपमान।..............इतने वर्षों हम उसी य़कीन और अक़ीदे से बड़े हुए हैं कि अजनबी, वह कोई भी हो, हमारी अस्मत पर हाथ डाले यह दुनिया की कोई औरत बर्दाश्त नहीं कर सकती है। उसके ख़ामियाज़े सिर्फ़ ख़ानदान को नहीं बल्कि उस शख़्स को तन्हा झेलने पड़ने हैं जिसमें उसकी कोई हिस्सेदारी नहीं होती।"[155]

उस समय सम्पूर्ण इराक की यह स्थिति थी कि **एक नागरिक दूसरे नागरिक की मजबूरियों व विवशता का फायदा उठा रहा था।** जब मार्क समीरा से कहता है कि मैं आपकी ईमानदारी से बहुत प्रभावित हूँ। अन्यथा सम्पूर्ण मुल्क में भांग घुली हुई है। वह **समकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य** का संक्षेप में बयान करता हुआ समीरा से कहता है– "मैंने तुम्हारी इसी ईमानदारी से प्यार किया है जो मुझे कहीं नज़र नहीं आई, यहाँ तक कि तुम्हारे इस मुल्क में भी नहीं जहाँ एक नागरिक दूसरे नागरिक की मजबूरियों से फ़ायदा उठा रहे हैं, अगर मैं वह सब बताने पर आ जाऊँ तो तुम्हें उन सबसे नफ़रत हो जाएगी जिनके प्रति तुम्हारे दिल में इज़्ज़त और प्यार है। यह दुनिया खड़ी ज़रूर है मुहब्बत और हमदर्दी पर मगर चल रही है गला–काट प्रतिस्पर्द्धा पर......... ।"[156]

मार्क समीरा की लड़कियों को जो भरोसा दिलाता है उससे लगता है कि गला–काट प्रतिस्पर्धा के बीच मार्क जैसे सच्चे और ईमानदार लोग भी जिंदा हैं। वह कहता है– "बिलीव मी.... ..आई विल आलवेज़ लुक आफ्टर आल ऑफ यू नाइसली।"[157]..... "रिश्ते दिलों से बनते हैं, काग़ज़ या दस्तख़त से नहीं.........मैं तुम सबकी इजाज़त से तुम्हारी माँ की ऊँगली में अपनी चाहत की अँगूठी पहनाता हूँ और ताउम्र फेथफुलनेस की क़सम खाता हूँ।"[158]

आये दिन होने वाली बमवारी व हमलों की वज़ह से बगदाद सहित सम्पूर्ण मुल्क का सौंदर्य व चमन उजड़ सा गया था। बागानों के शहर की ऐसी दुर्दशा देखकर सहसा यक़ीन ही नहीं होता कि इससे पहले यह **खूबसूरत मुल्क** था। समीरा सोचती है– "बिल्डिंग और इमारतें बिना पुताई के बोसीदा लग रही हैं। फूलों की क्यारियाँ सूखी व कूड़ादान बन चुकी हैं। इमारतों के झरोखे व खिड़कियाँ गायब हैं। बालकनी के गमले सूखे हुए व चटके हुए हैं। हर चौराहा मुजस्समे से ख़ाली था। यह शहर अपना होकर भी कितना पराया लग रहा है, न बिल्लियाँ मुँडेरों पर चलती नज़र आ रही हैं और न शाख़ों पर परिन्दे झूला झूलते नज़र आ रहे हैं। संगीत की देवी ने भी जैसे साज़ और आवाज़ को किसी ख़ास मौक़े के लिए बचा रखा है, तभी न घरों से न दुकानों से गीतों के स्वर उठ रहे हैं। अपना शहर........खो गया कहीं।"[159]

इस प्रकार नासिरा शर्मा ने अपनी इस कृति के माध्यम से पाठकों को समझाया है कि विश्व में जहाँ कहीं भी विध्वंस का ताण्डव देखने को मिलता है, वहाँ **मानवता शर्मसार** हो उठती है। **संस्कृति व मूल्य तहस–नहस** हो जाते हैं। उनके मायने बदल जाते हैं। लोगों का ध्यान सिर्फ और सिर्फ अपने अस्तित्व को बचाने पर होता है। इसी स्थिति में बगदाद शहर को अंकित किया है।

10. पारिजात : सांस्कृतिक चेतना

वर्ष 2016 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित 'पारिजात' नासिरा शर्मा प्रणीत अधुनातन उपन्यास है। समीक्षकों के अनुसार नासिरा शर्मा का यह उपन्यास उनकी अभी तक की सृजनात्मकता का निचोड़ है, जिसमें उनके विचार, बयान, भाषा, संवेदना और सरोकार बहुत ही संजीदा और धारदार बनकर उभरे हैं। उपन्यास की कथावस्तु में इतिहास कहीं किरदार बनकर उभरता है तो कहीं वर्तमान और अतीत के बीच सूत्रधार की भूमिका निभाता नज़र आता है। साथ ही आज की पीढ़ी के सपनों, उसके निर्णय, स्त्री की भारतीय और पाश्चात्य छवि, तथा कुंठित मानसिकता से घायल समाज जैसी संवेदनाओं को भी तर्कों के साथ यह उपन्यास बयां करता है। उपन्यास के पात्रों को अनेक गलियारों से गुजारते हुए समकालीन सांस्कृतिक पहलुओं के प्रति लेखिका ने खासा ध्यान आकर्षित किया है। तीन प्रगाढ़ मित्र परिवारों की जीवन–गाथाओं व कहानियों के माध्यम से अनेक संस्कृतिगत परतें खुलती जाती हैं। नासिरा जी की अधिकांश रचनाओं का केन्द्र बिन्दु इलाहाबाद शहर है। इस उपन्यास का प्रधान पात्र रोहन इलाहाबाद से ही है तथा नायिका रूही लखनऊ से है। इस प्रकार दोनों शहरों की गंगा–जमुनी संस्कृति से यह कृति रूबरू करवाती है।

रोहन अपनी ब्रिटिश पत्नी एलेसन से ठगा जाकर हारे हुए जुआरी की भाँति जब इलाहाबाद लौटता है, तब पाता है कि उसका शहर इलाहाबाद वैसा ही है जैसे वर्षों पहले वह छोड़कर गया था। उसका मन कह उठता है कि 'इलाहाबाद, तेरा कोई जवाब नहीं। मैं बदल गया ज़िंदगी बदल गई, मगर यार, तेरी गंध में कोई फ़र्क़ नहीं आया। वही पुराने दुलार और प्यार की गर्मी।"[160]

इलाहाबाद अपनी जीवन्तता से सभी को आकर्षित कर लेता है। यहाँ हर त्योहार व पर्व चाहे वह होली हो, दिवाली हो, राखी हो, जोश व उल्लास के साथ सब लोग मिलकर मनाते हैं। यहाँ दीपावली पर शगुन स्वरूप 'दीये' उपहार के रूप में दिये जाते हैं। ये दिये आने वाले हर्ष, उल्लास व प्रगति के प्रतीक होते हैं। जब रोहन की महिला मित्र एलेसन पहली बार इलाहाबाद आती है तब रोहन की माँ एलेसन को दीये देती हुई कहती है कि "यह लो दीये। आज दीवाली है और तुम इस घर की होने वाली बहू। तुम्हारे दम से यह घर हमेशा रौशन रहेगा।"[161]

रोहन के पिता प्रो. प्रहलाद दत्त के पटु शिष्य निखिल के घर पर चल रही पार्टी के दौरान दोस्तों के पारस्परिक वार्तालाप में **इलाहाबादी संस्कृति** के अनेक अनछुहे पहलू सामने आते हैं। एक दोस्त रीडर रमेश सोनकर कहता है कि "इलाहाबाद से अच्छी जगह मिलती भी कहाँ? गंगा–जमुना के बीच बसे इलाके की ज़रखेज़ ज़मीन और आबोहवा ऐसी रास आई कि आप कहीं का अमरूद खाएँ, मगर वह मज़ा नहीं, जो इलाहाबादी अमरूद में है। मज़ा लाजवाब, शक्ल माशाअल्लाह।"[162]

'गंगा की आरती' तो इलाहाबाद का खास आकर्षण है। नासिरा जी इसका चित्रांकन करती हुई लिखती है कि– "गंगा की आरती शुरू हो गई थी। वातावरण में गूँजती आवाज़, आग की लपट, सामग्री की गंध और भीड़ के बीच से बहती गंगा। हाथ जोड़े खड़ा रोहन बहते पानी को देख रहा था। माँ की स्थिति भी तो बाबा और मेरे बीच कुछ ऐसी थी। जीवन का वह कंपन, वात्सल्य का वह प्रवाह, मित्रता का वह लगाव आज इस गंगा में समा गया।..........रोहन का रोयाँ–रोयाँ आरती के शब्दों के उच्चारण से थरथरा रहा था।"[163]

उत्तरप्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों की **लोक–संस्कृति व उन्मुक्त जीवन–शैली** अनेक संदर्भों में इस रचना में उभर कर सामने आयी है। अपने इलाहाबाद के बंगले को बेचकर जब रोहन अपने पिता के साथ अपने पुस्तैनी गाँव कोटरा बहादुरगंज जाता है तो तब देखता है कि ग्रामीण परिवेश में आज भी अपनापन है। वे एक–दूसरे के सहारा बनकर हर परिस्थिति में खड़े होते हैं। वह सोचता है "अच्छा है, जितने ये लोग कम एक्सपोज़ होंगे, उतने ही हालात के थपेड़ों से सुरक्षित रहेंगे।"[164] "शाम को कुछ लोग बाबा से मिलने आए। अपनी ख़ुशी का इज़हार और हर तरह का सहयोग देने का वायदा कर वे कुछ देर बैठकर चले गये।"[165].......सुबह फूटने वाली थी। गहरा

अँधेरा मटमैला होकर सफ़ेदी की तरफ़ पल–पल बढ़ता महसूस हो रहा था। चौड़ी सड़क पर तेज़ आवाज करती रोड़वेज की बसें और ट्रक गुज़र रहे थे। माहौल में डीज़ल और धूल की बू घुली हुई थी। साइकिल सवार चादर ओढ़े तेज़ी से गुज़र रहे थे। बैलों के गले में पड़ी घंटियों की आवाज़ भी आने लगी थी। कुछ दूर पर रंगीन कपड़े पहने मर्द–औरत कुछ गाते गुज़र रहे थे। सूरज के निकलने से पहले की नारंगी आँच क्षितिज से फूटती नज़र आई।[166]

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में आज भी **लोकगीतों** की तरंगों पर लोकजीवन उमंग लिये नजर आता है। इन लोकगीतों में परिवेशगत संस्कृति व दर्शन साफ–साफ नजर आता है। आम–जीवन में गाये जाने वाले ये मनोहारी गीत प्राचीन काल से लोगों के जीवन में हर्ष–उल्लास और उमंग का संचार करते रहे हैं। रीडर रमेश सोनकर इलाहाबादी अमरूद की प्रशंसा में गाये जाने वाले लोकगीत को इस प्रकार सुनाते हैं–

"सुन मोर रजवा झुलनी न लेवै, बाला न लेबै
सुन मोर बलमा गहना न लेबै, गुरिया न लेबै
सुन मोर सजना लहँगा न चाही, ओढ़नी न चाही
लै आयो इलाहाबादी सफ़ेदा की डलिया।"[167]

प्रो. प्रह्लाद दत्त को कोटरा बहादुरगंज के घर में रात को सोते समय सुरीली आवाज में किसी के द्वारा गाये जाने वाले इस गीत ने उसके बचपन की याद दिला दी, जिसे वह अपनी दादी के साथ मिलकर गाते थे–

"ए री मैं तो छोड़ूँ सारे काम
हरि में ध्यान लगाऊँगी
प्रभु में ध्यान लगाऊँगी
ताते ताते खंभ गड़े हैं
उनसे लिपटूँगी।
मेरे प्रभु की हो जाए कृपा
शीतल हो जाऊँगी
मन का अपने मंदिर बनाकर पूजा कर लूँगी
ठाकुर पा लूँगी।
ए री............।"[168]

रोहन अपनी माँ प्रभा द्वारा गाये जाने वाले इस गीत को याद कर अपनी माँ के प्यार को वह महसूस करता है–

"जसोदा मइया तेरो ललना

सोने का लोटा, गंगा जल पानी

न पीवै न पीवन दै

जसोदा मइया तेरो ललना

बालू–रेती में लोट–पोट जाए

जसोदा मइया तेरो ललना

सोने की थाली में ज्यौना परोसा

न खावै न खावन दै

जसोदा मइया तेरो ललना।"[169]

रोहन और रूही जब गाँव मलीहाबाद पहुँचते हैं तो देखते हैं कि लू और गर्मी की गलबहियों के बीच दोपहर के समय महुवे के घने पेड़ के नीचे अपने साथियों के संग बैठा जवान जोश मलीहाबादी की मुरली गाने में मस्त था–

"चहके–चहके नर–नारी

सब मिल–मिल बारी–बारी

छलकी पनघट में गगरी

अर्जुन ने धनुक लचकाई

यह किन ने बजाई मुरलिया

हृदय में बदरी छाई।"[170]

नासिरा जी ने अपनी इस औपन्यासिक कृति में परम्परागत भारतीय **'गुरु–शिष्य परम्परा'** का अद्‌भुत निदर्शन प्रस्तुत किया है। पत्नी प्रभा के निधन के बाद प्रो. प्रह्लाद दत्त की सार–सँभाल उनका शिष्य निखिल और उसकी पत्नी शोभा जो प्रभा की शिष्या रही है, करते हैं। प्रो. दत्त की हर छोटी से छोटी जरूरतों को वे पूरा करते हैं। उन पर आने वाली हर समस्या को वे दोनों अपनी समस्या मानकर सुलझाते हैं। उनके हर सुख–दुःख में साथ खड़े रहते हैं। प्रो. दत्त के सपनों के महल (बंगले) के बिक जाने पर उनकी इच्छा के अनुसार कोटरा बहादुरगंज में स्थित उनके पुश्तैनी घर की मरम्मत करवाते हैं। एक प्रकार से उनकी हर छोटी से छोटी जरूरत का वे दोनों मिलकर ध्यान रखते हैं। जब रोहन इलाहाबाद लौटता है तब निखिल स्वयं चाय बनाकर लाता है। 'अरे दादा, मैं बना देता, आपने तकलीफ़ क्यों की?' रोहन के ऐसा कहने पर निखिल कहता है– "बैठो–बैठो, गुरु की सेवा का सुख केवल शागिर्द ही जानता है।"[171]

निखिल जब मिलने कोटरा–बहादुरगंज जाता है तो रोहन व प्रो. प्रहलाद दत्त को बुरी हालत व अस्वस्थता से ग्रस्त पाता है। वह दोनों बाप–बेटों के ब्लडप्रेशर को चेक करता है, जो

ठीक नहीं था। वह तुरन्त हक के साथ घर के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द करते हुए कह उठता है– "आप लोग इसी वक़्त मेरे साथ चलेंगे। मेरे घर न सही तो आप किसी होटल में रह लेना जहाँ आपकी देखभाल कर सकूँ और मेडिकल सहूलियतें हों।"[172]..... "सर, आपका ठीक रहना हालात की भी माँग है और आप जैसे प्रोफ़ेसर की हमको सख़्त ज़रूरत है। आप क्या हैं हमारे लिए आपको अंदाज़ा है? उठिए और चलकर कार में बैठिए।"[173]

प्रो. प्रहलाद दत्त अपने और निखिल के मध्य रिश्ते को बयां करते हुए कहते हैं– "यह रिश्ता भी अजीब है, द्रोणाचार्य और एकलव्य का। दिल से जिसको गुरु मान लिया, उसके लिए अँगूठा क्या, कुछ भी कुर्बान किया जा सकता है। मैंने अपनी परेशानियों का बोझ न चाहने के बावजूद काफी हद तक निखिल के कंधों पर डाल दिया है।"[174]

निखिल ने रोहन की बचत तथा अपने पैसे मिलाकर प्रो. दत्त के बंगले को अग्रवाल स्वीट वाले से पुनः खरीदकर अपने शिष्यत्व का और रोहन के बड़े भाई का फर्ज अदा करता है। इस बात का निखिल पूर्व में ही संकल्प कर चुका था। रोहन और रूही की मँगनी की रस्म के बाद जब निखिल अपनी पत्नी शोभा व बच्चों सहित कार से इलाहाबाद लौट रहा होता है तब वह शोभा से अपनी दिली इच्छा बताते हुए कहते हैं कि– "मैं सोच रहा हूँ कि अब मुझे जो मौक़ा हाथ मिला है गुरुदक्षिणा देने का उसे हाथ से जाने नहीं दूँगा, क्योंकि सर तो कूटनीति जानते नहीं जो मुझसे द्रोणाचार्य की तरह अँगूठा माँगेंगे, मगर मैं एकलव्य बनकर अपना कर्त्तव्य ज़रूर निभाऊँगा और तुम मेरे इस कर्त्तव्य की आधी भागीदार होगी, क्योंकि तुम प्रभा मैडम की विद्यार्थिनी रही हो और मेरी जीवन–संगिनी।"[175]

शोभा पुराने दिनों को स्मरण करती है– "उसे सर का चेहरा ज़िंदगी से भरपूर उन दिनों की याद दिला रहा था जब प्रभा मैडम ज़िंदा थी। दोनों की भरपूर दुनिया विषय की दृष्टि से दो भागों में बँटी हुई, मगर रिश्तों में वह दुनिया एक बन कितना विस्तार पा लेती थी। उस बंगले में हर साल सर और मैडम पुराने–नए विद्यार्थियों की एक बड़ी पार्टी देते थे। उसमें यूनिवर्सिटी के कुछ प्रोफ़ेसर और अन्य कॉलेजों के टीचर शामिल होते। इस पार्टी के चलते सद्भावना और मेलजोल का ऐसा माहौल बन गया था जिसमें गुरु–विद्यार्थी संबंध सबसे ज़्यादा पनपा था। किताबों से लेकर घरेलू समस्या तक का लेखा–जोखा सर और मैडम हर विद्यार्थी का रखते थे। ऐसे लोगों को इस तरह का दुःख भोगना पड़ा, इसका जवाब कोई विद्यार्थी नहीं ढूँढ पाया था।"[176]

पाश्चात्य और भारतीय दोनों परिवेशों में बच्चों के लालन पालन में दिन रात का अन्तर होता है। भारतीय माँ–बाप अपने बच्चे को संस्कार देने में कोई कसर नहीं छोड़ते। संयुक्त परिवार प्रथा इसका महत्त्वपूर्ण घटक है। बच्चे बड़ों की छत्रछाया में पलकर निश्चित ही सामाजिक स्वभाव पाता है परन्तु "पाश्चात्य समाज में लाखों बच्चे सरकार पाल रही है।"[177] निश्चित ही वह बच्चा

एकाकी प्रवृत्ति वाला व स्व तक सीमित रहने वाला होगा। साथ ही ऐसे वातावरण में पले–बढ़े बच्चे अपने माँ–बाप से भी उतना लगाव नहीं रख पाते हैं।

नासिरा जी अपने इस उपन्यास में अनेक स्थलों पर वर्तमान समाज की उस दबी हुई नस के दर्द से पाठकों को रूबरू करवाया है जिससे लगभग हर मत–पंथ का परिवार पीड़ित है, दुःखी है, तन्हा है। एक ऐसा दर्द जो ऊपर से चमक–दमक लिये हुए है, हर किसी को अपनी ओर खींचने की कोशिश करता है, लुभाता है और व्यक्ति उसके चंगुल में फँसकर छटपटाता रहता है, पर छूट नहीं पाता है, वह दर्द है**– नई पीढ़ी का अपनी जड़ों से दूर होना और बाहरी जिंदगी में रच–बसना।** आज एक तरफ परिवारिक टूटन बढ़ रही है। विभिन्न सामाजिक–आर्थिक कारणों से एकल परिवार बढ़े हैं। वहीं दूसरी तरफ आज की युवा पीढ़ी मोटे आर्थिक पैकेज, भौतिक सुख–सुविधाओं इत्यादि के प्रलोभन में आकर विदेशी कम्पनियों में नौकरी करते हुए धीरे–धीरे वहीं बस जाते हैं। जब वे ही वापस लौटना नहीं चाहते तो फिर उनकी संतानों का तो सवाल ही नहीं उठता। पीछे रह जाते हैं तन्हा जीने को विबस व नौकरों पर आश्रित बूढ़े माँ–बाप। ऐसी ही अभागी माँ है– विधवा फिरदौस जहाँ, जो अपने पुत्र मोनिस के विदेश में बस जाने तथ शौहर के इन्तकाल के बाद अकेली लखनऊ की एक आलीशान पुश्तैनी हवेली में रहती है और व्हीलचेयर पर ही चल फिर सकती है। वह मोनिस को वापस लौट आने को अनेक बार कह चुकी है परन्तु मोनिस उसे दकियानूसी करार देते हुए लौटने से इनकार कर देता है। उलटा उसे ही यूरोप आने के लिए कहता है। फिरदौस जहाँ मनमसोस कर रह जाती है।

एक रात तन्हा होकर वह सोचती है कि "मोनिस को बाहर बसने की क्या ज़रूरत थी, मगर ये लड़के सिर्फ़ अपने बारे में ही सोचते हैं। अपनी जड़ों से दूर क्या कभी कोई तरक़्की कर पाया है? कर भी ली तो उसे देखने–सुनने वाले तो वहाँ होंगे नहीं। मैं कहूँगी इस बार मोनिस से कि बहुत हो चुका। तुम्हारी बहन को तुम्हारी ज़रूरत है इस घर को तुम्हारा इंतज़ार रहता है। वहाँ रहकर करना क्या है?"[178]

इतना सोचा ही था कि मोनिस का फोन आता है। हाल–चाल जानकर फिरदौस जहाँ अपने बेटे से कहती है– "तुम कब आ रहे हो मेरे कलेजे! ये आँखें तरस रही हैं।"[179] इस पर मोनिस कहता है– "नो मोर डायलॉग मॉम! उस शहर की ठहरी ज़िंदगी में मुझे आकर मरना नहीं है। आप बार–बार वही बात दोहराती हैं। आप और रूही के अलावा वहाँ मेरा अपना बचा कौन है। किसके लिए यह सब छोडूँ? मेरे सारे दोस्त यूरोप भर में फैले हुए हैं। मुझे बेकार के इमोशंस में मत उलझाइए..........वह घर बोसीदा हो चुका है। वह सड़कें, और वह रास्ते टूट चुके हैं......... मॉम, डोंट क्राई। हमारी यादें, हमारा दिल, दिमाग़ और ये आँखें हैं। वह घर और शहर नहीं।......... "अच्छा मॉम, अपना ख़याल रखिइगा। मैंने चेक डाल दिया है। गुडनाइट।"

"गुडनाइट" कहते–कहते फिरदौस जहाँ अपने आँसू रोक नहीं पाई। कैसे कहतीं कि मुझे चेक की नहीं, तुम्हारी चाहत है।[180]

फिरदौस जहाँ की लालकोठी पर सपरिवार रहने वाला घरेलू नौकर ग़फ़ूर जब अपने आस–पास ऐसे अमीर बुर्जुग लोगों को अकेले तन्हा रहते हुए देखता है तो वह ऐसी शिक्षा–प्रणाली व पढ़ाई लिखाई से बेहद खफा हो जाता है, जो अपनों को भुलाकर, अपनी जड़ों व जमीं से दूर पैसे के पीछे भागना सिखाये और आँखों को चौंधिया दे। वह जब अपनी मालकिन फिरदौस को तन्हा, दुःखी देखता है तो उसका सब्र का बाँध टूट जाता है। वह मन ही मन संकल्प लेता है कि यदि आज की पढ़ाई का यही हस्र होना है तो वह अपने बेटे साबिर को नहीं पढ़ायेगा। वह अपने बेटे की सारी किताबों की गठरी बाँधकर रख देता है। वह मन ही मन, कह उठता है– "ये बच्चे पढ़–लिखकर अपने कहाँ रह जाते हैं?..........पूरी कॉलोनी में जज साहब हों या इंजीनियर साहब, जो भी बूढ़ा है, उसके बच्चे या तो विलायत में हैं या फिर दूसरे शहर में और वे या तो अल्लाह भरोसे हैं या फिर नौकरों के सहारे। यह भी कोई ज़िंदगी है।"[181]

"ग़फ़ूर ताव में आकर बेटे की सारी किताबें गहरी में बाँध कमरे के कोने में रख देता है और दिल ही दिल में फैसला लेता है कि फ़ुर्सत मिलते ही इसको गोमती के हवाले कर देगा चाहे पत्नी सलमा जितना लड़े और साबिर जितना रोए। वह ऐसी ज़िंदगी जीने से रहा।"[182]

इस प्रकार ग़फ़ूर समाज के हर उस चेहरे का प्रतिनिधि है जो अपने बच्चों से अलग–थलग असहाय एवं दर्द भरी ज़िदगी जीने का मजबूर है। साथ ही प्रत्येक पाठक को यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि अब समय आ गया है कि शिक्षा को समाजोन्मुखी बनाया जाये। **शिक्षा ऐसी हो जो भौतिक लिप्सा व रुपये–पैसे के प्रति अँधा न बनाये अपितु अपनों के प्रति, अपनी जड़ों व सरजमीं के प्रति दायित्ववान बनाये।**

आपसी **बोलचाल, खान–पान, पहनावा** इत्यादि में समयगत परिवर्तनों पर दृष्टि डालते हुए नासिरा ने अनेक संवाद रचे हैं। फिरदौस और जोहरा बी तथा फिरदौस और प्रहलाद दत्त के आपसी संवादों के द्वारा लेखिका ने समझाया है कि धीरे–धीरे सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट आती जा रही है। पीढ़ी दर पीढ़ी हर तरह का हुनर गायब होता जा रहा है। जोहरा बी फिरदौस जहाँ से कहती है कि "उन्हें (पोता–पोती को) सुबह–शाम वही मैगी चाहिए। फैकेट खोलो, उबालो और खा लो। बहू को काम कम करना पड़ता और अब मैं अकेली जान के लिए क्या पकाऊँ? वही पैकेट वाली उबली–सुतली खा लेती हूँ।"[183]

जोहरा बी पुनः कहती है कि "पहले की नज़ाकतें बहुत थीं, जो क्या खाने, क्या बोलने, क्या पहनने में नज़र आती थीं। अब तो क्या कहें, कपड़े भी लड़कियाँ ऐसे पहनती हैं कि लगता

है बड़ी बहन की उतरन पहन ली हों या फिर कतरनों को जोड़ छोटी बहन का जामा ज़ेब तन कर लिया हो..........अब न किसी को हुसैन अली की नहारी की तमीज़ है, न हैदर हुसैन के फाटक के मुज़ाफ़र की और न नखास की शीरमाल और बालाई की। जो खाओ उसी में मिलावट, धोखाधड़ी। अब तो साथ खाना भी खाना किसी को नहीं भाता।"[184]..... वह लुत्फ़ वह गुफ़्तगू का मज़ा, आपसी छेड़छाड़, मोहब्बत का इज़हार सब जाता रहा। सब बेरस हो गया है।.........ग़रीबी में सलीक़ा था, अब अमीरी में बेढंगापन है।[185]

फ़िरदौस जहाँ पता नहीं क्या सोचकर बोल उठीं, "एक ज़माना था जब बड़ा–सा दस्तरख़्वान बिछता था आगे, घेरे में लोग बैठते थे। अब किसी कुत्ते की तरह मेरे आगे खाना रख दिया जाता है और मैं तन्हा उसे निगल लेती हूँ।"[186]

पहले खान–पान व पहनावा मौसम व ऋतु के हिसाब से भिन्न–भिन्न होता था। स्थानगत व परिवेशगत भिन्नता लिये हुए थी। साथ ही अमीरी–गरीबी के आधार पर भी खाने में अन्तर देखने को मिलता था। लखनवी खाने के व्यंजनों में बादाम का कोरमा, तालमख़ाने के सालन, अरबी गोश्त, भिंडी क़ीमा, पालक गोश्त, दो प्याज़ा, करमकल्ला गोश्त, कबाब पराँठा, तनकी व नमश, नान व नहारी, गवज़बान व बालाई, मुतनजन, याकूती, शिशरंगा, मुज़ाफर, बिरयानी, मछली पुलाव, मुर्ग़ पुलाव, कोफता पुलाव, अंडा पुलाव, पसंदा पुलाव, यख़नी पुलाव, अनार दाना पुलाव, नौरत्न पुलाव, सेवइयों का पुलाव, बूकलमून का पुलाव, कच्चे कड़वे तेल से बघारी लहसुन की चटनी, गुलाबी बेसन की रोटी, दाल–भात इत्यादि विशेष माने जाते थे। इनका उल्लेख लेखिका ने अनेकत्र किया है।

अपने इस उपन्यास में नासिरा जी ने इस ओर भी पाठकों का ध्यान खींचने की कोशिश की गई है कि हमारे **ऐतिहासिक शहर व धरोहरें आज क्रमशः क्षीण होते जा रहे हैं।** हमें इस ओर ध्यान देना चाहिए तथा अपनी अतीत की स्मृतियों को सँजोके रखने का प्रयास करना चाहिए। जबकि विदेशों में सदियों पुरानी इमारतें आज भी जीवन्त हैं। दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र हैं। उनका रखरखाव बहुत ही सुन्दर ढंग से किया जा रहा है। रोहन जब लखनऊ की चौड़ी सड़कों से गुजरते हुए नई–पुरानी इमारतों को देखते हुए सोचता है कि "ये तारीख़ी शहर वास्तव में कितने थके और मायूस नज़र आते हैं। शायद इसका कारण सभ्यता एवं संस्कृति का पुराना पड़ जाना है या फिर उन्हें बेजान जिस्म की तरह समझ अतीत के तहख़ाने में डाल देना, मगर नई संस्कृति..........। फ्रांस के पास उसका नया–पुराना इतिहास अपनी चमक–दमक के साथ मौजूद है और हम पुराने को सहेज नहीं पाते और नई भद्दी इमारतों की बुनियाद डाल बैठते हैं.........कहीं कोई टाउन प्लानिंग नज़र नहीं आती है।"[187]

नासिरा शर्मा ने अपने इस उपन्यास के कथानक को बढ़ाने तथा पीढ़ीगत बदलावों से नई पीढ़ी को रूबरू कराने के लिए फ्लैस बैक (पूर्व दीप्ति) के समान ही पत्रलेखन पद्धति का उपयोग किया है। वर्तमान में एक से बढ़कर एक माध्यम मौजूद होने पर भी पत्रों के द्वारा अपनी बात कहकर लेखिका ने साहित्य के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित किया है। अतीत के पन्नों में झाँककर उसे वर्तमान से जोड़कर देखने की यह एक अद्‌भुत और अनोखी पद्धति है। एक माँ के द्वारा अपनी बेटी के नाम पत्र शैली में लिखी जा रही पुस्तक के माध्यम से यहाँ प्राचीन लखनऊ की संस्कृति और वर्तमान लखनऊ की संस्कृति को तुलनात्मक अध्ययन के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस लेखन (पत्रों) में दोनों कालों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक अवस्थाओं के चित्रण के द्वारा पाठकों को लखनऊ की संस्कृति के अनेक अनछुए पहलुओं को जानने का अवसर मिला है। एक प्रकार से प्राचीन पीढ़ी के अनुभवों का नई पीढ़ी में सम्प्रेषण करना युग की जरूरत भी है। फिरदौस जहाँ द्वारा अपनी बेटी रूही को लिखे गये पत्रों के कुछ अंश यहाँ उद्धरणीय हैं– "हम जिन खिलौनों से बचपन में प्यार करते थे। दर हक़ीक़त बड़े होकर वे सब हमारी मोहब्बत में शामिल होते थे। मेहतर हो या कहार, नौकर हो या कामगार, मगर अब न वह खिलौनों की दुकानें हैं, न वह पुराना लखनऊ, जहाँ मिट्टी के खासदान होते थे। जिनमें कपड़ों में लपेट पान की गिलौरियाँ रखी जाती थीं, ताकि उसमें मिट्टी की सौंधी महक बस जाए। इन्हें काग़ज़ी कहा जाता था। काग़जी सुराही, प्याले, आबख़ोरे इसी सोंधी महक के चलते लोगों को प्यारे थे, जो रात के अँधेरे में चमकते भी थे, क्योंकि इन बर्तनों की मिट्टी में बालू मिलाया जाता था। वह तरावट कहाँ गई है। जैसे ख़ुलूस आज के दौर के लोगों में कम हुआ है, वैसे ही बाज़ार से यह रिश्ते बनाए रखने वाले बर्तन भी हटा दिए गए हैं। मेरी नज़रों के सामने इस वक़्त कुम्हार और कुम्हार का पूरा कुन्बा और घर घूम रहा है। जहाँ मैं दादी बी के साथ उसकी पसंद के बनाए गए डिज़ाइनों को गढ़वाने पहुँचती थी। फूस का छप्पर, मिट्टी के लोंदे, मटमैला पानी और ठंडी–ठंडी–सी महक।"[188]

"जानती हो रूही, हमारे घरों में इस्तेमाल में आने वाली वे प्लेटें........क्या गज़ब की उनकी तराश होती थी। वे कहलाती थीं–सादी, लाखी और रौगनी। लाखी का रंग स्याह होता था। मौत के घर में हिस्सा देने और खाना खिलाने में इस्तेमाल होती थीं। सादी रकाबियों में पतंग वाले या फिर चिकने रंगीन काग़ज़ बिछाकर उस पर सूखी चीजें सजाई जाती थीं। जैसे फल, सब्ज़ी, सूखे मेवे और नाश्ते के दूसरे सामान वग़ैरह। उन पर कढ़ा खानपोश डाल, घर–घर हिस्सा जाता था। रौग़नी तश्तरी सुनहरी होती। उसके प्यालों में खाना खाया भी जाता और भेजा भी जाता था। कैसे चिकने और साफ़ बनते थे मिट्टी के बर्तन। अब प्लास्टिक ने आकर अपनी मिट्टी से कैसी दूरी बना दी है।"[189]

"अज़ीज़ी रूही, तुम्हारे जींस और टॉप को देखकर मुझे अपने खिलौने ही नहीं, जवानी के दिनों के फ़ैशन याद आ रहे हैं। शिनैल और मखमल के कपड़ों पर ज़रदोज़ी और आरी का काम जिन पर मोती टँके होते। सुनहरे–रूपहले, बादला और मुकैश के काम के रंगीन दुपट्टे और लचके से सजे किनारे। वे कपड़ें पुराने होकर नौकरों के पहनने और गरीबों के पेट भरने के काम आते थे। असली गोटे–किनारी और मुकैश के तार चाँदी के होते थे, जिन्हें वे कपड़ा चिथड़ा होने पर जलाकर बेच देते थे। कपड़े आज भी झिलमिलाते पहने ज़रूर जाते हैं, मगर चीज़े और रंग कच्चे और सामान बनावटी राँगा, प्लास्टिक से जो न दोबारा टाँकने के काम आता है, न बेचने के। कारचोबी का काम तो अब बेगमों के पुराने संदूकों में भी नहीं बचा होगा, मगर उस फ़नकारी के नमूने आज भी पुराने इमामबाड़ों के पटके पर नज़र आते हैं।"[190]

"लखनऊ में **तमीज़ व तहज़ीब** दौलत और मरतबे में नहीं बँटी थी। इस खूबी से क्या अमीर, क्या ग़रीब, लखनऊ का हर तबक़ा मालामाल था। तभी अपनी दुकान के सामान के मुताबिक अपनी छब भी बनाते थे। पौंडे वाला केवड़े का, तरकारी वाला हिना का, हुक़्क़ा पिलाने वाला शमामा का और शरबत पिलाने वाला गुलाब का इत्र लगाते थे। लखनऊ वालों के रहन–सहन में ख़ुशबू का बड़ा दख़ल था। आज के लोग न अपनी पहचान रखते हैं, न दूसरों की।"[191]

"पहले झुग्गी–झोंपड़ी स्लम एरिया की तरह नहीं होती थी, बल्कि सब एक ज़मीन पर साथ–साथ रहते थे। ग़रीब अपनी ग़रीबी में रूहानी ताक़त से अपने दायरे में रूखा–सूखा खाकर जीता था तो अमीर अपने दिखावे और आरामतलबी में। मगर एक मुक़ाम ऐसा था, जहाँ दोनों तबक़े इनसान बनकर एक–दूसरे के दुःख–दर्द को समझते थे तभी तो रिश्ते पीढ़ियों तक चलते..... .सब बीत गई।

सब कहाँ कुछ लाला व गुलमें नुमाया हो गईं,
ख़ाक में क्या सूरतें होंगी कि पिनहा हो गईं।"[192]

"गंगा–जमुनी बर्तनों का तब कितना रिवाज था। मुरादाबादी बर्तनों को छोड़ो, सादे ताँबे के बर्तन घर–घर रायज थे, फिर ययहागंज का बाज़ार पीतल से चमचमाता उभरा और उसने धीरे–धीरे करके ताँबे और चाँदी के बर्तनों का चलन ख़त्म कर दिया। चाँदी के पानदान से ताँबे के पानदान, फिर पीतल की पनदनिया आई, फिर पानदान ही घरों से ग़ायब हो गए। केवड़े में बसा कत्था। मलाई जैसा चूना, जिसमें मोती और सीप का चूरा मिलाया जाता था। ऊपर से पान का वह सब्ज़ पत्ता जो हर शहर, हर गाँव के घर–घर में दिन–भर चलता था। इसीलिए कहा जाता था कि बर्गे सब्ज़ अस्त तोफ़ा–ए–दरवीश........।"[193]

पान, जिसको हर ख़ास व आम अपने मेहमानों के आगे पेश करता था। नफ़ासत पसंद लोगों के घरों में पान के पत्ते बालू की तह में रख दिए जाते थे, जिन पर रोज़ पानी के छींटे मारे जाते थे। कुछ दिनों बाद जब वे बालू की तह से निकाले जाते थे, तो कभी–कभी कुछ पत्ते सड़ जाते थे। मगर बाक़ी पत्तों का रंग हरे से बदलकर पीलाहट वाला हो जाता था, जिसको 'पिस्तई' कहा जाता। ख़ुशबूदार क़िवाम, चाँदी के वर्क़ चढ़ी तंबाकू की गोलियाँ तरह–तरह की शीशियों में भरी होतीं। इन पानों के संग उनका इस्तेमाल होता। पान की गिलौरी मुँह में जाते ही मक्खन की तरह घुल जाती।........पान मलाई की तरह नर्म होते तभी पान खाते हुए बीड़े को चबाना, जबड़े का हिलना, पीक थूकना बदतमीज़ी और आदाबे महफिल के ख़िलाफ़ समझा जाता था।"[194]

इस प्रकार पत्रों के माध्यम से अतीत को वर्तमान से जोड़कर देखने की इस पद्धति के कारण यह उपन्यास अद्भुत बन पड़ा है। साथ ही पाठकों को बड़ी ही रोचक शैली में लखनऊ के सामाजिक एवं सांस्कृतिक उस ताने–बाने की जानकारी प्राप्त होती है, जो सामान्यतः पढ़ने व देखने को नहीं मिलता है।

जिस प्रकार हिन्दू धर्म में **देव–स्थानों, थानकों** पर लोग दुःख–दर्द मिटाने की कामना से झाड़–फूँक करवाते हैं। **गण्डे–ताबीज़** बनवाकर पहनते हैं। ठीक उसी भाँति मुस्लिम धर्मस्थलों, दरगाहों, मजारों इत्यादि पर भी लोग उसी आस्था, श्रद्धा व विश्वास के साथ झाड़–फूँक, गण्डे–ताबीज़ आदि करवाते हैं। यह रिवाज लोगों की आस्था व विश्वास पर निर्भर करता है। इसमें अमीर–गरीब, बच्चे–बूढ़े, औरत–मर्द सभी शामिल हैं। सफ़ीर जब रोहन को लेकर यह कहकर लखनऊ के समीप स्थित गोरे बाबा की दरगाह पर लेकर जाता है कि यहाँ ऐसी कोई मुराद नहीं जो पूरी न होती हो। तब वहाँ जाकर देखते हैं कि "अलबत्ता मुरछल उठाकल मुजाविर किसी की पीठ पर मार रहे थे। चंद बच्चे फुँकवाने, झड़वाने को खड़े थे।"[195]

प्रत्येक समाज में **सगुन और अपसगुन** की मान्यताएँ यद्यपि अलग–अलग हैं परन्तु मान्यता प्रायः सर्वत्र देखी जाती है। लोग शरीर के अंगों की हरकतों, पशु–पक्षी की हरकतों व आवाजों, प्रकृति के विशेष परिवर्तनों व घटनाओं इत्यादि के द्वारा उनका विशेष अर्थ लेते हैं और तदनुसार आचारण भी करते हैं। लोगों के अनुभवों की मानें तो ये संकेत होते हैं भावी घटनाओं के। लोगों का अनुभव ही इसका प्रमाण है। यह अन्तर्मन से जुड़ा कोई विशिष्ट विज्ञान प्रतीत होता है। परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इनको मिथ्या, मनगढंत बातें व अन्धविश्वास मानने वाले लोगों की संख्या भी कम नहीं हैं। परन्तु साहित्य में इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। पारिजात उपन्यास में भी जब विधवा रूही दुबारा रोहन के साथ शादी करने के अपने इरादे से अपनी माँ फिरदौस जहाँ को अवगत कराना चाहती है, उससे पहले ही फिरदौस जहाँ को शुभ संकेत मिलना शुरू हो जाता है– "उनकी बाई आँख सुबह से फड़क रही थी। मोनिस का फोन

आया था। कोई ख़ास बात उसने बताई नहीं। बार–बार बेचैनी में उनका हाथ आँखों की तरफ़ जाता देख आयशा बेगम बोल उठीं, "आँख फड़के दहिनी, माँ मिले या बहिनी, आँखे फड़के बाईं, भाई मिले या साईं।....यह तो ठीक कह रही है आयशा। आज तुम्हें कोई ख़ुशख़बरी ज़रूर मिलने वाली है।"[196]

हिन्दुस्तान में घरों में पशु–पक्षियों को पालने व प्रशिक्षित करने का भी प्राचीन काल से ही रिवाज चला आ रहा है। आज भी अनेक घरों में विभिन्न किस्मों के पक्षियों से सजे–धजे पिंजरे मिल जाते हैं। रोहन जब लखनऊ में उस्ताद दिलावर मिर्ज़ा के घर कर्बला की जंग के बारे में जानने की उत्सुकता से जाते हैं तब उसके दरवाजे पर पहुँचते ही दिलावर मिर्जा का प्रशिक्षित तोता चीख उठा, "जनाब दिलावर मिर्ज़ा साहब, कोई मोहतरम दरवाज़े पर तशरीफ़ लाए हैं।"[197] इसी प्रकार जब रोहन घर से बाहर जाने के लिए निकलता है तब भी वह तोता बोल पड़ा, "फिर तशरीफ़ लाइएगा हुज़ूरेवाला! ख़ुदा हाफ़िज़!"[198]

लेखिका ने वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर फैली हुई, भीषण समस्या 'आतंकवाद और उसके कारणों' पर भी खुलकर विचार व्यक्त किए हैं। उनका मानना है कि **आम आदमी की बेबसी–भरी झुँझलाहट ही आतंकवाद का मूल है।** इसका बुनियादी कारण अन्याय है। इसे हमें धर्म से न जोड़कर, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक नजरिये से देखने की कोशिश करनी चाहिए। वे यह भी मानती हैं कि आतंकवाद के कारण वैश्विक स्तर पर मुसलमानों का चेहरा बिगाड़ कर रख दिया। हर मुसलमान को शक व हिकारत की नज़र से देखा जाने लगा है। जो वर्तमान में बढ़ती ही जा रही है। जब निखिल दा के घर विश्वविद्यालय के अध्यापकों और रिसर्च स्कॉलरर्स की पार्टी चल रही थी, तब निखिल दा को किसी के द्वारा फोन पर मुम्बई के ताज होटल पर आतंकी हमले की जानकारी मिलती है। निखिल जब टी.वी. ऑन करता है तो सब देखते हैं कि "अब तक का सबसे बड़ा आतंकवादी हमला। ताज और ओबेराय में आतंकवादियों ने विदेशी और देशी लोगों को बंधक बना रखा है। गोलियों की बौछार में कई पुलिस वाले मारे गए..........।"[199]

"समझ में नहीं आ रहा है कि यह सब कहाँ जाकर ख़त्म होगा! चुनाव की गर्मागर्मी, उसमें.....।"[200] तभी लाइट चली गई और झुँझलाकर बोलने वाला चुप हो गया।

तब एक अन्य व्यक्ति बोलता है कि "इसी तरह की बेबसी–भरी झुँझलाहट आतंकवाद का बेस बनती है। मज़ाक़ नहीं कर रहा हूँ मैं। कोई पेपरवेट उठाकर पटकता है तो कोई फ़ाइल फेंकता है तो कोई बम फोड़ता है। आक्रोश भी ज़मीन देखकर रूप धरता है और यह सब जो हो रहा है, उसके पीछे बुनियादी कारण अन्याय है। चाहे वह आर्थिक हो, सामाजिक हो या फिर सियासी। मैं उसमें धर्म को शामिल नहीं करूँगा। धर्म तो सिर्फ़ एक हथियार है, जिसको सिर्फ़ इसलिए प्रयोग किया जाता है ताकि आम आदमी तक पहुँच हो सके।"[201]

यही बात रोहन से सलीम जिसकी जर्मन प्रेमिका उसके मुसलमान होने के कारण शादी करने से मना कर देती है, कहता है– "दरअसल इस टेरारिज़्म के पीछे की सियासत जो भी हो, मगर उसने मुसलमानों का इंटरनेशनल चेहरा बिगाड़ दिया है।"[202]

किसी भी देश की संस्कृति को नष्ट करने और उस पर प्रहार करने के लिए आक्रान्ताओं द्वारा सम्बन्धित देश के पुस्तकालयों व साहित्य को जलाया गया, नष्ट किया गया। इससे यह प्रमाणित होता है कि साहित्य ही संस्कृति का प्राण है। संस्कारों का पुंज है। **साहित्य को नष्ट करने का मतलब है उस देश को उसकी जड़ों व इतिहास से काटना।** रोहन जब अपने ख़ानदान के सिलसिले पर मालुमात करने इराक़ से पधारे हुए मौलाना से मिलता है। तब वह मौलाना रोहन से कहते हैं कि "शर्मिंदा हूँ कि किताबख़ाने की बर्बादी के चलते पुराने मसवदे आपको हम दस्तायाब करा पाएँगे या नहीं, वायदा नहीं कर पाऊँगा। इराक़ जंगज़दह मुल्क है, आप जानते हैं।"[203]

इस पर रोहन कहता है– "मुझे इसका एहसास है और इराक़ की बर्बादी का अफ़सोस भी। यक़ीन है सब कुछ जल्द ठीक हो जाएगा। वह ज़माना भी इराक़ ने देखा, जब दुनिया की सबसे बड़ी लाइब्रेरी की किताबें दजला में डाली गई थी। और वह फूलकर पुल बन गई थीं।"[204]

नासिरा जी ने इस उपन्यास के कथानक के माध्यम से इतिहास के अनेक अनछुए पहलुओं को कुरेदा है। पाठकों को अभिनव जानकारी उपलब्ध करवाई है। इस कारण पाठक में अन्त तक एक आकर्षण एवं रोचकता बनी रहती है। ऐसा ही एक अनछुआ वृत्तान्त है रोहन के द्वारा **मोहयाल एवं हुसैनी ब्राह्मण के इतिहास** को जानने की कोशिश, जिसमें अन्ततोगत्वा उसे सफलता मिलती है। रोहन लखनऊ निवासी सफ़ीर के साथ मिलकर इसका इतिहास जुटाने की कोशिश करता है। सफ़ीर को काफी खोजबीन के बाद 'हिस्ट्री ऑफ़ द मोहयाल्स' नामक पुस्तक के कुछ अंश मिले। जिसमें लिखा इतिहास इस प्रकार है– "भारद्वाज दत्तों का गोत्र है। ऋषि भारद्वाज त्रेता युग के आरंभ में हुए। यह इक्ष्वाकु वंश की 43वीं पीढ़ी में हुए राजा अंशुमान के समकालीन थे। ये ब्रह्मा के मानस पुत्र अंगिरा ऋषि के वंशज थे। इनके कुल में कई महान् विभूतियाँ हुई हैं। ऋषि भारद्वाज बृहस्पति के पुत्र थे। बृहस्पति वैशाली के राजगुरु थे। वैशाली के राजा मरुत ने भारद्वाज का पालन–पोषण किया। मत्स्य वायु पुराण के अनुसार राजा मरुत ने ही भारद्वाज का पालन–पोषण किया। पुरुवंशीय राजा भरत का कोई भी पुत्र राजा बनने योग्य न था। राजा मरुत ने होनहार बालक भारद्वाज को भरत के सुपुर्द कर दिया। भारत द्वारा गोद लेने के बाद भारद्वाज क्षत्रिय–ब्राह्मण कहलाने लगे। राजा भरत की मृत्यु के बाद भारद्वाज अपने पुत्र वितथ या विदाथन को राज्याधिकारी बनाकर तपस्या हेतु वन में चले गए।

द्रोणाचार्य भारद्वाज के बेटे कौरवों के कमांडर इन चीफ़ थे। इनके बेटे अश्वत्थामा और पोते राजभवन दोनों अपने पूर्वजों के चलते दत्तों द्वारा सराहे और पसंद किए जाते हैं। द्रोणाचार्य की हत्या और युधिष्ठर के हस्तिनापुर के राजा के रूप में राज्याभिषेक से दुःखी अश्वत्थामा का मन उचट गया और वह यह स्थान छोड़कर कहीं और रहना चाहते थे। इस तरह से वह कश्मीर होते हुए काबुल फिर अरेबिया में जा बसे। उनके साथ उनके पिता के गुरुकुल के छह साथी थे, जिनका नाम विद्याधर, ब्रह्मो, कृष्णू, हरिराम, द्रोना और मोहन थे। कुछ मोहयाल इतिहासकारों ने यह माना है कि यही छह थे अश्वत्थामा के साथ जो बाक़ी मोहयालों के वंशज बने थे अर्थात् बाला, भीमवाल, छिब्बर, लाउ, मोहन, वैद और दत्त.......।"[205]

"परशुराम पहले ब्राह्मण थे, जिन्होंने हथियार धारण किए थे। द्रोणाचार्य एवं अश्वत्थामा फ़ौज में जनरल्स थे। मोहयाल्स अरेबिया के सहरा में आज़ाद रहते। उनकी हैसियत वहाँ हुक्मरान जैसी थी। अरबी शब्द 'मीसर' बहुत से मोहियाल्स के घरों में पाए जाने वाले पुराने बर्तनों पर ख़ुदा या बना रहता था। मोहियाल्स की रंगत आर्यों व चेहरा यूनानी, कद–काठी अरबों जैसी है। लंबा–ऊँचा क़द और इठलाकर चलने की अदा इसका प्रमाण है। इन शारीरिक पहचान के अलावा इनकी दूसरी पहचान वैभव और विलासपूर्ण जीवन, बढ़िया पोशाक, कम उमर में ही फ़ैशन से रहना आदि, मगर दूसरी तरफ़ अपने धर्म और देश के लिए कुर्बान हो जाना, अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध खड़े होना और किसी भी सामाजिक दमन को सहन न करना इनकी सबसे बड़ी ख़ूबी थी। इन्होंने बड़े परिवारों में शादी की और मुगलों, सिखों और ब्रिटिश सरकारों के क़ानून और नियम को आत्मसात् किया, मगर चोरी–बेइमानी कभी नहीं की। साथ ही इन्होंने कुछ काम कभी नहीं किए, जैसे नाप–तौल का, दूसरे दान कभी नहीं स्वीकारा।......इन ब्राह्मणों को आदि शंकराचार्य, जिनका असली नाम उमादत्त शर्मा था, ने 788–82 ए.डी. में फिर से पाँच भागों में बाँट दिया। जो विंध्याचल के उत्तर में रहते थे। वे गौड़ ब्राह्मण कहलाए और जो दक्षिण में थे, वे द्रविड़। गौड़ ब्राह्मणों को फिर से पाँच प्रभागों में बाँटा गया। जिनके नाम.......सरस्वता, कान्यकुब्ज, आदिगौड़, मैथिली और उत्कल। इसमें मोहयाल सरस्वता प्रभाग में आते हैं।"[206]

"मोहयाल्स के शाब्दिक अर्थ पर लिखा है कि प्राकृत और संस्कृत भाषा में यह शब्द महीपाल है, जो सिर्फ़ छह–सात सदी पुराना है। महीपाल कहलाने वाले लोग दरअसल ब्राह्मणों के विशेष वर्ग से थे, जो पीढ़ियों से इस बात की कोशिश में थे कि वह शाही प्रशासन और फ़ौज के महत्त्वपूर्ण ओहदों पर आसीन रहें और उन परंपरागत कामों से अपने को अलग रखें। उन्हीं दिनों यह भी रिवाज था कि सरकारी नौकरों को तनख्वाह रुपयों में नहीं, ज़मीन की शक्ल में दी जाती थी। यह उसी ख़ानदान की मिल्कियत हो जाती थी, जिसके कारण समाज में एक नए तरह के अत्याचार का आरंभ हुआ। मोहयाल्स और भूमिहार उसी दौर की पैदावार हैं जो उत्तरप्रदेश के पूर्वी

भाग में वजूद आई। मोहयाल्स दरअसल महीपाल या फिर माहीवाल का बिगड़ा रूप है। एक दूसरा शब्द 'मूहिन' भी है, जो सात जातियों में इस कौम को बाँटती है। प्राचीन बोली में 'मोही' या 'माही' का अर्थ भूमि होता और 'अल' जब लगा देते हैं तो उसका अर्थ 'सम्मानित पुरुष' होता है। मोहयाल्स 'जमीन के मालिक' हुए और उनके भगवान् हलराम उर्फ़ बलराम उर्फ़ बलदेव कहलाते थे। यह आर्यन कृषि देवता था, जिसके एक हाथ में हल और दूसरे में तलवार होती।

कीनिया, इंथोपिया और सूडान के तिराहे पर एक स्थान 'मोहाले' नामक है जहाँ सऊदी अरेबिया से लाल समुंदर पार कर आसानी से पहुँचा जा सकता है। वहीं एक स्थान 'बाले' नाम से है जो फ्रेंच में 'बाली' हो जाता है। वहाँ मुंडन का वही रिवाज है जो मोहयाल्स में है। बकरा भी ज़ब्हा होता है। मोहयाल्स अपनी पहचान पर उसी तरह खड़े रहे जैसे बरसों पहले। अपने रस्म व रिवाज का पालन सख़्ती से किया। अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं किया, जिसके कारण उनकी पहचान और मुठ्ठी–भर समुदाय आज भी बचा हुआ है।"[207]

"दत्त शब्द 'दाता' से निकला है, जिसका अर्थ दानी से लगाया जााता है। कुछ का ख़्याल है कि यह शब्द 'आदित्या' से भी निकला है। जिसका अर्थ 'सूर्य' है। मेरी कामना है तुम दोनों बनो, अपने देश और काल के मुताबिक। दत्त नाम का स्रोत वहाँ से भी ढूँढा जा सकता है जब एलेक्ज़ेंडर, जिसको हम 'सिकंदर महान्' कहते हैं, जब वह मैसिडोनिया लौटने लगा तो उसके साथ दो ब्राह्मण थे दत्त और कालानास। राजा पोरस का दूत जो साथ गया था, वह दत्त था। राजा पोरस ख़ुद मोहियाल था, जिसके क़ैदी बनने पर उससे जब सिकंदर महान् ने पूछा था कि तुम्हारे साथ कैसा सुलूक किया जाए तो उसने पूरे विश्वास से कहा था कि जो एक राजा को दूसरे राजा के साथ करना चाहिए। कहने का अर्थ यह है कि परेशानी में भी सर न झुकाना। सिकंदर की मौत के बाद दत्त कुछ साथियों के साथ बेबीलोन से हरिया बंदर जाकर वहाँ बस गए। समय के साथ दत्त बलवान बनते गए और कुछ वर्षों बाद एक–छोटे से इलाक़े के राजा बन बैठे। महत्त्वपूर्ण बनने के साथ उनकी मित्रता मोहम्मद साहब के परिवार से बनी, जिसके चलते कर्बला की लड़ाई में राहिब सिद्ध दत्त ने अपने सात बेटों को कुर्बान किया, जिनके नाम साहस राय, हरजास राय, शेरखान, रायपुन, रामसिंह, धारू और मारू था।

मोहियालों (दत्त) का कहना है हुसैन के शहीद होने पर जो हत्यारा उनका सर लेकर भाग रहा था। उसका पीछा राहिब ने यज़ीद की राजधानी तक किया था। इमाम हुसैन का सर मुबारक सीरिया में दफ़न हुआ और बदन कर्बला में। जब तक यज़ीद का अंत नहीं हुआ तब तक राहिब ने तलवार म्यान में नहीं रखी। यज़ीद हुसैन की शहादत के बाद केवल कुछ दिन वहाँ रुक पाए।"[208]

"**कर्बला की जंग** में सात पुत्रों की मौत और हुसैन की शहादत से टूटे राहिब अधिक दिन वहाँ नहीं रुक पाए और कुछ समय बाद ईरान व तुर्किस्तान के रास्ते से अफ़गानिस्तान आए, जहाँ

उनकी पीढ़ियों ने 120 वर्ष तक राज किया, फिर भारतवर्ष की तरफ़ आए और ननकाना साहब व शेखपुरा में बसे, जहाँ उनका जी खोलकर स्वागत हुआ।"[209]

"दसवीं सदी में आये दत्त इधर–उधर भटककर आज के पाकिस्तान में शेखपुरा में ननकाना साहब के पास क़सबा अब्दाल में बस गए थे और अपने आपको अब्दाली कहते थे। महियाल दीपालपुर में लंबे समय तक सुकून से रहे जब तक मोहम्मद गज़नी का आक्रमण दीपालपुर पर नहीं हुआ। वहाँ से उखड़कर लाहौर पहुँचे, जहाँ उनकी देखभाल दस वर्षों तक रही, फिर वहाँ से भी राजा की मौत के बाद उन्हें उखड़ना पड़ा। फिर एक बड़ी लड़ाई में पड़े जो 'मीनगताई' के नाम से जानी जाती है। जिसमें एक 'मरवाह' लड़की की इज़्ज़त बचानी थी, जिस पर लाहौर के गवर्नर की नज़र थी, जिसने इनकी पनाह ली थी। गवर्नर ने शाह बाबर को उकसाया कि वह 'पनयाण' पर हमला करने में मदद दे। एक बाबर्ची की दग़ा के चलते तीन बार लड़ाई में जीते दत्तों को कपास के खेत में खाना खाते वक्त़ कैदी बना लिया गया। वह बिना हथियार के थे। किले में जो पनाह लिए थे, उनकी हत्या कर दी गई। औरतों को सती होना पड़ा। इस क़त्लेआम में कुल दो बच्चे दत्तों के बच्चे थे, जिनका नाम शाहस्वरूप और डोहलन था। जो अपने ननिहाल संभा गए हुए थे, जो जम्मू के पास था। पनयाण की इस लोमहर्षक घटना के बाद दत्तों की अगली पीढ़ियों ने उस इलाक़े का दाना–पानी कभी नहीं चखा, न ही कभी रात गुज़ारी। यह घटना बृहस्पतिवार को घटी थी, इसलिए जो निष्ठावान् दत्त हैं वे इस दिन को मनहूस मानकर न अपने कपड़े धोते हैं और न ही कोई नया प्रोजेक्ट शुरू करते हैं। मरवाह क़ौम इस बात के लिए हमेशा दत्तों की ऋणी महसूस करती है कि उनकी एक लड़की की इज्जत बचाने के लिए वे इस तरह तबाह हुए।

बाबर का बेटा हुमायूँ जब बुरी तरह बीमार हुआ तो सभी ज्योतिषियों ने एकमत होकर कहा कि यह आफ़त दत्तों की बद्दुआ से आई है, जिनका पनयाण की जंग में ख़ून बहा है। इस 'आह' से मुक्ति का एक ही रास्ता है कि दत्तों के परिवार का कोई भी सदस्य यदि बचा हो तो वही इस रूहानी लानत से मुक्ति दिला सकता है। तब संभा में दोनों लड़कों का पता चला और उन्हें ज़मीन और घोड़ों से भरे अस्तबल देकर फिर से बसाया गया था। इस तरह शाह स्वरूप को तेरह गाँव गुरदासपुर में और डोहलन को सियालकोट में दिए गए। इस तरह से कनरूण और ज़फ़रवाल दत्तों का गढ़ बन गया और समय के गुज़रने के साथ तेज़स्वी दत्तों को सामने लाया गया। कहा जाता है, हुमायूँ भी ठीक हो गए थे।"[210]

"कर्बला की जंग में जिस दत्त ब्राह्मण ने हज़रत हुसैन का साथ देने का इरादा किया था। आज भी ये लोग इसी कारण हुसैनी ब्राह्मण कहलाते हैं।"[211]

नासिरा जी ने इस औपन्यासिक कृति के कथानक के द्वारा पाठकों का एक प्रबुद्ध एवं युगीन चेतना सम्पन्न शिक्षक की भाँति ज्ञानवर्धन किया है। विभिन्न धार्मिक–सामाजिक रीति–रिवाजों व प्रचलित प्रथाओं का सामाजिक सरोकारों सहित वर्णन किया है। ऐसी ही एक परम्परा **इस्लाम धर्म में 'इज़्तिहाद'** की है। नासिरा जी लिखती है कि– "इस्लाम धर्म में बौद्धिक व्याख्या करने और अन्वेषण की एक परम्परा है, जिसको 'इज़्तिहाद' कहते हैं। इसके अन्तर्गत शताब्दियों से न्यायाधीश और धर्माधिकारी कुरान की तालीम के अर्थ पर वाद–विवाद करते हैं और इस पर भी कि आधुनिक विचारों और हालात पर यह कैसे लागू हो। सुन्नी इस्लामी पंथ ने सदियों पहले, इज्तिहाद को छोड़ दिया था, मगर शियों ने इस रीति और परम्परा को बनाए रखा। इज़्तिहाद का इस्लामी क़ानून में बड़ा महत्त्व है, क्योंकि शरिया एक तत्त्वों का संचय है, सूचीबद्ध नियमावली नहीं। इज़्तिहाद से दिए गए फ़ैसले या मत का अर्थ है कि न्याय करने वाला वर्तमान हालात और स्थिति को ग़ौर व फ़िक्र से देखता है। एक तरफ़ तो इज़्तिहाद इस्लामी क़ायदे पर लचीलापन ले आता है और ऐसी दिलचस्प जगह बना डालता है कि आधुनिक जीवन में इस्लामी मूल्य और परम्पराओं का पालन आसान हो। लेकिन इसी लचीलेपन का दूसरा पहलू यह भी है कि इज़्तिहाद और इस्लामी क़ानून, व्यवस्था को परिवर्तनशील बुनियाद पर खड़ा कर देता है, इज्तिहाद ने हमें पत्थर की लकीर जैसी अपरिवर्तनीयता के बोझ से मुक्त रखा है कि हम कुरान की समयानुरूप व्याख्या करते रहें।"[212]

साथ ही लेखिका यह भी लिखती हैं कि– "**रमज़ान का महीना** सब्र, कुर्बानी, इबादत, ज़कात (दान) का माना जाता है और हम सब एक माह ख़ूब इबादत करते हैं, क्योंकि ख़ुदा हमें प्यार करता है और हम उससे, मगर इस दुनिया में एक रिश्ता और भी हमारा है, वह है आदमियत का, दोस्ती का, पहचान का।"[213]

सफेद कोठी के गलियारे में लगी तस्वीरों को देखकर पुरानी स्मृतियों में खोये हुये रोहन के माध्यम से भी विभिन्न धार्मिक रस्मों से परिचय करवाया है। एक तस्वीर में अपने दादा ज्योति दत्त को देखकर रोहन **मोहर्रम** के जुलूस एवं उस अवसर पर प्रस्तुत किये जाने वाले 'नौहों' को याद करता है। नौहा, कर्बला की लड़ाई में हुसैन इब्न अली की त्रासदी की बारे में एक विलाप है। उर्दू और फारसी में क़सीदे का वह नज़्मी रूप जिसमें शहीदों का ख़ास तौर पर कर्बला के शहीदों का ज़िक्र करते हुये लिखा जाता है। रोहन को याद आता है कि "उसके दादा ज्योति दत्त जो उसका हाथ कलाई से पकड़े नौहा पढ़ने वाले दस्ते के साथ धीरे–धीरे चल रहे थे। सभी ने काले कुर्ते पहन रखे थे। यकायक अलम का कई फुट ऊँचा बाँस नीचे झुकाया जाता है, जिसके फरेरा और पटके को छूकर श्रद्धा व्यक्त करने के लिए हाथ बढ़े। दादा जी उसे गोद में उठाकर पटका चूमने को कहते हैं। उसकी नाक में इत्र और फूलों की तेज़ गंध जाती है और उसे छींक

आ जाती है, फिर अलम सीधा कर दिया जाता है, जिसकी ऊँचाई को रोहन भयभीत नज़रों से देखता है। लोगों के सरों पर लाल रंग के छींटे पड़ा सफ़ेद फरेरा लहराता है और अँधेरे ऊँचे आसमान पर चाँदी का पंजा हरे पटके के साथ झिलमिला उठता है।"[214]

अगली तस्वीर में रोहन स्वयं को पाँच–छह साल की उम्र में काज़िम के साथ फ़क़ीर बनकर खड़ा हुआ देखता है। उसे याद आता है कि 'पाँच मोहर्रम' के समय की यह तस्वीर है। "चूँकि हज़रत हुसैन की आल–औलाद कर्बला में तीन दिनों तक भूखे प्यासे रहे थे। उसी की याद में यह रस्म होती है। जिसमें भीख में मिले पैसे ग़रीबों में बाँट दिए जाते हैं।"[215] अगली तस्वीर 'छह मोहर्रम' की थी "जिसमें मोनिस, रूही, रोहन, काज़िम गले में चाँदी की हँसली और पैरों में बेड़ी पहने खड़े थे। बच्चों को क़ैदी का हुलिया बनाकर उस ज़ुल्म को याद किया जाता है, जो हज़रत आबिद पर तोड़े गए थे।"[216]

इसी तरह रोहन को किताबों के बीच एक खत मिला, जो उसके बाबा ने ज़ुल्फ़िकार को लिखा था। उसे पढ़कर उसको आठवाँ मोहर्रम याद आता है, "जब वह और काज़िम हज़रत अब्बास की याद में सक़्क़ा बनते थे। मुशक़ीज़ा में मीठे दूध का शरबत होता, जिसमें केबड़ा और पिस्ते की हवाइयाँ पड़ी होती। वे दोनों मश्क से छोटे–छोटे कटोरों में शरबत डाल महफ़िल में बैठे लोगों को पिलाते और वे सब कह उठते, "शहादते अब्बास के नाम, जो गए थे सकीना के लिए पानी लाने, मगर प्यासे शहीद हुए।"[217]

रोहन की जिज्ञासा के शमन के बहाने लेखिका ने अपने पाठकों को 'मर्सिया' को विस्तृत रूप से समझाया है। **'मर्सिया'** हुसैन इब्न अली और कर्बला के उनके साथियों की शहादत और बहादुरी को बताने के लिए लिखी गई एक लालित्य कविता है। इसका कथ्य मूलतः धार्मिक है। इन घटनाओं पर लिखे गए मर्सिया को शास्त्रीय मर्सिया कहा जाता है। दिलावर मिर्ज़ा रोहन को इसके सम्बन्ध समझाते हुए कहते हैं, "सबसे बड़ी बात मर्सिया का मतलब आप क़तई यह न लगाएँ कि उस ज़माने के शायर इस सिन्फे शायरी को सिर्फ़ मज़हबी फ़र्ज़ समझते थे। मर्सिया पहले 'सोज़' की शक्ल में पढ़े जाते थे। सबसे पहले मिर्ज़ा दबीर के उस्ताद मिर्ज़ा ज़मीर ने मिम्बर पर बैठ तहतुल्लफ़्ज में मर्सिया पढ़ा।.....मर्सिया की शक्ल में इस पूरे क़िस्से को बयान करने में जो क्रिएटिविटी थी, उसने ख़ुद मर्सिये के लिए नए दरवाज़े और रोशनदान खोले। अनीस और दबीर इनसे पहले के बुज़ुर्ग शायरों ने पूरे जज़्बे को अदब में लाफ़नी बना दिया। कर्बला की अपनी तारीख़ है, मगर मर्सिया खुद भी उसके बयान की कारीगरी में अमर हो गया। उस पर ग़ज़ब कि यह घटना घटी रेगिस्तान में और मर्सियागो शायरों ने हिंदुस्तानी ज़ुबानों, मुहावरों, एहसासों, रिश्तों और हिंदुस्तानी रस्म व रिवाजों से उसको सजाया।"[218]

तख़्त के सामने रोते हुए आए जो असीर,
देखकर सय्यदे सज्जाद को बोला वह शरीर।
सरकशी करके न सर बर न हुए मुझसे शब्बीर,
शुक्र करता हूँ कि ख़ालिक़ ने किया तुमको हक़ीर।

यही है मर्सिया, जो मज़हब से नहीं, इनसानी जज़्बे से ताल्लुक़ रखता है।[219]

इसी तरह नासिरा जी ने **फातिहा** (इस्लाम के पवित्र ग्रन्थ कुरान का पहला सूरा या अध्याय है इसमें सात आयतें हैं। इसमें ईश्वर के निर्देश एवं दया हेतु प्रार्थना की गई है), मसनवी (उर्दू में वह कविता जिसमें तुकबंद रहित कई शेर होते हैं, प्रबन्धकाव्य), सोज़, पुरसा, नौहे इत्यादि के बारे में समझाया गया है। हिन्दुस्तान में ताज़िया (ताज़िया बाँस की कमाचियों पर रंग बिरंगे कागज, पन्नी आदि चिपका कर बनाया हुआ मकबरे के आकार का वह मंडप जो मुहर्रम के दिनों में मुसलमान/शिया लोग हजरत इमाम हुसैन की कब्र के प्रतीक रूप में बनाते हैं और जिसके आगे बैठकर मातम करते और मर्सिये पढ़ते हैं। ग्यारहवें दिन जुलूस के साथ ले जाकर इसे दफन किया जाता है।) की शुरुआत के विषय में नासिरा जी लिखती हैं कि "तैमूर बादशाह हर मोहर्रम में इमाम हुसैन की मज़ार पर हाज़िर होकर सोगनशीन होता था। हमला करने के बाद जंग के दरमियान मोहर्रम का चाँद दिख गया और उसके लिए इराक़ पहुँचना दुश्वार हो गया। उसने अपने सलाहकारों से मशविरा किया और उनकी राय से रौज़ा–ए–हुसैन की शबीह तैयार करवाई और उसके आगे मातम करते हुए अपनी अक़ीदतमंदी का इज़हार किया। इस तरह हिंदुस्तान में ताज़ियादारी का चलन शुरू हुआ।"[220]

लखनऊ की संस्कृति में चार चाँद लगाने वाले 'फिरंगी महल' का उल्लेख करते हुए नासिरा जी लिखती हैं– "अकबर के दौर में फ्रांस से एक ताज़िर घोड़े का व्यापारी बन तिजारत करने लखनऊ आया और चौक में कई मकानों को ख़रीदकर उसे हवेली की शक्ल दी। उसकी हवेली फिरंगी महल के नाम से मशहूर हो जाती है और आज तक उसी नाम से जानी जाती है, जबकि उसके अन्दर बना मदरसा पूरे एशिया में उलूमे मशरिक़ान यूनिवर्सिटी समझा जाता रहा है।"[221]

फ़िरदौस जहाँ अपनी बेटी रूही को पत्रात्मक शैली में पुस्तक लिखकर लखनऊ की संस्कृति के ऐतिहासिक पहलुओं पर दृष्टि डालती है। वह लिखती है– "तवायफें, जो अपने जमाने की अहम और जानदार शख़्सियतें थीं। मोहर्रम के दिनों में ये तवायफ़े दूर–क़रीब के इलाकों से डेरा खेमा ला किसी खुले मैदान में डाल लेतीं और अज़ादारी में लग जाती थीं। उन दिनों रईस भी अपनी छोलदारियाँ इसी तरह खुले में डलवा लेते थे। मेले और मोहर्रम में चेहल्लुम के गुज़र जाने के बाद वे अपने गाँव, क़स्बे, शहर की तरफ़ लौट जाते थे।

डेरेदार तवायफ़ें दर हक़ीक़त बाक़ी दूसरी क़िस्मों की तरह जिस्मफ़रोशी का धंधा नहीं करती थीं। फ़न और अदब की ख़ूबियों के साथ इनका किरदार भी मज़बूत और बुलंद होता था। तभी अकसर तवायफ़ों को घर के ज़नानख़ाने में जाने की इजाज़त थी। एक तवायफ़ अपनी पूरी ज़िंदगी में किसी एक या दो की मुलाज़मतें क़ुबूल करती थी। बाद में किसी शरीफ़ से शादी कर नेक ज़िंदगी गुज़ारतीं थी। असल में लखनऊ के उस दौर में फ़न और अदब जिस तरह परवान चढ़ रहे थे, वे उसी की देन थीं। यही वजह थी कि जैसे ही वह दौर रईसों व ताल्लुक़ेदारों का खत्म हुआ, इनका वजूद भी बाकी रस्म व रिवाज, कला–परंपरा और अदब के अंदाज की तरह दम तोड़ गया और किसी और शक्ल में नहीं उभरा, क्योंकि इन औरतों की एक ख़ूबी यह भी रही है कि ये अपने पालने वालों और प्रशंसकों के प्रति बहुत वफ़ादार थीं। इनका उद्देश्य 'सेक्स' तक महदूद न था, बल्कि उस दौर की संस्कृति को एक ख़ास तरह से सँभालने और उसको कलात्मक रूप से विकसित करना था।........डेरे वाली तवायफ़ें हिन्दुस्तानी क्लासिक नृत्य एवं गायन की धरोहर को आगे बढ़ाने वाली थीं।"[222]

इसके विपरीत "ग़दर के दिनों की तबाही और बरबादी के चलते ख़ास व आम के हज़ारहा घर दाने–दाने को मोहताज होकर 'ज़नान ख़नगी' का बाजार पनप उठा था। निचले और ग़रीब घर की औरतें अपने घरों की छत और खिड़की पर बैठने लगी थीं। इनको लखनऊ की ज़बान में **क़साबियाँ** और **टकाबियाँ** कहा जाता था। टकाबियाँ ज़्यादातर चावल गली, अकबरी दरवाज़े के पास छोटे–छोटे घरों में रहतीं जो ज़्यादातर खाने की दुकानों के ऊपर होते। जो इनसे बेहतर और साफ़–सुथरी होतीं, साथ ही गा–बजा भी लेती थीं, वह 'रंडी' कहलाती थीं। यह भी पेशेवर थीं। पुराने चौक बाज़ार की रौनक़ इन्हीं रंडियों के चलते थी। रंडियाँ चौक के कोठों पर रहती थीं।..........इन दोनों तरह की औरतों से अलग 'ज़नान खानगी' का मामला था। दरअसल यह शरीफ़ घरों की औरतें थीं, जो छुपकर पेट की आग बुझाने और खानदान पालने के चलते बेहद मजबूरी की हालत में यह क़दम उठाती थीं। यहाँ भी दलाल होते, मगर इनके यहाँ आने वाले ज़्यादातर अच्छे ख़ानदान के जवान होते, जिन्हें सिर्फ़ जिस्म की ज़रूरत पूरी करनी होती। इनको गाने–बजाने, अदब और आदाब का वह फ़न नहीं आता था जो डेरेदार तवायफ़ो या रंडियों का हिस्सा था। इनके घरों में आने वाला तीन घंटे से ज़्यादा रुक नहीं सकता था। पिछवाड़े के चोर दरवाज़े से आता और जिससे घर के बाकी लोग पर्दा करते थे। यह तबक़ा ग़दर के बाद जिस बदहाली के तहत वजूद में आया था, उसी तरह माली हालात के सँभलने के साथ ख़त्म भी हो गया।"[223]

इस तरह नासिरा जी ने अपने क़िस्सागोई के अद्‌भुत फ़न से इस औपन्यासिक रचना 'पारिजात' को बेजोड़ बना दिया है। इसमें देश–विदेश के परिवेश के वर्णन के द्वारा विभिन्न

सांस्कृतिक तन्तुओं से रूबरू होने का अवसर मिलता है। विशेषकर इलाहाबाद और लखनऊ की संस्कृति तो साकार हो उठी है। काल–प्रभाववश आये बदलावों की जानकारी भी बहुत रोचक शैली में प्राप्त होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास की यात्रा करने के बाद सुधीपाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि **"इलाहाबाद एक हक़ीक़त है और लखनऊ एक ख़्वाब।"**[224]

11. शब्द पखेरू : सांस्कृतिक चेतना

वर्तमान समय में सुख–सुविधाओं की उपलब्धता एवं भौतिकता की चकाचौंध के बीच एक ऐसा वर्ग जो इसके लिए संघर्षरत है परन्तु परिस्थितियों की जकड़न के कारण उसके लिए यह सब दिवा–स्वप्न की भाँति है। नासिरा शर्मा का 'शब्द पखेरू' उपन्यास एक नये तेवर और नयी भाषा–शैली के माध्यम से ऐसे ही वर्ग के अन्तर्द्वन्द्वों से रूबरू कराता है।

इन अन्तर्द्वन्द्वों एवं जद्दोजहद के बीच इस वर्ग और समकालीन समाज में आये **संस्कृतिगत परिवर्तनों** से भी लेखिका ने परिचय कराया है। इस उपन्यास में दर्शाया गया है कि मध्यवर्ग के अन्तर्गत **पीढ़ीगत सोच में बहुत अधिक अन्तर** देखने को मिलता है। विशेषकर युवा पीढ़ी का बाजारू चीजों की प्रति बढ़ता हुआ आकर्षण तथा बाजार की चकाचौंध से चौंधियाना दर्शाया है। यह परिवर्तन हमें अनेक रूपों में उनके कार्य, व्यवहार व बातचीत के माध्यम से देखने को मिलता है। सबसे पहले हम बात करें **खान–पान** की, तो परिवार में कुछ पुराने विचारों व परिस्थितिवश जोड़–तोड़ कर काम चलाने वाले 'सूर्यकान्त वर्मा' जहाँ पुराने खाद्य–पदार्थों को गुणवत्ता की दृष्टि से ज्यादा उपयोगी व व्यवहार–योग्य मानते हैं, वहीं नई पीढ़ी की प्रतीक 'मनीषा व शैलजा' ये दोनों बेटियाँ देखा–देखी कर बिना सोचे–समझे वर्तमान समय के फास्ट फूड, शीतल पेय, पिज्जा, बर्गर इत्यादि को अपना लिविंग स्टेण्डर्ड मानती हैं तथा इसी को आधुनिकपन की निशानी भी मानती हैं। साथ ही लेखिका ने विभिन्न संवादों के माध्यम से इस ओर भी इंगित किया है कि अपने परिवार की खुशी व शान्ति चाहने के लिए पुरानी पीढ़ी के लोग मन मारकर नई पीढ़ी के **आचार–व्यवहार, खान–पान** को अपनाकर जमाने की हवा के साथ चलने के लिए चेष्टारत हैं। अपने बीमार पत्नी 'साधना' की देखभाल तथा नौकरी के मध्य तालमेल बिठाने की कोशिश करता हुआ सूर्यकान्त जब कॉलेज से पढ़कर घर लौटकर आयी अपनी दोनों लड़कियों को पूछता है कि "बेल का शरबत पिया?" तब दोनों ने कोई जवाब न देकर झुँझलाकर पिता को ऐसे घूरा जैसे कह रही हों कि "आप कोक या सेवनअप या कुछ और हमारे लिए क्यों नहीं लाते हैं?"[225] सूर्यकान्त उनके मौन व देखने के अन्दाज से उनके मन्तव्य को समझ जाता है पर कहता कुछ भी नहीं। वह मन ही मन समय की नजाकत को भाँपता है।

फिर दूसरे दिन जब दोनों बेटियाँ पढ़कर लौटती हैं तब सूर्यकान्त उनको सरप्राईज स्वरूप फ्रिज से कोक की बोतल व सलाद का प्याला निकालकर 'नूडल' से भरे हुए हॉटकेस का ढक्कन खोलकर दिखलाता है तब उनके बीच चले संवाद के कुछ अंश यहाँ उद्धरणीय हैं–

"नूडल?" शैलजा ख़ुशी से चीखी। "पापा मुझे यक़ीन नहीं आ रहा है कि आपने खाना ऑर्डर किया है?"

"ऑर्डर नहीं, मैंने स्वयं तैयार किया है। इण्टरनेट से रेसेपी लेकर।" सूर्यकान्त हँसे।

"कैसे मुमकिन है? बाहर के खाने पर रोक लगाने वाला...." मनीषा ने प्लेट आगे बढ़ाते हुए अविश्वास से कहा।

"मुझ पर न सही इण्टरनेट पर तो यक़ीन कर सकती हो न!" सूर्यकान्त ने कोक की बोतल खोल गिलास भरा।

"वाह पापा आप तो आज दूसरे.................आई मीन वाट नाइस चेंज?" शैलजा ने दूसरी बार प्लेट भरते हुए कहा।[226]

दोनों बेटियों को खुशी से चहकते हुए और चाव से खाना खाना खाते हुए सूर्यकान्त सोचते हैं– "हर पीढ़ी के अपने चाव, समय के हर मोड़ पर पहले को किस ख़ामोशी से नकार बैठता है शायद वर्तमान इसी को कहते हैं। हम तो अब जीते जी अतीत हो जाएँगे। अगर हमने वर्तमान को नयी पीढ़ी की नज़रों से नहीं देखा। पिछले दो वर्षों में आज की दोपहर यादगार बनकर रह गयी या फिर एक नये जीवन की शुरुआत जिसे हम बदलाव का नाम भी दे सकते हैं या फिर भविष्य की तरफ़ बढ़ने का संकेत। जीवन समय के फिसलने का नाम है शायद!"[227]

आखिर एक दिन खाने की मेज पर पिज्जा.......कोल्ड ड्रिंक देखकर मनीषा पूछा ही लेती है– "पापा यह चेंज कैसा? पहले तो आप बाहर के खाने पर भाषण देते थे?" तब सूर्यकान्त पिज्जा के टुकड़ों को जबरदस्ती निगलते हुए कहता है– "तुम छोटे थे तुम्हें मैं अपनी तरह पाल रहा था। अब तुम लोग बड़े हो गये हो तो मेरा फर्ज है मैं तुम्हारी ख़ुशी से चलूँ।"[228]

साथ ही इस रचना में यह भी दिखलाया है कि प्रत्येक देश में **भौगोलिक स्थिति और जलवायु की भिन्नता के कारण खान–पान, रहन–सहन, बोल–चाल इत्यादि में भी भिन्नता देखने को मिलती है।** शैलजा जब फ्रैंक जॉन की फ्रेण्ड रिक्वेस्ट को स्वीकार कर उसकी फेसबुक खोलती है तो देखती है कि "खाने की मेज़ के चारों तरफ़ तीन मर्द अधेड़ उम्र के बैठे बुरी तरह अट्टहास करते हुए जैसे उनके निकले हुए पेट पर कोई गुदगुदी कर रहा है। सामने बड़ा सा लावस्टर या केकड़ा प्लेट में रखा हुआ।"[229]

रिश्तों में बढ़ती दूरियाँ और एकाकीपन वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का कड़वा सच है। आज व्यक्ति भौतिक रूप से कितना भी समर्थ और सशक्त भले ही बन गया हो पर मानवीय घनिष्ठता, आपसी प्रेम व सम्बल लुप्त सा हो गया है। व्यक्ति रोजी–रोटी की खातिर या कहें नौकरी की मजबूरीबस शहर और महानगरों में रहकर स्वयं को बेहतर समझने लगा है परन्तु प्रेम का तो वह भूखा ही रहता है। सामाजिक रिश्तों की तो दूर की बात है, एक छत के नीचे रहने वाले एकल परिवार के चन्द सदस्यों में भी धीरे–धीरे पारस्परिक प्रेम व संवेदना की भूमि शुष्क होती जा रही है। इस कारण जब छोटी सी भी मुसीबत आती है तो वह विचलित सा हो जाता है, या कहें कि वह टूट जाता है क्योंकि उसको सहारा एवं प्यार के दो मीठे बोल बोलने वाला कोई नहीं होता है। वह घर और बाहर की जिम्मेदारियों के मध्य तालमेल नहीं बिठा पाता है। जबकि संयुक्त परिवार में यह सब सहज लगता है। सूर्यकान्त भी अपने परिवार को अच्छी जिन्दगी देने की तलाश में नौकरी करने के लिए अपने गाँव से दूर दिल्ली शहर में आकर रहने लगता है परन्तु जब उसकी पत्नी बीमारी के कारण बिस्तर पकड़ लेती है, तब वह नौकरी व परिवार की जिम्मेदारियों को निभाते–निभाते थक जाता है। वह छुट्टी पर छुट्टी लेता जाता है और जब स्थानान्तरण दूसरे शहर में हो जाता है तो वह नौकरी से इस्तीफा देने के लिए अर्जी दे देता है। धीरे–धीरे जिन्दगी ठहर सी जाती है। वह नौकरों व नाते रिश्तेदारों पर आश्रित हो जाता है। उस समय तो उसको लग रहा था कि– "डॉक्टर के बाद अगर कोई ईश्वर के अवतार है तो वह रिश्तेदार हैं। उन्हीं के चलते लड़कियाँ कॉलेज जा पा रही हैं और वह दूसरे शहर में किसी तरह नौकरी को घसीट सके। फिर अटेण्डेण्ट रखीं, नौकर सप्लाई करने वाली एजेन्सी से दो–तीन लड़कियाँ भी रखकर देखीं और महसूस हुआ कि लम्बी बीमारी के साथी बहुत कम होते हैं। एक दौर यह भी गुजरा कि उन्हें मर्सी किलिंग उचित लगने लगा था। हताशा, निराशा, थकन, कई मोर्चों की चिन्ताएँ उन्हें भटका देती थीं। लगता था आत्महत्या कर लूँ।"[230]

नौकरी, भविष्य, घर, गाड़ी इत्यादि के चक्कर में इनसान, इनसान को मानो भूल सा जाता है। "सूर्यकान्त के मन में भी साधना की बीमारी को लेकर एक झुँझलाहट सी बढ़ती जा रही थी। आखिर वह कमाए या घर को संभालें। दूसरों के हवाले किए घर को कौन दूसरा सँभालेगा? समय बदल रहा है। संवेदनाएँ शुष्क हो रही हैं और रिश्ते अपने तेवर बदल रहे हैं। अतीत और वर्तमान में कोई समानता नहीं रह गयी थी।"[231]

शैलजा अपने फेसबुक फ्रेण्ड क्रिस एलेन के प्रेम जाल में फँसकर जो सोचती है वह **प्रेम की शुष्कता** पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है। वह सोचती है– "इस दुनिया में सारी सुख–सुविधाओं के बावजूद इनसान कितना दुःखी और तन्हा है। अपने परिवेश के अतिरिक्त सुदूर देशों में वह मानवीय सम्बन्ध बनाने के लिए कितना उत्सुक है। जिससे महसूस होता है कि साइंस

के आविष्कारों से भरी इस दुनिया में, भौतिकता एवं मशीनी चमक–दमक के बावजूद अभी इनसान प्रेम का भूखा है। उसकी संवेदना मरी नहीं हैं।"[232]

खान–पान के साथ ही आज लोगों का **पहनावा** भी बदल गया है। नित नयी डिजाईन व प्रिंट बाजार में आ रही है। लोगों की जेब में जैसे–जैसे पैसा आता गया, वैसे–वैसे लोगों की डिमाण्ड के अनुरूप बाजार भी बदलने लगा है। नये आफ़िसर के समझाने और फटकारने के बाद जब सूर्यकान्त नौकरी ज्वाइन करने का मन बना लेता है। जाने कब से उसने कपड़े नहीं खरीदे थे। जब वह कपड़े खरीदने बाजार जाता है तब महसूस करता है कि– "बाज़ार में बाढ़ सी आयी है। लोगों का टेस्ट इस बीच बदलकर रह गया था। सादगी की जगह मर्दों में रंगीनी का चाव बढ़ा था। सूफ़ियाना शर्ट शोख रंगों में देख उन्हें धक्का लगा।"[233]

इस उपन्यास के जरिये लेखिका ने एक महत्त्वपूर्ण इशारा **वर्तमान शिक्षण–पद्धति** के सम्बन्ध में किया है। वे कहती हैं कि प्राचीन गुरु–शिष्य परम्परा का स्थान धीरे–धीरे इण्टरनेट ले रहा है। नई युवा पीढ़ी का रुझान इण्टरनेट के प्रति इस कदर बढ़ा है कि वह अपना अधिकांश समय नेट पर सर्फिंग करने में निकाल देता है। हो भी क्यों नहीं? क्योंकि प्रत्येक जानकारी वहाँ मौजूद है। धीरे–धीरे कक्षा शिक्षण से आज की पीढ़ी हटती जा रही है। शैलजा के चरित्र द्वारा लेखिका ने अपनी बात पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है– "शैलजा हरदम लैपटाप की स्क्रीन पर आँखें गाड़े रहती। एक दिन मनीषा ने जलकर उसका नाम 'इण्टरनेट बेबी' रख दिया था मगर उस पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हर फ्रेण्ड रिक्वेस्ट को कनफर्म कर देना जैसे उसके लिए ज़रूरी था। किताब या नोटबुक खुली है सामने मैटर ढूँढने के बहाने चैट चल रही है। शो ऐसा करती है जैसे बेचारी पढ़ाई को लेकर हलकान हो रही है।............इण्टरनेट के विस्तृत आकाश पर देखने–पढ़ने और खोजने के लिए बहुत कुछ था। उसने गूगल को ग्रैण्डपा का नाम दे रखा था।"[234]

पर इस बढ़ती लत के अनेक नकारात्मक परिणाम भी देखने को मिल रहे हैं। जिन्हें **साइबर क्राइम या अपराध** की संज्ञा दी जाती है। अधकचरी जानकारी या जाने–अनजाने या परिपक्वता के अभाव में युवकों को झाँसे में लेकर तरह–तरह के क्राइम का हिस्सा बना दिया जाता है। शैलजा पहले फ्रैंक जॉन के नाम से तथा दूसरी बार क्रिस एलेन के साथों साइबर क्राइम में फँसती–फँसती बचती है। क्योंकि तकनीक के विस्तार के साथ–साथ ठगी के तरीके भी बदल चुके हैं। शैलजा बातचीत में मनीषा से कहती है कि "यह पूरी दुनिया तकनीकी दृष्टि से जिस तेज़ी से बदल रही है वहाँ संवेदना की जगह पैसे का महत्त्व बढ़ रहा है और हम कुछ ज़्यादा ही भावुक हैं। व्यावहारिक चाहकर भी नहीं हो पाते हैं।"[235]

आज **बेटियाँ कंधे से कंधा मिलाकर परिवार, समाज व देश की प्रगति में भागीदारी निभा रही हैं।** जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे अपनी सफलता के परचम लहरा रही हैं। आज़ की बेटियाँ पूर्ण रूप से आत्मविश्वास से लबरेज नजर आ रही हैं। वे अपने माता–पिता को बेटे नहीं होने के अहसास को भी नहीं होने देना चाहती हैं। मनीषा आई.ए.एस. परीक्षा पास कर और शैलजा विदेश में पढ़ाई कर, दोनों अपनी–अपनी तरह से घर की माली हालत को दूर करने की सोचती हैं। शैलजा की इसी चाह के अतिरेक के कारण वह क्रिस एलेन के चंगुल में फँस जाती है। पर शैलजा अपनी मित्र सादिया के चचा की नेक सलाह व फटकार से होश में आकर बच जाती है।

लेखिका यहाँ शैलजा के माध्यम से यह भी ध्यान दिलाती है कि प्रत्येक देश के **सांस्कृतिक मूल्य** अलग–अलग होते हैं। वे लिखती हैं कि "जब शैलजा ने अमेरिका जाकर कोर्स करने की ठान ली है तो उसे यह भी पता है कि वहाँ की संस्कृति, परिवेश, भाषा, खान–पान सब अलग होगा। जीवन–मूल्य और नैतिकता का पैमाना भी।"[236]

इस प्रकार नासिरा जी ने अपनी इस कृति के माध्यम से युगीन संस्कृति के विविध पहलुओं से परिचय करवाया है। साथ ही कृति के शीर्षक 'शब्द पखेरू' के द्वारा आज की युवा पीढ़ी को संदेश दिया है कि वह किसी के शाब्दिक जाल में नहीं फँसकर कड़ी मेहनत और ईमानदारी के साथ आगे बढ़े और अपने व अपने परिवार के सपनों को साकार करे।

12. दूसरी जन्नत : सांस्कृतिक चेतना

'दूसरी जन्नत' नासिरा शर्मा द्वारा विरचित एक अधुनातन लघु उपन्यास है। इस उपन्यास में नासिरा जी ने मुस्लिम समाज में समयानुकूल आ रहे परिवर्तनों की हलचल को पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। एक तरफ धर्म के नियम हैं और दूसरी ओर वैज्ञानिक सहूलतें। दोनों अपनी–अपनी तरह से इनसानी ज़िन्दगी को सुखमय बनाने का दावा करते हैं। इन्हीं दो राहों पर खड़ा इंसान इसी पशोपेश में पड़ा रहता है कि वह कौन–सी राह अपनाये। भौतिक या आध्यात्मिक? मानसिक संताप उसे रूहानी तौर पर मथता रहता है। उसके मन में नाना–नाना तरह के सवाल उठते रहते हैं। लेखिका ने मुस्लिम परिवेशगत इन्हीं बुनियादों सवालों की ओर ध्यान खींचने का प्रयास किया है। इन्हीं परिवेशगत चर्चाओं और बहसों के बीच सांस्कृतिक बिन्दुओं की तरफ दृष्टिपात करना सहज परिलक्षित होता है।

उपन्यास के प्रारम्भ में ही लेखिका ने पाठकों का ध्यान मुस्लिम समाज में प्रचलित **पहनावे व आभूषणों** के प्रति खींचा है। डॉ. ज़फ़र अब्बास और शहला बानो के छोटे पोते शहाब के लिए लड़की देखने के लिए शहर में मौजूद सभी नाते–रिश्तेदार व दोस्तों के परिवार घर पर उपस्थित होते हैं। सभी अपनी देखी–भाली लड़कियों की तस्वीरें और उनके खानदानी शज़रे के साथ वहाँ

मौजूद होते हैं। तब वहाँ उपस्थित दृश्य को चित्रित करती हुई नासिरा जी लिखती हैं कि– "सारे मर्द–औरत अपनी शानदार पोशाकों के साथ एक समा बाँधे हुए थे। औरतें भर–भर कलाइयाँ काँच की रंग–बिरंगी चूड़ियाँ खनका रही थीं। गर्दन, कान के ज़ेवर और नाक में पड़ी हीरे की लौंग रह–रह कर झिलमिला उठती। ऊपर से उनकी कजरारी आँखें और गुलाब की पंखुड़ी जैसे होंठ।"[237]

क़मरुन की माँ जो अमेरिका में रहती थी, वह भारत आकर यहाँ के हिसाब से कपड़े पहनती है, के माध्यम से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के परिधान माहौल व परिवेश के हिसाब से अलग–अलग होते हैं। "क़मरुन की माँ दिल्ली आ चुकी थीं। यहाँ के माहौल के हिसाब से उन्होंने कपड़े पहने वरना वहाँ तो लंबी स्कर्ट और पूरी आस्तीनों वाली शर्ट या फिर पैन्ट और सूती कोट पहनती थीं। अंग्रेजी भी अब वह अमेरिकन लहजे वाली बोलने लगी थीं। यदि उस हुलिया में सलीम उन्हें देखता तो उसके दिमाग़ से अन्ना बुआ की पोती वाला ठप्पा कमरुन पर लगा न देख पाता।"[238]

अब्बास खानदान के माध्यम से यह भी पता चलता है कि परम्परागत परिवारों में आज भी **बड़ों का आदर और सम्मान** किया जाता है तथा उनके निर्णय को सर्वोपरि माना जाता है क्योंकि उनकी अनुभवी आँखें परोक्ष बातों को भी इशारे मात्र से देख लेती है। यहाँ लेखिका वर्तमान समाज को बड़ों का आदर व सम्मान करने की प्रेरणा देती है। अब्बास परिवार में दादी शहला बानो के निर्णय को सर्वोपरि मानकर सभी डॉक्टरी की पढ़ाई कर रही रुख़साना के सम्बन्ध में सहमति प्रदान करते हैं।[239]

संयुक्त परिवारों में बुजुर्गों के साये में नई पीढ़ी को सहज में ही **संस्कार** मिल जाते हैं। एक–दूसरे की भावनाओं को समझ जाते हैं या यूँ कहें कि वह जैसा देखती है, वैसा ही वह व्यवहार करने लगती है। अब्बास परिवार को देखकर मेजर असलम और उनकी पत्नी सबीहा विचार करते हैं कि उनके द्वारा अपने बेटे 'सलीम' की परवरिश में कहाँ कमी रह गई जो वह मनचाहा व्यवहार करने लगा है। तब सबीहा अपने परिवार के विगत की याद करती हुई कहती है कि– "अगर ज़फर अब्बास और मुख़्तार अब्बास की तरह उनके सास ससुर भी क़ाबिल होते। हम साथ रहते तो बच्चों की लगाम कसती मगर उन्हें निपट देहाती और जाहिल समझ कर असलम ने माँ–बाप को कभी साथ नहीं रखा। मेरे मायके वालों से भी छिटके रहे। हमने तो उन्हें ख़ुद सिखाया बुजुर्गों से लापरवाही बरतना, उनकी बातों को मूर्खता कहकर रद्द करना, आज हम जैसों की औलादें हमें पिछड़ा और नकारा समझती है जबकि हम पढ़े लिखे हैं उनको आधुनिकता से जीना हमने सिखाया मगर समय की प्रचण्डता तो अपना रुख़ तीव्र गति से बदल चुकी है, ज़माना हमें छोड़कर आगे बढ़ गया। नई पीढ़ी कहीं ठहरती नहीं है। नए आकर्षणों का जादुई सम्मोहन

उन्हें छोड़ता पकड़ता रहता है। अब न घर बचा न बाहर, सिर्फ़ कुछ समय की पनाहगाहें, फिर तोड़ फोड़, फिर ठहराव, फिर यात्रा, हर बार नई यात्रा.........।"[240]

प्रत्येक समाज का **खान–पान** अलग–अलग हो सकता है परन्तु एक ही समाज के लोगों में भी इस सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न अभिरूचि हो सकती है। केवल खान–पान के आधार पर ही हम किसी की जाति तय नहीं कर सकते हैं। जब असग़र फूफा और उनकी पत्नी गोश्त से बने कवाब खाने से मना करते हैं तो उनके लिए कच्चे केले के कबाब बनकर आते हैं, तब मुख़्तार अब्बास उन्हें मजाक ही मजाक में 'सायकी' तथा 'अजीब मुसलमान' की संज्ञा देते हैं। इस पर असग़र फूफा के जवाब को सुनकर मुख़्तार अब्बास झेंप जाते हैं। असग़र फूफा कहते हैं कि "प्रोफ़ेसर साहब! किस रिसर्च से आपको पता चला कि मुसलमान होने का मतलब सिर्फ़ गोश्त खाने वाला होता है?"[241] खाने के बाद पान खाना भी खासा प्रचलन में था। साथ ही होटल से खाना मंगवाना, ऑर्डर करना या बाहर खाने का प्रचलन भी नई पीढ़ी में बढ़ता जा रहा है।

"जवान अंग्रेजी संगीत पर वाईन, व्हिस्की और रम का मज़ा ले रहे थे और बाहर धीमे सुरों में सूफी संगीत बज रहा था। अधेड़ और बूढ़े सोफों पर बैठ चुके थे। जवान औरतें स्टडी की तरफ जाती और वाईन का छोटा पेग ले सीधे किचन की ओर चली जाती थीं। उनके चेहरों पर सुरुर भरी हल्की मुस्कान होती।.....दादा–दादी को तो इस बात का शक होना तो दूर पक्का यक़ीन था कि ऊपर वाले की मेहरबानी से उनके पोता–पोती और नवासे इस बला से दूर हैं, मगर उन्हें क्या पता कि स्टडीरूम में क्या चल रहा है और पार्टियों में उनके घर की लड़कियाँ और बहुएँ बैकलेस ब्लाउज़ पहन नए से नए फैशन के हेयर स्टाइल के साथ हाईहील खट–खट कर पहुँचती हैं। नई पीढ़ी ने बिना किसी विद्रोह और बदतमीज़ी के ज़िन्दगी को दो हिस्सों में बाँटकर जीने में ही समझदारी समझी।"[242]

पर लेखिका कहती हैं कि ऐसे परिवार व ऐसी युवा पीढ़ी बहुत कम थी। क्योंकि "उनकी पीढ़ी के अक्सर लोग इस समझौते को अपनी शान के ख़िलाफ समझते थे। माँ–बाप से अलग रहना, **आधुनिक तौर–तरीक़ों** से अपनी मर्ज़ी से साँस लेना अपना अधिकार समझते और नाना–नानी, दादा–दादी को माँ और बाप की ज़िम्मेदारी समझते।"[243]

लेखिका आगे लिखती हैं कि आज की नई पीढ़ी को समझाना बहुत ही कठिन है लेकिन वह अपने निजी अनुभव से सीखती है और सही–गलत का निर्णय करती है। आज की **नई पीढ़ी के स्वभाव** पर दृष्टि डालते हुए वे कहती है– "नई पीढ़ी को जितना प्यार अपने मोबाइल, लैपटाप, म्यूजिक सिस्टम और नए फैशन के कपड़ों से होता है उतना माँ–बाप से नहीं होता है और न ही उनके रिश्तेदारों से। उन्हें मां–बाप तब तक अच्छे लगते हैं जब तक वह उनकी इच्छाओं की पूर्ति करते रहते हैं। सलीम को अगर कोई यह सीख देता तो वह बुरा मान बैठता कि उन्हें आधुनिक

युग का ज्ञान नहीं नई पीढ़ी के शत्रु हैं वह पता नहीं 'ठहरा' रहना क्यों पसंद करते हैं! मगर यह ज्ञान तो उसने खुद हासिल किया था। ऐसा बदलाव जो उसे अपने परिवेश में नहीं मिला था।"[244]

स्वस्थ परिवार व स्वस्थ समाज की परिकल्पना करते हुए नासिरा जी बताती हैं कि जब भी परिवार में कोई नया सदस्य एक परिवेश से आ रहा हो, तो उसके लिए जगह बनानी पड़ती है। वह अपने को पूरी तरह प्रस्तुत कर सके एवं नये परिवेश में स्वयं को ढ़ाल सके, इसके लिए पूरा मौका देना पड़ता है। शहाब जब रोते हुए अपनी अम्मा से कहता है कि मम्मा! हर कोई मुझे आने वाली दुल्हन के हाथों सौंपकर मुझसे दूर क्यों हो रहा है.........?[245] तब उसकी माँ नूरजहाँ कहती है कि– "ऐसा नहीं है"...............यह दुनिया का दस्तूर है। **हर नए रिश्ते के लिए जगह बनानी पड़ती है।** यह कुर्बानी देना हर पुराने रिश्ते के लिए ज़रूरी होता है। अगर रिश्तों की हदें तय न की जाती तो नए रिश्तों का खपना मोहाल हो जाता। मैं क्या समझाऊँ तुम्हें? देख तो रहे हो पूरी दुनिया में जो हुड़दंग मचा हुआ है वह किसलिए? जहाँ रिश्तों में कमी आती है वहीं दूसरों के लिए दिल तंग हो जाता है और छीना झपटी और मतलबपरस्ती शुरू हो आती है। अब इंसान आपस में मुहब्बत बाँट नहीं रहा एक दूसरे को लूट रहा है। मैं तो जब आने वाले वक़्त के बारे में सोचती हूँ तो लरज़ जाती हूँ क्या हमारे पोते–पोतियों की दुनिया?[246]

रिश्तों में आ रही गिरावट की ओर संकेत करने के साथ ही लेखिका कहती हैं कि तरक्की के साथ–साथ हमें **आज के दौर में रिश्तों को सँभाले रखना एक चुनौती है।** हमें इसके लिए समय देने और सार–सँभाल की बहुत जरूरत है। वर्तमान में भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो वर्तमान दौर की भागदौड़ और कैरियर को प्राथमिकता देने की परम्परा के बीच दोनों को बखूबी संभालकर चल रहे हैं और समय की ज़रूरत भी है। इसी बात को समझाती हुई नूरजहाँ अपने बेटे शहाब से कहती हैं कि– "हम जैसे बहुत से लोग ख़ुदा की बनाई इस दुनिया में भरे पड़े हैं, जो अपने पुराने इन्सानी रिश्तों को संभाल कर रखना भी तरक़्क़ी के साथ पसंद करते हैं। वरना यह दुनिया महाभारत का मैदान बन जाती और कई जगहों पर बनी हुई है। यह खेल़ कभी न कभी ख़त्म होना ही है। इन्सानों के लिए कुछ जगहें सुकून की होनी ही चाहिए। कर्बला की जंग का भी तो वही मुद्दा था अच्छाई और ईमानदारी के बीच जंग का। ऐसी जंगे चल रही है तब से जब से इंसान ने अन्धाधुन्ध विकास की दौड़ में भागना शुरू कर दिया है। भूल जाता है कि हर बन्दे को देर सबेर उसका मिलना है मगर वह जुनूनी सब्र करना नहीं जानता और छीनने, लूटने, कुचलने और ज़ुल्म ढाहने का रास्ता पकड़ लेता है।"[247]

भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में यद्यपि स्थानगत दूरियाँ कम हुई हैं तथा लोग एक–दूसरे की भाषा व संस्कृति को समझकर पास आ रहे हैं परन्तु वर्तमान शिक्षा के इस असीमित प्रसार के कारण संस्कृतिगत खतरे भी देखने को मिल रहे हैं। **नई पीढ़ी अंग्रेजी भाषा में**

शिक्षण अथवा कान्वेंट शिक्षा के कारण अपनी मातृभाषा व उसके संस्कारों से दूर होती जा रही है। जो परिवेशगत संस्कृति के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है। डॉ. ज़फ़र अब्बास इसी समस्या के कारण अन्दर ही अन्दर व्यथित रहते हैं। इसी सम्बन्ध में नासिरा जी लिखती हैं– "इंसान रिश्तों का घेरा कितना फैल गया था। सब कुछ जैसे मुठ्ठी में आ गया था। किसी भी जगह पहुँचना कितना सरल लगने लगा था। इस विस्तार के बीच अपनी पहचान बचाकर रखना मुश्किल था जैसा देश वैसा भेष बनने का संघर्ष इतना ख़ालिस रहने कहाँ देता है। ज़फ़र अब्बास इंग्लैण्ड और अमेरिका में मेमों के शौहर बनने वाले इंडियन्स को देख जी ही जी में हँसते थे मगर अपने ही पोता पोती और नवासे व बहनों के बच्चे जब लड़खड़ाती जबान में अपनी मादुरी भाषा बोलते तो वह सन्नाटे में आ जाते थे। रोमन में लिखी दुआएँ याद करते और माँ बाप के डांटने से बड़ी मुश्किलों से ईद–बकरीद नमाज़ पढ़ते थे। सच पूछों तो खुदा का डर दिलों से, शिक्षा ने निकाल फेंका था।"[248]

"मगर जो मज़ा मादरी भाषा बोलकर मिलता है वह आप जनाब वाली ज़बान बोलकर नहीं मिलता है, इसमें बड़ा अपनापन है एक तरह की बेतकल्लुफ़ी है।"[249]

एक विशेष संदर्भ के द्वारा बहुत ही रुचिकर शैली में लेखिका ने **ऑनलाईन खरीदारी** की संस्कृति के बढ़ते स्वरूप की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। हर कम्पनी का हर उत्पाद आज प्रत्येक व्यक्ति की मुठ्ठी में है। बहुराष्ट्रीय कम्पनी इसका भरपूर फायदा उठा रही हैं लेकिन घरेलू बाजारों पर इसका नकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है। नई पीढ़ी के अन्दर तो मानो ऑनलाईन शॉपिंग का नशा सा छा रहा है। हर उत्पाद हर व्यक्ति की नजर में होता है। अतः पहनावे में कुछ भी नयापन नहीं रह गया है। सब कुछ देखा–देखा–सा लगता है। ऑनलाईन खरीदारी के प्रति बढ़ती अभिरुचि का बयान करती हुई राना कहती है कि– "पिछले संडे हम फरीद भाई के कुलीग की बर्थडे पर गए थे। कुछ देर बाद हमको महसूस हुआ कि लोगों के चेहरे तो हमारे लिए अजनबी हैं मगर उनके लिबास बहुत जाने पहचाने, देखे–देखे से लग रहे हैं। कुछ देर बाद याद आया अंदलीप कि पूरी गैदरिंग ऑनलाइन शॉपिंग का इश्तेहार लग रही थी।"[250]

पुश्तैनी जानकारी व संस्कारों के अभाव में नई पीढ़ी में छिछलापन आता जा रहा है। इसके कारण क्या सही है? क्या गलत है? वह निर्णय नहीं कर पाती है। अपने मजहब, अपनी जाति या अपने संस्कारों की स्थूल जानकारी ही इसके पास है। इस कारण यह पीढ़ी जल्दी उकसावे में आकर भटकाव का शिकार भी हो सकती है। इस कारण समाज में परस्पर दूरियाँ बढ़ती जाती हैं। जब शहला बानो 'सावन' के बोल गाती हैं–

"झूला पड़ा क़दम की डारी
झूला झूलवें कृष्ण मुरारी

भीग रही है राधा प्यारी

बौर लगे हैं डारी डारी

झूला पड़ा क़दम की डारी

कोयलिया कूके बारी बारी

झूला झूलावें कृष्ण मुरारी।"[251]

इस गीत के प्रथम दो बंधों को सुनकर ही अचानक से राना सीने पर हाथ रखकर कह उठती है– "हाय अल्लाह!"[252]

इसको सुनकर सभी के सुर रुक जाते हैं और हैरत से राना की तरफ देखते हैं। उस समय तो कोई कुछ नहीं बोलता है पर रात को कॉफ़ी के समय शहनाज़ फरीद से कहती है कि "आज के माहौल में जो हमारे बीच ख़ाने बट चुके हैं उस की वजह से आज शाम राना को हैरत हुई सावन सुनकर।"[253] वह राना की ओर मुखातिब होकर कहती है– "चूँकि हम उर्दू पढ़ना नहीं जानते न हिन्दी ठीक से लिख पढ़ पाते हैं इसलिए हमारी मालूमात केवल अंग्रेज़ी भाषा तक महमूद है। एक दो शब्द बोल लेना अलग बात है मगर परतदार कल्चर को जो हमारा पास्ट था या है उसके बारे में हमें कुछ पता नहीं।"[254]

इसके बाद फरीद राना को **सर्वधर्म समभाव** समझाते हुए कहता है कि "वह धुँधली ब्लैक एण्ड व्हाइट तस्वीर जो दीवार पर लगी है वह मेरे दादाजान के दादाजान की है, राज हुसैन अब्बास, पहले ज़मीदार और राज तलुक़ेदार भी कहलाते थे। सुना उनके अब्बा जान बेहद पढ़े लिखे थे। हुसैन अब्बास साहब ने उर्दू भाषा में भगवत गीता और महाभारत के कुछ हिस्सों का अनुवाद भी किया था।........हाँ तो बताना यह है कि आर्ट का कोई धर्म विशेष नहीं होता। वह सिर्फ़ कला होती है, इन्सानी जज्बे की तरजुमानी होती है। दादी को संगीत के उस्ताद ने राग, रागिनी, सुर, ताल बताया। उसमें कृष्ण राधा आए या ऋतु सब एक हैं। कितने हिन्दू हैं जो मोहर्रम के नोहे लिखते हैं, रोज़े रखते हैं। यह इन्सानी विरासत है। हम मिसालें देते हुए कैकेयी कांड, कोप भवन, रोज़ की बोलचाल में इस्तेमाल करते हैं। लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह भी अपने को कृष्ण का अवतार मानते थे। डॉस के रसिया, वह ज़माना ज़हनी और धर्म–दीन को लेकर इतना बटा हुआ नहीं था। मुग़लों ने कितने संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया और कराया यही हाल अरबों का था।...........मगर जब ज़माने के करवट बदली तो यह सब चीज़ें भुला दी गईं। हम भी शायद आखरी ही पीढ़ी हों जो पुराने ख़्यालों के साथ साँस ले रही हैं।"[255]

धीरे–धीरे पीढ़ी दर पीढ़ी प्राचीन भारतीय संस्कृति, **रीति–रिवाज** लुप्त होते जा रहे हैं। पीढ़ीगत सोच में अन्तर परिवेश, आर्थिक आपाधापी, तितर–बितर परिवार व्यवस्था इत्यादि के कारण प्राचीन रीति–रिवाज व संस्कार औपचारिकता भर रह गये हैं। शादियों में लोकगीतों का

स्थान डीज़े पर बजने वाली कर्णफोड़ू ध्वनियों एवं भद्दे फिल्मी गीतों ने ले लिया है। आज की नई पीढ़ी परम्परागत रीति–रिवाजों से पूर्णतः दूर है। न ही उसे आता है क्योंकि परिवारजन उसे शुरू से ही कैरियर के प्रति सावचेत करते रहते हैं। पीढ़ीगत संस्कार जो पहले पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते थे, अब वह शृंखला टूटती जा रही है। इसी के प्रति लेखिका ने चेताया है। इस उपन्यास में सगाई की रस्म, मेंहदी की रस्म, सुहाग गीत, माँझे की रस्म, निकाह की रस्म, प्रीतिभोज, महिला संगीत, आरसी मुसफ़ की रस्म, रुखसती, सेहरा बाँधना, सूरा पढ़ना, दूल्हा–दुल्हन का एक–दूसरे को आईने में देखना, घर की चौखट पर उनका स्वागत, मुँह दिखाई से पहले बहनों का नेग, चौथी की रस्म इत्यादि समाज में प्रचलित विभिन्न रस्मों का परिचय शहाब व रुख़साना की शादी के प्रसंग से कराया है।[256]

इस उपन्यास में जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष जो समाज के समक्ष रखा है, वह है **निसन्तानता** से छुटकारा पाने की जद्दोजहद और धर्म के नाम पर उसमें आने वाली अड़चन। आज हर निसन्तान दम्पती हर उपाय कर संतान प्राप्ति की प्यास को बुझाना चाहता है। डॉ. रुखसाना की सलाह पर उसके रिश्तेदार पायलेट गुलज़ार नक़बी और उनकी बीवी फरहाना कृत्रिम गर्भाधान की आधुनिक तकनीक आईवीएफ प्रणाली से एक बच्चे 'शाद' को पाकर खुश होते हैं। मजहब की बंदिशों के बावजूद वे तीसरे व्यक्ति के शुक्राणु लेते हैं परन्तु जब गुलज़ार एक अन्य महिला से इस समझौते के तहत फरहाना से छुपकर शादी कर लेता है कि यदि सन्तान नहीं होती है तो वह तलाक ले लेगा। परन्तु उससे उन्हें सन्तान पैदा हो जाती हैं। जब फरहाना को इसका पता चलता है तो वह फुँफकार उठती है और वकील के माध्यम से तलाक की अर्जी और गुज़ारे के लिए मोटी रकम की मांग करती है। पति व घरवालों के समझाने पर भी वह नहीं मानती। तब गुलज़ार अपनी आत्मव्यथा व्यक्त करते हुए कहता है कि– "मर्द होने के बावजूद दूसरे अनजान मर्द का शुक्राणु लेने पर मजबूर हुआ मगर मेरी तरह उसने दिल बड़ा नहीं किया। मेरे अहसास और अरमान को नहीं समझा कि आखिर मैं भी तो **अपने वजूद का हिस्सा औलाद के रूप में देखना** चाहता था। अपने स्पर्म से खानदान की वंशबेल बढ़ता देखना चाहता था। मेरी यह ललक बेजा तो न थी।"[257] परन्तु इस्लामी नियमों के अनुसार फरहाना को कोई गुजारा भत्ता दिये तलाक होता है और समाज में बदनामी के साथ–साथ धर्म के नाम पर विरोध भी झेलना पड़ता है। क्योंकि "मुसलमान हर नया क़दम उठाने से पहले अपने मज़हब में बने उसूलों के पैमाने पर उसको कसता है। उसका अच्छा–बुरा असर देखता है, फिर आम लोगों के लिए हद व हिदायतें तय करता है।"[258]

साथ ही बताया है कि **प्रत्येक स्थान के मूल्य और नैतिकता में भिन्नता देखने को मिलती है।** भारत के मनोविज्ञानी अप्पा दुराई के विचार को रखती हुई एक महिला लेखिका, 'निसन्तानता

की समस्या व मुस्लिम समाज' विषय पर डॉ. रुख़साना द्वारा रखी गई सामाजिक बहस में कहती हैं कि– "सभी देश एक–दूसरे से अलग हैं जिनकी स्थानीय मान्यताएँ, मर्यादाएँ, नैतिकताएँ अलग समाज को रचती हैं जहाँ कोई एक तकनीकी नज़रिया हम सब पर लागू नहीं कर सकते, न ही उन पर थोप सकते हैं। जो सबसे अहम बात उन्होंने उठाई वह थी ग्लोबलाइज़ेशन के इस दौर में लोकेलिटी यानी जगह महत्त्वपूर्ण है। जिसमें हर स्थान के जीवनमूल्य अलग और नैतिकता अलग है जिसमें व्यथा और उसकी छटपटाहट बेहद तीव्र है ठीक मौत और ज़िंदगी की तरह।"[259]

"अगर औरत अपनी ममता की प्यास बुझाने के लिए स्पर्म बैंक की मदद लेती है तो उसकी क़ीमत उसे अपनी ब्याहता ज़िंदगी की कुर्बानी से अदा करनी पड़ेगी? यह तो इन्साफ नहीं हुआ औरत के साथ।"[260] ......"मर्द को दूसरी शादी की इज़ाज़त है, मुताह (एक तरह की अस्थायी शादी) की इज़ाज़त है मगर औरत के पास सिवाए शौहर से औलाद पाने के अलावा कोई और रास्ता हमारे आलिम क्यों नहीं तलाश कर रहे हैं।"[261]

वहीं डॉ. रुखसाना के पिता मेजर असलम बहुत महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं कि– "हम यहाँ जमा इसलिए नहीं हुए थे कि हम किसी के दिल को दुखाएँ बल्कि हमारी कोशिश थी कि आधुनिक युग में हम नए आविष्कारों के साथ ज़िंदगी, धर्म और ज़रूरत का तालमेल बिठाएँ।....... यह बहुत संवेदनशील समस्या है। इसके प्रति हमें खुले दिमाग़ से विचार करना होगा जो आपस में राय–मशविरा करके ही हल हो सकती है।"[262]

जब फरहाना डॉ. रुख़साना का शुक्रिया करने उसकी क्लीनिक पर आती है और 'शाद' के असली बाप तक पहुँचने के लिए लेबनान जाने के फैसले के बारे में बताती है जिसमें गुलज़ार भी उसका साथ देता है। उसके जाने के बाद रुख़साना विचार करती है कि "हव्वा की बेटी लगातार उसकी नज़रों के सामने अपना क़द निकाल रही थी। वही हव्वा जो जन्नत से निकाली गयी तो इन्सानी आबादी वजूद में आई और आज वही हव्वा की बेटी अपनी जन्नत बचाने के लिए कमर कस चुकी है।"[263] इस सन्दर्भ के द्वारा लेखिका ने **सृष्टि प्रक्रिया की इस्लामिक मान्यता** को बताया है। साथ ही यह भी बताया है कि इंसान धर्म के आगे किस प्रकार विवश हो जाता है कि फरहाना को उसके माँ–बाप तक सहायता नहीं करते हैं। लेखिका लिखती है कि "फरहाना के माँ–बाप भी अपनी खाल बचा रहे थे। उसके जाने से उन्होंने राहत की साँस ली थी। दूसरे भाई–बहनों की ज़िंदगी पर उसके गुनाहों की काली छाया पड़ रही थी। इंसान समाज से कितना डरता है। **धर्म उसे किस हद तक भीरू बना देता** है कि माँ की ममता का उबलता स्रोत अचानक सूख जाता है।"[264]

इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से नासिरा जी ने मुस्लिम समाज में प्रचलित विभिन्न रीति–रिवाजों, खान–पान, पहनावा, धार्मिक मान्यताओं, विज्ञान और धर्म का अन्तःसंघर्ष, निःसन्तान दम्पती की ललक इत्यादि विषयों पर पाठकों को अपनी बहस में शामिल किया है तथा लोगों को इस ओर सोचने के लिए कहा है। ताकि समाज में फरहाना जैसी और महिलाओं को दूसरी जन्नत की तलाश में अपने वजूद को न खोना पड़े।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ सूची

1. रामसजन पाण्डेय, संस्कृति और सौन्दर्य, पृ.–01
2. बाबूराम त्रिपाठी एवं डॉ. श्री भगवान शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, पृ.–1
3. संक्षिप्त हिन्दी शब्द, सागर, सं. रामचन्द्र वर्मा, पृ.–844
4. डॉ. बाबूराम त्रिपाठी एवं डॉ. श्री भगवान शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, पृ.–1
5. डॉ. बाबूराम त्रिपाठी एवं डॉ. श्री भगवान शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, पृ.–2
6. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, पृ.–1
7. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, पृ.–2
8. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, पृ.–2
9. डॉ. बाबूराम त्रिपाठी एवं डॉ. श्री भगवान शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, पृ.–2
10. डॉ. बाबूराम त्रिपाठी एवं डॉ. श्री भगवान शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, पृ.–2
11. डॉ. बाबूराम त्रिपाठी एवं डॉ. श्री भगवान शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, पृ.–2
12. महादेवी वर्मा, संस्कृति के स्वर, पृ.–74
13. राहुल सांकृत्यायन, बौद्ध संस्कृति, पृ.–3
14. डॉ. राधाकृष्णन्, फ्रीडम एण्ड कल्चर, पृ.–33
15. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ.–58
16. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, पृ.–1
17. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ.–15
18. डॉ. रत्नचन्द्र शर्मा, मुगलकालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, पृ.–8
19. डॉ. मनमोहन सहगल, गुरुग्रन्थ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ.–75
20. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति का विकास, पृ.–34
21. डॉ. रविदत्त 'कौशिश', जीवनचरितात्मक उपन्यासों में महानायक की परिकल्पना, पृ.–44
22. डॉ. रविदत्त 'कौशिश', जीवनचरितात्मक उपन्यासों में महानायक की परिकल्पना, पृ.–45
23. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–8 (दो शब्द से)
24. सं. ललित शुक्ल, नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि, पृ.–391
25. शाल्मली, पृ.–11
26. शाल्मली, पृ.–11
27. शाल्मली, पृ.–11
28. शाल्मली, पृ.–23
29. शाल्मली, पृ.–161–162

30. शाल्मली, पृ.–134

31. शाल्मली, पृ.–39

32. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.–12

33. ठीकरे की मंगनी, पृ.–114

34. ठीकरे की मंगनी, पृ.–17

35. ठीकरे की मंगनी, पृ.–20

36. ठीकरे की मंगनी, पृ.–52

37. ठीकरे की मंगनी, पृ.–12

38. ठीकरे की मंगनी, पृ.–165

39. ठीकरे की मंगनी, पृ.–164

40. ठीकरे की मंगनी, पृ.–50–51

41. ठीकरे की मंगनी, पृ.–108

42. ठीकरे की मंगनी, पृ.–168

43. ठीकरे की मंगनी, पृ.–167

44. ठीकरे की मंगनी, पृ.–167

45. ठीकरे की मंगनी, पृ.–186

46. नासिरा शर्मा, ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–46

47. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–48

48. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–57

49. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–53

50. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–50

51. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–13

52. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–82

53. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–104

54. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–67

55. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–26

56. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–192

57. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–173

58. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–164

59. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–12

60. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–12

61. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–227

62. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–109

63. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–84

64. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–234

65. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–49

66. नासिरा शर्मा, शामी कागज़, पृ.–186

67. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–142

68. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–19

69. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–19

70. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–19

71. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–53

72. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–53

73. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–46

74. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–47–48

75. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–47

76. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–47

77. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–143

78. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–282

79. नासिरा शर्मा, अक्षयवट उपन्यास, पृ.–22

80. अक्षयवट, पृ.–16

81. अक्षयवट, पृ.–23–24

82. अक्षयवट, पृ.–18

83. अक्षयवट, पृ.–23

84. अक्षयवट, पृ.–08

85. अक्षयवट, पृ.–13

86. अक्षयवट, पृ.–344

87. अक्षयवट, पृ.–122

88. अक्षयवट, पृ.–367

89. अक्षयवट, पृ.–429

90. अक्षयवट, पृ.–430

91. अक्षयवट, पृ.–281

92. अक्षयवट, पृ.—487—488

93. अक्षयवट, पृ.—28—29

94. अक्षयवट, पृ.—171

95. अक्षयवट, पृ.—380

96. अक्षयवट, पृ.—436

97. अक्षयवट, पृ.—38

98. अक्षयवट, पृ.—83

99. अक्षयवट, पृ.—37

100. अक्षयवट, पृ.—193

101. अक्षयवट, पृ.—20

102. नासिरा शर्मा, कुइयाँजान उपन्यास, पृ.—408

103. कुइयाँजान, पृ.—309

104. कुइयाँजान, पृ.—309

105. कुइयाँजान, पृ.—114

106. कुइयाँजान, पृ.—117—118

107. कुइयाँजान, पृ.—88

108. कुइयाँजान, पृ.—319

109. कुइयाँजान, पृ.—113

110. कुइयाँजान, पृ.—187

111. कुइयाँजान, पृ.—308

112. कुइयाँजान, पृ.—310

113. कुइयाँजान, पृ.—305—306

114. कुइयाँजान, पृ.—08

115. कुइयाँजान, पृ.—08

116. कुइयाँजान, पृ.—152

117. कुइयाँजान, पृ.—13

118. सं. एम. फीरोज़ अहमद, नासिरा शर्मा—एक मूल्यांकन, पृ.—160

119. नासिरा शर्मा, ज़ीरो रोड उपन्यास, पृ.—260

120. ज़ीरो रोड, पृ.—283

121. संबोध त्रैमासिक पत्रिका, सं. कमर मेवाड़ी, पृ.—32

122. ज़ीरो रोड, पृ.—35

123. ज़ीरो रोड, पृ.–280

124. ज़ीरो रोड, पृ.–324

125. ज़ीरो रोड, पृ.–250

126. ज़ीरो रोड, पृ.–267

127. ज़ीरो रोड, पृ.–58

128. ज़ीरो रोड, पृ.–75

129. नासिरा शर्मा, कागज़ की नाव उपन्यास, पृ.–18

130. कागज़ की नाव, पृ.–18

131. कागज़ की नाव, पृ.–46

132. कागज़ की नाव, पृ.–49

133. कागज़ की नाव, पृ.–96

134. कागज़ की नाव, पृ.–235

135. नासिरा शर्मा, अजनबी जज़ीरा, पृ.–12

136. अजनबी जज़ीरा, पृ.–13–14

137. अजनबी जज़ीरा, पृ.–23–24

138. अजनबी जज़ीरा, पृ.–25

139. अजनबी जज़ीरा, पृ.–43

140. अजनबी जज़ीरा, पृ.–27

141. अजनबी जज़ीरा, पृ.–78

142. अजनबी जज़ीरा, पृ.–120

143. अजनबी जज़ीरा, पृ.–126

144. अजनबी जज़ीरा, पृ.–29

145. अजनबी जज़ीरा, पृ.–29

146. अजनबी जज़ीरा, पृ.–36–37

147. अजनबी जज़ीरा, पृ.–45

148. अजनबी जज़ीरा, पृ.–91

149. अजनबी जज़ीरा, पृ.–115

150. अजनबी जज़ीरा, पृ.–92

151. अजनबी जज़ीरा, पृ.–52

152. अजनबी जज़ीरा, पृ.–46

153. अजनबी जज़ीरा, पृ.–52

154. अजनबी जज़ीरा, पृ.—57—58

155. अजनबी जज़ीरा, पृ.—58

156. अजनबी जज़ीरा, पृ.—109

157. अजनबी जज़ीरा, पृ.—133

158. अजनबी जज़ीरा, पृ.—143

159. अजनबी जज़ीरा, पृ.—46 व 52

160. नासिरा शर्मा, पारिजात, उपन्यास, पृ.—8

161. पारिजात, पृ.—9

162. पारिजात, पृ.—15

163. पारिजात, पृ.—17

164. पारिजात, पृ.—19

165. पारिजात, पृ.—21

166. पारिजात, पृ.—22

167. पारिजात, पृ.—16

168. पारिजात, पृ.—27—28

169. पारिजात, पृ.—106—107

170. पारिजात, पृ.—167

171. पारिजात, पृ.—11

172. पारिजात, पृ.—29

173. पारिजात, पृ.—29

174. पारिजात, पृ.—36

175. पारिजात, पृ.—478

176. पारिजात, पृ.—479

177. पारिजात, पृ.—30

178. पारिजात, पृ.—135

179. पारिजात, पृ.—136

180. पारिजात, पृ.—136

181. पारिजात, पृ.—342

182. पारिजात, पृ.—342

183. पारिजात, पृ.—342

184. पारिजात, पृ.—343

185. पारिजात, पृ.—450

186. पारिजात, पृ.—450

187. पारिजात, पृ.—42

188. पारिजात, पृ.—139—140

189. पारिजात, पृ.—140

190. पारिजात, पृ.—140—141

191. पारिजात, पृ.—142

192. पारिजात, पृ.—143

193. पारिजात, पृ.—143

194. पारिजात, पृ.—143—144

195. पारिजात, पृ.—458

196. पारिजात, पृ.—471

197. पारिजात, पृ.—96

198. पारिजात, पृ.—105

199. पारिजात, पृ.—14

200. पारिजात, पृ.—14

201. पारिजात, पृ.—14

202. पारिजात, पृ.—127

203. पारिजात, पृ.—189

204. पारिजात, पृ.—189

205. पारिजात, पृ.—229

206. पारिजात, पृ.—231

207. पारिजात, पृ.—232

208. पारिजात, पृ.—381—382

209. पारिजात, पृ.—368

210. पारिजात, पृ.—377—78

211. पारिजात, पृ.—189

212. पारिजात, पृ.—187—188

213. पारिजात, पृ.—459

214. पारिजात, पृ.—68—69

215. पारिजात, पृ.—89

216. पारिजात, पृ.–89

217. पारिजात, पृ.–90

218. पारिजात, पृ.–96–97

219. पारिजात, पृ.–106–107

220. पारिजात, पृ.–263–264

221. पारिजात, पृ.–190

222. पारिजात, पृ.–334–335

223. पारिजात, पृ.–310

224. पारिजात, पृ.–107

225. शब्द पखेरू, पृ.–6

226. शब्द पखेरू, पृ.–17

227. शब्द पखेरू, पृ.–17

228. शब्द पखेरू, पृ.–63

229. शब्द पखेरू, पृ.–26–27

230. शब्द पखेरू, पृ.–18–19

231. शब्द पखेरू, पृ.–73

232. शब्द पखेरू, पृ.–95

233. शब्द पखेरू, पृ.–30

234. शब्द पखेरू, पृ.–40

235. शब्द पखेरू, पृ.–92

236. शब्द पखेरू, पृ.–93

237. नासिरा शर्मा, दूसरी जन्नत, पृ.–5

238. दूसरी जन्नत, पृ.–63

239. दूसरी जन्नत, पृ.–6–8

240. दूसरी जन्नत, पृ.–10

241. दूसरी जन्नत, पृ.–62

242. दूसरी जन्नत, पृ.–11

243. दूसरी जन्नत, पृ.–11–12

244. दूसरी जन्नत, पृ.–46

245. दूसरी जन्नत, पृ.–48

246. दूसरी जन्नत, पृ.–48–49

247. दूसरी जन्नत, पृ.—49

248. दूसरी जन्नत, पृ.—25

249. दूसरी जन्नत, पृ.—10—11

250. दूसरी जन्नत, पृ.—15

251. दूसरी जन्नत, पृ.—27

252. दूसरी जन्नत, पृ.—33

253. दूसरी जन्नत, पृ.—33

254. दूसरी जन्नत, पृ.—33

255. दूसरी जन्नत, पृ.—33—34

256. दूसरी जन्नत, पृ.—50—56

257. दूसरी जन्नत, पृ.—73

258. दूसरी जन्नत, पृ.—84

259. दूसरी जन्नत, पृ.—84

260. दूसरी जन्नत, पृ.—88

261. दूसरी जन्नत, पृ.—89

262. दूसरी जन्नत, पृ.—90

263. दूसरी जन्नत, पृ.—93

264. दूसरी जन्नत, पृ.—94

पंचम अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में अंतनिर्हित समस्याएँ

"प्रकृति ने जो हमें दिए हैं उन स्रोतों को हम सहेजें न कि नई तकनीक का ओछा प्रयोग करने की ललक में कान को गाल पर लगा दें और आँख को सर के पीछे और कहें कि यह हमारी मेडिकल उपलब्धियाँ हैं। बात इंसान की मुक्ति की है, उसे पूज्य बनाने की नहीं। इसलिए इस धरती की देख–रेख हम उचित तरीके से करें, न कि उसे अपनी इच्छाओं की प्रयोगशाला बना उसका सत्यानाश कर डालें।"

— कुइयाँजान / 403

पंचम अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में अंतर्निहित समस्याएँ

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के इस कथनानुसार किसी भी रचनाकार की रचना का उद्देश्य अपने पाठकों के मनोरंजन तक सीमित नहीं होना चाहिए अपितु उसमें समाज को सही दिशा में ले जाने की शक्ति भी होनी चाहिए। कोई सकारात्मक उपदेश भी उसमें अन्तर्निहित होना चाहिए। इसीलिए कहा गया है कि साहित्य समाज सापेक्ष सृजन प्रक्रिया है। वह समाज की गत्यात्मक व रचनात्मक प्रवृत्ति का सन्धान है। युगीन परिवेश और सामाजिक जीवन के अनुभवों से जुड़कर ही रचनाकार मानवीय संदर्भों में जीवन्त लेखन कर पाता है। साहित्य मनुष्य की चेतना और सामाजिक चिंतन की मिली–जुली सृष्टि है। जीवन–मूल्यों के प्रति वैचारिक प्रतिबद्धता ही सृजन का मूल आधार है। एक सशक्त एवं जागरूक रचनाकार अपने सामाजिक अनुभवों को अपनी मूल्य चेतना में आकार देता है। इस प्रकार वे अनुभव ही अन्तःरचना और मूल्य सापेक्ष होकर सामाजिक समझदारी मे ंसाझीदार बनते हैं। साहित्य समाज से कुछ प्राप्त करता है और तो उसे कुछ देता भी है। इस प्रकार साहित्य सामाजिक बदलाव की रचना प्रक्रिया में विकसित होकर विश्वसनीय बनता है। वह समाज की विषमताओं के मूल पर प्रहार कर उसमें चेतना लाता है। वह आमजन की भावनाओं और उसके संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर अवांछनीय असत्य का प्रतिकार करता है। आज जबकि इन्सान–इन्सान के बीच फासले बढ़ गये हैं। मानवीय अर्थवत्ता समाप्त होती जा रही है, ऐसे में साहित्य की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में नासिरा शर्मा ऐसी शख्सियत हैं जिनका अनूठा लेखन भीड़ से हठकर अपनी एक विशिष्ट एवं खास पहचान रखता है। नासिरा जी का लेखन समकालीन समाज का जीवन्त दस्तावेज है। उन्होंने अपनी लेखनी बड़ी ही बेबाकी, निर्भीकता और साफगोई के साथ उन सरोकारों पर चलाई है, जो सीधे–सीधे युगीन समाज से जुड़े हुए हैं। नासिरा जी ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में समकालीन समस्याओं एवं सामाजिक ताने–बाने को इस प्रकार पिरोया है कि वे किसी व्यक्ति व पात्र विशेष की न लगकर सम्पूर्ण जन की लगती है। पाठक यह महसूस करता है कि यह घटना या समस्या कहीं न कहीं सीधे तौर पर उससे जुड़ी हुई है। उन्होंने भारत जैसे विविधता पूर्ण देश के हर रंग में झलकती जिंदगियों को तो दर्शाया है

ही अपितु विश्व के विविध देशों की सामाजिक और राजनैतिक जिंदगियों को भी रूपायित किया है। लेखन का अर्थ बताते हुए वे कहती है कि "लेखन का अर्थ केवल आपबीती कहना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है, उसे पचाना पड़ता है। उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि वह आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"[1]

इसी सोच को प्रतिफलित करते हुए नासिरा जी ने अपने साहित्य में न केवल समकालीन समस्याओं को उठाया है अपितु उनके समाधान भी सुझाने का प्रयास किया है। सामान्यतः हर वर्ग, हर प्रांत, हर देश की समस्याएं अलग–अलग होती हैं, अतः उनके समाधान भी अलग–अलग होते हैं। नासिरा शर्मा के साहित्य में अन्तर्निहित समस्याओं का चित्रण बिन्दुवार निम्न प्रकार है–

1. स्त्री–पुरुष असमानता

समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों पर खूब लेखन कार्य हुआ है। स्त्री–विमर्श के नाम पर अनेक महिला–लेखिकाओं ने स्त्रीमुक्ति व पुरुष वर्चस्ववाद को तोड़ने की बात चीख–चीख कर कही है लेकिन इन सबसे इतर नासिरा शर्मा ने न स्त्री को कम माना है, और न ही पुरुष को उच्च। उन्होंने दोनों के मध्य समरसता और समानता की बात की है। नासिरा जी महिला लेखिका होने के बावजूद पुरुष विरोधी नहीं है, केवल अत्याचार और अन्याय की विरोधी है। यही सोच व यही चिंतन उनके लेखन में हमें देखने को मिलता है। वे हमेशा मानवीयता और इंसानियत की पक्षधर रही है। इसी सोच को लेखिका ने अपने पात्रों के माध्यम से साकार किया है। 'शाल्मली' उपन्यास की शाल्मली, 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख़, कुइयाँजान की समीना, 'अजनबी जज़ीरा' की समीरा, 'दूसरी जन्नत' की रुख़साना, 'सात नदियाँ एक समन्दर' (बहिश्ते ज़हरा) की सातों स्त्री पात्र, इसी प्रकार जहीर, कमाल, रोहन आदि पुरुष पात्र भी स्त्री–पुरुष समानता की बात करते हैं। यह चिंतन सर्वाधिक साकार हुआ है शाल्मली के माध्यम से। शाल्मली एक उच्च शिक्षित एवं ऊँचे औहदे पर बैठी महिला है वहीं उसका पति नरेश एक क्लर्क है और अपनी पुरुषवादी संकीर्ण सोच से घिरकर इधर–उधर मुँह मारता है। दूसरी महिलाओं से सम्बन्ध रखता है। शाल्मली के दफ्तर में कार्यरत साथी महिला सरोज जब शाल्मली से तलाक लेकर सुखी व स्वतन्त्र जीवन जीने की बात करती है। तब शाल्मली सरोज से कहती है कि "तुम्हारे यहाँ जो अन्तिम उपाय है, वह समस्या का पहला समाधान क्यों बन जाता है? वह अधिकार तो मेरे पास है, मगर सम्बन्ध तोड़ना इतना आसान नहीं होता है, जितना तुम लोग मशीनी रूप से उसे सरल समझती हो। समाज बदलना तो दूर नारी स्वयं अन्दर से अपने को नहीं बदल पाती। अपने को पूरी तरह समझ नहीं पाती कि उससे पहले महिला समर्थक गण उसे

मुक्ति का प्रमाण–पत्र आप दिलवा देती हैं, उसे लेकर वह कहाँ जाएगी। आपके इसी रूढ़िवादी अन्धे समाज में भटकेगी। पहले से अधिक प्रताड़ित अधिक शोषित।"[2]

इस पर सरोज पुनः कहती है कि "दूसरे शब्दों में मैं यह अर्थ लगाऊँ कि तुम पुरुष समाज की दासी बनकर रहना और जीना चाहती हो?"[3]

तब शाल्मली उसे पुनः समझाती है– "तुम्हारी सोच तो केवल एक मुद्दे पर आकर जड़ हो गई है। मेरा यह अर्थ हरगिज नहीं है। मैं पहले भी कई बार कह चुकी हूँ कि मेरे मन–मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है, फिर एक बार में बता दूँ कि मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है।"[4]

"तुम जैसी सुशिक्षित औरतें ही आज औरतों के स्वतन्त्रता संघर्ष की शत्रु बन उनकी प्रगति में रोड़े अटका रही है। एक दिन पछताओगी, शाल्मली!"[5] सरोह ने कहा।

तब शाल्मली सरोज से पूछती है– "क्या तुम अविवाहित रहकर पुरुषों के समाज, उनके नाम और आकार से पूर्ण रूप से मुक्त हो गई हो?"[6]........... "तुम्हारे सामने समस्या केवल पति से निपटने और उससे मुक्त होने की है, मगर मेरी नजर में सही नारी मुक्ति और स्वतन्त्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुम से टकराएगा। चाहे वह सब्जी वाला हो या तुम्हारा बॉस, अखबार वाला हो या तुम्हारा पति। संक्षेप में होगा वह पुरुष ही। पति से मुक्ति पाकर क्या इनसे भी मुक्ति पा लोगी? या सबको नकारती चली जाओगी?"[7]

जब नरेश बार–बार एक ही बात को दोहराता रहता है कि तुम औरत हो, औरत की तरह रहो..........बातों को गहराई से नहीं समझती...........। तब शाल्मली मर्माहत होकर नरेश को समझाते हुए गम्भीरता से कहती है कि– "एक तो तुम से विनम्र निवेदन है कि बार–बार औरत कहकर मुझ पर टीका–टिप्पणी मत किया करो। दूसरे, औरत की अक्ल पर शक करना छोड़ दो। एक स्तर के बाद हम औरत–मर्द नहीं रह जाते हैं, बल्कि हमारा काम हमारी पहचान होती है, हमारी अक्ल हमारी कसौटी होती है।"[8]

उक्त विवरण एवं संवादों से नासिरा जी ने समझाया है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में बढ़ती दूरियों एवं वैमनस्यता का एक बड़ा कारण कारण स्त्री–पुरुष असमानता है। अतः यदि परिवार व समाज में समरसता का भाव पैदा करना है तो एक–दूसरे को सम्मान देना सीखना होगा। जिस प्रकार कुइयाँजान के कमाल और समीना, दूसरी ज़न्नत के शहाब और रुख़साना

एक–दूसरे की इज़्जत करते हैं तथा एक–दूसरे के काम का सम्मान कर उसे आगे बढ़ाने में सहयोग करते हैं तो उनका पारिवारिक जीवन हर तरह से हमें खुशहाल नजर आता है। शहाब परिवार सहित जब पहली बार रुख़साना को देखने उसके घर जाते हैं तब आपसी वार्तालाप में रुख़साना अपने मन की बात कहती है कि "मेरी कज़न बहुत ख़ूबसूरत थी। तब मैरेज की थी मगर बेबी न होने की वजह से ज़िंदगी दूभर हो गई है उसकी। मैंने तभी तय कर लिया था कि बेऔलाद औरतों के लिए सारी ज़िंदगी लगा दूँगी। ज़माना बदल रहा है। साइंस ने हैरतअंगेज तरक़्की की है और आप जानते हैं डॉक्टर की ज़िंदगी दरअसल अपनी नहीं रहती है।"[9] तब शहाब उसे कहता है कि "तो क्या हुआ मैं और मेरा ख़ानदान हमेशा आपका बना रहेगा, बस और क्या कहूँ आपसे।"[10] इस वादे के मुताबिक रुख़साना अपनी क्लीनिक खोलकर प्रेक्टिस करती है और खुशहाल जीवन जीती है क्योंकि पूरा ख़ानदान उसके निर्णय में साथ रहता है।

इसी तरह कुइयाँजान में कमाल जरूरतमंदों की मदद का काम करता है पर आर्थिक तंगी के कारण वह खुलकर अपना काम नहीं कर पाता है। जब वह पत्नी समीना से अस्पताल खोलने के अपने विचार के बारे में बताता है। तब समीना उससे कहती है कि "प्लान तो तुम्हारा बहुत बढ़िया है। सच पूछो तो कई बार मेरे दिल में भी यह बात आई कि हम टुकड़े–टुकड़े में लोगों की मदद करने की जगह क्यों न कलेक्टिव वे में मदद का कोई ऐसा प्लान बनाएं जो अपने–आप चलता रहे।"[11] इस प्रकार एक दूसरे के जज्बातों का ख्याल रखते हुए सफल दाम्पत्य जीवन की प्रेरणा नासिरा जी ने दी है।

2. संतानहीनता

'संतानहीनता' समकालीन समाज की एक महती समस्या है जिसके कारण हजारों घर उजड़ जाते हैं। पारिवारिक तनाव बना रहता है। हिन्दु एवं मुस्लिम दोनों ही दिनों–दिन बढ़ती जा रही इस समस्या से पीड़ित हैं। धार्मिक परम्परानुसार संतान प्राप्ति में ही जीवन की सार्थकता मानी जाती है। अगर किसी कारण से संतान उत्पन्न नहीं होती है तो उसका सारा दोष बिना सोचे–समझे पत्नी के सिर मढ़ दिया जाता है। यहीं से शुरु होता है– उसके प्रति उपेक्षा, अत्याचार, दुःखों, यातनाओं, पीड़ा इत्यादि का सिलसिला। अन्त में इसकी परिणति दाम्पत्य सम्बन्ध टूटने के रूप में सामने आती है। दूसरी ज़न्नत उपन्यास की नायिका रुख़साना 'शहला क्लीनिक' नाम से अपनी प्रेक्टिस करती है और निःसन्तान दत्पतियों का इलाज करने के साथ–साथ उन्हें उचित सुझाव व सलाह भी देती है जिससे उनके दाम्पत्य जीवन पर आँच नहीं आये। जब पायलेट गुलज़ार नक़वी और उनकी बीवी फ़रहाना इसी समस्या से पीड़ित होते हैं और अन्त में मामला तलाक तक पहुँच जाता है। तब रुख़साना अपने परिवारजनों को साथ लेकर समाज के लोगों की एक बैठक आयोजित करवाती है। बैठक में चर्चा के दौरान वह लोगों को समझाती हुई

कहती है कि "बाँझपन हमारे समाज में एक बहुत बड़ी लानत है। इस लानत से करोड़ों की तादाद में दुनिया की औरतें दुःखी हैं। औरत–मर्द का मिलाजुला दुःख है तो भी औरत ज़्यादा सहती है क्योंकि कोख ख़ुदा ने उसे बख़्शी है। किसी मजहब की तरह मेडिकल साइंटिस्टों का भी इस बात पर ज़ोर रहा है कि इंसान अपनी ज़िंदगी बेहतर से बेहतर तरीक़े से गुजारे। मजहब बताता है कि इन्सानी ज़िंदगी शुरु कैसे हो और ख़त्म कैसे हो, उसने इसके कुछ नियम बनाए हैं ताकि आम आदमी उन उसूलों पर चल सके। मजहब और साइंस दोनों का नज़रिया इंसान की भलाई और जीवनमूल्यों, यानीकि ज़िंदगी सम्मान के साथ अपने स्थानीय परिवेश–माहौल के साथ, उसके मुताबिक़ गुज़ार सकें। इन्सानी दुःखों में एक दुःख बाँझपन का भी है जो मर्द–औरत को गहरे मायूसी दे जाता है। मजहब उसके लिए दोनों को सब्र की हिदायत देता है। मगर साइंस ने बाँझपन से आज़ाद होने का रास्ता खोल दिया है।"[12]

जब रुख़साना द्वारा आईवीएफ पद्धति से संतान सुख पाने और उसके मध्य आने वाली मजहबी दिक्कतों से रूबरू करवाया तो कुछ महिलाएँ इसे अनैतिक मानते हुए जाने लगती हैं। तब रुख़साना के अब्बा मेजर असलम उन्हें पुनः समझाते हैं कि "आपकी मर्जी आप जो मुनासिब समझें, कहें और यकीन करें, मगर बहन हम यहाँ जमा इसलिए नहीं हुए थे कि हम किसी के दिल को दुःखाएँ बल्कि हमारी कोशिश थी कि आधुनिक युग में हम नए आविष्कारों के साथ ज़िन्दगी, धर्म और ज़रूरत का तालमेल बिठाएँ। आप तशरीफ रखें और ठंडे दिल व दिमाग से सोचें......यह बहुत संवेदनशील समस्या है। इसके प्रति हमें खुले दिमाग़ से विचार करना होगा, जो आपस में राय–मशविरा करके ही हल हो सकती है।"[13]

3. नारी शिक्षा

मानव जीवन में उन्नति व ज्ञान का प्रमुख साधन है– 'शिक्षा'। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन में सुधार लाकर स्वयं को आगे बढ़ा पाता है परन्तु आज के दौर में भी 'नारी–शिक्षा' का लक्ष्य हासिल नहीं हुआ है। बालिका शिक्षा में अनेक सामाजिक समस्याएं अड़चन बनी हुई है। इसके लिए रूढ़िगत सोच काफी हद तक जिम्मेदार है। नासिरा शर्मा ने अपने लेखन के माध्यम से बालिका शिक्षा में आने वाली समस्याओं तथा उसके लाभों से रूबरू करवाया है। लड़की के बड़े होने के साथ ही हमारा समाज उस पर तरह–तरह की पाबंदियाँ लगाना शुरु कर देता है। उसे बेड़ियों में जकड़ने का प्रयास करता है। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में जिस महरुख़ के जन्म लेने पर सम्पूर्ण ज़ैदी परिवार फूला नहीं समाता है। उसके बड़ी होने पर उन्हीं परिवारजनों द्वारा उस पर तरह–तरह की पाबंदियाँ लगाई जाने लगी। उसका लड़कों के साथ बाहर खेलना सबको खलने लगा। बड़े चचा ने एक दिन दबी जबान से कहा कि "महरुख का बाहर मैदान में

निकलना अब बन्द करिए, अम्मा, भाईयों के साथ उसको यूं गुल्ली–डंडा खेलते देखना अजीब लगता है।"[14]

ताया अब्बा भी एक दिन खफ़ा होकर बोलते हैं कि "प्यार–दुलार में लड़की को जी भरकर बिगाड़ लिया है। कम से कम अदब–आदाब तो कुछ सिखा दें।"[15]

इसी तरह जब महरुख़ का दिल्ली जाकर पढ़ाई करने की बात आती है तो घर में तूफ़ान उठ खड़ा होता है। महरुख़ के अब्बा अपनी पत्नी से कहते हैं कि "मैं तो चाहता हूँ कि रफ़त मियां, अब खुद अपनी जिम्मेदारी संभाल लें मगर वह बजाए शादी करने के लड़की को आगे पढ़ाने का मसला उठा रहे हैं।.....महरुख़ की पढ़ाई तो शादी के बाद भी जारी रखी जा सकती है। महरुख़ बी.ए. कर चुकी है। ज्यादा पढ़कर अब उसे करना भी क्या है?"[16]........ "लाख वह ग़ैर नहीं मगर कुंवारी लड़की को दूसरे शहर यूं पढ़ने भेजना.......खानदान में कोई इस बात को हज़म नहीं कर पाएगा। एतराज की बौछार से हम बच नहीं पाएंगे।"[17] तब नासिरा जी नारी शिक्षा की प्रेरणा देती हुई महरुख़ की अम्मी के मुँह से ही कहलवाती हैं कि "मैं औरत हूँ खूब अच्छी तरह से जानती हूँ कि इस नए दौर में औरत के लिए मज़बूती क्या होनी चाहिए। ज़माने के कहने से क्या हमने लड़कियाँ स्कूल से निकलवा ली थी? अपने ही दोस्त के घर नजर डालो, नसरीन के मियां ने छोड़कर दूसरी शादी कर ली। बीवी चुपचाप मायके आन बैठी। उसी जगह सालेहा को देखो, पढ़ी–लिखी है, मियां को नकेल घसीटकर रखती है। कहने को दोनों चचाज़ाद बहनें हैं, एक खानदान, एक माहौल और एक तरह की परवरिश, मगर तालीम से समझ तो बढ़ी, अपना हक़ तो पहचाना–ग़लत तेज़ी की तरफ़दार तो मैं भी नहीं हूँ, मगर लड़की अपना अच्छा–बुरा समझे यह अक़्ल तो तालीम ही दे सकती है।"[18]

साथ ही नासिरा जी के लगभग सारे के सारे उपन्यासों की महिला पात्र शिक्षित नारी हैं, जो अपने बलबूते पर घर–परिवार संभालने के साथ अपनी सामाजिक व सरकारी जिम्मेदारियों को भी बखूबी निभा रहीं हैं। नासिरा जी ने इन महिला पात्रों के माध्यम से इस मिथक को भी तोड़ा है कि एक पढ़ी–लिखी औरत नौकरी करते हुए घर नहीं सँभाल पाती है। शाल्मली, रुख़साना, समीरा, समीना, मनीषा व शैलजा, सात नदियाँ एक समन्दर की सातों सखियाँ सबके–सब उच्च शिक्षित व पढ़ी–लिखी होकर नौकरी के साथ–साथ अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों को भी बखूबी निर्वहन करती हैं।

4. बाल विवाह

भारतीय समाज में आज भी बाल–विवाह की समस्या बनी हुई है। अबोध बालक–बालिकाओं का विवाह कर माता–पिता जल्दी से जल्दी अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त होना

चाहते हैं लेकिन पूरे जीवन भर नारी को इस समस्या से जूझना पड़ता है। बाल–विवाह के कारण समाज में अनेक विसंगतियाँ जन्म लेती हैं जो समाज व राष्ट्र को अन्दर ही अन्दर खोखला करने में लगी रहती हैं। साथ ही लड़का और लड़की के बड़े होने पर उनके मध्य वैचारिक दूरियाँ भी उत्पन्न होने लगती हैं। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में महरुख़ के जन्म लेते ही ठीकरे की रस्म के साथ ही उसकी मंगनी तय हो जाती है। लेकिन जब उसका मंगेतर उसे शादी से पूर्व ही आगे की पढ़ाई के लिए अपने साथ दिल्ली ले जाना चाहता है। पर परिवारजन सख़्त ख़िलाफ़त करते हैं। इस पर महरुख़ के अब्बा अपने अब्बा मरहूम को याद कर कहते हैं– "इसलिए अब्बा मरहूम बचपन में तय शादियों के ख़िलाफ़ थे। एक बन्दिश–सी हो जाती है। जबान और क़ौल देकर आदमी फंस जाता है। लड़के का अच्छा–बुरा निकलना सब क़िस्मत पर छोड़ दिया जाता है। मेरा कहने का मतलब है, इस चक्कर में अच्छे रिश्ते भी लौट जाते हैं।"[19]

5. दहेज की समस्या

भारतीय समाज में दहेज की समस्या जहरीले विष की तरह फैल रही है। इसके कारण समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होकर समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है। दहेज के लोभ में कन्या वध, भ्रूण हत्या, नववधूओं की हत्या व दाह इत्यादि अपराध बढ़ रहे हैं। कहीं मजबूर बाप बेमेल विवाह करने को मजबूर तो कहीं लड़की विवाह के इंतजार में बूढ़ी होकर मर जाती है। इसके कारण लड़की का जन्म होना अभिशाप समझा जाने लगा। इस समस्या के कारण मध्यम वर्ग को ज्यादा नुकसान झेलना पड़ रहा है। इसके कारण लड़की के पिता की मानसिक परेशानी तो बढ़ ही रही है, अपितु इससे भी अधिक एक नवविवाहित लड़की को अपनी जिंदगी तनाव में काटनी पड़ रही है। 'सात नदियाँ एक समन्दर' में इस समस्या पर प्रकाश डाला गया है। दहेज की माँग के कारण नेदा ख़ादम की तबाह हुई जिंदगी पर प्रकाश डालती हुई नासिरा जी लिखती हैं– "नेदा ख़ादम एक बहुत अमीर माँ–बाप की इकलौती बेटी थीं। मंगेतर ने एक दिन उनके पिता से जाकर पूछा–दहेज में क्या–क्या देंगे? इस प्रश्न ने उन्हें दिवाना बना दिया। और हाथ की छड़ी से उन्होंने उसे दौड़ाया था। पिता का क्रोध रह गया। मंगेतर की लालच व नीचता रह गई। नहीं रह गया तो नेदा ख़ादम का पनपता जीवन।"[20]

इस प्रकार अपने पाठकों के सामने इस समस्या को रखकर नासिरा जी इसका समाधान भी देती हैं। शाल्मली उपन्यास में शाल्मली के पिता शाल्मली को विश्वास दिलाते हुए कहते हैं कि "मैं भी इसी बात पर ध्यान दे रहा हूँ कि ऐसे घर लड़की नहीं देनी है। एक ही तो लड़की है। हर तरह से ठोक–बजाकर दूंगा। धन से तेरे लिए पति नहीं खरीदूंगा। मेरे ऊपर विश्वास रख।"[21] इसका तात्पर्य है कि इस समस्या से यदि हमें छुटकारा पाना है तो हम सबको सामूहिक रूप से प्रयास करना होगा। हमें संकल्पित होना पड़ेगा कि न तो दहेज लेंगे और न ही देंगे।

6. गाँवों की उपेक्षा

भारत गाँवों का देश है। यहाँ कि अस्सी प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गाँवों में निवास करती है परन्तु स्वतन्त्रता के बाद इन्हीं गांवों की उपेक्षा के कारण एक सामाजिक असन्तुलन सा उत्पन्न हो गया है। गाँवों के विकास हेतु अनेक सरकारी योजनाएँ अवश्य चलाई गईं, पर वे योजनाएँ उनके प्रभावी क्रियान्वयन के अभाव, भ्रष्टाचार, राजनीतिकरण इत्यादि विभिन्न समस्याओं के कारण काग़जों तक ही सीमित रह गयी हैं। आज हम देखते हैं कि गाँवों में स्कूल हैं तो शिक्षा नहीं, भवन हैं तो संसाधन नहीं, अस्पताल हैं तो चिकित्सा व चिकित्सक नहीं, उपकरण तो दूर की बात है। जमींन है तो पानी नहीं। पशु हैं तो चारागाह नहीं। सरकारी जमीनों पर प्रभावशाली लोगों के अवैध कब्जे हैं। साफ–सफाई, अमीरी, स्वच्छ पेयजल इत्यादि की बात करना तो बेमानी सी है। ग्रामीन–जन का मजाक है। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में महरुख़ जिस स्कूल में अध्यापन कार्य करती है वह ठीक हालात में नहीं है। संसाधनों की कमी के बारे में वह कहती है, "ब्लैक बोर्ड की इतनी बुरी हालत है कि कुछ लिखना नामुमकिन है। इस तरह से बच्चों का बहुत नुकसान होगा। बोर्ड के इम्तहान तो अब करीब आ गए हैं?"[22]

इसी तरह स्कूलों में अध्यापकों की बेहद कमी है। महरुख़ के स्कूल में पहले से ही दो अध्यापकों की कमी थी। इन दो अध्यापकों के विषय माथुर जी पढ़ा रहे थे। अब नेगी जी यहाँ से जा रहे थे, तब नेगी जी के यह बताने पर कि मेरे जाने के बाद मेरा भी विषय आपको ही पढ़ाना है। इस पर माथुर जी कहते हैं, "कृपा करें, महाराज, पहले ही आदमी से घोड़ा बना हूँ, घोड़े से गधा न बनाएँ।"[23]

चिकित्सा के नाम पर झाड़–फूँक, झोला–झाप डॉक्टर के अलावा कुछ भी नहीं है अधिकांश गांवों में। दूर शहरों में जाकर ही इलाज करवाना पड़ता है। जिसके कारण इलाज के अभाव में अनेक जिंदगियाँ दम तोड़ देती हैं। महरुख की घरेलू नौकरानी लछमिनियाँ जब प्रसववेदना से तड़पकर जिंदगी और मौत से जूझ रही होती है तब महरुख सलमान साहब से कहकर पड़ौस के कस्बे से डॉक्टर की व्यवस्था करवाती है। तब जाकर वह एक लड़के को जन्मती है और उसकी जान बच जाती है। "पिछले दो दिनों से लछमिनिया मौत और जिन्दगी के झूले में झूल रही थी। गाँव की पुरखिनें और दाई घरेलू दवा–दारू करके जब हार गईं, तो महरुख गाँव के डॉक्टरनुमा कम्पाउंडर की पनाह में पहुँची। वहाँ जाकर महरुख़ को बहुत ताज्जुब हुआ, यह देखकर कि खांसी के गुलाबी शरबत, लाल दवा और कुछ सफ़ेद–पीली टिकियों के अलावा कुछ भी न था।"[24]

गाँव की हालात बयां करती हुई महरुख़ मन ही मन सोचती है– **"अजीब नामहरुमी से भरी ज़िन्दगी है यह!** खाना है तो, कपड़ा नहीं, कपड़ा है, तो घर नहीं और अगर तीनों हैं, तो फिर पढ़ाई और नौकरी की सहूलियतें नहीं, मगर ये सारी कमियाँ तो बस इस तबके की तकदीर बन गई हैं, वरना एक तबक़ा हिन्दुस्तान में ऐसा भी है, जहाँ ये चीजें न सिर्फ़ बहुतायात से हैं, बल्कि बरस रही हैं। यह फ़र्क़ क्या कभी मिटेगा?"[25] साथ ही गाँवों में रोजगार व काम–धन्धे के अभाव में दिनों–दिन गाँवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ रहा है जिसके कारण नगरों की समस्या भी बढ़ गई है। साथ ही कुंठित युवा अपराध की ओर आसानी से बढ़ जाता है। ज़ीरो रोड़ उपन्यास का प्रधान पात्र सिद्धार्थ ऐसा ही पात्र है। साथ ही 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास का सन्देश भी यही है।

7. भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार वर्तमान सामाजिक परिवेश में फैली एक बहुत बड़ी समस्या है। आज गाँव हो या शहर हर जगह व्यक्ति इस विषम पीड़ा से गुजर रहा है। आज शायद ही कोई ऐसी जगह हो जहाँ यह समस्या देखने को नहीं मिले। पुलिस दफ्तर में तो लोग सही काम के लिए भी जाने से कतराते हैं। अक्षयवट उपन्यास का इंस्पेक्टर श्यामलाल त्रिपाठी इसी सिस्टम का हिस्सा है। वह बिना रिश्वत लिये कोई काम नहीं करता है। वह सामिन मियाँ के किरायेदार श्रीवास्तव को डरा–धमकाकर मकान खाली करवाता है और दोनों पक्षों से पैसे ऐंठता है। बिना जुर्म के श्रीवास्तव को पकड़कर थाने में बिठाता है और अन्त में बिना पैसे लिये नहीं छोड़ता है। "शुक्रिया अदा करे वगैर चला जावे बे, रिहाई के एवज मा कुछ नाश्ते पानी की व्यवस्था होई चाही।"[26]

8. अन्याय व शोषण

भले ही हम स्वतन्त्र राष्ट्र में रह रहे हैं और इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं परन्तु हमारा समाज आज भी अन्याय एवं शोषण से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया है। आजादी के बाद जमींदारी प्रथा तो समाप्त हो गयी। पर उसका स्थान पूँजीपतियों, महाजनों व साहूकारों ने ले लिया है। सिर्फ शोषक का स्वरूप बदला है, समाज में बढ़ती गरीबी, दरिद्रता, लाचारी, दीनता, भुखमरी, कुपोषण, आत्महत्या, लूटमार इत्यादि यह साबित करते हैं। शोषक वर्ग ने राजनैतिक सत्ता का प्रयोग करते हुए शोषित वर्ग को और भी पंगु कर दिया है। नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों में इस तथ्य का खुलकर खुलासा किया है। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में शोषण की इस समस्या को उठाया है। महरुख जिस ग्रामीण इलाके में अध्यापन कार्य करती है वहाँ कृषकों का भरपूर शोषण होता है। इस बारे में महरुख से कामता कहता है, "हम तो समझिन हन कि जमींदारी उन्मूलन से अत्याचार कम नाही भवा, न हमारा शोषण। बल्कि जमींदार सरीख बाबू हमारा टेंटवा दवाबन हैं– तहसीलदार और औके हटकारे यमराज हैं ससुरे।"[27]

जब महरुख़ शोरगुल सुनकर बाहर आकर देखती है तो पाती है कि पासी लोग जो अधिकांश बन्धुआ मजदूर के रूप में काम करते हैं, वे छोटे—बड़े खेतों में खड़े होकर अपना रोना रो रहे हैं। उनके संवादों में शोषण से उत्पन्न दर्द चीत्कार कर रहा है। उनके संवाद के कुछ अंश........ "सूखा पड़ा है। जब बिजली आत है, तो पानी खिंच जात है सारा—का—सारा बड़े लोगन के खेत मां। हम लोगन का अइसा सुख नाही चाही, जो केवल नाम भरम का हो......."[28] "सुना है बीज, मवेसी सभै के वास्ते कर्जा देत है बैंक। हमार कोनो सुनवाई है हुआ? हमरे नाम से दूसरा लोग लाभ उठाता रहे।।"[29] "ब्याज भरत—भरत हम लोगन मर जइवे, मगर मूल तो हमार कम होइए ना सकत। एक दिन खेत अलग हमरे हाथ से निकल जइहें। हमरे तो कोई रस्ता समझ में आवत नाहीं।"[30]

गणपत काका का बेटा कामता जब महरुख को शोषण के बारे में बताता है। तब महरुख उसे शोषण से मुक्ति के उपाय सुझाती हुई कहती है— "कामता भइया, तुम अपने अधिकारों को समझो और दूसरों को बताओ—बिना दिमाग़ को हथियारबन्द किये कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।"[31]

9. जातिवाद, ऊँच—नीच व छुआछूत

अपने उपन्यासों के कथानकों के माध्यम से समकालीन समाज में व्याप्त जातिवाद, ऊँच—नीच व छुआछूत की भावना पर भी नासिरा शर्मा ने तीखा—प्रहार किया है। सीधी—सपाट शैली में वर्तमान समाज की इस खोखली कुरीति के विरुद्ध खड़े होने के लिए कहा है। हर इन्सान समान है। कोई ऊँचा—नीचा या अछूत नहीं होता। यह सिर्फ रूढ़िवादी सोच का परिणाम है जो हमें मिल—जुलकर रहने नहीं देती। समानता का संदेश सरकारी फरमानों में खूब फैलाया जा रहा है परन्तु हमारी जड़वादी सोच इसे जीवन में उतार नहीं पाती। कुइयाँजान उपन्यास में दलितों के साथ हो रहे पक्षपात को साफ—साफ उजागर किया है। जल की समस्या पर ट्रेन के अन्दर बहस चल रही थी। इसी बीच एक व्यक्ति कहता है— "आपकी परेशानी अपनी जगह, हमारी धरती पर किए गए अत्याचार अपनी जगह। आप लोग प्रबुद्ध हैं। परन्तु मैं आपके सामने कह सकता हूँ कि गाँव—कस्बों में 'ठाकुर का कुआँ' आज भी जीवित है! उन गांवों में जहाँ मीठे पानी से कुएं लबालब—भरे हैं, वहाँ दलितों को आज भी तीन रुपए घड़ा उसी गाँव का आदमी बेचता है, आप इस समस्या का समाधान कैसे ढूँढेंगे?"[32]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में महरुख़ जिस गाँव में अध्यापिका है, वहाँ अधिकांश घर कहार, चमार, लोहार, पासी, धोबी जातियों से थे। जो ज्यादातर बन्धुआ मजदूरी करने को विवश थे। उनकी इज्जत कोई इज्जत नहीं मानी जाती थी। इसीलिए उनकी बहिन—बेटियों के साथ जब चाहे बदसलूकी की जाती थी और वे मनमसोस कर रह जाते थे। लेकिन जब बिन्दो के साथ

जबरदस्ती करने पर बिन्दो के भाई ने काशी की आंतें बाहर निकाल दी। इस पर सारा पासी टोला पुलिस छावनी बन जाता है। पुलिस वालों की नजर में भी उनकी कोई इज्जत नहीं थी। एक सिपाही घरों के बाहर काम करती हुई जवान लड़कियों को घूरता हुआ कहता है– "लौंडिया का जिगरा देखो, पूरा शरीफ़ों सा व्यवहार। अरे, बेकार पड़ी थी, काम आ गई, तो कौन–सी अपवित्र हो गई।"[33] इस पर दूसरा सिपाही बोलता है– "चमार, पासी जहाँ हैं, वहीं ठीक हैं।"[34]

सामाजिक जीवन में कलंक की भाँति अंकित इन बुराईयों को यदि हमें दूर करना है तो जो लोग आदर्श रूप हैं, समर्थ हैं तथा जो नई पीढ़ी है, उसे ही आगे आना होगा। अपने आचरण एवं व्यवहार से इन बुराईयों का विरोध कर इनको खोखला साबित करना होगा। जैसाकि 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख हम सबके लिए प्रेरणा बनती है। वह बुद्धिजीवी वर्ग से है, परन्तु हमेशा बिना किसी भेदभाव के गरीबों की सहायता करने के लिए तत्पर रहती है। पहली बार वह गाँव में कीर्तन की आवाज सुनकर गणपत काका के घर जाती है। जब गणपत काका की बहू चम्पा उससे चाय पीकर जाने का आग्रह करती है तब वह चाय पीकर ही जाती है।[35] साथ ही नीच समझी जाने वाली लछमिनिया उसके घर की नौकरानी है जो रसोई व सारा काम सँभालती है।

महरुख की तरह ही हर माँ–बाप, अध्यापक व सामाजिक कार्यकर्ता का भी यह दायित्व बनता है कि वे नई पीढ़ी को सामाजिक एकता व सौहार्द का पाठ पढ़ाएँ। महरुख जब हैडमास्टर बनती है तब वह राष्ट्रीय पर्व के अलावा और किसी धार्मिक त्यौहार के स्कूल में आयोजन पर पाबन्दी लगा देती है। वह कहती है कि– "मैं विद्यालय को दानिश और विद्या का घर समझती हूँ। उन्हें ज्ञान देना, इल्म देना हमारा काम है, न कि यह बात बताना कि कौन किस मजहब और जात से है।.......मिलिट्री कैंप मुल्क की हिफ़ाजत के लिए फ़ौजी देता है तो हम समाज की हिफ़ाजत के लिए इल्म के सिपाही नहीं दे सकते हैं क्या?"[36]

साथ ही लेखिका यह भी लिखती है कि निम्न समझे जाने वाले तबकों को भी आत्महीनता से मुक्त होना पड़ेगा। उन्हें इस सामाजिक जकड़न और ग्रन्थि को तोड़कर संकल्पित होकर आगे बढ़ना होगा तभी जाकर प्रशासन भी साथ लगेगा। अन्याय का विरोध करने के जुर्म में "कामता और रामू के साथ पाँच और इसी टोले के जवान, एक साल से ऊपर हो गया है, जेल के अन्दर बन्द हैं। लाल किशोरीलाल ने जेबें गर्म कर दी हैं सो क़ानून की ज़बान और कान, दोनों बन्द हैं। वहाँ किसी की सुनवाई नहीं पहुँच रही है मगर इन औरतों का हौंसला नहीं टूटा है, न दूसरे साथियों का। उन्होंने तय कर रखा है, पक्के मकान, पत्थर की कोठी पर बंधुआगिरी नहीं करेंगे, चाहे भूखों मर जायें, महुआ फल रहा है सो गलुवा खा के गुज़र हो रही है। समय आया तो घास–फूस उबाल कर खा लेंगे, मगर अब दबेंगे नहीं। डांगर बनके ही जीना है तो अपनी मौत मरेंगे।"[37]

10. साम्प्रदायिकता

वर्तमान में सर्वाधिक भीषण समस्या है साम्प्रदायिकता की समस्या। हिन्दु–मुसलमान के मध्य धार्मिक विद्वेष की भावना इस कदर व्याप्त है कि हर पल अनहोनी की आशंका बनी रहती है। कब एक छोटी सी कहासुनी बड़े दंगे का रूप ले ले कहा नहीं जा सकता है। विभाजन की त्रासदी के बाद यह समस्या बहुत बढ़ गयी है। वर्तमान राजनीति ने इसे अपने हथियार के रूप में उपयोग लिया है। देश के विभिन्न हिस्सों में हुए विभिन्न साम्प्रदायिक दंगे और उनमें होने वाले कत्लेआम इसकी भयावहता को उजागर करते हैं। नासिरा शर्मा एक संवेदनशील एवं सजग लेखिका हैं। उन्होंने अपने साहित्य में साम्प्रदायिक सौहार्द्र को बढ़ावा देने की ही बात की है। साम्प्रदायिक भेदभाव के कारण इंसान क्या खोता है और क्या पाता है, यह अपने पाठकों को समझाया है। अपने ज़ीरो रोड़ उपन्यास में नासिरा जी लिखती हैं कि मुन्ना हाफिज का घर रामप्रसाद व जगतराम जी के मोहल्ले में ही था। उन्होंने मजहबी किताबों की एक दुकान चौक में खोल ली। वह एक ईमानदार और उदार दृष्टिकोण वाले व्यक्ति हैं। जब तब्लीगी जमात वाले उसको हिन्दुओं के खिलाफ उकसाने का प्रयास करते हैं तब वह उनसे कहते हैं– "कान खोलकर सुन लें आप सभी साहेबान! मैं किसी के न खिलाफ कोई काम करता हूँ न किसी मज़हब की तब्लीग पर मैं गैर–मुसलमान को गाली देता हूँ बल्कि उन बातों की शिकायत करता हूँ जो हमें खलती हैं, जिससे हमें नुकसान पहुँचता है।"[38]

अचानक एक दिन कुछ लोग सुबह के दो–तीन बजे दुकान को आग लगा देते हैं। लगभग दो लाख की किताबें एक रात में जलकर भस्म हो जाती हैं। इस घटना पर अनेक शंकाएँ व्यक्त की जाती हैं। हनीफ मास्टर कहते हैं– "यह आग किसी गैर–मुस्लिम ने लगायी है। तो रफीक तौलिये वाले कहते हैं– हाँ भई, कौन ऐसी हिम्मत कर पाएगा? अपनों को पता था कि उसमें मज़हबी किताबें थीं लेकिन मुन्ना हाफिज उनके बहकावे में न आकर विवेक से काम लेता है। वह कहता है– किस पर शक करूँ? दिल तो नहीं मानता कि यह काम गैर मुसलमानों में से किसी का है।"[39].........उसे हफ़्ते भर पहले की वह बात याद आती है जो तब्लीगी जमात वाले उसकी दुकान पर आकर कहकर गये थे– "आप अपने बर्ताव की क़ीमत खुदा के कहर की शक्ल में एक दिन देखेंगे।"[40]

इलाहाबाद के चक मोहल्ले में रहने वाले हामिद की, उसी मोहल्ले के लड़के बम डालकर हत्या कर देते हैं। हामिद के पिता बेटे के कातिलों को जानते हुए भी एस.पी. को उनका नाम नहीं बताते हैं। वे यह कहकर टाल देते हैं कि "मुझे अपने हिन्दू भाईयों से कोई शिकायत नहीं है। हम तो बड़े जमाने से साथ–साथ रहते आये हैं और कभी कुछ ऐसा नहीं घटा कि मैं उनकी बुराई

याद करूँ।"[41] वे हामिद को गँवा चुके थे लेकिन जोश में आकर दंगों का रूप देकर मोहल्ले के बाकी लड़कों की जान खतरे में डालना नहीं चाहते।

नासिरा जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों के ज़रिये हिन्दू–मुस्लिम भाईचारे की ही बात की है। दोनों संस्कृतियों के माध्यम से सद्‌भाव दिखलाया है। दोनों आपस में मिलकर एक–दूसरे के तीज–त्योहारों में सहभागिता करते हैं तथा आपस में मिलजुल कर रहते हैं। अपने सभी पात्रों के ज़रिये यह संदेश अपने पाठकों को दिया है। नासिरा जी ने अपने लेखन में इंसानियत को हमेशा हर मज़हब से ऊपर रखा है। हिन्दू–मुसलमानों की मिली–जुली आबादी से इलाहाबाद के मोहल्ले ज़्यादातर आबाद हैं। यहाँ की मिली–जुली संस्कृति में लोग रचे–बसे हैं। अक्षयवट उपन्यास में दिवाली, दशहरा, राखी, होली, नवरात्रा, ईद, बकरीद, मुहर्रम इत्यादि सभी आयोजनों में परस्पर बढ़–चढ़कर भागीदारी करते हुए दिखलाया है। इसी गंगा–जमुनी संस्कृति की उदारता को दृष्टिगत रखते हुए नासिरा जी लिखती हैं– "विजयादशमी का पर्व पूरे भारत में मनाया जाता है मगर जो एकता इलाहाबाद में दिखायी देती है, वह कहीं और नहीं। जीवन का एकाकीपन इन्हीं उत्सवों में टूटता है।"[42] इसी क्रम में वे पुनः कहती हैं– "इलाहाबाद के लिए दशहरा केवल धार्मिक पर्व भर नहीं है, यह स्थानीय परिवेश से निकली एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो अपनी ही बोली–बानी में इंसानी दुःख का बयान करती है। आम आदमी से मिलती–जुलती उसकी व्यथा है.......इसलिए रामलीला की चौकियाँ देखने इलाहाबाद के आस–पास के नगर और कस्बे का हर व्यक्ति लालायित रहता है, चाहे वह किसी धर्म–विचार वर्ग का हो। यह एक ऐसा सच है जिसे देखे बिना उस पर विश्वास करना कठिन है।"[43]

उपन्यास का नायक जहीर जब पाँच माह का था तब ही एक साम्प्रदायिक दंगे में अपने पिता को खो देता है लेकिन जहीर बड़ा होकर सर्वधर्म समभाव की मिसाल पेश करता है। वह हमेशा अपने दोस्तों रमेश, मुरली, वसन्त यादव, जुगनू, जगन्नाथ के साथ मिलकर बुराई से लड़ता नजर आता है। इसी तरह कुइयाँजान उपन्यास का नायक 'डॉ. कमाल' भी इन्सानियत की सेवा में हमेशा तत्पर दिखाई देता है। 'दूसरी जन्नत' उपन्यास में फरीद इसी सद्‌भाव की बात को 'राना' को समझाता है। इसी तरह 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास की नायिका 'महरुख़' अपने आचरण व व्यवहार से हमेशा हिन्दू–मुस्लिम सद्‌भाव को पेश करती है। वह गणपत काका के घर कीर्तन में सम्मिलित होकर प्रसाद प्राप्त करती है। वह जब हैडमास्टर बनती है तो स्कूल में राष्ट्रीय पर्वों के अलावा धार्मिक आयोजनों पर रोक लगाती है। वह कहती है– "मैं विद्यालय को दानिश और विद्या का घर समझती हूँ। उन्हें ज्ञान देना, इल्म देना हमारा काम है, न कि यह बात बताना कि कौन किस मजहब और जात से है।"[44]

नासिरा जी का 'पारिजात' उपन्यास भी इसी साम्प्रदायिक सद्भाव की मिसाल है। वह तो गंगा–जमुनी संस्कृति से सराबोर करता हुआ पारिजात से परीजाद की खोज करता है। रोहन और रूही का परिवार, उनके पारिवारिक रिश्ते व प्रेम वर्तमान समाज के लिए एक आदर्श की भाँति हैं। उपन्यास में हिन्दू–मुस्लिम दोनों के तीज–त्यौहारों आनंदित होता हुआ सम्पूर्ण इलाहाबाद और लखनऊ दिखाई देता है।

11. अन्धविश्वास

भले ही आज हम वैज्ञानिक युग में जीते हैं और स्वयं को प्रगतिवादी एवं आधुनिक होना साबित करते हैं, परन्तु कहीं न कहीं हमारी सोच की जकड़न वैसी की वैसी दिखाई देती है। हिन्दू–मुस्लिम, हर समाज अन्धविश्वास में जकड़ा हुआ है। आज भी टोने–टोटके, झाड़–फूँक, जंतर–मंतर, तंत्र–मंत्र को करने से लोग नहीं चूकते हैं। गंभीर बीमारी की स्थिति में भी लोग इलाज कराने की बजाए झाड़–फूँक में विश्वास करते हैं जो मृत्यु–दर एवं सामाजिक कदाचार बढ़ाने का बड़ा कारण बनता है। परिवारजनों के मध्य दूरियाँ बढ़ाने का भी कारण बन जाता है। नासिरा शर्मा ने 'ठीकरे की मंगनी' और 'अक्षयवट' उपन्यासों में टोने–टोटके के स्वरूप को शब्दबद्ध किया है। 'ठीकरे की मंगनी' में महरुख़ की नौकरानी लछमिनिया को प्रसव पीड़ा से तड़फते हुए दो दिन हो जाते हैं। उसको एक डॉक्टर की सख़्त जरुरत थी पर "टोना–टोटका, जो भी कुछ बता रहा था, लछमिनिया की सास करे जा रही थी। दाई कोठरी के दरवाजे पर बैठी चिलम पी रही थी। ख़ासी भीड़ जमा हो गई थी और लछमिनिया के सिरहाने लोहे का टुकड़ा, हल्दी, कील, सिल का बट्टा और पता नहीं क्या–क्या जमा हो रहा था। दिन ढलते–ढलते शाम हो गई। लछमिनिया के सिरहाने तेल की ढिबरी रखकर उसकी सास उसके सर से छुला कर कोई चीज़ बाहर ले गई।"[45] अन्त में महरुख़ पास के कस्बे से डॉक्टर विमला को बुलाकर उसकी जान बचाती है। कुदृष्टि या बुरी नज़र से बचने के लिए भी तरह–तरह के टोने–टोटके किये जाते हैं। लछमिनिया जलती अगरबती के साथ बैंगन और टमाटरों के पौधे के सामने उसकी आरती–सी उतारने लगी और कहती है बुरी नज़र वाले तेरा मुँह काला! देखो, कइसा बैंगन फला है? रोज तोहार पढ़ाई वाले बचवा आवत हैं। का पता के की नजर में का है?[46]

इसी अन्धविश्वास में अक्षयवट उपन्यास में रमेश की माँ घिरी हुई है। रमेश परिवार का सबसे बड़ा पुत्र है जिसका जीवन कठिनाईयों से भरा है। उसके जीवन से कठिनाईयों को दूर करने के लिए रमेश की माँ एक पंडित के पास जाती है और जो भी वह कहता है, करने को तैयार रहती है। "पंडित जी के कहे अनुसार वह सप्ताह में एक दिन व्रत और सफेद लाई, नदी या किसी बहते पानी में डालने लगी।....किसी ने कहा टूटी मस्जिद के पास जो अंधे मौलवी साहब

रहते हैं ताबीज़ में बहुत असर है। ताबीज़ लाकर रमेश के तकिया में सिल दी और रोज सुबह उठकर गोरैयों को दाना बिखेरती।"[47]

'कुइयाँजान' उपन्यास में राबिया की माँ भी रुके काम करवाने के लिए गंडे–ताबीज और अलम करवाने के लिए लोगों से कहती रहती है। वह हर किसी से कहती रहती, "ऊपरवाले की कसम, आपको इन बातों पर ईमान हो या नहीं मगर जरूरत पड़ने पर मौलाना असलम को याद करना न भूलिएगा। बंदी तो खिदमत में हरदम हाजिर है!"[48] कमाल की माँ शकरआरा से वह कहती है– "अल्लाह के करम से मकान मालिक हमारा बड़ा ख़्याल रखते हैं। खुदा का उनके दिल में खौफ है। नेक बंदा है। जब से, बेगम साहिबा, मोहम्मद असलम मौलवीजी की ताबीज से उसकी खोई बकरी मिली है तब से वह उन पर लट्टू हो गया है।"[49]........ "मैं तो कहती हूँ, बेगम साहिबा! एक बार दुल्हन की गोद–भराई के लिए आप मौलाना से मिलकर देखें। साल के अंदर घर में किलकारी न गूंजने लगे तो मेरा नाम बदल देना।"[50]

'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में भी आमिल बदरुउद्दीन के घर औरतों की ग़ज़ब की भीड़ रहती है। वह मोटी रकम लेकर लोगों को अमल करता है और टूटे–फूटे मकान में रहने वाला यह आमिल आज दो मंजिले एयर कंडीशन युक्त घर का मालिक है और आज भी उसका धन्धा जोरों पर चल रहा है। महलक़ा की माँ महजबीं भी उसी भीड़ का हिस्सा थी। वह इस झाड़–फूँक के चक्कर में अपने पति के घर को बिखेर चुकी है और अब बेटी महलक़ा के घर को तबाह करने में लगी हुई है। वह आमिल से कहती है– "आपकी दुआ से बेटी की नंद का ऐसा घर बर्बाद हुआ कि उसने तो गर्दन में फांसी लगा ली, मियां उसका मर–खप गया मगर ससुर जेल में झूठे मुक़दमे में ज़रूर फंसा है। मेरी बेटी का एक शाने का बोझ तो हलका हुआ, अब उस बूढ़े गिध का भी कुछ हला–भला कर दें।"[51] इस पर मौलवी कहता है– "अल्लाह की मर्ज़ी के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता। मगर हम उन्हें मौत ज़िंदगी के बीच झुला देंगे।"[52]

अपनी छोटी बेटी के बारे में वह आमिल से पुनः कहती है कि– "मैं चाहती हूँ कि आप ऐसी तावीज़ दें कि बेटी अपने हिस्से की जायदाद लेकर अलग हो जाए। सास–ससुर ज़िंदा है। दो कुंवारी नंदें अभी सीने पर कुंवारी बैठी हैं।"[53]

"यह तो महलक़ा को दे दीजिएगा।" आमिल ने एक बोतल में पानी और तावीज़ देते हुए कहा।[54]

लेखिका इस सम्बन्ध में लिखती हैं कि "महजबीं इस शहर की अकेली औरत थोड़ी थी जो जादू–टोने से अपने हालात सुधारने की कोशिश में जुटी थी। पूरा शहर न सही मगर आधे शहर की औरतें ख़ुदा और ईश्वर से ज़्यादा आमिलों ओझाओं के करिश्में और जादू–होने पर यक़ीन

रखने लगी थीं क्योंकि उन्हें मियां के दिल पर हुक्मरानी और ससुराल वालों के दिल जीतने की जगह मियां की कमाई पर क़ब्ज़ा करने की तमन्ना थी ताकि वह खुलकर अपनी मर्ज़ी से जी सकें। इस सोच में अनपढ़ से ज़्यादा पढ़ी–लिखी महिलाएँ शामिल थीं। जो अब किसी प्रकार का अत्याचार, अंकुश और जकड़न सहन करने की क़ायल नहीं रह गई थीं।"[55]

लेकिन जब माज़दा को यह पता चलता है कि उसकी अम्मी उसके भावी ससुराल को बिखेरने के लिए अमल कराने आमिल के घर गई थी, तो घर में तूफ़ान उठ खड़ा होता है। वह शादी करने से साफ इनकार कर देती है। बेटी का हौंसला देख अमजद मियाँ का सोया जमींर भी जाग उठता है। वह अपनी पत्नी से कहता है कि महजबीं यदि तुम ऐसा करने से अभी भी बाज नहीं आयी तो मेरा मरा हुआ मुँह देखेगी।

नासिरा जी एक सामाजिक सन्देश देती हुई माजदा से कहलवाती है– "मम्मी, मुझे यह सब पसंद नहीं है। यह ग़ैर–मज़हबी और ग़ैर इनसानी हरकत है।"[56]

अन्त में महजबीं स्वयं की गलती की स्वीकारोक्ति करते हुए कहती है कि नई पीढ़ी चाहे तो समाज को इस कुरीति से बचा सकती है। वह कहती है.......... "ममता में अन्धी होकर मैं ग़लत तौर–तरीक़ा अपना बैठी। खुदा की बारगाह में गिरकर उनसे अपने गुनाहों की माफ़ी मांगूंगी मगर पहले, हां पहले मैं तेरा शुक्र अदा कर दूं जो तूने दोजख की आग में जलने से बचा लिया। सही कहते थे अब्बा मरहूम कि बचपन में जिस तरह जवान माँ–बाप बच्चों को चलना, बोलना सिखाते हैं, सही और ग़लत की समझ देते हैं, ठीक उसी तरह जवान होकर बच्चे बूढ़े मां–बाप की देखभाल कर उनको सेहतमंद सोच देते हैं।"[57]

इस प्रकार आज की नौजवान पीढ़ी के कंधों पर यह दायित्व है कि वह हर बुराई से समाज को बचाये और अपने बच्चों व परिवारजनों को सही शिक्षा देकर नेकी की राह पर चलने को प्रेरित करे।

12. बुजुर्गों की उपेक्षा

वर्तमान समाज में नई पीढ़ी में बढ़ती एकाकी प्रवृत्ति, दायित्वों से मुक्ति, मौज–शौक में उन्मुक्त होकर सुखी जीवन जीने की चाह में घर में बड़े–बूढ़े व बुजुर्गों को उपेक्षित जीवन जीना पड़ रहा है। वृद्धाश्रमों में बढ़ती भीड़ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक तरफ नई पीढ़ी रोजगार के कारण घर से दूर रहकर चाहकर भी बुजुर्गों को सम्बल नहीं दे पा रही है। तो दूसरी तरफ पीढ़ीगत सोच एवं रहन–सहन के अन्तर के कारण भी यह खाई बढ़ती जा रही है। नई पीढ़ी की मजबूरी कहो या नासमझी, वह रुपये–पैसे भेजकर स्वयं को धन्य समझती है। घर में बुजुर्गों के लिए समय निकालना तो बेमान सी लगती है। पर माँ–बाप का हृदय तो माँ–बाप का ही होता है

जो हर–पल, हर–आहट के साथ दूर बैठी संतानों की बाट जोहता रहता है। ऐसी ही एक माँ है– फ़िरदौस जहाँ। जो एक आलीशान लाल कोठी में तन्हा अकेली रहती है। पति के देहावसान हो जाने के बाद तथा बेटे मोनिस के विदेश में बस जाने के बाद एक नौकर गफ़ूर के परिवार के भरोसे वह निरा अकेली रहती है। पैरों पर खड़े होने में असमर्थ है। अतः बुढ़ापे में किताबों को और लेखन को सहारा बनाकर अपना समय व्यतीत करती है। वह बार–बार मोनिस को लखनऊ लौटने के लिए कहती है पर वह अपनी बूढ़ी माँ के जज्बातों को नहीं समझ पाता है। मोनिस का फोन आने पर फ़िरदौस जहाँ उससे कहती है– "इधर मैं तन्हा। उधर तुम्हारी बहन तन्हा।"[58]..... "तुम कब आ रहे हो मेरे कलेजे! ये आँखें तरस रही हैं।"[59] इस पर मोनिस का यह जवाब फ़िरदौस जहाँ को अन्दर तक हिला जाता है– "नो मोर डायलॉग मॉम! उस शहर की ठहरी ज़िंदगी में मुझे आकर मरना नहीं है। आप बार–बार वही बात दोहराती हैं। आप और रूही के अलावा वहाँ मेरा अपना बचा कौन है? किसके लिए यह सब छोड़ूँ? मेरे सारे दोस्त यूरोप भर में फैले हुए हैं। मुझे बेकार के इमोशंस में मत उलझाइए............वह घर बोसीदा हो चुका है। वह सड़कें, और वह रास्ते टूट चुके हैं........मॉम डोंट क्राई। हमारी यादें, हमारा दिल, दिमाग़ और ये आँखें हैं। वह घर और शहर नहीं।"[60]..... "अच्छा मॉम, अपना ख़याल रखिएगा। मैंने चेक डाल दिया है। गुडनाइट।"[61]

इस पर फ़िरदौस जहाँ सिर्फ इतना बोलती है– "गुडनाइट" कहते–कहते फिरदौस जहाँ अपने आँसू रोक नहीं पाई। कैसे कहतीं कि मुझे चेक की नहीं, तुम्हारी चाहत है।[62] इस चेक को ही नासिरा शर्मा ने अपने दूसरे उपन्यास का शीर्षक बनाया है– 'काग़ज़ की नाव'। "यह उपन्यास बिहार में रहने वाले उन परिवारों का वृत्तांत है, जिनके घर से कोई न कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया हुआ है। वतन से दूर रहने वाले यहाँ छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक का भरा–पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से आने वाले रुपए.......और रिश्तों के अंधेरे उजाले। 'काग़ज़ की नाव' शीर्षक एक रूपक बन जाता है, यानी जरूरतों और ज़िम्मेदारियों के समंदर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश।"[63]

महलक़ा का पति ज़ाकिर सऊदी अरब में नौकरी करता है। पर महलक़ा अपने ससुर को हर समय प्रताड़ित करती रहती है। नासिरा जी लिखती हैं कि– "ज़हूर मियां कमरे में अकेले बैठे शाम की चाय का इंतज़ार कर रहे थे। कई बार दिल किया था कि गोलू को आवाज़ दें फिर महलक़ा के कड़वे लहज़े के डर से दिल मसोसकर रह गए। बेटे ने उनके आराम का सारा सामान कमरे में सजा दिया था। बिजली की केतली, मोबाइल, छोटा सा टी.वी., रेडियो वगैरह ताकि अब्बा ख़ुश रहें मगर महलक़ा उनकी हर ग़लती पर बच्चों की तरह उन्हें सज़ा देती और

बहाने–बहाने से एक–एक करके चीज़ें वहां से उठा ले जाती। ढेरों तस्वीहें थीं। वह तक नहीं छोड़ीं। अच्छे कपड़े धुलने और सूखने के बहाने ग़ायब हो जाते और.........।"[64]

महजबीं को जब समझ आती है तब वह अपने शौहर मियां अमजद के साथ महलक़ा को समझाने उसके घर जाते हैं तो देखते हैं कि– "ज़हूर मियां के कमरे में घुसते ही बदबू का एक भभका दोनों की नाक में घुसा। ज़हूर चुपचाप बैठे थे। पास में रखी चाय की झूठी प्याली पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। कमरे में धूल और गंदगी थी। बिस्तर की सफ़ेद चादर पर कई तरह के धब्बे थे।....लुंगी में बड़ा सा खोंचा लगा था।"[65]

ज़हूर मियां की दुर्दशा वह भी अपनी बेटी के हाथों देखकर अमजद मियां शर्मिन्दग़ी से झुक से जाते हैं। वह मन ही मन सोचता है कि "यह उस बाप का हाल है जिसका लड़का हर माह हज़ारों रुपये मेरी बेटी को भेजता है।"[66]

महजबीं ने महलक़ा से अमल किए सामान लाने को कहा। जब वह ले आई तो वहीं आंगन में खड़े–खड़े उन्होंने बोतल का पानी और पुड़िया का पाउडर ज़मीन पर पेड़ की जड़ में गिरा दिया। तब बोली– "अब अमल की चीज़ों की नहीं आमाल ठीक करने का वक़्त है।"[67]........ "मैंने तुम्हें कई बातों में ग़लत मशविरे दिए, वह मेरी ममता की ख़ुदगर्ज़ी थी। अब मेरी आँखें खुल चुकी है। जैसे मैंने अपनी ग़लती मान ली है, अब तुम भी मान लो और तौबा करो। तौबा का दरवाज़ा हमेशा खुला रहता है। उस नेक बंदे को जो तुम्हारे शौहर का बाप है उसकी ख़िदमत कर अपना कफ़्फ़ारा अदा करो वरना मैं तुम्हें दूध बख़्शने वाली नहीं हूँ।"[68]

इस सम्बन्ध में नासिरा जी लिखती हैं कि हमें बुजुर्गों के प्रति अपनी सोच बदलने की ज़रूरत है। बुजुर्ग घर का बोझ नहीं बल्कि सहारे होते हैं। नई पीढ़ी को अपने अमूल्य अनुभवों से समृद्ध करते हैं। यदि हम इस परम्परागत पारिवारिक ताने–बाने को तोड़कर आगे बढ़ने की चाह रखते हैं जो यह बेमानी है। कुछ भी हासिल नहीं होने वाला बल्कि जो खो जायेगा, वह जिंदगी भर तड़फने पर भी नहीं मिलेगा। अतः 'कुइयाँजान' उपन्यास में डॉ. कमाल अपने इलाज के साथ–साथ लोगों को इंसानियत का भी पाठ पढ़ाते हैं जो किसी आन्दोलन से भी बढ़कर है, ज़्यादा असरकारी है। एक वृद्ध जिसका बेटा सुबह जल्दी घर से कमाने निकलता है और शाम ढले घर लौटता है परन्तु उसके पीठ पीछे उसकी पत्नी अपने ससुर को कड़वे वचन बोलती है और बासी खाना देती है। कमाल के समझाने पर उसका लड़का अपनी पत्नी के कारनामे प्रत्यक्ष देख लेता है और पत्नी को समझाता है। इस पर टिप्पणी करती हुई लेखिका कहती है– "औरत का चेहरा अपमान से काला पड़ गया था। वह रंगे हाथों पकड़ी गई थी। उसकी आँखें गीली हो उठी थीं। वह बुरी औरत नहीं थी, मगर जिस समाज में बूढ़े बोझ समझे जाने लगे हों, उन्हें बेकार की वस्तु समझकर एक किनारे डालने का चलन बढ़ रहा हो, वहाँ पर यह औरत सबसे अलग

क्यों व्यवहार करेगी? अगर यहाँ बूढ़े का बेटा सुलझी तबीयत का समझदार लड़का न होता तो वह भी डॉक्टर कमाल की बातों को एक कान से सुनता और दूसरे कान से उड़ा देता या फिर वह डॉक्टर के बुलावे या पिता के कहने के बावजूद क्लीनिक जाना टालता रहता और उसकी पत्नी भी शर्मिंदा होने की जगह कैकेयी कांड का दृश्य उत्पन्न कर बूढ़े के जीवन के बाकी दिन नरक से भी बदतर बना देती। मगर ऐसा नहीं हुआ। उनके व्यवहार में बदलाव आया, क्योंकि उनमें बदलने का गुण मौजूद था। अपना कर्त्तव्य डॉक्टर कमाल बखूबी जानता था। भाषणबाजी, दिखावा और किसी आन्दोलन के माध्यम से समाज में लाए जाने वाले बदलाव पर फिलहाल उसका कोई विश्वास नहीं था। इसलिए उसने नियम बना रखा था कि गलत बात पर खामोश नहीं रहना है, बल्कि उसका अहसास दूसरे को कराना है। बदलना–न–बदलना यह उसका काम है और वही अंत में अपने व्यवहार के प्रति इस समाज और उस दुनिया में जवाबदेह होगा।"[69]

इस प्रकार हम सबको अपने अन्दर के डॉ. कमाल को जगाना होगा, तब जाकर इस देश व समाज में बुजुर्गों के प्रति सम्मान बढ़ेगा और सारा समाज संस्कारवान् बनेगा।

13. सूचना क्रांति के बढ़ते दुष्प्रभाव

वर्तमान युग विज्ञान एवं तकनीकि का युग है। सूचना प्रौद्योगिक के विस्तार के कारण जहाँ मानव–जीवन सुगम व सरल हुआ है, वहीं इन्टरनेट की बढ़ती लत के कारण आज का युवा पगला सा गया है। उसे अच्छे–बुरे का भान ही नहीं रह गया है। दिन रात इन्टरनेट के साये में जीने के कारण वह चकराया सा सोच ही नहीं पाता है कि उसे क्या करना है? तथा क्या करना चाहिए। दिन–प्रतिदिन अपनों से दूरियाँ बढ़ती चली जा रही हैं। एक प्रकार से वह आभासी दुनियाँ में जी रहा है। जहाँ सब कुछ अपना नजर आता है पर वस्तुतः अपना कुछ भी नहीं। साथ ही इस समस्या का कहीं पड़ाव नजर नहीं आता बल्कि निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज की नई पीढ़ी को टोका–टाकी बिलकुल भी पसन्द नहीं। इन्टरनेट पर ज्यादा वक़्त बिताने पर टोकने पर अनेक बच्चों के आत्महत्या करने की खबरें हम आये दिन समाचार–पत्रों में पढ़ते हैं या समाचारों में सुनते हैं। नासिरा जी ने इन्टरनेट के प्रति इस बढ़ती लत को 'शब्द पखेरू' की संज्ञा दी है। समस्या की गम्भीरता को देखते हुए लेखिका को इस शीर्षक को उपन्यास के आकार में ढालना पड़ा। अपने इस उपन्यास के सम्बन्ध में वे लिखती हैं कि– "बाज़ार और तकनीक के इस विकसित हो रहे माहौल में सूर्यकान्त की छोटी बेटी शैलजा अपना मार्गदर्शक 'गूगल' को समझ लेती है और इस ग्रैंडपा के जरिए वह बेहतर दुनिया में साँस लेने की तमन्ना पाल लेती है। अपने परिवार को सुखमय जीवन देने की इच्छा में साइबर क्राइम में फँस जाती है। शब्दों के दग़ा देने पर वह अविश्वास के उस मरुस्थल में आन खड़ी होती है जो शब्द पखेरू की तरह अपनी लहरों में पल–पल हवा में गुम कर देते हैं।"[70]

शैलजा का इन्टरनेट के प्रति लगाव बढ़ता ही जा रहा था। सूर्यकान्त की बड़ी बेटी "मनीषा शैलजा में बढ़ता विश्वास देख रही थी, जो कभी–कभी उसे बड़ा आक्रामक लगता। हरदम लैपटाप की स्क्रीन पर आँखें गाड़े रहती। एक दिन उसने जलकर उसका नाम 'इण्टरनेट बेबी' रख दिया था मगर उस पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हर फ्रेण्ड रिक्वेस्ट को कनफर्म कर देना जैसे उसके लिए ज़रूरी था। किताब या नोटबुक खुली है सामने मैटर ढूँढने के बहाने चैट चल रही है। शो ऐसा करती है जैसे बेचारी पढ़ाई को लेकर हलकान हो रही है।"[71]

"शैलजा को पतंग उड़ाते–उड़ाते एक अमेरिकन आर्मी मेन भा ही गया। चैट तो बड़ी बचकाना शुरु हुई थी। फ्रेण्ड रिक्वेस्ट तो उसकी तरफ़ से ही आयी थी। फिर एक दिन उसे कार्ड मिला जिसमें बन्द दरवाज़े के पीछे खड़ा एक जवान दरवाज़ा नॉक करता हुआ और जिसके दूसरे हाथ में लाल गुलाबों का गुलदस्ता है उसे अपनी पीठ के पीछे छिपाये हुए है जो उसने भेजी। शैलजा के किशोर मन को वह तस्वीर भा गयी। मगर ज़्यादा देर ठहरी नहीं। इन्टरनेट के विस्तृत आकाश पर देखने–पढ़ने और खोजने के लिए बहुत कुछ था। उसने गूगल को ग्रैण्डपा का नाम दे रखा था।"[72]

आखिरकार क्रिस एलेन नाम वाले एक साइबर अपराधी या ठग के चक्कर में शैलजा आ जाती है। वह उसके साथ घर बसाने तथा विदेश में रहकर पढ़ाई करने का सपना पाल बैठती है तथा माँ–बाप को तंगहाली से छुटकारा दिलाने की भी सोचती है। शैलजा का सोचना है कि– "यह पूरी दुनिया तकनीकी दृष्टि से जिस तेज़ी से बदल रही है वहाँ संवेदना की जगह पैसे का महत्त्व बढ़ रहा है और हम कुछ ज़्यादा ही भावुक हैं। व्यावहारिक चाहकर भी नहीं हो पाते हैं।"[73]

इन्टरनेट की लत न केवल नई पीढ़ी में है अपितु यह लत हर उम्र के व्यक्ति में देखी जा सकती है। इनसान अपने जीवन का अतिमहत्त्वपूर्ण समय इन्टरनेट पर बिता रहा है। रिश्तों की अहमियत केवल यहीं तक रह गयी है कि सोशल मीडिया पर किसको विश किया व किसको नहीं। सूर्यकान्त की पी.ए. मीरा उन्हें अपने घर डिनर पर बुलाती है क्योंकि इससे पहले वाले सर उसके साथ घर तक रिश्ता रखते थे और ऐसा करके वह स्टाफ साथियों पर भी रोब जमाती रहती थी लेकिन जब सूर्यकान्त डिनर पर आने से साफ़ इनकार कर देता है जो वह स्वयं को अपमानित सी मानकर सोचती है– "अभी मैं मजा चखाने पर आ जाऊँ तो काग़ज़ की ऐसी हेर–फेर कर दूँ कि इनको.......खैर छोड़ो मुझे भी कौन–सी दिलचस्पी इनमें है। मेरे तो वैसे ही फेसबुक पर हज़ारों दोस्त हैं जब चाहा पेंगें बढ़ाई जब चाहा किसी को भी अनफ्रेण्ड कर दिया। मेरी हर सेल्फी पर सौ दो सौ लाइक्स और कमेण्ट्स आते हैं रात तो यूँ ही गुज़र जाती है।"[74]

शैलजा की बात उसकी सहेली सादिया के ज़रिए सादिया के चचा नईम, जो एक प्रोपर्टी डीलर हैं, तक पहुँचती है। वह शैलजा को साइबर क्राईम में फँसती देख उसे समझाते हुए कहते हैं– "होश में आओ शैलजा! तुम्हें नज़र नहीं आ रहा है कि कोई आदमी शादी करने जा रहा हो। वह न लड़की से मिलने की चाहत रखता हो न उसे 'हैपी बर्थडे' कहने के लिए फ़ोन करता हो..... .....तो आख़िर यह है कौन बन्दा? कहीं तुम्हें वहाँ भेजकर यह डॉलर्स भरा बैग तुम्हारे ज़रिए कहीं और स्मगल्ड तो नहीं कराने वाला है? तुम जेल की सलाखों के पीछे एक अपराधी बन सड़ोगी और उसका मनीट्रैफिकिंग हो जायेगा या फिर वह झाँसा दे तुम्हें वहाँ बुला रहा हो ताकि तुम उसकी मर्ज़ी की गुलाम बन कभी घर लौटो ही नहीं। जाने कितना कुछ घट रहा है चारों तरफ़।... जानती हो अमेरिकन आर्मी ने नेट पर एक नोटिस वायरल की है कि अमेरिकन आर्मी ऑफ़िसर बताकर उनकी तस्वीरों का ग़लत इस्तेमाल करके किस तरह औरतों के ज़ज़्बातों से क्रिमिनल नेट रैकेटियर्स उन्हें ठगते हैं। उन्होंने बाकायदा आम लोगों को होशियार किया था। मैंने तो सुना यह भी है कि शॉपिंग बुक से यह सामानों का चित्र दिखा उन्हें रिझाते हैं। रेडीमेड गार्मेण्ट की शॉपिंग बुक से मॉडेल की तस्वीरें अपने फेसबुक पर डालते हैं। खाने की मेज़ पर हमारे यहाँ इन बातों को बताते हुए हमको बड़े समझाते हैं।"[75]

उपन्यास के अन्त में सामाजिक सन्देश देती हुई लेखिका कहती हैं कि हमको इन्टरनेट का इस्तेमाल केवल अपने मतलब तक ही करना चाहिए। ज़रूरत से ज़्यादा इस्तेमाल हमें इसका आदी बना देता है और हम अनजानी अंधी राहों पर चल बैठते हैं। जब शैलजा पूरे माजरे को समझ जाती है तो वह इन्टरनेट से दूरी बना लेती है। इसलिए जब मनीषा उसे कहती है कि "मैं लैपटाप यूज़ करने जा रही हूँ।"[76] तो वह कहती है कि 'आएम नो मोर नेट बेबी! ग्रैण्डपा इज़ माई हेल्पर ओनली।'[77]

यही बात हर शख़्स को समझने की जरूरत है। क्योंकि इसका सीमित इस्तेमाल ही ठीक है। नहीं तो यह हमें काल्पनिक दुनिया में भटका–भटकाकर कहीं का नहीं छोड़ता।

14. एड्स की भयावहता वेश्यावृत्ति एवं लेसबियन सम्बन्ध

घर से लम्बे समय तक सैकड़ों किलोमीटर दूर रहने वाले मजदूर, कामगार व नौकरीपेशा लोग सरलता से इस लाइलाज बीमारी की चपेट में आ जाते हैं। बड़े–बड़े शहरों व नगरों में यह वेश्यावृत्ति का पेशा चरम पर होता है। साथियों की संगत व बहकावे में आकर अक्सर नौकरीपेशा, कामगार व मजदूर वर्ग के लोग शारीरिक भूख मिटाने के लिए असुरक्षित यौन सम्बन्ध बना बैठते हैं और बदले में मिलता है तिल–तिलकर मरने का अभिशाप। 'पारिजात' उपन्यास में जब रोहन दत्त सऊदी अरब में अपने पुराने क्लाइंट वलीद इब्ने ख़ालिद के घर पहुँचता है। इस बार ख़ालिद उसे अपने बाग़ में ले गया, जहाँ उसका विला था। हरियाली और फ़व्वारों से भरा विला उसे

अजीब राहत दे गया। जब रोहन 'यह तो जन्नत है'[78] कहकर वहाँ की तारीफ करता है तो मौका देखकर खालिद उसे उकसाता है– "बस, हूरों की कमी है।"[79]......... "तुम चाहो तो वह भी आ सकती है। तुम तो सिंगल हो आजकल। कोई पाबंदी नहीं, कोई गुनाह नहीं।"[80] लेकिन रोहन उससे मना कर देता है और कहता है– "हूरें..........बसरे की हूरें मशहूर थीं कभी।"[81]

पारिजात उपन्यास में ही रूही की माँ फ़िरदौस जहाँ अतिया से फोन पर बातचीत के दौरान लखनऊ की 'ज़नान बाजारी' पर चर्चा करती है। "फिरदौस जहाँ ने सुना–पढ़ा दोनों था कि ग़दर के दिनों की तबाही और बरबादी में ख़ास व आम के हज़ारहा घर दाने–दाने को मोहताज हो उठे थे। उस वक़्त 'ज़नान बाज़ारी' ख़ूब पनपी। निचले और ग़रीब घर की औरतें अपने घरों की छत और खिड़की पर बैठने लगी थीं। इनको लखनऊ ज़बान में क़साबियाँ और टकाबियाँ कहा जाता था। टकाबियाँ ज़्यादातर चावल वाली गली, अकबरी दरवाज़े के पास छोटे–छोटे कमरों में रहतीं जो ज़्यादातर खाने की दुकानों के ऊपर होते। जो इनसे बेहतर और साफ़–सुथरी होती, साथ ही गा–बजा भी लेती थीं, वह 'रंडी' कहलाती थीं। यह भी पेशेवर थीं। पुराने चौक बाज़ार की रौनक़ कभी इन्हीं रंडियों के चलते थे।.......दर–असल यह शरीफ़ घरों की औरतें थीं, जो छुपकर पेट की आग बुझाने और खानदान पालने के चलते बेहद मजबूरी की हालत में यह क़दम उठाती थीं। यहाँ भी दलाल होते, मगर इनके यहाँ आने वाले ज़्यादातर अच्छे ख़ानदान के जवान होते, जिन्हें सिर्फ़ जिस्म की जरूरत पूरी करनी होती।"[82]

'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में भी विदेशी सैन्य आक्रमण से बगदाद शहर नष्ट हो जाता है। जो समर्थ थे, वे देश छोड़ देते हैं। लेकिन जो गरीब हैं, वे दाने–दाने को मोहताज हैं। चारों तरफ लूट–मार मची रहती है। तब ऐसे घरों की महिलाएँ परिवार का लालन–पालन करने, खाने व दवाईयों की व्यवस्था करने के लिए मजबूर हो जाती हैं। लोग सहायता करने की एवज में उनकी अस्मत से खेलते हैं और इनसानियत को तार–तार कर देते हैं। समीरा जब बाजार से लौटती है तो एक गली में उसकी मुलाकात उसकी पुरानी सहेली रुया से होती है। तब रुया अपनी बदहाली बयां करती हुई समीरा से कहती है– "मैं अपना बदन नुचवाती हूँ........अपने हम–शहरियों से.....और क्या करूँ, ईमान को लेकर चाटूँ या इस्मत को लेकर नाचूँ? देखो, अब मेरे पास इतने रियाल हैं कि मैं हफ़्ता आराम से गुज़ार सकूँ......अल–बाक़र मुझे गाली देता है, बदकार और बेवफ़ा कहता है, शहवतरानी का इल्ज़ाम देता है, फिर मेरे पैरों पर गिरकर फूट–फूटकर रोता है जब इन पैसों से उसके पेट की आग बुझाती हूँ। उसके लिए पेनकिलर और मालिश का तेल ख़रीदती हूँ, ज़िन्दगी का इतना बदसूरत चेहरा देखने के हम हक़दार नहीं थे, जो हमने बोया नहीं वह हम क्यों काट रहे हैं?"[83]

नासिरा जी कहती हैं कि लेसबियन संस्कृति आज हर देश व हर समाज की समस्या बन चुकी है। इसके कारण समाज में कदाचार बढ़ रहा है। अप्राकृतिक यौन सम्बन्ध व अमर्यादित रिश्ते समाज को गलत दिशा में ले जा रहे हैं। रोहन की विलायती पत्नी 'एलेसन' इसी प्रकार के सम्बन्ध रखती थी। रोहन से उसका वकील कहता है– "सिस्टर हुड बढ़ रहा है। हम लोग किसी तरह रँगे हाथों किसी एक को पकड़ना चाहते हैं ताकि पूरा गैंग हाथ आ जाए। लेसबियन हमारी नेशनल स्तर की समस्या है प्लीज़ हेल्प अस!"[84]

15. बच्चों के साथ अमानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं अत्याचार

नासिरा जी ने अपने 'ज़ीरो रोड़' उपन्यास में देश–विदेश में बच्चों के साथ हो रहे अत्याचार, कदाचार व अमानवीयतापूर्ण व्यवहार पर खुलकर आवाज उठाई है। बच्चों के साथ हो रहे अत्याचारों की गम्भीरता को देखते हुए कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर में बच्चे सर्वाधिक असुरक्षित हैं। दुनिया भर में मासूम बच्चों का शोषण किया जा रहा है। बच्चों की चोरी व अपहरण की घटनाएँ आज सामान्य सी हो चली हैं। लेखिका ने नोएडा में बच्चों पर किया गया अत्याचार, बगदाद में बच्चों को भूख से तड़पाकर मारना, एच.आई.वी. युक्त खून बच्चों को चढ़ाना एवं जबरन ए.के. 47 बन्दूक देकर जंग में धकेल देना आदि क्रूर सत्यों को इस उपन्यास में उजागर किया है। रामचन्द्रन सिद्धार्थ से कहता है– "हैप्पी न्यू इयर कैसा सिद्धार्थ! खबर देखा जो नोएडा में कांड हुआ है– मासूम बच्चों के साथ। अपहरण, बलात्कार, हत्या और फिर उनके मांस का सेवन।"[85] यह कांड दिल्ली से लगे इलाके में हुआ है। पुलिस व्यवस्था इस खबर से बेखबर है। रिपोर्ट लिखवाने के बावजूद भी वे इस ओर ध्यान नहीं देते। "आज तक अपहरण हुए बच्चों का पुलिस पता नहीं लगा पायी शायद इसलिए कि वह गरीब थे। उनके माँ–बाप एफ.आई.आर. लिखवाकर केवल रो सकते थे, जोर नहीं डलवा सकते थे।"[86]

उपन्यास के एक पात्र 'तुतला' के माध्यम से अनाथ बच्चों की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। तुतला तीन–चार साल का अनाथ बच्चा है। पास के गाँव में जमीन–जायदाद के चलते हुए भाईयों के झगड़े में मरने वालों में जीवित बचा यह अकेला बच्चा है। पुलिस इसे उठा लाई। इलाज करवाकर छोड़ दिया। जो जवान कट जाने के कारण तुतलाकर बोलता है। तुतला एक छोटा–सा प्रतिनिधि है उन अनाथ व बेसहारा बच्चों का जो लाखों की तादाद में दर–दर की ठोकर खाने को मजबूर हैं। मुन्ना हाफ़िज साबरा से कहते हैं– "देख लो यह एक दिन की बात नहीं है। लावारिश बच्चा है। यतीमों की बड़ी जिम्मेदारी है। फिर इस मुल्क में फिलहाल ऐसे बच्चों की कमी नहीं है, चारों तरफ यही बिखरे हैं।"[87]

एच.आई.वी. के डर से मासूम लड़कियों को वेश्या बना दिया जा रहा है। रमेश शुक्ला सिद्धार्थ को बताते हैं– "भारत और नेपाल में एच.आई.वी. के डर से यह धंधा बहुत पनप गया है। मुझे तो यह सोचकर दहशत होती है कि आने वाले वक़्त में क्या पीढ़ियाँ सिर्फ बीमार रहेंगी।"[88]

राष्ट्रों की आपसी दुश्मनी, फासिस्ट सोच एवं असीमित महत्त्वाकांक्षा के कारण एक–दूसरे पर तरह–तरह के अत्याचार करते हैं। इस आपसी खींचतान व छीना–छपटी के बीच अबोध बच्चों तक को बख़्शा नहीं जाता है। ईयाद कहता है– "मैंने सुना था कि इज़्राइल पुरानी दवाएँ और एच.आई.वी. युक्त ब्लड इराक के अस्पतालों में पहुँचा रहा था।......उन्होंने एच.आई.वी. के जरासीमयुक्त खून बच्चों को चिल्ड्रेन्स वार्ड में दिया। कितने सौ बच्चों का भविष्य भाड़ में गया।"[89]

इराक में शिया और सुन्नी स्वयं की श्रेष्ठता एवं सत्ता साबित करने के लिए एक–दूसरे पर लगातार अत्याचार करते रहते हैं। यह नस्लवादी संघर्ष इतने नीचे गिर जाता है कि मासूम बच्चों को भूख से तड़पा–तड़पाकर मार दिया जाता है। "बगदाद के किसी यतीमखाने की ख़बर थी जहाँ बच्चे हड्डियों के ढाँचे बने जमीन पर पड़े थे। उनमें से एक बच्चे के सारे बदन पर मक्खियों के झुंड थे जो आँख, नाक, कान, मुँह में घाव को खा रहे थे उसे मुर्दा समझा गया मगर उसके घूमते दीदों से लगा कि वह जिंदा है।"[90]

जो उम्र बच्चों के खेलने–कूदने, पढ़ने–लिखने की होती है, उस उम्र में बच्चों को जबरन जंग में धकेल दिया जाता है। मजबूर अभिभावक शासन का विरोध तक नहीं कर सकते हैं। युद्ध से लौटकर आने वाले बच्चों को अभिभावक स्वीकार करने से कतराते हैं। इस विडम्बनात्मक स्थिति का चित्रांकन करते हुए फिरोज मिखची कहते हैं– "अंगोला में हुए युद्ध के चलते बच्चे तक जंग में झोंक दिए गए........अंगोला में अपने क़द के बराबर की ए.के. 47 लेकर बच्चे चलते तो देखकर अजीब लगता था।"[91]

इस तरह देश एवं विदेश में अबोध बच्चों पर ढहाये जा रहे तरह–तरह के कहरों का चित्रांकन करते हुए लेखिका ने वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के भविष्य के प्रति गहरी चिंता व्यक्त की है लेकिन लेखिका अपनी आशावादी सोच के लिए जानी जाती है। जब चारों तरफ अंधकार घिर जाये तो कहीं न कहीं उम्मीद की किरण भी दिखाई देती है। यह उम्मीद है आज की नई सोच लिए नई पीढ़ी। अक्षयवट का 'ज़हीर', कुइयाँजान के डॉक्टर कमाल और 'ठीकरे की मंगनी' की महरुख़ इसी विचार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि हम एक–एक बच्चे को भी सहारा देना शुरु करें, अपने आस–पास ही जागरुक नागरिक की भूमिका निभाएं, तो लगभग आधी समस्याएं स्वतः हल हो जाएंगी। डॉ. कमाल एक दिन मरीजों को देखकर घर लौटते हैं तो घर के दरवाजे से चिपके खड़े एक लड़के को देखते हैं। बुआ नानी से पता चलता है कि यह बदलू है और मस्जिद वाली गली में मौलाना साहब के साथ रहता था। पर मौलाना के गुजर जाने के बाद

लोगों के दिये टुकड़ों या केवल पानी पीकर गुजर–बसर करता है। तब कमाल उसे अन्दर बुला कर सारा माजरा पूछता है और उसे अपने घर रख लेता है। "बदलू के आने से बुआ को बहुत आराम हो गया था। अब अपनी पसंद की ताजा तरकारियां घर आतीं......बदलू भी पेटभर खाना खाने और रोज नहाने से बड़ी प्यारी सूरत का निकल आया था।"[92]

ठीक इसी तरह अक्षयवट का ज़हीर अपने घर पर ही 'मुस्कान' नाम से एक संस्था चलाता है जिसमें अनाथ बच्चों का लालन–पालन व गरीब बच्चों की शिक्षा–दीक्षा का काम करता है। "जहीर ने एक संस्था की नींव 'मुस्कान' नाम से डाली। जिसका काम था कामगार बच्चों को रात्रि पाठशाला में दो घण्टे पढ़ाना। यह काम उसने अपने घर से शुरु किया था।"[93]...... "'गुलाब' हफ्ते भर बाद ठीक हो गया तो शगुन बीमार पड़ गयी। इसी बीच 'मुस्कान' में एक तीन साल की लड़की बेला और एक ढाई साल के लड़के 'कमल' के आने से घर की चहल–पहल और बढ़ गयी थी।"[94]

16. बेरोजगारी

स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर नहीं होने के कारण समाज में अनेकानेक समस्याएँ जन्म ले लेती हैं। रोजगार की तलाश में घर–परिवार से दूर होने के कारण दोनों स्तरों पर समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। बूढ़े माँ–बाप, अबोध बच्चे व असहाय पत्नी सहारे को तरसते हैं तो बेरोजगार युवक के सहज रूप से गलत रास्ते पर चलने से भी इनकार नहीं किया जा सकता। 'जीरो रोड़' उपन्यास का प्रमुख पात्र एक बेरोजगार नवयुवक सिद्धार्थ है। उसको अधिकारी की नौकरी का आश्वासन देकर अवैध रूप से दुबई भेज दिया जाता है। वहाँ जाने के पश्चात् विपरीत घटता है। लेकिन वह एम.ए. पास शिक्षित युवक मजदूरी कर सौभाग्य से सुपरवाइजर बन जाता है। दुबई शहर में एक ओर बेरोजगारी एवं बेकारी के कारण आये हुए मज़दूर हैं, दूसरी ओर सांप्रदायिकता, जातिवाद, धर्म एवं बम से खदेड़े हुए लोग हैं। अपनी परेशानियों से चिन्तित सिद्धार्थ कहता है– "मेरी इन परेशानियों से बाबूजी को कुछ लेना–देना नहीं है। उनके पास न दृष्टि है न संवेदना कि उनका बेटा इन बदली परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाता रोज मरता है। यह सोचकर कि वह किस ओर बढ़े? किस छत के नीचे खड़ा हो? पूरे विश्व में कहीं ठहरने व चैन से रुकने की जगह नज़र नहीं आती है। बस हालात के पैराशूट से जो जहाँ गिरा वहीं छटपटाता–सा पड़ा है।"[95]

यह छटपटाहट अकेले सिद्धार्थ की न होकर मध्यवर्गीय परिवारों से निकले हर उस बेरोजगार नवयुवक की है जो घर–परिवार छोड़कर रोज़ी–रोटी की तलाश में देश–परदेश में बसे हुए हैं। 'कागज़ की नाव' उपन्यास के ज़ाकिर, नदीम आदि पात्र भी इसी समस्या की उपज हैं। अतः वर्तमान सरकारों को चाहिए कि स्थानीय स्तर पर रोजगार विकसित करे तथा गाँवों से

पलायन रुके। यह भी सुनिश्चित करे कि हर युवक के हाथ में हुनर हो न कि चाकू, छुरी और बन्दूक।

इस सम्बन्ध में लेखिका अपना मन्तव्य 'ज़ीरो रोड़' उपन्यास के नायक सिद्धार्थ से कहलवाती है। सिद्धार्थ फुटफाथ पर जाती हुई केरल की औरतों को देखकर सोचता है कि– "केरल में इनकी कमाई जेवर मकान में जाकर जम जाती है। न कोई व्यापार खड़ा कर पाती हैं न छोटा–मोटा कारखाना, जिससे खुद को फायदा हो और इनके प्रांत वालों को। तभी वहाँ गरीबी, भुखमरी और जुल्म बढ़ता जा रहा है, वहीं क्यों, सब जगह यही हाल है। बिहार में भी मोहल्ले के मोहल्ले पक्के मकानों और जेवरों से भरे हैं। मगर चल संपत्ति का अभाव है। लौटकर आदमी उसी गरीबी व बेकारी से टकराता है जहाँ से उठा था।"[96]

17. मजदूर वर्ग की दयनीय स्थिति

नासिरा शर्मा ने 'ज़ीरो रोड़' उपन्यास के कथानक के माध्यम से मजदूर व कामगार वर्ग जो काम–धन्धे की तलाश में दूर–विदेशों में बसा हुआ है, की दयनीय स्थिति को रेखांकित किया है। इस उपन्यास में नासिरा जी ने दुबई के रूप में एक वैश्विक गाँव (ग्लोबल विलेज़) की आधुनिक अवधारणा को चरितार्थ किया है। दुबई औद्योगिक एवं ताजिरों का शहर है। जहाँ लगभग सौ राष्ट्रों के लोग अपनी रोजी–रोटी कमाने के लिए रेगिस्तान में जमा हुए हैं। दुबई की कुल आबादी में स्थानीय लोगों की संख्या मात्र बीस प्रतिशत है। शेष अस्सी प्रतिशत वे मजदूर लोग हैं जो विभिन्न देशों से रोजगार की तलाश में यहाँ आये हैं। इनमें अधिक संख्या भारतीय मजदूरों की है लेकिन इनकी स्थिति बहुत ही दयनीय है। उनके रहन–सहन की स्थिति बेहद तकलीफदेह होती है। सिद्धार्थ अपने घरवालों को बताता है कि– "वहाँ सौ कन्टेनर लाइन से लगे थे जिसमें दो हज़ार मज़दूर जगह–जगह से आकर रह रहे थे। कनटेनर जो चालीस फीट लंबे 7.6 फीट चौडे और आठ फीट ऊँचे थे, जिसके दो हिस्से करके हर हिस्से में आठ लोगों को रहना पड़ता था। उसी में ए.सी. लगे थे। आग बुझाने का सिलेण्डर मौजूद था। बाथरूम और किचन भी। सड़ी गर्मी, ढेरों लोग, अजीब हालात थी।"[97]

लेबर लॉ के अनुसार हफ़्ते में ज़्यादा से ज़्यादा अड़तालिस घंटे मज़दूरी के बन सकते हैं। मगर वहाँ पचास घण्टे से अधिक मज़दूरों से काम करवाया जाता है। यहाँ गर्मी में चक्कर आ जाए, आदमी बेहोश हो जाए, उल्टी कर दे तो भी इन मालिकों का दिल नहीं पसीजता। आधे दिन की छुट्टी तो दूर आधे घंटे की भी छुट्टी नहीं देते। क्रोध में आकर एक कामगार कहता है– "अब हमको चू....बनाने के लिए पाँच दिन काम और दो दिन की छुट्टी देने की बात कर रहे हैं। वह भी काम के घंटे बढ़ाके। तुम खुद सोचो, सुबह साढ़े छह से साढ़े तीन बजे तक बिना

सुस्ताये हम बेदम हो जाते हैं। साला हमें लोहे का समझा है जो अब हमसे साढ़े छह से साढ़े पाँच तक काम करने की बात कर रहे हैं।"[98]

जिस कम्पनी में मज़दूर काम करते हैं, उस कम्पनी का दायित्व होता है कि मजदूरों का स्वास्थ्य एवं रहन–सहन की देखभाल करें। पैसों के लालच में कंपनी मालिक मजदूरों से काम तो ज्यादा करवाता है लेकिन उनके स्वास्थ्य की ओर कोई ध्यान नहीं देता है। यहाँ के डॉक्टर जार्डन और मिस्र के अधिक होते हैं। जिनके पास न डिग्री सही होती है न वह काम जानते हैं। डॉक्टर मरीज से ज़्यादा कम्पनी का साथ देता है। यहाँ भूख से नहीं, गर्मी से नहीं मगर बीमारी से अधिक मजदूर मरते हैं। चूँकि गैर कानूनी तौर पर ये दाखिल कराये जाते हैं सो कौन उनकी सुध ले? डॉ. शाहआलम सिद्धार्थ से कहता है– "मगर मेरी इस खुदगर्जी से उन मजदूरों की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है जो बिना दवा के मर रहे हैं। सिर्फ पेनकिलर से लंग्स का कैंसर और आँतों के जख़्म ठीक नहीं हो सकते हैं। मगर मुझे मज़बूर किया जाता हैं।"[99]

इस प्रकार उपन्यास 'ज़ीरो रोड़' के ज़रिए नासिरा शर्मा ने अरब दुनिया के उस तिलस्म को तोड़ा है जिसके चक्कर में घर–बार बेचकर या एजेंटों को लाखों रूपये देकर यहाँ आते हैं। "घूमने के लिए स्वर्ग और रहने के लिए नरक, इससे बेहतर और बदतर दूसरी कोई जगह दुनिया के नक्शे में नहीं है।"[100]

18. भौतिकवाद एवं बाजारीकरण

आज का समाज भौतिकवाद एवं बाजारीकरण की चमक में चौंधिया सा गया है। भौतिक संसाधनों एवं सुख–सुविधाओं के लालच में इंसान इतना अंधा हो गया है कि उसे अपने–पराये का भान ही नहीं रहा। हर–दम हरपल बस पैसा ही पैसा दिखता है। इसलिए आज समाज पर निगाह डालते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि आज का समाज न पुरुष प्रधान है, न स्त्री प्रधान, वह तो अर्थप्रधान है। अतः आज व्यक्ति का जीवन व जीवनशैली दोनों बाजार पर निर्भर है। जैसे–जैसे बाजार का स्वरूप बदलता है, वैसे–वैसे व्यक्ति के जीवन के रूप रंग भी बदल जाते हैं और यह बदलाव इतने तेज गति से हो रहे हैं कि व्यक्ति व आम इनसान को सोचने का वक़्त ही नहीं मिलता कि क्या छोड़े? और क्या पकड़े? आज भूमण्डलीकरण के इस दौर में दूरियाँ मिट गयी हैं।

नासिरा जी लिखती हैं कि– "आजकल दिल्ली–मुंबई से सीधा माल यहाँ के बाज़ारों में आता है और लड़कियाँ ठीक टी.वी. सीरियलों की तरह तैयार होने की चाहत रखने लगी हैं। वहीं हाल मर्दों का है।"[101]

इस भौतिक प्रगति पर तंज कसते हुए नासिरा जी लिखती हैं कि "हम उस वर्ग को सस्ता अनाज देने से हिचकते हैं लेकिन स्मार्ट फ़ोन देते नहीं शर्माते, यह कौन सी तकनीकी क्रान्ति है कि हमारा मेहनतकश वर्ग बलात्कार के केस में पकड़ा जाता है और किसान आत्महत्या करता है।"[102] अर्थात् हम गलत दिशा में जा रहे हैं। अर्थप्रधानता के साथ–साथ मूल्यह्रास भी हो रहे हैं। इसलिए माजदा की सास उसे समझाती है– "याद रखो अकेला पैसा तहज़ीब नहीं लाता है, कलह लाता है। ख़ुदग़र्ज़ी और दुश्मनी लाता है। आज हमारा शहर, हमारे लोग उसकी चपेट में आ गए हैं। पैसे के लालच ने उन्हें अंधा बना दिया है। अपने ख़ून के रिश्तों के ख़िलाफ़ खड़ा होना सीख गए हैं।"[103]

19. जल की कमी

जल ही जीवन है; जल है तो कल है; पानी बचाओ, वृक्ष लगाओ ; धरती बचाओं इत्यादि नारे जो वर्तमान समय में जोर–शोर से उठाये जा रहे हैं, ये संकेत है उस भयानक त्रासदी के या आने वाली समस्या के, जिसका समाधान समय रहते आज नहीं ढूँढा गया तो सब कुछ नष्ट हो जायेगा। वह समस्या है– 'भीषण जल संकट'। इसी संकट को अपने लेखन का आधार बनाते हुए नासिरा जी ने रच दिया एक बृहद् उपन्यास 'कुइयाँजान'। "इंसानी संवेदना और धरती से पानी के सूखते जाने की कहानी को वरिष्ठ उपन्यासकार नासिरा शर्मा ने एक पूरे उपन्यास में इस तरह ढाला है कि कहानी ख़ुद–ब–ख़ुद बहती चली गई लगती है। यह उपन्यास बताता है कि ज़मीन और इंसान की प्यास कैसे एक–दूसरे से गहरे में जुड़ी हैं। पानी के रहने और न रहने पर, दोनों हालातों में इंसानी रिश्ते के रंग और संबंध मुखतलिफ हो उठते हैं।"[104]

उपन्यास का प्रारम्भ ही मस्जिद वाली गली की पुरानी खण्डहर मस्जिद के बूढ़े मौलाना के इंतकाल की ख़बर से होती है लेकिन समस्या यह होती है कि गुस्ल–मैयत के लिए पानी नहीं था। चौराहे के खंभे में आग लगने से तार जल जाने के कारण बिजली भी नहीं थी, जो नलों में पानी आता। अतः बड़ी परेशानी खड़ी हो गयी। होनी भी थी क्योंकि "मोहल्ले के कुएं बरसों पहले कूड़े से पाट दिए गए थे। एक–दो घरों में हैंडपाइप थे, जो खराब पड़े थे। मस्जिद वाली गली से मिली अंदरसेवाली गली थी। वहाँ पक्के बड़े–बड़े घर थे। उनके यहाँ भी पानी की हाय–तौबा मची थी। शिव मंदिर के पुजारी भी बिना नहाए परेशान बैठे थे। उन्होंने न मंदिर धोया था, न भगवान को भोग लगाया था। उनके सारे गगरे–लोटे खाली लुढ़के पड़े थे। नल की टोंटी पर कई बार कौआ पानी की तलाश में आ–आकर बैठ–उड़ चुका था। गरमी ऐसी की पसीना पानी की तरह शरीर से बह रहा था। पता नहीं किस आशा में पंडितजी बार–बार नल खोलते, फिर बंद कर बड़बड़ा उठते, "पग–पग रोटी, डग–डग नीर....मगर अब...........ई शहर का कईसा हाल बनाए दिए हो भगवान। न पानी है, न रोटी है!"[105]

बदलू, जो मौलाना का एकमात्र सहारा था, के मुँह से समस्या सुनकर बूढ़ी औरत कहती है– "लानत है ऐसे नलके पर! अपने तो कुएं–तालाब भले रहे, जो काम के बख्त धोखा तो नहीं देत रहे।"[106] अन्त में खुरशीदआरा के घर में कुँए को आधा पटवाकर बनवायी गयी उसी टंकी के पानी से गुस्ल के लिए पानी की व्यवस्था होती है जिसमें बरसात का पानी जमा किया जाता था जो घर में शादी–ब्याह के समय छोटे–मोटे काम–काज में बहुत काम आता था। इस पर खुरशीदआरा मन ही मन सोचती है कि "समीना की बात मान अगर मैं इसे बराबर करवा देती तो ऐसी मुश्किल की घड़ी में आज मरने वाले, खुदा उन्हें जन्नत में जगह दे, के काम न आती। सच कहा है किसी ने–बुजुर्गों के हर काम में कोई दूरंदेशी जरूर रहती थी।"[107]

इतवार के दिन जब सारी रात बिजली आई। सारा मोहल्ला फिर से सहज हो उठा। शिव मंदिर से नियत समय पर आरती की आवाज आ रही थी। मास्टर जी कूलर की हवा में सारी रात सोकर उठे। सुबह श्रीमतीजी ने तरोताजा चेहरे से गरमा–गरम चाय की प्याली थमायी तो घूंट भरते ही मास्टर जी गुनगुना उठते हैं–

"रहिमन पानी रखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून।।"[108]

स्नानघर में जी भरकर ठंडे पानी से नहाकर और जलपान कर जब मास्टर जी अखबार देखने लगे। 'जल ही जीवन है' नाम से सम्पादकीय लेख को वे जैसे–जैसे पढ़ते जा रहे थे वैसे–वैसे उनकी आंखें फटती जा रही थी। क्योंकि लेख में लिखा था– "आज विश्व में आंकड़ों द्वारा ज्ञात होता है कि लगभग एक अरब से ज्यादा लोगों को साफ पानी पीने के लिए उपलब्ध नहीं है। दो अरब लोगों को नहाने–धोने के लिए पानी नहीं मिल पाता, जिससे लोग अनेक तरह के रोगों का शिकार हो रहे हैं। मृत्यु–दर दिन–प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है।.......यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि छत्तीसगढ़ में भिलाई के पास शिवनाथ नदी की 22 कि.मी. की पट्टी को एक निजी कम्पनी के हाथ में देकर वहाँ के लोगों के लिए नदी में प्रवेश पर रोक लगा दी गई है। इस तरह से हम देखते हैं कि नदियों के अस्तित्व पर खतरे के बादल मंडरा रहे हैं। वह दिन बहुत दूर नहीं है जब हमें अपनी ही नदियाँ पराई लगने लगेंगी।"[109] लेख को पढ़कर मास्टरजी चकरा से गये। पानी के अपव्यय और हकीकत से आज उनकी आँखें खुली। दर असल हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि जल संकट के लिए हम भी कम दोषी नहीं है।

इलाहाबाद का डॉक्टर कमाल एक जागरुक नागरिक है। वह अपनी भूमिका ठीक से निभा रहा है। सामाजिक कार्यों में उनकी बढ़ती रूचि को देखकर जब उनकी पत्नी समीना प्रश्न करती है। तब कमाल कहता है– "यह तो तुम भी जानती हो कि मैं बाई प्रेक्टिस डॉक्टर हूँ। मेरा काम मरीजों को देखना, उन्हें सेहत देना है, ठीक है न? मगर, वह डॉक्टर उन वजहों से आँखें

तो मूंद नहीं सकता है जिसके कारण ये बीमारियाँ इंसानी जिस्म में दाखिल होती है। अगर वह कारण नहीं बताएगा तो लोग कैसे अपना बचाव करेंगे? तीसरी अहम बात यह है कि डॉक्टर भी एक इंसान है। उसके दिल में भी कई तरह के जज्बात होते हैं। उन अहसासात को वह गोली और खुराक पिलाकर मुतमईन तो कर नहीं सकता है। उस अहसास को बयान करने के लिए वह इंसानी हरकत ही तो करेगा? इसलिए ये तीनों–चारों चीजें एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं।"[110] अर्थात् मैं डॉक्टर के साथ–साथ समाज–सुधारक, समाज–आलोचक तथा समाज–सेवी की भूमिका में भी होता हूँ।

डॉक्टर कमाल जब जल–समस्या पर आयोजित सेमिनार में भाग लेने बीकानेर जाते हैं तो ट्रेन के अन्दर 'पानी की समस्या' पर बहस छिड़ जाती है। सब अपने–अपने तर्क देते हैं जिनमें कुछ न कुछ सच्चाई निहित होती है। बहस के दौरान अनेक तर्क सामने आते हैं। जैसे– "हमने अंग्रेजों की जल–नीति को वैसे–का–वैसा स्वीकार कर अपनी भारतीय जल–व्यवस्था का बेड़ा गर्क कर दिया और कुएं–तालाब को आउटडेटेड करार देकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है। गुलामी हमारे खून से अभी गई नहीं है।"[111]

"कहते हैं, ऐसे लोगों को–जो अपनी परम्परा से जुड़े थे, उन्हें अंग्रेजों की धमकियां मिलती थीं। इसी कारण सांसी, भील जैसे जातियों को इस टकराव के चलते–अंग्रेजी राज ने ठग और अपराधी घोषित कर दिया गया। हमारे अनुभवी लोग गंवार बना दिए गए और उनकी जगह नई व्यवस्था लाई गई। अरे साहब, सन् 1800 में दीवान पूणैया मैसूर राज देखते थे। उस समय राज्य–भर में उनतालीस हजार तालाब थे। कहा जाता था कि वहाँ किसी पहाड़ी की चोटी पर एक कतरा पानी गिरे, आधा इधर, आधा उस तरफ बहे; क्योंकि दोनों तरफ इन बूंदों को संभालने वाले तालाब मौजूद थे। समाज के अलावा राज भी इन उम्दा तालाबों की देख–रेख के लिए हर वर्ष धन देता था। ऐसे महारथी दूरंदेशी लोग अंग्रेजों के आते जाहिल करार दे दिए गए।"[112]

"कालाहांडी में कभी एक हजार तीन सौ मि.मी. वर्षा हुआ करती थी। यह सपना नहीं, पुस्तकों में दर्ज सच है; मगर जैसे ही वन काटे जाने लगे, सूखे के दैत्य सिरों पर मंडराने लगे। यही हाल दक्षिण भारत में तमिलनाडु के रामनाथपुरम्, बुनियादीपुरम् और मुतुरामलिंगन के ताल–पोखरों को हो गया है।"[113]

एक सेमिनार में मिश्र जी डॉ. कमाल को राजस्थान के लोगों द्वारा अपनायी जाने वाली वर्षा–जल–संचय की परम्परागत तकनीकों के बारे में बताते हैं– "यह बात तो गर्व करने लायक है कि जल संजोने की परम्परा हमारे अलावा और किसी प्रांत में देखने को नहीं मिलती। माना कि यह हमारी जरूरत है, मगर जरूरत को कला का रूप मरुभूमि ने दिया है............कुआं पुल्लिंग है, कुईं स्त्रीलिंग। कुईं केवल अपने व्यास में छोटी होती है मगर गहराई में नहीं। हां, इनकी गहराई

कम और ज्यादा अलग–अलग स्थानों पर भिन्न–भिन्न होती है। कुईं एक अर्थ में कुएं से बिलकुल अलग है। कुआं भूजल तक पहुँचने या पाने के लिए बनता है, पर कुईं भूजल से ठीक वैसे नहीं जुड़ती है जैसे कुआं, बल्कि कुईं वर्षा के जल को बड़े विचित्र ढंग से समेटती और संजोती है। तब भी जब वर्षा ही नहीं होती। पानी कुईं में न तो सतह पर बहने वाला पानी है न भूजल है। यह तो 'नेति–नेति' जैसा कुछ पेचीदा मसला है।.........बरसी बूंद–बूंद रेत में समाकर नमी में बदल जाती है। जब कुईं ऐसी जगह पर बनती है तो उसका पेट, उसकी खाली जगह चारों तरफ रेत में समाई नमी को फिर से बूंदों में बदलती है। बूंद–बूंद रिसती है और कुईं में पानी जमा होने लगता है......खारे पानी के सागर में अमृत जैसा मीठा पानी।......इस अमृत को पाने के लिए राजस्थानी समाज ने बड़ा मंथन किया है।"[114]

प्राचीन भारत में हर क्षेत्र की अपनी सिंचाई प्रणाली थी। हर इलाके की आवश्यकता के अनुसार उसका निर्माण वजूद में आया था। वह हमारी जमीन की बनावट से निकाली गई इंसानी उपलब्धियाँ थीं। ऐसी ही एक प्रणाली थी– मध्य बिहार में अपनायी जाने वाली 'आहर–पइन सिंचाई प्रणाली'। इस इलाके में ढलान चूँकि प्रति किलोमीटर एक मीटर पड़ती है, सो उसी बनावट को हमारे पूर्वजों ने इस्तेमाल कर एक या दो मीटर ऊँचे बांधों के जरिये पोखर बनाए जिन्हें स्थानीय भाषा में 'आहार' कहते हैं। बड़े बांध के दोनों छोर से दो छोटे बांध भी निकाले जाते थे जो ऊँचाई की तरफ होते थे। इस तरह से आहार जल को तीन तरफ से घेरने की व्यवस्था बनाई जाती थी। तालाबों की तरह इनकी तलहटी की खुदाई संभव नहीं थी। यह पोखर कभी–कभी पइनों और स्रोतों के नीचे इस विचार से भी घेरे जाते थे, ताकि इनमें लगातार पानी इन दोनों स्रोतों से भी आकर भरा रहे। यह कितने कारामद होते थे, इसका अंदाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि एक लंबे आहार से बड़े आराम से 400 हेक्टेयर से कुछ अधिक जमीन की सिंचाई हो जाती थी।........इसी तरह पहाड़ी नदियों से खेतों तक पानी पहुँचाने के लिए पइनों का प्रयोग किया जाता था। यह पइन 20–30 किलोमीटर तक लंबे होते थे और प्रशाखों में बंटकर सौ से भी अधिक ज्यादा गांवों के खेतों की सिंचाई करते थे। दक्षिण की नदियाँ गर्मी में सूखी और बरसात में उफनती थीं सो उनका बढ़ा पानी बाढ़ की जगह ढाल से बह पइनों एवं आहरों में भर अपनी राह बना लेता था। आज हम विकल्पों की ओर भागते हैं और अपनी व्यवस्था से मुँह मोड़ लेते हैं। आहर–पईन प्रणाली जातक युग से ही हमारी सिंचाई–व्यवस्था में शामिल रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'आहरोदक–सेतु' से सिंचाई का जिक्र है। मेगास्थनीज के यात्रा–विवरण में भी बिहार की बंद मुंह वाली नहरों से सिंचाई का उल्लेख मिलता है। हम नए से नए विकल्प ढूंढ़ने के स्थान पर अपनी पुरानी प्रणाली की तरफ ध्यान दें, क्योंकि वह हमारे इलाके की भौगोलिक बनावट के अनुकूल थी।[115]

वर्तमान में 'नदियों को जोड़ने की बात' बड़ी पुरजोर तरीके से उठाई जा रही है। इलाहाबाद के गांधी–प्रतिष्ठान में 'नदियों का जुडना : एक महत्त्वाकांक्षी परियोजना' विषय पर आयोजित सेमिनार में अपने विचार रखते हुए डॉक्टर कमाल कहते हैं कि– योजना–परियोजना के बीच हम स्वास्थ्य को नकार देते हैं। यह सोचकर कि जल–जमीन–जानवर से शरीर का क्या संबंध? जल और शरीर का संबंध इतना गहरा है, जिसकी आप कल्पना नहीं कर सकते हैं। विश्व बैंक के एक आकलन के अनुसार, भारत में जल–प्रदूषण से स्वास्थ्य पर आने वाला खर्च देश के सकल घरेलू उत्पाद का तीन प्रतिशत है। भारतीय नदियाँ तो पहले से ही प्रदूषित हैं, ऊपर से उनको जोड़ने से इस लागत में यकीनन बढ़ोतरी के इमकान हैं। पृथ्वी पर जो परिवर्तन आएगा, उससे मानव–शरीर कैसे बच सकता है?........अभी तो हम एक नदी को साफ नहीं कर पा रहे हैं, तब अनेक नदियों की देखरेख का क्या होगा? तब उसका बजट क्या होगा? वह कहाँ से आएगा? यानी कि भारी–भरकम ऋण का एक और बोझ हम पर।[116]

"हम सब इस तथ्य को जानते हैं कि नदियों का मिलाना एक रोमांटिक खामखयाली है, जो व्यावहारिक नहीं। यहां भ्रम ही भ्रम है। हम यह भी जानते हैं कि जल–परियोजनाओं के संदर्भ में अंतर नदी बेसिन प्रबंध की चर्चा नेशनल–इंटरनेशनल कानूनों में है। दस्तूरजी की योजना पर की गई टिप्पणी भी आप सबको याद होगी। उसे अव्यावहारिक बताया गया था। यदि हम कुछ और पीछे जाए लगभग 1750 में तो हमें याद आएगा कि नदियों को जोड़ने का अनुभव लखनऊ के गाजीउद्दीन हैदर ने सबसे पहले गंगा–गोमती को लेकर किया था, जो व्यावहारिक न होने से विफल रहा। पहला तो यह कि गंगा का तल निचाई और गोमती का ऊँचाई पर था। हैदर कनाल खुद गई। उसमें पानी भी आया मगर बरसात के दिनों में, जबकि कनाल का उद्देश्य था कि गर्मी में वह गंगा के पानी से जल की कमी को पूरा करेगी, जो टोपोग्राफी के कारण संभव न हो सका और आज वह नहर शहर का गंदा पानी गोमती में फेंकने के काम में आ रही है।.........सपने और यथार्थ, योजना और व्यावहारिकता में फर्क है! कोई अंतर्दृष्टि न होने कारण हमारा श्रम, धन, समय सब व्यर्थ गए।.....हम नदी से नदी जोड़ने की बात करते हैं, यानी कि पानी जहां है वहां पानी ले जाने की बात हो रही है, मगर जहाँ नदियां सूख गई हैं वहाँ क्या होगा?.......हम स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि जब एक बांध बनाने से कई लाख लोग विस्थापित हो जाते हैं तो नदियों के जोड़ने से कितने लाख गाँव उजड़ेगे? उसके रास्ते में आने वाले कितने ही जंगल काटे जाएंगे? जिससे चरिंद व परिंद तो बेघर होंगे ही, हमारे मौसमों का क्या हाल होगा? इन्हीं ऋतुओं का आदी हमारा शरीर अधिक गर्मी और कम वर्षा के कारण किन रोगों से ग्रसित होगा? क्या हमारे फल और सब्जियाँ अपने मौलिक रूप में स्थिर रह पाएंगी? जमीन का क्या हाल होगा?"[117]

अन्त में समस्या का समाधान बतलाते हुए नासिरा जी लिखती हैं कि– "प्रकृति ने जो हमें दिए हैं उन स्रोतों को हम सहेजें न कि नई तकनीक का ओछा प्रयोग करने की ललक में कान को गाल पर लगा दें और आंख को सर के पीछे और कहें कि यह हमारी मेडिकल उपलब्धियाँ हैं। बात इंसान की मुक्ति की है, न कि उसे अपनी इच्छाओं की प्रयोगशाला बना सत्यानाश कर डालें।"[118]

"आधुनिक टेक्नोलॉजी में मनुष्य ने उस मूल स्रोत को आदिम करार दे दिया है और अपनी मशीनी ताकत के बल पर प्रकृति के इस अक्षय स्रोत 'जल' से खिलवाड़ कर रहा है। जिसका परिणाम यह है कि अपार जलसंपदा होते हुए भी हम आज प्यासे तड़पने को विवश हो रहे हैं। विशेषज्ञों ने लाख चेतावनी दी है– जिस तरह आज हम इस प्राकृतिक वरदान जलसंपदा को नष्ट कर रहे हैं, उसके कारण वह दिन दूर नहीं जब पानी को लेकर विश्व एक और महायुद्ध की दहलीज पर खड़ा होगा।"[119]

20. ऐतिहासिक धरोहर की उपेक्षा

ऐतिहासिक स्थल, इमारतें, व्यक्तित्व अपने गौरवमय इतिहास से पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोगों को प्रेरणा एवं शिक्षा देते हैं। पर आधुनिकता के नाम पर हम अपने इतिहास को भुला देते हैं। परिणामस्वरूप हमारी ऐतिहासिक धरोहर धीरे–धीरे नष्ट होती जा रही है। जबकि इनका सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आदि दृष्टि से बहुत महत्त्व है। रोहन देखता है कि– "पहले लखनऊ बाग़ों का शहर था। आराम बाग़, निशात बाग़, आलम बाग़, क़ैसर बाग़, चारबाग़, डाली बाग़, बनारसी बाग़, कंपनी बाग़, सफ़दर बाग़, सुंदर बाग़, बंदरिया बाग़, नज़रबाग़, ऐश़ बाग़–अब तो बाग़ नहीं भवन की भरमार होय रही है। भरी सड़कें दिख रही हैं।"[120]

'कुईयांजान' उपन्यास में डॉक्टर कमाल एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म में देखते हैं कि "मरुभूमि में जहाँ पानी मिलता था वहीं आबादी बस जाती थी। इसी कारण थार के मरुस्थल के गाँवों के नाम के साथ 'सर' जुड़ा है, जो इस बात का संकेत है कि वहाँ जलस्रोत किसी न किसी रूप में मौजूद हैं। धीरे–धीरे तालाबों को लेकर समाज का दृष्टिकोण बदला, जिससे उनकी स्थिति पहले जैसी देख–रेख की नहीं रही। तो भी 500 वर्ष पुरानी तालाब–निर्माण परम्परा का बोलबाला रहा।"[121]

इसी तरह "आभानेरी बावड़ी का सौंदर्य देख कमाल चकित रह गया। इंसान में कितना शौर्य, धैर्य, शक्ति, कला, भावना, निष्ठा और जाने क्या–क्या छुपा हुआ है! आभानेरी की वीरानी में नाचते मोर किस उत्सव की कल्पना को साकार कर खुशियां मना रहे थे।.......यह तो उस धरती पर रहने वालों की गहरी समझ थी जो संवेदना का दम रखती है। तभी तो भीनासर में गहरा और

मीठे पानी का कुआं है, जिसके लिए कहा जाता है कि उसका जल पीकर रोगी तक निरोग हो जाते हैं। खारे जल के बीच भीनासर एक रूपक की तरह है जो राजस्थानियों की आत्मा की गहराई में बैठ उनके मानवीय सरोकारों का रूप धरता है।"[122]

"अयोध्या का घाट 'राम की पौडी' जहाँ राम ने जलसमाधि ली थी। उस घाट की जो दशा थी उसे देखकर डॉ. कमाल को गहरा धक्का लगा था। सीढ़ियों पर गोबर और सरयू नदी के जल पर मच्छरों का जाल.........।"[123]

इस प्रकार हर ऐतिहासिक स्थल हमारे पूर्वजों की दूरगामी सोच, मानवीय सरोकरों, संस्कारों, आदर्शों तथा कला संस्कृति को स्वयं में समाहित किये रहते हैं। अतः हम सबका कर्त्तव्य है कि इनका संरक्षण करें व इनको स्वच्छ रखें।

21. विभाजन का दंश

भारत–पाक विभाजन को लगभग सात दशक व्यतीत हो जाने पर भी दोनों मुल्कों की निरपराध जनता इसका दंश आज भी झेलने को विवश है। आज भी बिना–सोचे–समझे लोग हिन्दू का मतलब हिन्दुस्तान और मुस्लिम का मतलब पाकिस्तान लेने से नहीं चूकते। जबकि दोनों तरफ सीने में दर्द छुपाकर इंसानियत सिसक रही है। यह पीड़ा, यह दर्द, यह छटपटाहट बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरे गये हैं 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने। लेखिका ने "इस उपन्यास में एक परिवार के माध्यम से इस कद्दावर सच को सामने ला खड़ा किया है कि इतने बड़े ऐतिहासिक हादसे से उपजी पीड़ा किसी एक क़ौम की नहीं, बल्कि समूची इंसानियत की है.... ..इसी सच के कारण यह रचना तमाम भ्रमों, शंकाओं को निरस्त करते हुए इस सच्चाई को सामने लाती है कि राजनैतिक स्वार्थों के कारण भले ही धरती बँट जाए पर इन्सानी रिश्ते नहीं बँटते।"[124]

जब निज़ाम अपनी पत्नी सबीहा व बेटे के साथ एक लम्बे अरसे बाद हिन्दुस्तान लौटता है। तब वह फ़ैजाबाद के सैफ़उल्लाह के सामने उनकी बेटी का हाथ अपने बेटे के लिए मांगता है। तब सैफ़उल्लाह जो जवाब देता है वह एक आम इन्सान के दर्द को उजागर करता है– "आप इस शहर की हालत देख रहे हैं? ऐसी हालत में लड़की का हाथ कैसे किसी पाकिस्तानी लड़के के हाथ में थमा दूँ। पहले के लगाए दाग़ धोते–धोते चालीस–पैंतालीस साल गुजर गए और अब फिर वही बात...। रिश्ते टूट चुके हैं मियाँ...........रिश्तों को अब कोई नहीं पहचानता। जब वह नई बात थी, तो दिल को मसलती थी। एक चने की दो दाल, आज हम दो दरख़्तों में बदल चुके हैं। हमारा माहौल, हमारी सोच, हमारी चुनौतियाँ, सब एक–दूसरे से जुदा हैं...।"[125]

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा एक बहुत संवेदनशील एवं जागरूक महिला कथाकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में समकालीन समाज में व्याप्त हर वर्ग की समस्याओं पर लेखनी चलाई है। उन्होंने समकालीन समस्याओं का चित्रण करते हुए किसी एक वर्ग या समाज की समस्याओं को स्थान न देकर वर्गभेद की दूरी मिटाने का प्रयास किया है और 'सर्वधर्म समभाव' के प्रति गहरा विश्वास प्रकट किया है। हर वर्ग, प्रान्त–देश की समस्या परिवेशगत या संस्कृतिगत भिन्नता के कारण अलग–अलग होने के फलस्वरूप उनका समाधान भी अलग तरह से उसी परिवेश में ढूँढा गया है। साथ ही अनेक स्थलों पर समस्या को इस तरह पाठकों के सम्मुख रखा है कि वे स्वतः समाधान खोज लेते हैं। अतः चाहे नारी–पुरुष सम्बन्ध की बात हो, चाहे बच्चों, जवान और बुजुर्गों की, चाहे मजदूर व शोषित वर्ग हो, चाहे साहूकार व पूँजीपति वर्ग, चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे तकनीक व औद्योगिकीकरण का क्षेत्र, हर बारीक–से–बारीक समस्या के प्रति लेखिका ने पाठकों का ध्यान खींचा है। न केवल ध्यान खींचा है बल्कि पूरी निडरता, साहस व साफगोई के साथ तथ्यपूर्ण तरीके से पेश किया है। केवल काल्पनिक मसाला तैयार कर नहीं परोसा गया है अपितु उसे अनुभव व व्यवहार की कसौटी पर पूरी तरह कसकर पाठकों के सम्मुख रखा है। इसलिए हर पाठक स्वयं को उस समस्या के इर्द–गिर्द ही महसूस करता है।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ सूची

1. नासिरा शर्मा, एक मूल्यांकन, सं. एम. फीरोज अहमद, पृ.–53
2. नासिरा शर्मा, शाल्मली उपन्यास, पृ.–157
3. शाल्मली, पृ.–165
4. शाल्मली, पृ.–165
5. शाल्मली, पृ.–165
6. शाल्मली, पृ.–165
7. शाल्मली, पृ.–165–66
8. शाल्मली, पृ.–56
9. नासिरा शर्मा, दूसरी ज़न्नत उपन्यास, पृ.–37
10. दूसरी ज़न्नत, पृ.–37
11. नासिरा शर्मा, कुइयाँजान उपन्यास, पृ.–47
12. दूसरी जन्नत, पृ.–83
13. दूसरी जन्नत, पृ.–90
14. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी उपन्यास, पृ.–14
15. ठीकरे की मंगनी, पृ.–14
16. ठीकरे की मंगनी, पृ.–19
17. ठीकरे की मंगनी, पृ.–21
18. ठीकरे की मंगनी, पृ.–22
19. ठीकरे की मंगनी, पृ.–20
20. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समन्दर उपन्यास, पृ.–34
21. शाल्मली, पृ.–22
22. ठीकरे की मंगनी, पृ.–88
23. ठीकरे की मंगनी, पृ.–170
24. ठीकरे की मंगनी, पृ.–90
25. ठीकरे की मंगनी, पृ.–88–89
26. नासिरा शर्मा, अक्षयवट उपन्यास, पृ.–64
27. ठीकरे की मंगनी, पृ.–170
28. ठीकरे की मंगनी, पृ.–84
29. ठीकरे की मंगनी, पृ.–84

30. ठीकरे की मंगनी, पृ.–84
31. ठीकरे की मंगनी, पृ.–170
32. कुइयाँजान, पृ.–105
33. ठीकरे की मंगनी, पृ.–101
34. ठीकरे की मंगनी, पृ.–101
35. ठीकरे की मंगनी, पृ.–86
36. ठीकरे की मंगनी, पृ.–167
37. ठीकरे की मंगनी, पृ.–182
38. नासिरा शर्मा, ज़ीरो रोड़ उपन्यास, पृ.–286
39. ज़ीरो रोड़, पृ.–285
40. ज़ीरो रोड़, पृ.–286
41. ज़ीरो रोड़, पृ.–287
42. अक्षयवट, पृ.–18
43. अक्षयवट, पृ.–23–24
44. ठीकरे की मंगनी, पृ.–167
45. ठीकरे की मंगनी, पृ.–91
46. ठीकरे की मंगनी, पृ.–79
47. अक्षयवट, पृ.–39
48. कुइयाँजान, पृ.–151
49. कुइयाँजान, पृ.–151
50. कुइयाँजान, पृ.–152
51. कागज़ की नाव, पृ.–18
52. कागज़ की नाव, पृ.–18
53. कागज़ की नाव, पृ.–18
54. कागज़ की नाव, पृ.–19
55. कागज़ की नाव, पृ.–21
56. कागज़ की नाव, पृ.–21
57. कागज़ की नाव, पृ.–29
58. पारिजात, पृ.–136
59. पारिजात, पृ.–136
60. पारिजात, पृ.–136

61. पारिजात, पृ.—136

62. पारिजात, पृ.—136

63. कागज़ की नाव, फ्लैप कवर से

64. कागज़ की नाव, पृ.—13

65. कागज़ की नाव, पृ.—36—37

66. कागज़ की नाव, पृ.—38

67. कागज़ की नाव, पृ.—38

68. कागज़ की नाव, पृ.—49

69. कुइयाँजान, पृ.—171

70. नासिरा शर्मा, शब्द पखेरू उपन्यास, फ्लैप कवर से

71. शब्द पखेरू उपन्यास, पृ.—40

72. शब्द पखेरू उपन्यास, पृ.—40

73. शब्द पखेरू उपन्यास, पृ.—92

74. शब्द पखेरू उपन्यास, पृ.—38—39

75. शब्द पखेरू उपन्यास, पृ.—105—107

76. शब्द पखेरू उपन्यास, पृ.—110

77. शब्द पखेरू उपन्यास, पृ.—110

78. पारिजात, पृ.—371

79. पारिजात, पृ.—371

80. पारिजात, पृ.—371

81. पारिजात, पृ.—371

82. पारिजात, पृ.—310

83. नासिरा शर्मा, अज़नबी जज़ीरा उपन्यास, पृ.—27

84. पारिजात, पृ.—314

85. नासिरा शर्मा, ज़ीरो रोड़ उपन्यास, पृ.—235

86. ज़ीरो रोड़, पृ.—235

87. ज़ीरो रोड़, पृ.—187

88. ज़ीरो रोड़, पृ.—203

89. ज़ीरो रोड़, पृ.—203

90. ज़ीरो रोड़, पृ.—225

91. ज़ीरो रोड़, पृ.—161

92. कुइयाँजान, पृ.—47

93. अक्षयवट, पृ.—448

94. अक्षयवट, पृ.—491

95. ज़ीरो रोड़, पृ.—78

96. ज़ीरो रोड़, पृ.—264

97. ज़ीरो रोड़, पृ.—32

98. ज़ीरो रोड़, पृ.—254

99. ज़ीरो रोड़, पृ.—308

100. ज़ीरो रोड़ का सफ़र, कृष्ण बिहारी, संबोधन त्रैमासिक पत्रिका, सं. कमर मेवाड़ी, पृ.—17

101. कागज़ की नाव, पृ.—45

102. कागज़ की नाव, पृ.—171

103. कागज़ की नाव, पृ.—103

104. कुइयाँजान, फ्लैप कवर से

105. कुइयाँजान, पृ.—11

106. कुइयाँजान, पृ.—12

107. कुइयाँजान, पृ.—13

108. कुइयाँजान, पृ.—88

109. कुइयाँजान, पृ.—88—90

110. कुइयाँजान, पृ.—98

111. कुइयाँजान, पृ.—103

112. कुइयाँजान, पृ.—103

113. कुइयाँजान, पृ.—104

114. कुइयाँजान, पृ.—312—314

115. कुइयाँजान, पृ.—384—385

116. कुइयाँजान, पृ.—404

117. कुइयाँजान, पृ.—404—406

118. कुइयाँजान, पृ.—403

119. कुइयाँजान, फ्लैप कवर से

120. पारिजात, पृ.—84

121. कुइयाँजान, पृ.—310

122. कुइयाँजान, पृ.—310

123. कुइयाँजान, पृ.—310

124. ज़िन्दा मुहावरे, फ्लैप कवर से

125. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—123

षष्ठ अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों का रचना विधान

"लेखन का अर्थ केवल आपबीती कहना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है, उसे पचाना पड़ता है। उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि वह आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"

— नासिरा शर्मा

षष्ठ अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों का रचना–विधान

"कविः करोति काव्यानि,
स्वादु जानन्ति पण्डिताः।
सुन्दर्याः अपि लावण्यं
पतिर्जानाति नो पिता।।"

इस संस्कृत सुभाषित के अनुसार किसी कवि या साहित्यकार की रचना स्वयं के लिये नहीं होती है। वह हमेशा दूसरों के लिए रचना करता है। जिस प्रकार एक सुन्दरी के लावण्य को पति तो जानता है, परन्तु उसका पिता नहीं। ठीक इसी भाँति साहित्यकार उसकी रचना का स्रष्टा होता है परन्तु उस साहित्यरस का आस्वादन करने वाला तो पण्डित या सुविज्ञ पाठक ही होता है और वही साहित्य के अन्तः व बाह्य सौंदर्य एवं रचना–विधान को बखूबी विश्लेषित कर सकता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द से लेकर आज तक अनेक दक्ष लेखक साहित्यकार हुए हैं, जिनके निराले शैली–शिल्प व रचना–विधान ने कथ्य को नूतन आयाम दिए हैं। इनकी औपन्यासिक कृतियाँ अपनी–अपनी वस्तुगत विश्लेषण के साथ–साथ भाषागत एवं शैल्पिक वैशिष्ट्य लिए हुए हैं। प्रत्येक साहित्यकार की अपनी अलग शैली, छवि एवं शिल्पगत पहचान होती है। उसी के अनुरूप एक साहित्यकार का अनुभवगत विस्तार, लेखकीय गाम्भीर्य, अनूठा शैली–शिल्प एवं लोक–संपृक्ति पाठकीय संवेदना को जागृत एवं झंकृत करने में समर्थ होते हैं परन्तु इस अद्भुत वैशिष्ट्य की प्राप्ति कैसे होती है? एक समर्थ लेखक ऐसा कैसे कर पाता है? इन प्रश्नों के समाधान प्रस्तुत करते हुए आचार्य मम्मट लिखते हैं कि– "कवि या लेखक में रहने वाली उसकी स्वाभाविक प्रतिभा 'शक्ति', लोक, शास्त्र तथा काव्य आदि के पर्यायलोचन से उत्पन्न 'निपुणता' तथा काव्य को जानने वाले गुरु की शिक्षा के अनुसार कृत 'अभ्यास' ये तीनों मिलकर समष्टि रूप से उस काव्य या रचना के उद्भव के कारण होते हैं–

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।"[1]

उपर्युक्त तीनों गुणों से परिपूर्ण नासिरा शर्मा हिन्दी कथा साहित्य का ऐसा सशक्त हस्ताक्षर है, जिसने हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नया पड़ाव समवर्ती एवं परवर्ती साहित्यकारों के लिए निर्मित किया है। नासिरा जी नयी पीढ़ी की कथाकार हैं लेकिन जिस अनुभव जगत को उन्होंने अपनी रचनात्मकता के केन्द में रखा है, वह उन्हें और उनकी संवेदना को पीढ़ियों और

देश–काल की परिधियों को लांघ कर चहुँओर फैला देता है। उनका सम्पूर्ण साहित्य रचना–शिल्प की दृष्टि से बेहद सधा हुआ है। इनसे उद्घाटित होता हुआ जीवन–यथार्थ अपने आनुभूतिक आवेग के कारण काव्यात्मकता से सराबोर है। यही कारण है कि लेखिका अपनी बात कहने के लिए न तो भाषायी–आडम्बर का सहारा लेती हैं, न किसी अमर्तन का। उनकी रचनाओं में धरती को मोह लेने वाली सौंधी खुशबू के साथ अनुकूल व सहज भाषा का जीवंत प्रयोग है। अतः उनकी औपन्यासिक रचनाएँ अन्तः एवं बाह्य, दोनों प्रकार से अद्भुत शिल्प में आबद्ध हैं।

साहित्य के रचना विधान का सम्बन्ध बाहरी रूप योजना और भीतरी लक्ष्य साधना से है। इसलिए जब साहित्य के रचना–विधान पर विचार करने लगते हैं तो स्वरूप और लक्ष्य, आकृति एवं उसकी प्रकृति में भेद बनाये रखना अनुचित है। शिल्प के माध्यम से ही वह अनुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम होता है। विषय परिवर्तन के साथ शिल्प में परिवर्तन तो हुआ है। शिल्प के अंतर्गत उन सब युक्तियों का समावेश किया जा सकता है, जिनका उपयोग कथाकार अपनी बात कहने के लिए करता है। वास्तव में किसी साहित्य में कथ्य और शिल्प अलग–अलग चीजें नहीं हैं बल्कि एक ही हैं। श्रेष्ठ साहित्य बनने के लिए कथ्य और शिल्प का एक होना अनिवार्य है। शिल्प की विशेषता को स्पष्ट रीति से व्यक्त करते हुये डॉ. त्रिभुवन ने लिखा है– "जो कुछ भूल जाता है, निश्चित रूप से वह अनावश्यक है और उस अनावश्यक को भी आवश्यक बनाकर उसे कला के अंग के साथ प्रस्तुत कर देना शिल्प का ही कार्य है।"[2] एक उपन्यासकार आवश्यकतानुसार उपन्यास में नई–नई शिल्प विधियों का विनियोग करता है। शिल्प विधि का नियोजन मुख्यतः लेखक के दृष्टिकोण पर ही अवलम्बित होता है।

(क) रचना विधान से अभिप्राय एवं स्वरूप

भाषा न केवल आत्माभिव्यक्ति का माध्यम होती है बल्कि वह विचारों के सम्प्रेषण का, सामूहिक चेतना के अभिव्यक्ति पक्ष का कारगर स्वरूप भी होती है। इसी प्रकार कथ्य और शिल्प एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। वे कलात्मक एकान्विति में एक हैं पर विचार और रूप पक्ष में अलग–अलग। रोहिताश्व के अनुसार, "किसी भी कलाकृति में वस्तु और रूप अलग–अलग नहीं होते हैं बल्कि दोनों मिलकर एक समग्रता का, जिसे रचना कहते हैं, उसका निर्माण करते हैं। पर विवेचन की सुविधा के लिए हम उन्हें अन्तर्वस्तु, भाषा, शैली, शिल्प माध्यमों के अनुखण्डों में देखने के अभ्यस्त हैं। शिल्प–रूप के अंतर्गत अन्तर्वस्तु के प्रभावी पक्षों में बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, छंद आदि का अपना–अपना विशिष्ट योगदान होता है। अतः कलाकृति को केवल वस्तु पक्ष में अथवा रूप पक्ष में व एकांगी रूप–विवेचन में देखने से हम सौन्दर्य बोधी 'संरचना' के विवेचन से वंचित रह जायेंगे।"[3]

(ख) नासिरा शर्मा के उपन्यास : अन्तःस्वरूप विवेचन

उपन्यास के अन्तःस्वरूप के अन्तर्गत उपन्यासों की कथावस्तु तथा वस्तुगत परिवेश समाहित होता है। नासिरा शर्मा के सभी उपन्यास सामाजिक हैं। इनमें भारतीय समाज के यथार्थ चित्रण के साथ ही अन्य देशों की सामाजिक समस्याओं की ओर भी नासिरा जी ने ध्यान दिया है। 'सात नदियाँ एक समन्दर' उनका आधुनिक ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है। इसमें ईरान–इराक समस्या के चित्रण के साथ ही आम इनसानों की क्रांति तथा वहाँ की नारियों की स्थिति का भी चित्रांकन है। 'शाल्मली' उपन्यास की नायिका पढ़ी–लिखी कामकाजी नारी की समस्या को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। नारी स्वतंत्रता के साथ–साथ पुरुष की हीन भावना का चित्रण भी इस उपन्यास में दिखाई देता है। नरेश और शाल्मली के सम्बन्धों में बिखराव तथा गाँव की अशिक्षित स्त्रियों की मानसिक स्थिति को भी इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। 'शाल्मली' उपन्यास के माध्यम से नासिरा शर्मा ने, नारी अपनी अस्मिता को बनाये रखने के लिए तथा अपने जीवन को सुखपूर्ण बनाने के लिए क्या–क्या संभव कोशिश करती है, उसे अभिव्यक्त किया गया है।

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में भी नारी समस्या को प्रधानता दी गई है। महरुख़ के जीवन संदर्भों से रूढ़िग्रत मुस्लिम समाज की जकड़ से मुक्त होकर अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए प्रयासरत वर्तमान नारी की छटपटाहट भी स्पष्ट दिखाई देती है। महरुख़ की मंगनी जन्म लेने के साथ ही रफ़त भाई से हो जाती है। उन दोनों की ठीकरे की मंगनी थी। बड़ी होने पर महरुख को रफ़त भाई अपनी इच्छानुसार पढ़ने के लिए दिल्ली ले जाता है। इसी बीच में अपने मंगेतर रफत के शोधकार्य हेतु विदेश जाने तथा वहाँ जाकर विदेशी महिला से विवाह कर लेने पर महरुख़ में परिवर्तन आता है और महरुख़ शोध कार्य को अधूरा छोड़कर एक गाँव में टीचर की नौकरी करने लगती है। महरुख़ अपना जीवन उस गाँव में गाँव वालों की स्थिति में सुधार हेतु लगा देती है। इस प्रकार 'शाल्मली' और 'ठीकरे की मंगनी' दोनों उपन्यासों में नासिरा शर्मा ने स्त्री–पुरुष के या कहें तो पति–पत्नी के सम्बन्धों की सच्चाई को प्रस्तुत किया है। इनमें पुरुष वर्चस्व समाज और स्त्री जाति की आपसी टकराहट से उत्पन्न द्वन्द्व और विरोध के स्वर को रेखांकित किया है।

'ज़िंदा मुहावरे' भारत–विभाजन की त्रासदी को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसमें देश–विभाजन के फलस्वरूप हुए दंगे–फसाद से ज्यादा लोगों की मानसिक स्थिति को दिखाया गया है। रहीमुद्दीन का छोटा बेटा निज़ाम देश–विभाजन के समय पाकिस्तान चले जाने का निश्चय करता है और अपने, पिता, घर, सगे–सम्बन्धियों को छोड़कर चला जाता है। पाकिस्तान जाकर वह अनेक कठिनाइयों को झेलकर अंत में बड़ा आदमी बन जाता है पर धन, घर,

बीवी–बच्चे सब कुछ मिलने पर भी उसके मन में एक पीड़ा–हिन्दुस्तान में रहने वाले अपनों को लेकर रही। भारत में भी लोगों की ऐसी स्थिति है। विभाजन के फलस्वरूप मिलने वाले मानसिक तनाव एवं उनकी दयनीय स्थिति को इस उपन्यास में लेखिका ने बखूबी चित्रित किया है। विभाजन के फलस्वरूप आम जनता पर पुलिस द्वारा किये गये अत्याचार का घिनोना रूप भी इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

नासिरा शर्मा के 'अक्षयवट' उपन्यास में कई समस्याओं एवं विषयों का चित्रण है। इसमें पारिवारिक जीवन, नारी–शोषण, पुलिस द्वारा किये गये अत्याचार, राजनीतिक अन्याय गुण्डागर्दी और ज़हीर जैसे होशियार नवयुवकों की कथा का चित्रण है। लेखिका 'अक्षयवट' उपन्यास में इलाहाबाद जो पहले एक सुप्रसिद्ध नगर था, को लेकर दुःखी है। जहीर एक अच्छा लड़का है। हालात की मार ने उसे और ही रूप दे दिया। अध्यापक ने उसके साथ बहुत अन्याय किया। जिसके कारण उसने अपना स्कूल छोड़ दिया। बाद में वह एक छोटी–सी दुकान खोलता है। कई युवा उनकी तरह हालात के दबाव में है। वे सब जहीर के साथी बन जाते हैं। इस प्रकार लोगों की सहायता और जहीर के प्रयत्न से लावारिस बच्चों को पालने के लिए 'मुस्कान' नामक एक संस्था की स्थापना की जाती है। वह बाद में अपनी पढ़ाई पूरी करके कॉलेज का प्राध्यापक बनता है। जहीर अपना जीवन 'मुस्कान' संस्था के लिए समर्पित कर देता है।

'कुइयाँजान', नासिरा शर्मा के इस उपन्यास में पानी की समस्या को चित्रित किया है। इसमें एक मुस्लिम परिवार की ज़िन्दगी को भी दिखाया गया है। इस उपन्यास में डॉ. कमाल और उसकी पत्नी समीना को समाज सेवक के रूप में दिखाया है। समीना की माँ और बुआ के रूप में ममतामय नारी का चित्रण भी इस उपन्यास में हुआ है। 'कुइयाँजान' उपन्यास की शुरुआत ही पानी की समस्या को लेकर है। मस्जिद वाली गली के मौलाना का इंतकाल हो गया। वहाँ भी पानी की समस्या है– "मस्जिद के मौलाना गुजर गए है– अब बड़ी परेशानी है....आखिरी गुस्ल के लिए भी पानी.......मोहल्ले के कुएं बरसों पहले कूड़े से पाट दिये गये है। इसमें यह दिखाने का प्रयास है कि मरे हुए व्यक्ति को नहलाने के लिए एक बाल्टी पानी भी नहीं मिलता तो साधारण जनता का जीवन पानी के अभाव में कितना दूभर हो गया है।"

जलाशयों से भरा हमारा देश जो आज पानी के लिए तड़प रहा है। उन जलाशयों को यहाँ के रहने वाले लोगों ने ही प्रदूषित किया है। नासिरा जी ने इस उपन्यास में पानी वाले मास्टर जी के जरिये हर व्यक्ति को पानी के महत्व से अवगत कराने का प्रयास किया है। साथ ही जल के परम्परागत स्रोतों जैसे कुओं, बाबड़ी, तालाब, पोखर आदि के संरक्षण एवं संवर्धन की प्रेरणा दी है। न कि प्रयोगों के नाम पर परम्परागत व्यवस्था को चौपट करना चाहिए।

'ज़ीरो रोड़' उपन्यास की कथावस्तु का केन्द्र इलाहाबाद के ज़ीरो रोड़ का 'चक मुहल्ला' और व्यापारिक शहर दुबई है। उपन्यास का नायक 'सिद्धार्थ' एक बेरोजगार युवक है जो अच्छी नौकरी का आश्वासन देकर अवैध रूप से दुबई भेज दिया जाता है लेकिन वहाँ जाकर पता चलता है कि उसके साथ धोखा हुआ है। धीरे–धीरे मेहनत मजदूरी करते हुए वह एक कम्पनी में सुपरवाइजर के पद पर कार्य करने लगता है। उपन्यास में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है। मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक समस्या, बेरोजगारी, मजदूरों का शोषण, उनकी रहन–सहन, खान–पान व स्वास्थ्य सम्बन्धी दयनीय दशा, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, प्रवासी मानसिकता, अकेलेपन से जूझते इंसान इत्यादि समकालीन समस्याओं से पाठकों को रूबरू करवाया है। साथ ही इलाहाबाद के माध्यम से भारतीय संस्कृति में प्रचलित रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार, विभिन्न धार्मिक–सामाजिक आयोजनों के साथ–साथ दुबई के सांस्कृतिक ताने–बाने को भी समझाया गया है। दुबई में वैश्विक परिदृश्य एवं संस्कृति दिखाई देती है।

इसी तरह 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में उन बिहारी परिवारों का वृत्तान्त हैं, जिनके परिवार से कोई न कोई पुरुष खाड़ी देशों में रहकर नौकरी करता है। अपने वतन से दूर रहने वाले ये पुरुष अपने पीछे अकेलेपन से जूझने के लिए छोड़ जाते हैं– बच्चों से लेकर बुजुर्गों का भरा–पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से कमा–कमाकर रुपये भेजकर वे समझते हैं कि वे सारे पारिवारिक दायित्वों का ठीक प्रकार से निर्वहन कर रहे हैं परन्तु उनके पीछे परिवारजन किस समस्या से जूझ रहे हैं? क्या–क्या कुचक्र रचे जा रहे हैं? इन सबसे भी अनजान रहते हैं। इस प्रकार उपन्यास का शीर्षक एक रूपक बनकर पाठकों के सम्मुख आता है अर्थात् जिम्मेदारियों, दायित्वों व जरूरतों के समन्दर को चन्द रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश। उपन्यास में समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों, जादू–टोनों, तंत्र–मंत्र, ताबीज, अमल कराना इत्यादि पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ ही इन कुचक्रों के कारण टूटते परिवारों की दास्तां भी देखने को मिलती है। बुजुर्गों पर किये जाने वाले अत्याचार हमारे समाज के कड़वे सच को सामने लाते हैं। 'मलक़ानूर' के माध्यम से बालिका शिक्षा व बाल–विवाह पर प्रश्न उठाया गया है। साथ ही बेकारी के कारण युवकों का अधःपतन व अपराधीकरण भी बखूबी दर्शाया है।

साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत 'पारिजात' उपन्यास में नासिरा जी ने नायक 'रोहन' व उसकी ब्रिटिश प्रेमिका–पत्नी एलिसन के दो साल के बेटे 'पारिजात' की खोज को कथावस्तु का आधार बनाया है। एलिसन पारिजात को लेकर गायब तो हो ही जाती है। साथ ही रोहन पर बहुत सारे झूठे इल्ज़ाम लगाकर उसे जेल भी भिजवा देती है। इस प्रकार "'पारिजात' यह उपन्यास शीर्षक शब्द पीढ़ियों, संस्कारों, देशी–विदेशी संस्कृतियों और धर्मों के द्वन्द्वों–तनावों व

उपादेयताओं के साथ ही अतीत की स्मृतियों, वर्तमान की दमित इच्छाओं व अवशेष हसरतों तथा भविष्य के सपनों का वाहक—वाचक संकेत बनकर तो आया ही है, इन सभी रूपों का केन्द्रीभूत एक पात्र बनकर भी उपस्थित है।"[4]

उपन्यास की नजरों से ओझल हुआ यह पारिजात अकेला वारिस है— तीन प्रगाढ़ मित्र परिवारों का। पहला है— रोहन के प्रोफेसर माता—पिता प्रभा व प्रह्लाद दत्त का परिवार। दूसरा परिवार है नुसरत व बसारत का है, जिनका भी एक बेटा है— काज़िम। तीसरा परिवार है— जुल्फ़िकार व फ़िरदौस ज़हाँ का, जिनके एक पुत्र 'मोनिस' और एक लड़की 'रूही' है। ये तीनों परिवार 'हिन्दू—मुस्लिम' सौहार्द की मिसाल हैं। इन तीनों परिवारों के उतार—चढ़ावों के साथ ही इलाहाबाद व लखनऊ के परिवेश में हिन्दू—मुस्लिम संस्कृति के नाना—रूपों से रूबरू करवाया है। प्रह्लाद दत्त व निखिल एवं शोभा के माध्यम से गुरु—शिष्य सम्बन्ध की प्रगाढ़ता और उदात्तता को भी जीवन्त किया है। अन्त में रोहन और रूही की शादी के बाद उनकी संतान 'परीजाद' की प्राप्ति के साथ उपन्यास का समापन होता है।

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार नासिरा शर्मा के लेखन की सर्वोपरि विशेषता है सभ्यता, संस्कृति और मानवीय नियति के आत्मबल व अन्तःसंघर्ष का संवेदना—सम्पन्न चित्रण। ऐसा ही चित्रण हमें देखने को मिलता है उनके नवीन उपन्यास 'अजनबी जज़ीरा' में। इस उपन्यास में समीरा और उसकी पाँच बेटियों के माध्यम से इराक़ की बदहाली बयान की गई है। छोटी—से—छोटी चीज को तरसते, दाने—दाने के लिए मोहताज और उसके लिए विरासतों—धरोहरों—यादगारों को बाज़ार में बेचने को मजबूर होते लोग; ज़िन्दगी बचाने के लिए सब कुछ दाँव पर लगाती औरतें और विदेशी आक्रमणकारियों की प्रत्यक्ष—अप्रत्यक्ष निगरानी में साँस लेते नागरिक—ऐसी अनेक स्थितियों—मनःस्थितियों को नासिरा शर्मा ने उपन्यास का स्वरूप प्रदान किया है। बारूद, विध्वंस और विनाश के बीच समीरा ज़िन्दगी की रोशनी व खुशबू बचाने के लिए जूझ रही होती है। एक फ़ौजी मार्क उसको चाहने लगता है तथा उससे शादी करना चाहता है। वह समीरा को उसकी पुत्रियों को भी बाप का प्यार देना चाहता है और अन्त में वह सफल होता है। इस प्रकार की जंग आम इंसान को किस प्रकार तार—तार कर जाती है, इसका जीवन्त चित्रण हमें इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

नासिरा जी के 'शब्द पखेरू' उपन्यास का शीर्षक ही हमें बताता है कि शब्दों के दग़ा देने पर इन्सान अविश्वास के उस मरुस्थल में आ खड़ा होता है जो शब्द पखेरू की तरह अपनी लहरों को पल—पल हवा में गुम कर देता है। समकालीन ज्वलन्त समस्या 'इन्टरनेट की लत व उसके दुष्प्रभाव' को आधार बनाकर लिखे गये इस उपन्यास के केन्द्र में एक मध्यवर्गीय परिवार है। परिवार का मुखिया 'सूर्यकान्त' है जो किसी कम्पनी में नौकरी कर जैसे—तैसे घर चलाता है।

पत्नी 'साधना' लम्बे समय से बिस्तर पर मरनासन्न स्थिति में है। बड़ी बेटी मनीषा व छोटी बेटी शैलजा कॉलेज में अध्ययनरत हैं। दोनों के अपने–अपने सपने हैं जिस पर वे चलकर अपना जीवन स्तर सुधारना चाहती हैं और परिवार का सहारा बनना चाहती है परन्तु छोटी बेटी 'शैलजा' दिनभर इन्टरनेट पर चैट करने में लगी रहती है। वह गूगल को अपना ग्रैंडपा कहती है। पर धीरे–धीरे वह साइबर क्राइम में फँसती चली जाती है। जब उसको होश दिलाया जाता है कि उसके साथ धोखा हुआ है तो एकाएक वह विश्वास भी नहीं कर पाती है। इस प्रकार लेखिका ने बहुत ही मार्मिक ढंग से नयी पीढ़ी के दुःखों व जद्दोज़हद से हमारा परिचय करवाया है।

'दूसरी जन्नत' उपन्यास में नासिरा जी ने निःसन्तान मुस्लिम दम्पती के माध्यम से मुस्लिम समाज में वर्तमान में चल रही ऊहापोह को समझाया है। ऊपर से शान्त और ठहरे दिखने वाले मुस्लिम समाज के भीतर बहुत कुछ बदल रहा है जो नहीं बदल रहा है उसको बदलने की ख्वाहिशें और कोशिशें कम नहीं हैं। सतह पर न दिखने वाली इसी हलचल को कुरेदता हुआ, यह उपन्यास, रिश्तों की गर्माहट और अपनेपन से सफर करते हुए दूरियों, मतभेदों, टकरावों और बहसों का एक नक़्शा पेश करता है। उपन्यास की नायिका 'रुख़साना' पेशे से डॉक्टर है, जो 'शहला क्लीनिक' में निःसन्तान दम्पतियों को आई.वी.एफ. तकनीक से सन्तानसुख प्रदान करने में सहायता देती है। उन्हें उचित परामर्श देती है। ऐसा ही एक दम्पती है– पायलेट गुलज़ार नक़वी और उनकी बीवी फ़रहाना। वे बेऔलाद हैं, अतः वे कृत्रिम गर्भाधान से गर्भधारण कर एक सुन्दर सा बेटा प्राप्त करते हैं परन्तु आगे चलकर उनकी ज़िन्दगी खतरनाक मोड़ लेती है और उन दोनों के बीच तलाक़ की नौबत आ जाती है। कारण है– गुलज़ार नकवी का छुपकर दूसरी शादी करना। बात कोर्ट–कचहरी तक पहुँचती है। मुस्लिम धार्मिक नियम आड़े आते हैं और प्राप्त बच्चे को धार्मिक नियम/शरीयत के अनुसार अमान्य करार दे दिया जाता है। शुक्राणु बैंक से प्राप्त फैमिली प्रोफाईल के आधार पर बच्चे के असली बाप की तलाश में फ़रहाना निकल पड़ती लेबनान की ओर। अन्त में अपने बच्चे 'शाद' के असली बाप के साथ निकाह कर वह खुशहाल ज़िन्दगी जीती है। यह है उसकी 'दूसरी जन्नत'। इस प्रकार एक तरफ मेडिकल साइन्स और शरीयत के आपसी टकराव को दर्शाया है, तो दूसरी तरफ इनसानी ज़ज्बात हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कथानक या कथावस्तु उपन्यास का आवश्यक एवं अनिवार्य तत्व है। इसके अभाव में उपन्यास के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसलिए कथावस्तु को उपन्यास का मूल तत्त्व या ढाँचा कहा जा सकता है। अन्य सभी तत्त्व उसके सहायक तत्त्वों के रूप में कथानक का विकास ही करते हैं। नासिरा शर्मा के सभी उपन्यासों की कथावस्तु के अध्ययन के बाद हम कह सकते हैं कि नासिरा जी ने प्रत्येक उपन्यास में मौलिक, समकालीन एवं नवीन कथ्य का चयन किया है। जो वैश्विक परिदृश्य में व्याप्त ज्वलन्त समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। कथ्य की मौलिकता व वैचारिकता लेखिका

की लेखकीय प्रतिभा की परिचायक है। कथानक में पारस्परिक सम्बद्धता, प्रवाह की अनवरतता, घटनाक्रम की सत्यता, शैलीगत निर्माण कौशल, वर्णनात्मक रोचकता, तदनुरूप भाषा व पात्र–चयन इत्यादि नासिरा जी के उपन्यासों के कथ्य की विशिष्टताएँ हैं जो उन्हें अग्रिम पंक्ति में विराजमान करती हैं।

(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यासों में पात्र परिकल्पना

कथानक के उपरान्त सर्वाधिक महत्वूपर्ण पक्ष पात्र–योजना का होता है। "उपन्यास की मूल संवेदना उसके चरित्रों के माध्यम से ही प्रकट होती है। उपन्यास को गति प्रदान करना चरित्रों का कार्य है। उपन्यासकार पात्रों का चुनाव अपने परिवेश से करता है। जितना बड़ा उसका परिवेश होगा उतना ही बड़े पैमाने पर उसकी पात्र सृष्टि होगी। उपन्यासकार का उद्देश्य पात्रों के केवल गुण–दोषों का या बाहरी आकार–प्रकार का वर्णन करना ही नहीं अपितु उसके अंतःकरण के सम्पूर्ण रुझान, परिस्थितिवश उसके मन में होने वाली प्रतिक्रिया, विभिन्न प्रसंगों में उसके अन्दर उत्पन्न विचार आदि का चित्रण करना होता है। सामाजिक जीवन के पात्रों और उपन्यासों के पात्रों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। उपन्यासकार पात्रों का चुनाव अपने परिवेश से करता है। वह कई जीवित व्यक्तियों के आकार–प्रकार, गुण–दोष को अपनी कल्पना के अनुसार ढालकर पात्रों का निर्माण करता है। इन पात्रों का चयन सामाजिक जीवन से होने के कारण सामाजिक विषमताओं को व्यंजित करने में आसानी होती है। रचनाकार पात्रों को उनकी दुर्बलताओं एवं कुरूपताओं को चित्रित करने के साथ आदर्श पक्ष को भी प्रस्तुत करता है।"[5]

कथानक में मुख्य रूप से दो प्रकार के पात्र होते हैं– मुख्यपात्र एवं गौणपात्र। मुख्य पात्र उपन्यास के केन्द्र होते हैं। नासिरा शर्मा द्वारा रचित उपन्यास 'सात नदियाँ एक समन्दर' में सात लड़कियाँ मुख्य पात्रों की भूमिका में नजर आती है– **परी, तय्यबा, अख़्तर, मलीहा, सूसन, महनाज़ और सनोबर।** ये सभी सहेलियां होने के साथ ही सभी अलग–अलग विचार धारायें रखने वाली थीं। इनके अलावा असलम, मेहनाज़ की माँ, मलीहा, सुलेमान, शहनाज, खालिद, फरीद, अब्बास–सूसन का पति आदि पात्र हैं जो उपन्यास के कथानक को आगे बढ़ाने में विविध प्रकार से सहायक रूप से उपस्थित हुये हैं। इन सभी पात्रों में **तय्यबा** ही मुख्य रूप से उपन्यास की विषय के करीब जुड़ी है। इन पात्रों में तय्यबा अलग तबके के अलग विचार रखने वाली थी। वह अन्य लड़कियों जैसी भावुक नहीं थी। वह सोच–विचार करने वाली नहीं थी। उसके मन में विद्रोह है, क्रांति है। तय्यबा का विचार है– "घर की मनहूसियत को फेंकने जाने वाले लोग जंगल में पिकनिक करने जाते हैं, लेकिन अपने अंदर की मनहूसियत को कहाँ उगलेंगे–दावतों, फैशन और तेज फर्राटे भरती कारों में.....।"[6] तय्यबा की सब सहेलियाँ पारिवारिक जीवन में व्यस्त हो गयी। लेकिन वह एक क्रांतिकारी जीवन जीना पसन्द करती है। वह देश के लिए जीने वाली थी और अपने वतन के लिए उसने अपना जीवन समर्पित कर दिया था।

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'शाल्मली' में मुख्य पात्र, **'शाल्मली'** तथा इनके जीवन से जुड़े अन्य पात्र हैं– नरेश, शाल्मली के माता–पिता, सास, सरोज आदि। ये सभी पात्र कथानक में विविध प्रसंगों में सहायक रूप से उपस्थित हुए हैं। शाल्मली के माध्यम से आज की शिक्षित और आत्मनिर्भर नारी के अन्तर्द्वन्द्व को दिखाया गया है। साथ ही शिक्षित कामकाजी नारी के पारिवारिक जीवन का चित्रण भी इस उपन्यास में बखूबी देखने को मिलता है। इस उपन्यास में शाल्मली एक स्वावलंबी नारी होने के साथ–साथ आत्मविश्वास के साथ कठिन परिस्थितियों में जीकर अपने स्व. को बनाये रखती है। आधुनिक नारी को समाज ने काम करने और कमाने का मौका तो दिया पर पारिवारिक जिम्मेदारियों से उसे कोई छूट नहीं मिली तथा गृहस्थी के कार्यों के अतिरिक्त उस पर नौकरी का बोझ भी बढ़ गया है।

शाल्मली अपने माता–पिता की एकमात्र संतान थी। उसने पढ़–लिखकर एम.ए. पास की। उसके बाद शाल्मली का विवाह नरेश से हो जाता है। शाल्मली को आई.ए.एस. प्रतियोगिता पास करने के बाद नौकरी मिलती है। शाल्मली एक सुघड़, सुशील पत्नी भी है। उसे अपने औरत होने पर गर्व है और वह अपने पति नरेश से कहती है– "औरत की अक्ल पर शक करना छोड़ दो। एक स्तर के बाद हम औरत–मर्द नहीं रह जाते हैं, बल्कि हमारा काम हमारी पहचान होती है, हमारी अक्ल हमारी कसौटी होती है।"[7]

नरेश का व्यवहार शाल्मली के प्रति बहुत खराब है। शाल्मली अच्छी तरह जान जाती है कि उसके घर की नींव हिल गयी है। ऊपर से भले ही वह नरेश के प्रति समर्पित हो जाती है, परन्तु भीतर ही भीतर अपनी अस्मिता को वह पहचानती है। वह भी दृढ़ होकर नरेश को दिखा देती है कि वह नरेश की छाया, प्रति ध्वनि या विस्तार नहीं है। उसकी अपनी एक अलग पहचान है। "मैं कोरा काग़ज़ नहीं थी, जिस पर तुम अपने अधिकार का हस्ताक्षर कर सकते। मैं तो फुलकारी का वह रेखाचित्र थी, जिसे बचपन से पिताजी ने बड़े जतन से खींचा था। प्रत्येक रेखा में उनकी आत्मा का उजाला भरा है। पिताजी पूरे बीस वर्ष एक फूल को आकार देते रहे।"[8] शाल्मली नरेश के बुरे व्यवहार से तंग आकर अपने दुःख को अकेले ही सहन करती है। शाल्मली की सहेली सरोज से जो संभाषण हुए उससे स्त्री मुक्ति की अवधारणा सामने आती है। शाल्मली कहती है, "मेरी नजर में सही नारी–मुक्ति और स्वतंत्रता, समाज की सोच और स्त्री की स्थिति को बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुम से टकराएगा।"[9] इसलिए तलाक लेना समस्या का समाधान नहीं है। शाल्मली आगे कहती है, "औरतों के पास दो ही अभिव्यक्तियाँ हैं या सर झुका देना या समस्या को अधूरा छोड़ सर कटा लेना। मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर है, न तोड़ने पर, न आत्महत्या पर है, न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने में है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी। अधिकार

पाना यानी 'घर निकाला' नहीं और घर बना रहने का अर्थ 'सम्मान' को कुचल फेंकना नहीं है। यह जो हमारे मन–मस्तिष्क में अति का भूत सवार हो गया है, वही जीवन के लिए विष समान है।"[10]

शाल्मली का पति 'नरेश' नारी को अपना गुलाम समझने वाले पुरुष समाज का प्रतिनिधि है। घर के काम में हाथ बंटाना उसके लिए शर्म की बात है। जब शाल्मली सहायता के लिए कहती है, तो नरेश का कहना है, "यह औरतों के कामों में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है।"[11]

"घर औरत का होता है वह जाने। कमाना मर्द का काम है, वह मैं करता हूँ। अपने ऑफिस के काम में मैं तुम्हारी सहायता लेता हूँ क्या?"[12] नरेश, शाल्मली से नीचे पद का है तो उसके मन में इसको लेकर हीन भावना जागृत हो जाती है और वह शाल्मली से कहता है, "काफी स्वावलम्बी होती जा रही हो?.....मैंने तुम्हें नौकरी करने की छूट दी, इसका यह अर्थ नहीं कि तुम अपने को पूर्ण स्वतंत्र समझने लगो।"[13] कामकाजी, पढ़ी–लिखी लड़कियों के बारे में नरेश की सोच बिल्कुल गिरी हुई है। वह अपने मित्रों से कहता है, "लड़की पढ़ी–लिखी है, तो धन का लालच छोड़ो, क्योंकि धन पैदा करने की मशीन तो वह है ही। मेरा ही किस्सा लो।"[14] आगे नरेश शाल्मली से कहता है– "पुरुष की दृष्टि में औरत क्या है? भोगने की वस्तु.......वही उसकी पहचान है। इसलिए तुम औरत की तरह रहो। इसी में तुम्हारा उद्धार है और इस घर का कल्याण और गृहस्थी का सुख।"[15]

उपन्यास के अन्य पात्रों में प्रमुख है **शाल्मली के पिता।** जिन्होंने अपनी बेटी को बेटे के समान पाला है। शाल्मली की तर्क और तथ्य ढूँढने की शक्ति को देखकर हमेशा पिताजी माँ से कहते, "देखना, एक दिन यह बड़ों–बड़ों के कान कुतर डालेगी। खूब नाम कमाएगी। मेरा सर ऊँचा करेंगी।"[16] इसके बाद वे नारी के बारे में आगे कहते, "आज औरत का कर्त्तव्य पत्नी बनने तक सीमित नहीं है।"[17] इसी प्रकर **'सरोज'** उपन्यास का प्रमुख पात्र है। शाल्मली की माँ और सास का चरित्र उपन्यास को आगे बढ़ाने में बहुत सहायक है।

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'ज़िंदा मुहावरे' विभाजन की समस्या को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसका मुख्य पात्र **निज़ाम** है। उपन्यास के अन्य पात्रों में निजाम के पिता रहीमुद्दीन, माँ, भैया इमाम, भाभी शमीना और उनका बेटा गोलू, निजाम की पत्नी सबीहा और सबीहा के माता–पिता। रहीमुद्दीन का बेटा निज़ाम विभाजन के फलस्वरूप हिन्दुस्तान छोड़कर पाकिस्तान जाने वाला नवयुवक है। निजाम की तरह अनेक लोगों ने ऐसा किया था। इन लोगों की मानसिक स्थिति का चित्र निज़ाम के जरिए मिलता है। निज़ाम पाकिस्तान जाते हुए सोचता है। "जहाँ जात हैं अब वही हमार वतन कहलइहे। नया ही सही अपना तो होइए। जहाँ रोज–रोज ओकी खुद्दारी को कोई ललकारिये तो नाहीं, कोई ओके गरिबान पर हाथ डालै की जुर्रत तो न करिहे........।"[18]

निजाम पाकिस्तान जाकर आरम्भिक संघर्ष के बाद, अर्थोपार्जन की दृष्टि से एक बड़ा आदमी तो बन जाता है पर घर का मोह उसे बराबर सताता रहता है। उसका शरीर पाकिस्तान में है, पर आत्मा भारत के उस गाँव में है जहाँ उनके माँ–बाप और सगे सम्बन्धी रहते हैं। लेकिन वह हिन्दुस्तान नहीं जा सका। जब वह वहाँ आया तब तक सब–कुछ बदल चुका था। माँ–बाप तो मर चुके थे। हिन्दुस्तान की स्थिति बहुत अच्छी थी। गोलू की पोजिशन देकर निजाम उनसे कहता है, "पछतावा.........बहुत पछतावा हो रहा है बेटे। तुमसे क्या छिपाना। कुछ मज़ा नहीं आया ज़िन्दगी में सब कुछ पाकर भी। क्या खोया, यह आज समझ में आया।"[19]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास का कथ्य उसके मुख्य पात्र **महरुख़** के चारों ओर से ही आगे बढ़ता है। मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति और रूढ़ियों भरे माहौल से बाहर निकलने का संघर्ष महरुख़ के चरित्र–चित्रण से स्पष्ट होता है। छोटी उम्र में ही महरुख़ की मंगनी रफ़त से हुई थी। रफ़त की इच्छानुसार वह जे.एन.यू. पढ़ने चली जाती है। महरुख़ पढ़ने–लिखने में होशियार है लेकिन वह विश्वविद्यालय के पाश्चात्य व आधुनिकता से ओत–प्रोत वातावरण को पसन्द नहीं करती थी। जब रफ़त भाई पढ़ने विदेश चला जाता है और एक विदेशी स्त्री से शादी करके वहीं रहने लगता है। इसके बाद रफ़त भाई वहाँ अकेला हो जाने पर विदेश से आकर महरुख़ से शादी करने के बारे में कहता है, तो महरुख़, कहती है, "आपकी शादी की बात सुनकर मैं टूटी थी, बिखरी थी और उस ग़म की दीवानगी में मैं मरते–मरते बची थी, फिर मेरी ज़िन्दगी का सबसे खूबसूरत लम्हा सबसे बदसूरत और डरावना होकर मेरे सामने खड़ा हो गया था। जिसके बारे में मैंने सोचा नहीं था और मेरे अन्दर की औरत उसी लम्हे मर गई थी।"[20] वह आगे रफ़त भाई से कहती है, "आपकी ज़रूरतों और मांगों के हिसाब से अब मैं अपने को बदल नहीं पाऊंगी। आपको बहुत आगे जाना है और मुझे एक जगह ठहर कर बहुत लोगों के साथ चलना है। हमारी ज़िन्दगी के लक्ष्य और उद्देश्य एक नदी के दो किनारे हैं।"[21]

उपन्यास का दूसरा मुख्य पात्र है **'रफ़त'**, जो महरुख़ के साथ था। रफ़त भाई महरुख को दिल्ली पढ़ाने ले जाता है। वह उसे बेबस के रूप में नहीं बल्कि एक मजबूत इरादों वाली औरत के रूप में देखना चाहता है और महरुख़ को वह अपनी इच्छानुसार बनाना चाहता है। उसका कहना है, "एक ऐसे शख़्स के साथ जिन्दगी गुजारने वाली हो, जो सिर्फ पढ़ा–लिखा ही नहीं, बल्कि इंकलाबी ख़्यालात का मालिक भी है।"[22] रफ़त भाई जब विदेश चला जाता है और वहाँ की एक मेम साहब के साथ जीवन बिताना शुरू कर देता है। इसके बाद विदेश से आने पर जब वह महरुख़ से मिलता है और उसके बारे में कहता है कि "वह किस्सा कब का ख़त्म हुआ। वह तो एक 'वे ऑफ लाइफ़' था वहाँ का। उसे छोड़े हुए अब तीन साल गुजर गए। तुम समझने की कोशिश करो। हालात का अन्दाज़ा तुम्हें यहाँ बैठकर नहीं हो सकता कि मैं किस भंवर में फंस

गया था। यह सब कुछ जान पर खेलकर मैंने तुम्हारे लिए किया है और तुम्हें जाने क्या हो रहा है?"[23] रफ़त भाई उच्च पद की आशा रखने वाला एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति है। जब उसे दिल्ली के किसी कॉलेज में लेक्चरर का पद मिला लेकिन वह उससे खुश नहीं था। वह तो सीधे ही विश्वविद्यालय में नियुक्ति चाहते थे। रफ़त की पत्नी सुरैया, महरुख़ से इसके बारे में कहती है, "इन्हें तो महरुख़ आपा, जैसे धुन सवार हो गई कि बस अब प्रोफ़ेसरी बहुत कर ली। मुझे यू.जी. सी. का चेयरमेन बनना है। वहाँ कुर्सी पर बैठकर मैं वाइस चांसलर बनने का अपना ख़्वाब पूरा कर सकता हूँ, फिर शिक्षा मंत्री और फिर महरुख़ आपा, आपसे सच कहती हूँ मुझे तो कभी–कभी डर लगने लगता है कि कहीं इन्हें कुछ हो न जाये।"[24]

नासिरा शर्मा द्वारा विरचित 'अक्षयवट' उपन्यास का मुख्य पात्र तो स्वयं इलाहाबाद शहर ही है। दरअसल अक्षयवट प्रतीक है उस अविराम भावधारा का, उस अक्षर विरासत का, जिसका शहर इलाहाबाद की धमनियों में निरन्तर विस्तार है। कह सकते हैं कि इस उपन्यास में इलाहाबाद शहर अपने सारे नये–पुराने चटक–मद्धिम रंगों और आयामों के साथ जीवन्त रूप में उपस्थित है। उपन्यास का प्रधान पात्र **'जहीर'** है, वही उपन्यास की केन्द्रीय भूमिका में है। जहीर के अलावा उसकी **माँ सिपुतन, दादी फिरोजजहाँ, मित्र मुरली, रमेश, बसन्त, सलमान, जगन्नाथ मिश्रा, पुलिस इंस्पेक्टर श्यामलाल त्रिपाठी, पुलिस अफसर की भूमिका में सतीश मजूमदार** इत्यादि उपन्यास के प्रमुख पात्र है। इस प्रकार अक्षयवट उपन्यास जिस प्रकृति का है, तदनुसार इसमें पात्र बहुत अधिक हैं लेकिन वे अधिकतर इकहरे और एक ही आयाम में विकसित होते हैं। ज़हीर के परिवार के तीनों सदस्य पर्याप्त संवेदनशीलता के साथ रचे–बुने हैं। इनमें भी अपने आदर्शों और सपनों को लेकर ज़हीर कुछ अधिक आदर्शवादी होता हुआ दिखाई देता है। वह समाज में व्याप्त हर बुराई से अपनी तरह से लड़ता है। जरूरतमंदों की सहायता करता है। वह कॉलेज का एक होनहार विद्यार्थी है, परन्तु नकल करने के झूठे इल्जाम में उसे फँसाकर परीक्षा देने से वंचित कर दिया जाता है। यद्यपि विश्वविद्यालय के प्रोफेसर यह भली–भाँति जानते हैं कि 'ज़हीर' एक मेहनती, बुद्धिमान् और ईमानदार विद्यार्थी है, पर साथी प्रोफेसर के निकट सम्बन्धी को बचाने के लिए वे चुप रहते हैं। यह हादसा ज़हीर की ज़िन्दगी में एक बहुत बड़ा बदलाव लाता है। वह बिसातखाने की दुकान चलाकर अपने घर की जिम्मेदारियों के निर्वहन के साथ–साथ जहाँ भी उसे ग़लत दिखाई देता है, विरोध करने लगता है। जो भी बेसहारा, निराश, हताश या जरूरतमन्द दिखाई देता है, वह खुले दिल से उसको सम्बल देता है, आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। उसकी मित्र–मण्डली के सारे सदस्य ऐसे ही युवक थे, जिनको ज़हीर ने कभी न कभी सहारा दिया या जहीर की तरह हालात के मारे थे। जब उन्हें पता चलता है कि इंस्पेक्टर श्यामलाल त्रिपाठी व वकील जमील अंसारी दोनों ने मिलीभगत करके श्रीवास्तव चचा से मकान खाली करवा दिया है

और अब बिना लाईट–पानी–दरवाजों के मकान में रहने को विवश हैं। तब ज़हीर श्रीवास्तव जी को एक रहने लायक अच्छा घर किराये पर दिलवा देते हैं। इस पर श्रीवास्तव जी उनको कहते हैं कि– "तुम्हारी चाची तुम लोगों को बहुत दुआ देंगी!।"[25]

जहीर अपने मित्रों से कहता है कि समाज में जो कुछ अनैतिक व गलत हो रहा है, यह सब गलत व्यवस्था की देन है। अतः हम सबको मिलकर प्रयत्न करना होगा क्योंकि "व्यवस्था अपने आप तो बदलने से रही। उसको बदलने के लिए कुछ जरूरी लोगों को उठकर आगे आना पड़ेगा।"[26]

'मुनिया' की दुराचार के बाद हत्या ने ज़हीर को अन्दर से झकझोर कर रख दिया। पुलिस में प्राथमिकी के नाम पर खाना–पूर्ति के सिवाय कुछ नहीं होता है। वह अपनी खीज व आक्रोश व्यक्त करता हुआ कहता है– "हमको इस दिमागी कैफियत में पहुँचाने वाले यही वे लोग हैं जो कानून के नाम पर गैरकानूनी कार्रवाई आपके साथ करते जाएँगे।"[27]

जब कानून के रखवाले ही कानून तोड़ने लग जाएें और सीधे–साधे आम इन्सान का शोषण करना शुरू कर दें। आमजन पर जुल्म ढाने लगें। तब आम इंसान के पास क्या चारा बचता है। जहीर कहता है कि– "इस अपनी व्यवस्था को देखने के दो ही मौके हैं। पहला बाहर से बैठे–बैठे देखो और दूसरे इसमें दाखिल होकर उसी का हिस्सा बनते हुए उसके ताने–बाने में जकड़ते हुए। दोनों ही हालात में तुम्हें तस्वीर एक–सी नजर आएगी मगर अभिव्यक्तियाँ जुदागाना, एक समय को दूहता है दूसरा तमाशाई बना सब कुछ सहता है और मुझे अब सहे जाने की इस कैफियत से जाने क्यों नफरत–सी पैदा हो गयी है। मगर छटपटाहट के अलावा कुछ हाथ नहीं आता।"[28]

वर्तमान व्यवस्था पर जहीर को गहरा क्षोभ है। वह व्यवस्था को सुधारना चाहता है। रमेश को दारागंज के रहने वाले और निराला जी के समय के कवि गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश' की रचना 'तारकवध' से कुछ पंक्तियाँ सुनाते हुए ज़हीर कहता है कि वर्तमान व्यवस्था पर यह पंक्तियाँ बिल्कुल सटीक बैठती हैं–

"किया सिंह का मान उसे पिंजरे में डाला
किया सुकवि से नेह, राजकवि कह कर पाला
मुझे न दो यह मान न मैं इसका अनुरागी
मुझे न होना शेष किसी बन्धन का भागी
लगे किसी को बाण और घायल हो कोई
कवि की दुर्गति देख स्वयं कविता ही रोई।"[29]

इस प्रकार समाज सुधार की इस जिद में संघर्ष करते हुए जहीर अपने मित्र मुरली को खो देता है। पर वह विचलित नहीं होता है। अपने मित्र सतीश मोजमदार से मिलकर इंस्पेक्टर श्यामलाल त्रिपाठी पर कार्यवाही करवा देता है। अन्त में वह अधूरी पढ़ाई पूरी कर अपनी लगन और मेहनत से विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बन जाता है और अपने घर पर ही 'मुस्कान' नाम से एक संस्था खोलकर उसमें निर्धन, अनाथ, बेसहारा बच्चों को पढ़ाता है। लावारिस बच्चों का लालन–पालन भी करता है। परिवारजन भी उसका पूरा साथ देते हैं। ज़हीर इसी संस्था के नाम स्वयं को समर्पित कर देता है। वह अविवाहित ही रहता है। जब उसके बचपन की साथी 'कुकी' उससे प्यार का इजहार करती है, तब ज़हीर दृढ़ निश्चय के साथ साफ–साफ शब्दों में कहता है– "कुकी, मैं तुम्हें हर्ट नहीं करना चाहता मगर सच तो यह है कि बचपन से अब तक मेरी ज़िन्दगी ने ऐसे–ऐसे घुमावदार मोड़ लिये हैं कि मैं खुद कभी–कभी बौखला उठता हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं जीना नहीं चाहता हूँ मगर जिन्दगी तो एक है और उसको मैंने 'मुस्कान' को दे रखा है। उसको दी हुई जिन्दगी मैं उससे छीनकर किसी को दूँ भी तो कह नहीं सकता कि मैं उस शख्स से कितना ईमानदार रह पाऊँगा। ऐसा न हो कि बाद की जिन्दगी सिर्फ नाकामी, शिकवे–शिकायत और अफसोस की नजर हो जाए।"[30]...... "इश्क सिर्फ एक से किया जाता है। दो नावों में सवार नहीं हुआ जा सकता। इसलिए अब यह जिन्दगी न तो मेरी है और न ही उस पर तुम्हारा कोई हक है। हाँ, दिल व दिमाग तुम्हारा आशियाना है जहाँ तुम हमेशा महफूज रहोगी।"[31]

ज़हीर की मित्र मण्डली के सभी पात्र सक्रिय और ऊर्जावान तो हैं लेकिन उनकी निजी ज़िंदगी के ऐसे पक्ष उपन्यास में नहीं के बराबर हैं, जो हमें अपनी संवेदना से छूने में सक्षम हों। पर कथानक को रोचक बनाने में उनका गहरा योगदान है। ज़हीर के चरित्र को उभारने में वे बहुत अधिक सहायक हुए हैं। स्त्री–पात्रों की विरलता, विशेष रूप से उन युवकों के प्रसंग में, उपन्यास में एक अधूरेपन का बोध कराती है। पुलिस के इंस्पेक्टर की भूमिका में श्यामलाल त्रिपाठी का अहम किरदार है। वह भ्रष्ट पुलिस तंत्र का चेहरा है। बिना रिश्वत खाये कोई काम नहीं करता। श्रीवास्तव सरीखे सीधे–साधे लोगों का शोषण करना उसकी फितरत है। अपनी इसी छवि के कारण वह बहुत बदनाम है। यहाँ तक कि पुलिस विभाग के अफसर भी उसको लेकर शंकित है परन्तु "उन्हें यह भी पता था कि त्रिपाठी कई तरह के खेल–खेलता है मगर वे उसको अभी तक रंगे–हाथ पकड़ नहीं पाये थे। क्योंकि कोर्ट–कचहरी, बाजार–हाट, नेता और गुण्डों में उसकी गहरी पैठ थी। बात पता लग जाती थी कि क्या हुआ मगर सबूत पुलिस त्रिपाठी के खिलाफ कभी जमा नहीं कर पायी, उसका ठोस कारण था सम्बन्धों का जाल, जो हर व्यक्ति के स्वार्थ पर निर्भर था।"[32]

एस.एस.पी. सतीश मोजमदार को बताते हुए ए.एस.पी. गौरव दत्ता कहते हैं कि इंस्पेक्टर श्यामलाल त्रिपाठी का कनेक्शन "सच या झूठ, कहा यही जाता है कि दिल्ली तक है। गृहमन्त्रालय में इसके गाँव का कोई है। जैसे कचहरी में यादव जज.....जितने मुँह उतनी बातें

मगर मेरा अनुमान है कि यह हवा बाँधता है और असलियत में यह अपराधी मनोवृत्ति का आदमी है, जो गलती से पुलिस में आ गया है।"[33]

एस.एस.पी. सतीश मोजमदार का पात्र तो जैसे ज़हीर के प्रति हुए अन्याय की क्षतिपूर्ति का माध्यम बनकर रह जाता है। उसकी कोई स्वतन्त्र छवि नहीं उभर पाती है। इस प्रकार पात्रों के चयन की दृष्टि से अक्षयवट उपन्यास का अपना ही वैशिष्ट्य है।

वर्तमान समय की ज्वलन्त समस्या 'जल की कमी' को पुरजोर तरीके से उठाता हुआ नासिरा शर्मा का उपन्यास है 'कुइयाँजान'। इस उपन्यास का प्रधान पात्र है– **'कमाल'**। वह पेशे से डॉक्टर है लेकिन अपनी 'क्लीनिक' पर मरीजों को देखने के साथ–साथ वर्तमान समाज की समस्याओं की ओर उसका खासा ध्यान है। सामाजिक हित के कार्यों में उसका बखूबी साथ देती है उसकी पत्नी 'समीना'। इसके अलावा कमाल की अम्मी 'शकरआरा', अब्बू 'जमाल खाँ', खाला माँ 'खुरशीदआरा', बुआ, बदलू, बहन साफिया, राबिया व राबिया की माँ, रत्ना, मास्टर जी, शमीमा इत्यादि पात्र भी उपन्यास में महत्त्वपूर्ण किरादार निभाते हैं परन्तु ये सारे पात्र कहीं न कही ं'कमाल' के इर्द–गिर्द ही घूते नजर आते हैं।

उपन्यास का नायक या प्रधान पात्र डॉक्टर कमाल पेशे से डॉक्टर होने के बावजूद भी एक अच्छा व भला इंसान है। दूसरे के दर्द व पीड़ा को देखकर उसको बेचैनी होने लगती है। और जब तक उसका समाधान नहीं कर देता तब तक चैन से नहीं बैठता है। मरीजों का इलाज करने के साथ–साथ उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को भी वह सुलझाने का काम करता है। कमाल का मानना है कि समाज की प्रत्येक समस्या एक–दूसरी से जुड़ी हुई हैं। अतः बीमारी से ज्यादा बीमारी के कारणों पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। घर में शादी का माहौल होने के बावजूद कमाल जल की समस्या पर लेख लिखने में व्यस्त रहता है। पत्नी समीना के यह कहने पर कि आप तय कर लो कि आप डॉक्टर हो, समाज सेवी हो, समाजालोचक हो या समाज–सुधारक। तब डॉक्टर कमाल उससे कहता है कि– "मैं बाई प्रैक्टिस डॉक्टर हूँ। मेरा काम मरीजों को देखना, उन्हें सेहत देना है, ठीक है न? मगर, वह डॉक्टर उन वजहों से आंखें तो मूंद नहीं सकता है जिसके कारण ये बीमारियां इंसानी जिस्म में दाखिल होती हैं। अगर वह कारण नहीं बताएगा तो लोग कैसे अपना बचाव करेंगे? तीसरी अहम बात यह है कि डॉक्टर भी एक इंसान है। उसके दिल में कई तरह के जज्बात होते हैं। उन अहुसासात को वह गोली और खुराक पिलाकर मुतमईन तो कर नहीं सकता है। उस अहसास को बयान करने के लिए वह इंसानी हरकत ही तो करेगा? इसलिए.....मैं सोचता हूँ कि एक समाज सुधारक, आलोचक और............ समाज–सेवी–ये सारे रोल बखूबी अदा कर सकता हूँ।"[34]

डॉक्टर कमाल एक खुशमिजाज इन्सान है। दूसरे को कैसे हंसाना है, यह वह अच्छी तरह जानता है। वह मरीजों से बड़ी हमदर्दी के साथ पेश आता है। गरीबों को मुफ़्त में दवा भी देता है

और उनसे कोई फ़ीस भी नहीं लेता है। "कमाल का क्लीनिक इस समय मरीजों से भरा था, क्योंकि डॉक्टर कमाल आठ से दस बजे रात तक मरीजों को मुफ्त देखते हैं और अपने पास से दवाएँ देते हैं।..........उसके हाथ में 'शिफा' है, जिसकी नब्ज पर हाथ रखा, उसकी आधी बीमारी अपनी मुस्कराहट से दूर कर दी। हर एक से हालचाल पूछना, घर–परिवार के बारे में जानना डॉ. कमाल अपना कर्त्तव्य समझता है, इसलिए बूढ़े लोगों और बच्चों की भीड़ के साथ औरतें भी बड़ी संख्या में नजर आती हैं।"[35]

डॉ. कमाल एक जागरूक और सजग इंसान हैं। दिनों–दिन बढ़ती जा रही पानी की समस्या से वह बेहद चिंतित है। इसलिए जहाँ भी पानी को लेकर सेमीनार, संगेष्ठी या सम्मेलन होता है, वह वहाँ पहुँचकर अपना शोध–पत्र अवश्य पढ़ता है। वह इस मामले में काफी चर्चित भी है। अतः उन्हें विशेष रूप से बुलावा भेजा जाता है। बीकानेर, जयपुर, बुन्देलखण्ड, पटना हर जगह जाकर अपने विचार रखते हैं। इलाहाबाद के गांधी प्रतिष्ठान ने जब 'नदियों का जुड़ना : एक महत्त्वाकांक्षी परियोजना' विषय पर सेमिनार रखा तो डॉ. कमाल स्वयं को रोक नहीं पाते हैं। अपने विचार रखते हुए वह कहते हैं– "योजना–परियोजना के बीच हम स्वास्थ्य को नकार देते हैं। यह सोचकर कि जल–जमीन–जानवर से शरीर का क्या संबंध? शरीर का संबंध इतना गहरा है, जिसकी आप कल्पना नहीं कर सकते हैं।......इसलिए हम अपनी किसी भी योजना को बनाते समय स्वास्थ्य को भी नजर में रख सकें तो अनेक कठिनाईयों से बच सकते हैं। नदियों का जोड़ना संभव हो सकता है– आज के दौर में कुछ भी असंभव नहीं है, मगर जो नदियाँ गंदगी का जखीरा बन चुकी हैं, वे आपस में जुड़ने के बाद अपने साथ क्या कुछ नहीं लाएंगी!......मेरा कहने का अर्थ केवल इतना है कि सपने और यथार्थ, योजना और व्यावहारिकता में फर्क है। कोई अंतर्दृष्टि न होने के कारण हमारा श्रम, धन, समय–सब व्यर्थ गए।"[36]

पत्नी **समीना** भी डॉ. कमाल का कदम से कदम मिलाकर साथ देती है। वह स्कूल में अध्यापन का कार्य कर कमाल के सामाजिक हित में कामों में आर्थिक मदद भी करती है। इसलिए जब एक दिन डॉ. कमाल समीना से अल्पस्ताल खोलने की अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं पर आर्थिक समस्या का हवाला देते हैं। तब समीना उनसे कहती है कि "प्लान तो बहुत बढ़िया है। सच पूछो तो कई बार मेरे दिल में भी यह बात आई कि हम टुकड़े–टुकड़े में लोगों की मदद करने की जगह क्यों न कलोक्टिव वे में मदद का कोई ऐसा प्लान बनाएं जो अपने–आप चलता रहे।"[37]

कमाल की बुआ भी नेक दिल इंसान है। वह बदलू के साथ मिलकर दिन भर घर–गृहस्थी का काम सँभालती रहती है। उसका बोलने का लहजा जरुर सख्त है पर अन्दर से दयालु स्वभाव की है। बदलू को समय–समय पर अच्छी सीख देती है। प्यार से उसे घर व बाहर का काम सिखाती है। उसके खाने–पीने का बहुत ख्याल रखती है।

उपन्यास में **'बदलू'** भी पाठकों को काफी प्रभावित करता है। वह लावारिस लड़का पहले मस्जिद वाली गली के मौलाना के पास रहता था। अब मौलाना के गुजरने के बाद कमाल के कहने पर खुर्शीदआरा के यहाँ रहता है। जीवन में कभी माँ–बाप व अपनों का प्यार नहीं मिला। इसलिए मूक जानवारों से उसे गहरा लगाव है। वह उनको रोटी–पानी देता है। बदले में वे उसको प्यार से चाटते हैं। वह काम के बदले पैसा नहीं लेता है। पर एक दिन तनख्वाह मांगकर जानवरों के पानी पीने का हौदा लाकर रख देता है। इसी भाँति पत्नी समीना के डिलीवरी के बाद आकस्मिक निधन होने पर वह एक माँ की भाँति उन दोनों बच्चों को संभालता है। इस पर डॉ. कमाल मन ही मन बदलू के बारे में कहता है– "उसका दरवाजे पर भूखा–प्यासा खड़ा होना, जानवरों को रोटी–पानी देना, मरीजों को बातों से बहलाना और अब माँ बनकर पराग और पंखुडी की परवरिश की हठ बांध लेना। इस लावारिस लड़के के मां–बाप कौन होंगे? उनके अंदर की अच्छाई इस लड़के में किस खूबसूरती से अपनी शाखें फोड़ रही हैं। जीते रहो बदलू..........इसी तरह इंसान बने रहना, यार!"[38]

खुरशीदआरा समीना की माँ है और कमाल की खालाजाद माँ। वह एक नेकदिल उदारहृदय व मृदुभाषी महिला है। रिश्तों की हर ऊँच–नीच को समझती है। जबकि शकरआरा जो उसकी सगी बड़ी बहन है और कमाल की माँ हैं, एक कड़क मिजाज व अपनी अमीरी पर घमण्ड करने वाली महिला है। हर बात पर खुरशीदआरा को वह नीचा दिखाने का प्रयास करती है।

जमाल खाँ, जो कमाल के पिता हैं। वे एक सेवानिवृत्त आइ.ए.एस. अधिकारी हैं। बहुत ही खुशमिजाज़ और जिंदादिल इन्सान है। महफिल में लोगों का दिल जीतना व हँसना–हँसाना उनका स्वभाव है। वह अपने पुश्तैनी गाँव मुस्तफाबाद से गहराई तक जुड़ा है। अपने गाँव में अस्पताल बनवाकर वहाँ लोगों का विकास करना चाहते हैं। बीमारी के अन्तिम दिनों में वे अपने पुश्तैनी घर में ही रहते हैं।

राबिया व राबिया की माँ गरीब घरों से है लेकिन लटके–झटके बड़ों से कम नहीं। किराये के घरों में रहते हैं। राबिया की माँ अंधविश्वासी सोच की धनी है। वह मौलाना असलम से गंडा–ताबीज कराती रहती है। दूसरे लोगों को भी मौलाना के पास भेजती है और बदले में कमीशन खाती है। ठीक इसी तरह राबिया के सपने भी कम नहीं होते हैं। वह अमीर लड़कों पर डोरे डालती रहती है। इन दोनों पात्रों के माध्यम से समाज के एक विशिष्ट चेहरे पर प्रकाश डाला है।

शेष पात्र सिर्फ कथा को आगे बढ़ाने का काम करते हैं। एक प्रकार से उन्हें सहायक पात्र की भूमिका में रखा है।

नासिरा शर्मा के 'जीरो रोड़' उपन्यास की कथा का केन्द्र इलाहाबाद के ज़ीरो रोड़ का 'चक' मुहल्ला और व्यापारिक शहर दुबई है। यह कथा एक साथ कई समस्याओं को उठाते हुए चलती है। उपन्यास की कथा का फलक विस्तृत होने के कारण इसमें पात्रों की भी बहुतायत है। उपन्यास का प्रमुख पात्र **सिद्धार्थ** है। उपन्यास की सारी कथा सिद्धार्थ के इर्द–गिर्द घूमती है। वह एक बेरोजगार नवयुवक है। नौकरी के बिना आये–दिन उसके पिताजी उसे कोसते रहते हैं। सिद्धार्थ के पिता रामप्रसाद दलाल को मोटी रकम देकर दुबई भेज देते हैं। सिद्धार्थ को अधिकारी की नौकरी की कहकर भेजा जाता है पर वहाँ उसे मेहनत–मजदूरी करनी पड़ती है। अपनी मेहनत व ईमानदारी के बल पर सुपरवाइजर बन जाता है। पैसा कमाकर घरवालों को भेजता रहता है लेकिन वह दुबई में मजदूरों व कामगारों की खान–पान, रहने की व चिकित्सा व्यवस्था को देखकर बहुत दुःखी रहता है। सिद्धार्थ दुबई जाकर भी एक स्वच्छ भारतीय संस्कारी युवक की तरह ही जीवन बिताता है। मध्यवर्गीय युवक व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं की उलझन में टूटता जा रहा है और आत्मनिर्वासन की स्थिति में पहुँच गया है। ऐसे में वह कमजोर व निःसहाय बना समय के थपेड़ों को झेल रहा है। आधुनिक सुख–सुविधाओं से भरे हुए परिवेश में रहते हुए भी वह स्वतन्त्र जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। हर पल मर्यादा और संस्कार उसकी स्वच्छंदता पर अंकुश लगाये रखते हैं। सिद्धार्थ का जीवन भी इसी प्रकार का है। पिता के उपदेशों से खीजकर सिद्धार्थ कहता है– "मेरी इन परेशानियों से बाबूजी को कुछ लेना–देना नहीं है। उनके पास न दृष्टि है न संवेदना कि उनका बेटा इन बदली परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाता रोज मरता है। यह सोचकर कि वह किस ओर बढ़े? किस छत के नीचे खड़ा हो? पूरे विश्व में कहीं ठहरने व चैन से रुकने की जगह नज़र नहीं आती है। बस हालात के पैराशूट से जो जहाँ गिरा वहीं छटपटाता–सा पड़ा है।"[39]

इस उपन्यास में इलाहाबाद के 'चक' मुहल्ले के चार परिवारों की कथा का ताना–बाना है। इनमें **रामप्रसाद, जगतराम, मुन्ना हाफ़िज** एवं **हामिद** का परिवार आते हैं। चारों की संताने व परिवारजन भी विभिन्न पात्रों की भूमिका में नजर आते हैं। रामप्रसाद एक रिटायर्ड क्लर्क है और सिद्धार्थ के पिता है। वह बेकारी के कारण सिद्धार्थ को कोसता रहता हैं वह कहता है– "पूरे शहर में सांड बनकर फिरता है।......अगर चला गया है तो चला जाय मेरी बला से।....पाप कटा। समझूँगा मर गया।"[40]

रामप्रसाद पारम्परिक सोच वाले व्यक्ति है। वह सिद्धार्थ पर हर तरह से शिकंजा कसकर रखना चाहता है। उसको डर है कि कहीं सिद्धार्थ विदेशी जात से प्रेम न कर बैठे। इसलिए बार–बार उसे घर की समस्याओं की याद दिलाते हैं। उसका मानना है कि– "घर की जिम्मेदारी का एहसास न दिलाया, खर्चे का तकाजा न किया तो सिद्धार्थ को खुली छूट मिल जाएगी। पैसा उड़ाने के लिए जो कतई उचित नहीं है। मैं जानता हूँ औलादों पर कैसा पंजा कसकर रखना चाहिए।"[41]

जगतराम और रामप्रसाद एक ही मोहल्ले के रहने वाले हैं। दोनों बचपन के अच्छे मित्र हैं। लेकिन जब से सिद्धार्थ दुबई में पैसा कमाने लगता है, तब से रामप्रसाद स्वयं को बड़ा मानने लगता है। इसलिए जगतराम कहता है कि– ″ठीक तो है, अब अपना मित्र रामप्रसाद हमारे वर्ग का नहीं रह गया है। हम ठहरे निम्न मध्यमवर्गीय लोग मगर अब उसका जीवन स्तर हमसे ऊँचा हो गया है..........अब उसका शुमार उच्च वर्गीय लोगों में होगा.......।″[42]

रामप्रसाद की पत्नी **राधारानी** एक मध्यवर्गीय परिवार की गृहिणी है। घर, परिवार से अलग उसकी कोई स्वतंत्र इच्छा व आकांक्षा नहीं है। उसका जीवन घर, रसोई, धुलाई और सफाई आदि तक सीमित है।

उपन्यास **मुन्ना हाफ़िज** का चरित्र काफी प्रभावित करता है। वह एक सहिष्णु एवं उदार ह्रदय वाला व्यक्ति। सर्वधर्म समभाव की भावना से ओत–प्रोत है। साथ सोच–समझकर निर्णय लेने वाला ईमानदार व धैर्यशाली व्यक्ति है। वह मजहबी किताबों की एक दुकान चलाकर अपना घर चलाता है। जब तब्लीगी जमात वाले उसे गैर–मुस्लिमों के खिलाफ़ भड़काने का प्रयास करते हैं तब वह उनसे कहता है– ″कान खोलकर सुन लें आप सभी साहेबान! मैं किसी के न खिलाफ कोई काम करता हूँ न किसी मज़हब की तब्लीग पर। मैं गैर–मुसलमान को गाली नहीं देता हूँ बल्कि उन बातों की शिकायत करता हूँ जो हमें खलती हैं, जिससे हमें नुकसान पहुँचता है।″[43]

जब उसकी दुकान को आग लगा दी जाती है तो सभी लोग इसका आरोप गैर–मुसलमानों पर लगाते हैं लेकिन मुन्ना हाफ़िज यह नहीं मानते। क्योंकि वह जानता है कि वे यह काम नहीं कर सकते। तब उन्हें तब्लीग जमात वालों की वह धमकी याद आती है जिसमें वे कहते हैं– ″आप अपने बर्ताव की क़ीमत खुदा के कहर की शक्ल में एक दिन देखेंगे।″[44]

सिद्धार्थ के मुहल्ले के लड़के **'हामिद'** की उसी मुहल्ले के कुछ लड़के बम फेंककर हत्या कर देते हैं। पर सब कुछ जानते हुए भी हामिद के पिता बेटे के कातिलों का नाम एस.पी. को नहीं बताते हैं। क्योंकि वह जानता है कि नाम सामने आने पर अभी दंगा भड़क जायेगा और वर्षों से चला आ रहा साम्प्रदायिक सौहार्द हमेशा के लिए खत्म हो जायेगा। इसलिए मुहल्ले के बाकी जवानों की जान खतरे में डालना वह नहीं चाहते हैं। वह एस.पी. से कहता है– ″मुझे अपने हिंदू भाइयों से कोई शिकायत नहीं है। हम तो बड़े जमाने से साथ–साथ रहते आये हैं और कभी कुछ ऐसा नहीं घटा कि मैं उनकी बुराई करूँ।″[45]

'ज़ीरो रोड़' उपन्यास में **'तुतला'** एक ऐसा पात्र है जो अनाथ बच्चों की समस्याओं को समाज के सामने रखता है। तुतला एक तीन–चार साल का अनाथ बच्चा है। पारिवारिक विवाद में

उसके माँ–बाप मर जाते हैं। उसकी जबान कट जाने के कारण वह तुतलाकर बोलता है। इलाज करवाकर पुलिस उसे दर–दर की ठोकर खाने छोड़ देती है।

इसके अलावा मुन्ना हाफ़िज का बेटा **कासिम कमाली उर्फ काली, पूनम, कविता, नीरू, साधना, यशोधरा** इत्यादि भी सहायक पात्र हैं।

'पारिजात' उपन्यास नासिरा शर्मा का एक नये केनवास पर लिखा गया उपन्यास है। यद्यपि **'रोहन दत्त'** उपन्यास की केन्द्रीय भूमिका में है फिर भी रोहन दत्त की पत्नी 'एलेसन', रोहन के माता–पिता प्रभा व प्रह्लाद दत्त, निखिल व शोभा जो रोहन के माता–पिता के शिष्य–शिष्या हैं, रूही, रूही की माँ फ़िरदौस जहाँ, रूही का दिवंगत पति काज़िम, रूही का भाई मोनिस, फिरदौस जहाँ की लाल कोठी का नौकर परिवार सलमा–गफ़ूर, अन्ना बुआ, फ़िरदौस जहाँ की सखी सरस्वती, सफ़ीर, डॉ. फरीदी, संतरा–मौसम्मी, शकूर, रमज़ानी, चन्द्रमुखी, मारिया, रोहन के विदेशी मित्र इत्यादि पात्र भी इस उपन्यास में अच्छी भूमिका में है।

पात्र के रूप में 'पारिजात' उपन्यास में छाया रहता है किन्तु प्रत्यक्ष रूप में कहीं दिखाई नहीं देता है। वह उपन्यास के नायक रोहन व उसकी ब्रिटिश प्रेमिका–पत्नी एलेसन का दो साल का बेटा है, जिसे लेकर एलेसन गायब तो गई, साथ ही नायक रोहन पर झूठे आरोपों में फँसाकर जेल भी भिजवा देती है। पारिजात को पाने की तड़प व आतुर प्रतीक्षाएँ सभी पात्रों में देखी जा सकती है।

नायक रोहन एक शिक्षित युवक है जो मल्टीनेशनल कम्पनी में जॉब करता है। वह अपनी मर्जी से प्रेम–विवाह करता है लेकिन जब एलेसन उसे धोखा देकर गायब हो जाती है तथा दूसरी औरतों के साथ लेसबियन सम्बन्ध रखती है। जिसके कारण वह अपनी माँ को खो देता है। घर बिक जाता है। इन सब परिस्थितियों के लिए वह स्वयं को जिम्मेदार मानता है और बाकी का जीवन अपने पिताजी प्रह्लाद दत्त के साये में गुजारना चाहता है। लेकिन अपने बेटे को पाने की तड़प उसे चैन से बैठने नहीं देती। वह दर–दर भटक कर बेटे 'पारिजात' को खोजने का हर संभव प्रयास करता है। स्वयं को संभालने का भी पूरा प्रयत्न करता है। पर एक बाप का दिल जो हर पल अपनी औलाद को प्यार करने, उसे खिलाने व स्पर्श करने के लिए बिलखता रहता है, चैन से बैठने नहीं देता। अपने जज्बातों को वह डायरी में लिखता है–

"जब–जब
गंध, मंद पवन–सी
बहती मेरे मन में

याद तुम्हारी बहुत सताती।
हँसते होठ, दिखते जिनके बीच
चावल जैसे दो दाँत सफ़ेद
निकलने को बेचैन।
मेरे सीने पर तुम सोते दोनों मुठ्ठी बाँध
खुली हथेली थपकी देती
दो धड़कन पर एक साथ
गंध तुम्हारी श्वास ढूँढ़े
सात समंदर पार।"[46]

साथ ही बेटे के नाम अनेक लम्बे–चौड़े जज्बात भरे ई–मेल लिखते हैं, इस आशा में कि कभी बढ़ा होकर पारिजात जब स्वयं के बारे में जानना चाहे, तो शायद यह पढ़कर उसके पास पहुँच जाये।

उसे इस भटकाव से निकालने में उसके पिता प्रहलाद दत्त व निखिल बहुत सहायता करते हैं। उसे लखनऊ 'रूही' के पास भेजते हैं, जो रोहन की बचपन की मित्र है। इसी बीच रोहन में स्वयं की वंशावली जानने की धुन सवार हो उठती है और जानने में सफल भी होता है। धीरे–धीरे कथानक इस प्रकार मोड लेता है कि उपन्यास का समापन रोहन व रूही की शादी के साथ होता है।

प्रह्लाद दत्त जो रोहन के पिता हैं, वे एक सेवानिवृत्त प्रोफेसर हैं और जाने–माने अर्थशास्त्री हैं। रोहन के पारिवारिक बिखराव के बाद जब पत्नी प्रभा का भी देहान्त हो जाता है, तब वे भी टूट जाते हैं पर स्वयं को उभारने के लिए किताओं में डूबे रहते हैं। अपने शिष्य निखिल के साथ देश–विदेश में होने वाली सेमीनारों में शिरकत करते हैं। शिष्य–निखिल व उसकी पत्नी शोभा जो प्रभा की शिष्या रह चुकी है, दोनों मिलकर प्रह्लाद दत्त को संभालते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि गुरु के प्रति उनके क्या कर्त्तव्य होने चाहिए।

निखिल एक गुरुभक्त शिष्य है। वह हर सुख–दुःख में अपने गुरु प्रह्लाद दत्त के साथ खड़े होते हैं। उनकी हर छोटी से छोटी जरूरत का वह ध्यान रखता है। इसमें निखिल की पत्नी शोभा भी पूरा–पूरा साथ देती है। वे तन–मन–धन से गुरु की सेवा करते हैं। जब रोहन अपने बिके हुए सत्ताईस नंबर बंगले को वापस खरीदकर अपने पिताजी को दिलाना चाहते हैं पर उनके पास पर्याप्त रुपये नहीं होते हैं। तो निखिल अपने रुपये मिलाकर वापस बंगले को खरीद लेते हैं। जब रोहन उसे थैंक्स बोलता है तब वह रोहन से कहता है– "अबे एक हाथ दूँगा जो अंग्रेजों की तरह बात–बात पर थैंक्स दे पल्ला झाड़ेगा।.....सर ने हमारे साथ वह किया है जो हम सात जन्म

भी कोशिश करें तो वह दुलार लौटा नहीं सकते। आज जो निखिल राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी फ़ील्ड में पहचाना जाता है वह सर के कारण है। तुम बहुत बड़ी विरासत के वारिस हो रोहन।"[47]

'रूही' उपन्यास में 'रोहन' की समकक्ष पात्र है। वह जुल्फिकार और फ़िरदौस जहाँ की पुत्री है। उसकी शादी नुसरत व बसारत के बेटे काज़िम से होती है। पर अपने सास–ससुर के देहान्त और काज़िम के आत्महत्या कर लेने के कारण लखनऊ की बहुत बड़ी हवेली 'सफेद कोठी' की अकेली वारिस है और वैधव्य जीवन जी रही है। काज़िम की मौत से वह पूरी तरह टूट जाती है और स्वयं को सफेद कोठी में ही कैद कर लेती है। तीनों प्रगाढ़ मित्र परिवारों के सभी बच्चे बचपन के मित्र हैं और साथ–साथ पले–बड़े हैं। यहाँ तक कि विदेशों में पढ़ाई भी साथ–साथ की है। जब रोहन उसके पास जाता है और वहाँ ठहरता है तो रूही की मनोस्थिति में धीरे–धीरे सुधार आता है। रोहन उसके दर्द को बड़ा मानकर स्वयं के दर्द को छुपा जाता है। पर रूही की फ्रेण्ड 'मारिया' जो रोहन की काउन्सलर रह चुकी है, रोहन के बारे सब कुछ रूही को बता देती है। तब रूही रोहन को अपने पास बुलाती है और जीवन साथी बनने के लिए कहती है। दोनों की शादी होती है और 'परीजाद' का जन्म होता है।

उपन्यास में रूही की माँ **फ़िरदौस जहाँ** का पात्र खूब उभारा है। वह भी 'लाल कोठी' नाम के आलीशान बंगले में अकेली रहने को मजबूर है। पति की मौत व दुर्घटना के कारण पैरों में पैरालसिस होने के कारण व्हील चेयर पर बैठी हुई घूमती है। पुत्र 'मोनिस' अपनी पत्नी व बच्चों के साथ विदेश में रहता है और लखनऊ लौटने के लिए कहती है तो वह साफ–साफ मना कर देता है। बल्कि उसको अपने पास बुलाता है। वह चैक भेजता रहता है। तब फिरदौस जहाँ मन ही मन कहती है– "मुझे चेक नहीं, तुम्हारी चाहत है।"[48] फिरदौस जहाँ लेखिका है। वह 'बेटी के नाम खत.......' शीर्षक से लेखन कार्य करती है। जिसमें वह लखनऊ की पुरानी शान–ओ–शौकत व विरासत का बहुत बारीकी से वर्णन करती है। लखनऊ की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सर्वविध संस्कृति का वर्णन करती है। वह लिखती है– "रूही! आज में तुम्हें ऐसी औरतों के बारे में बताऊँगी, जो अपने ज़माने की अहम और जानदार शख़्सियतें थीं। तवायफ़ों के रक्स तुमने फिल्मों में देखे होंगे, यहाँ मैं उनकी सामाजिक ज़रूरत और कल्चरल ताने–बाने का जिक्र करना चाहती हूँ।........."[49]

'सरस्वती' फिरदौस जहाँ की मित्र है। वह भी पेंशन के बाद उसी की भाँति जिंदगी जी रही है। अतः वह दोनों मिलकर एक–दूसरे का मन बहलाती हैं। फिरदौस जहाँ अपना लिखा हुआ, उसे पढ़कर सुनाती है। कभी–कभी मनोरंजन हेतु चुटकुले, ताश आदि चलते रहते हैं। 'ग़फ़ूर' व उसकी पत्नी सलमा परिवार सहित रहकर हरदम देखभाल में लगे रहते हैं। बच्चों के रहते हुए

एकाकी ज़िन्दगी जीने को मजबूर माँ–बेटी की ज़िन्दगी से ग़फ़ूर गहरा दुःखी है। वह मन ही मन कह उठता है– "ये बच्चे पढ़–लिखकर अपने कहाँ रह जाते हैं?........पूरी कॉलोनी में जज साहब हो या इंजीनियर साहब, जो भी बूढ़ा है, उसके बच्चे या तो विलायत में हैं या फिर दूसरे शहर में और वे या तो अल्लाह भरोसे हैं या फिर नौकरों के सहारे। यह भी कोई ज़िंदगी है।"[50]

इसी तरह सफेद कोठी में रूही की देखभाल के लिए **शकूर** और उसकी पत्नी **रमज़ानी**, दो बेटियाँ **संतरा** और **मौसम्मी** तथा **अन्ना बुआ** है। अन्ना बुआ 'रूही' के खाने–पीने से लेकर हर छोटी से छोटी जरुरत का पूरा ध्यान रखती है।

'चंद्रमुखी' भी प्रह्लाद दत्त की शिष्या है और मन ही मन 'रोहन' को चाहती है लेकिन रोहन के लव मैरिज करने पर वह टूट जाती है और खुद भी रवि के साथ शादी कर लेती है पर रोहन को भुला नहीं पाती है। इसलिए जब उसे प्रह्लाद दत्त से पता चलता है कि "रोहन व रूही। दे आर गेटिंग मैरेड।"[51] तो वह अपना आपा खो बैठती है और रोहन को खरी–खोटी सुना देती है– "यू चीट। ऑल मैन आर सेम.............. ।"[52]

सफ़ीर लखनऊ का रहने वाला है और वह 'दत्त यानी हुसैनी ब्राह्मण' के बारे में खोज–बीन करने में रोहन की बहुत मदद करता है। इसके अलावा रोहन के मित्र गोपेश, रॉबिन इत्यादि भी विदेशी धरती पर रोहन की बहुत मदद करते हैं।

'काग़ज़ की नाव' नासिरा शर्मा का नया और विशिष्ट उपन्यास है। यह उपन्यास बिहार में रहने वाले उन परिवारों का वृत्तान्त है, जिनके घर से कोई न कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया हुआ है। उपन्यास की कथावस्तु किसी एक पात्र पर केन्द्रित नहीं है बल्कि अनेक पात्रों की मार्मिक गाथाओं के माध्यम से रोजगार व काम–धन्धे की तलाश में पलायन करने से उपजी विभिन्न सामाजिक समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान खींचा गया है। स्थूल रूप में उपन्यास **महजबीं** और **अहमद** की बड़ी बेटी महलक़ा के पारिवारिक तनाव को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ है। महलक़ा के ससुर ज़हूर और ख़ाविन्द ज़ाकिर के बीच भावनाओं का अद्‌भुत चित्रण है। इसके अलावा उपन्यास में पात्र गोलू, महलक़ा के बच्चे, महलक़ा की छोटी बहन माजदा, मलक़ानूर व उसका पति नदीम, महलक़ा का प्रेमी राशिद, रमज़ान, माजदा का पति नईम, माजदा के सास–ससुर, ज़ाकिर का दोस्त मनोज, मनोज की धर्मपत्नी, शरीफ़ सिद्दकी, ज़ाकिर का दोस्त जावेद, आमिल बदरुउद्दीन, भोलानाथ, कैलाश, बिंदू, सुधा, कांता, राजेश, त्रिसुलिया, क्रांति झा और मुक्ति झा आदि की बेहद सनसनीख़ेज उपकथाएँ हैं।

ज़ाकिर ज़हूर मियाँ का बेटा व महलक़ा का पति है। वह अपने दोस्तों जावेद, नदीम, मनोज आदि के साथ सऊदी अरब में कमाने जाता है। वह अपने बुजुर्ग बाप, पत्नी व बच्चों का

पूरा ध्यान रखते हुए बराबर रूप से पैसा भेजता रहता है। घर में हर तरह की सुख सुविधाएँ जुटा कर रखता है। वह अपनी पत्नी महलक़ा से भी पिताजी का ठीक से ध्यान रखने के लिए कहता है परन्तु महलक़ा ज़हूर मियाँ को खरी–खोटी सुनाने, कड़वा बोलने व बेकद्री करने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ती है और ज़ाकिर से झूँठ बोलती रहती है। ज़हूर के कमरे का जो भी उपयोगी व सजावटी सामान जाकिर उपलब्ध कराके गया था, वह सब किसी न किसी बहाने से वह अपने कमरे में ले जा चुकी होती है। यहाँ तक कि वह अपने ससुर ज़हूर मियाँ को स्पष्ट धमकी भरे लहजे में बोलती है– "अरे, कब से पुकार रही हूँ, बुढ़ऊ सुन क्यों नहीं रहे हैं?.....यह लीजिए मोबाइल। रात को इनका फ़ोन आएगा। मेरी शिकायत न करिएगा, समझे।"[53] इतने पर भी वह कहानी सुनने के बहाने अपने बच्चों को ज़हूर मियां के पास भेज देती हैं ताकि वह अपने बेटे से क्या बात करे पता चल सके। जब बच्चे जाने लगते हैं तब जहूर उनसे पूछता है कि कहानी नहीं सुनोगे तुम लोग? तब बच्चे बोलते हैं– "नहीं दादाजान, नींद आ रही है, मम्मी ने कहा था फ़ोन सुनकर फ़ौरन वापस आना।"[54]

ज़हूर मियां सब कुछ सहन कर घुट–घुट कर जीते हैं। और बेटे को फोन आने पर झूँठ बोलते हैं कि– "अरे बेटा, लाजवाब है, जुग–जुग जियो.....महलक़ा मेरा बहुत ख़याल करती है। मुझे किसी वक़्त अकेला नहीं छोड़ती। यक़ीन न हो तो देखो, तुम्हारे तीनों जिगर के टुकड़े मेरे विस्तर पर जमे हैं। मुझसे कहानी सुनने की ज़िद कर रहे हैं।"[55]

महलक़ा ज़ाकिर के द्वारा भेजी गई खून–पसीने की कमाई पर एशो आराम की जिंदगी जीती है। वह राशिद नाम के आवारा लड़के के साथ मोटरसाईकिल पर घूमती रहती है तथा उस पर पैसे भी लुटाती है। जब यह बात महजबीं को पता चलती है तो वह महलक़ा से कहती है– "अभी तक कितने पैसे ऐंठ चुका है तुमसे?"[56].... "तेरी अक्ल घास चरने गई है? एक कुंवारा जवान एक ब्याहता, वह भी तीन बच्चों की मां से मुहब्बत नहीं करता, फ़ायदा उठाता है। अपना मतलब और आराम तलाश करता है। इतनी भी समझ तुझमें नहीं रही महलक़ा?"[57]

महजबी एक सेवानिवृत अफसर अमजद मियाँ की पत्नी है। उसके दो बेटियाँ महलक़ा व माजदा हैं। वह आमिल व ओझाओं के चक्कर में घूमती रहती है। अपनी कुण्डित मानसिकता के कारण एवं अन्धविश्वास का शिकार होकर अपने पति के घर को बिखरा चुकी है और अब अपनी पुत्रियों के सुख की चाह में उनके ही घर को बर्बाद करने पर तुली हुई है। वह आमिल बदरुद्दीन के घर जाकर कहती है– "आपकी दुआ से बेटी की नंद का ऐसा घर बर्बाद हुआ कि उसने तो गर्दन में फांसी लगा ली, मियां उसका मर–खप गया मगर ससुर जेल में झूठे मुकद्मे में ज़रूर फंसा है। मेरी बेटी का एक शाने का बोझ तो हलका हुआ, अब उस बूढ़े गिध का भी कुछ हला–भला कर दें।"[58] छोटी बेटी माजदा की भी मंगनी हो गई है। उसके लिए "आप ऐसी ताबीज़

दें कि बेटी अपने हिस्से की जायदाद लेकर अलग हो जाए। सास–ससुर ज़िंदा हैं। दो कुंवारी नंदें अभी सीने पर कुंवारी बैठी हैं।"[59]

'महजबीं' की छोटी बेटी **'माजदा'** पढ़ी लिखी व प्रगतिशील विचारों की धनी है। वह अपनी माँ की अन्धविश्वासी आदतों से अच्छी तरह वाकिफ़ है। इसलिए जब उसको पता चलता है कि उसके लिए उसकी माँ अमल करवाकर लाई है तो वह इसका खुलकर विरोध करती है। "मम्मी, मुझे यह सब पसंद नहीं है। यह ग़ैर मज़हबी और गैरइनसानी हरकत हैं।"[60].... "मम्मी, दूसरों का बुरा चाहकर अपना भला क्या होगा, इसमें मुझे शक है?"[61] यदि आप नहीं मानोगी तो "मैं निकाह के वक्त़ इनकार कर दूंगी।"[62]

'अमजद मियाँ' महजबीं के पति व सेवानिवृत्त अधिकारी हैं। गृहकलह से बचने के लिए वह महजबीं की बातों को सहन करने लगते हैं। जिसके कारण महजबीं उनकी बातों को गम्भीरता से नहीं लेती है लेकिन जब माजदा विरोध करती है तब उनका जमीर जाग उठता है। तो वह भी महजबीं को फटकार लगाते हुए कहते हैं कि– "यह मंजूर नहीं तो मेरी लाश को सिरहाने चूड़ियाँ तोड़ने को तैयार हो जाओ....मेरी ख़ुदकशी शायद तुम्हें बदल सके।"[63]

वह माँ–बाप के प्यार व भाई–भाभी के प्रति प्रेम की चाह में तड़पता रहता है। जो महजबी के व्यवहार व टोने–टोटके से तंग आकर अमेरिका में रहते हैं।

'गोलू' महलक़ा के घर का नौकर है। वह छोटी उम्र का है, जहूर मियाँ से भोजपुरी में बात करता है तथा उसके खाने–पीने का बहुत अच्छे से ध्यान रखता है पर महलक़ा के आगे मजबूर है। उपन्यास में सबसे मार्मिक गाथा है **'मलक़ानूर'** की। मलक़ानूर के पति नदीम ज़ाकिर के साथ सऊदी अरब में नौकरी करता है। मलक़ानूर का दुधमुँहा बच्चा है व घर में सास–ससुर के साथ रहती है। उसके सास–ससुर उसे बंदिशों में रखते हैं। पड़ोसी लड़कों से जरा भी बात करने पर वे शक करने लगते हैं और उसके घर से बाहर–निकलने व छत पर जाने पर पाबन्दी लगा दी जाती है। वह आगे पढ़ना चाहती है पर वे इसके लिए अनुमति नहीं देते हैं। इस तरह एक दिन तंग आकर वह बच्चे को छोड़कर घर से भाग जाती है और एक गाँव में शरीफ़ सिद्दकी का परिवार उसको शरण देता है। वह वहाँ घर का काम करती है। जब नदीम लौटकर आता है और उसे लेने जाता है तो वह साफ मना कर देती है। वह अलग रहना चाहती है पर नदीम माँ–बाप से दूर नहीं रहना चाहता है। एक दिन नदीम छत से चकराकर नीचे खेलते हुए बेटे पर आकर गिरता है और दोनों वहीं मर जाते हैं। हादसे को देखकर उसकी माँ का हार्ट अटैक हो गया और वह भी चल बसती है। नदीम के चचा मलक़ानूर के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट देते है। ज़ाकिर और जावेद उसे बचाने का भरसक प्रयास करते हैं लेकिन वह भटकती हुई कब्रिस्तान जा

पहुँचती है। नदीम के चचा उसे मार–पीटकर नदी में बहा देते हैं। इस प्रकार उसका दर्दनाक अन्त होता है।

'आमिल बदरुउद्दीन' एक तांत्रिक है। वह भोली–भाँति औरतों को उनकी निजी पारिवारिक समस्याओं से झुटकारा दिलाने का झाँसा देकर मोटी रकम ऐंठता रहता है। अमल करके पानी व भूभूत देकर गुमराह करता रहता है। इसलिए "जब इसके बाप करीमउद्दीन दस साल पहले गिरे बोसीदा मकान में रहते थे तो तावीज़े सही देते थे। मगर जब से बाप–'बेटे ने अमल शुरु किया है, दिन दूनी रात चौगुनी आमदनी होने लगी है, तब से बाप–बेटे का दिल अपने पुराने आने वालों से हट गया है, जिनकी बदौलत वे आज दोमंजिले मकान के मालिक बन बैठे हैं।"[64]

सिवान कस्बे में एक दुकानदार है **'रमज़ान'**। वह सउदी से आने वाले पैसे से भारतीय बाजारों में आने वाली तब्दीली को बयां करता है। वह बेहद सजग, जागरुक व इंसानियत पसंद पात्र है। जब भी किसी को मदद की जरूरत होती है तो आगे बढ़कर मदद करता है। वह वर्तमान व्यवस्था से बेहद खफ़ा है। वह कहता है– "जिंदगी भी क्या बनकर रह गई है। हर क़दम पर अड़चनें.......आदमी जिए तो कैसे जिए?"[65]

'क़मर महमूद' एक बेरोजगार नवयुवक है। लाईट मैकेनिक का काम करता है। सिर पर बड़ी बहनों का बोझ है। बुजुर्ग माँ–बाप है। वह अपने दोस्तों के साथ मिलकर खुदको मिडिल ईस्ट में कार्यरत इंजीनियर बताकर धोखे से मास्टर जी की लड़की शबिस्ता से सगाई कर लेता है। दहेज के रुपये से बहनों का रिश्ता तय कर देता है। पर बड़के फूफा उसकी पोल खोल देते हैं। मास्टर जी के परिवार के लिए यह सदमे से कम नहीं होता है। क्रांति झा मास्टर जी का दोस्त है। सब मिलकर उस लड़के को पकड़ लाते हैं। इस प्रकार शबिस्तां की जिंदगी बच जाती है।

क्रांति झा के बेटे का नाम **मुक्ति झा** है। इसके अलावा जो अन्य पात्र हैं। उनके माध्यम से बिहार क्षेत्र में पसरी बेरोजगारी और उससे उपजी नानाविध समस्याओं का जीवन्त चित्रण किया गया है।

'दूसरी जन्नत' उपन्यास में नासिरा शर्मा ने निःसन्तान दम्पत्तियों के लिए मेडिकल जरूरतों व मजहबी उसूलों के मध्य आपसी टकराव की समस्या को उठाकर एक नई बहस छेड़ी है। इस प्रकार मेडिकल उपलब्धियों और शरीयत के नियमों में तालमेल बिठाकर मुस्लिम समाज को कैसे आगे बढ़ाया जाए? यह सोचने के लिए मजबूर किया है। उपन्यास की मुख्य पात्र **'रुख़साना'** है जो पेशे से डॉक्टर है और अपनी क्लीनिक 'शहला क्लीनिक' पर बैठकर वह निःसन्तान दम्पतीयों का आई.वी.एफ. तकनीक से इलाज कर उन्हें सन्तान सुख प्रदान करती है। इस काम में उसके

परिवारजन पति शहाब, दो जेठानी शहनाज़ और राना, दो जेठ–समीर और फरीद, सास–ससुर मुख़्तार नूरज़हाँ और मुख़्तार अब्बास, ददिया सास–ससुर शहला बानो और डॉ. ज़फ़र अब्बास क़मरुन, भाई सलीम, माता–पिता सबीहा और मेज़र असलम सभी बख़ूबी साथ देते हैं। उसके सपने को साकार करने में हर संभव मदद करते हैं। इसके अलावा महत्त्वपूर्ण पात्र है **'फरहाना'** और **'पायलेट गुलज़ार नक़वी'**। दोनों मियाँ–बीवी निःसन्तानता के दुःख से पीड़ित है। इन्हीं दोनों पात्रों के सहारे उपन्यास मुख्य बहस तक जा पाता है। जीनत और शाह आलम, असग़र फ़ूफ़ा, क़मरून की माँ आदि सुल्ताना अन्य पात्र भी कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक हैं।

'रूखसाना' का शुरू से ख्वाब है कि वह डॉक्टर बनकर सन्तानहीन परिवारों में एक खिलखिलाहट भरी खुशी लाने का प्रयास करेगी। इसलिए सगाई से पहले वह शहाब से कहती है कि "मेरी कज़न बहुत ख़ूबसूरत थी। लव मैरिज की थी मगर बेबी न होने की वजह से ज़िंदगी दूभर हो गई है उसकी। मैंने तभी तय कर लिया था कि बेऔलाद औरतों के लिए सारी ज़िंदगी लगा दूँगी। ज़माना बदल रहा है। साइंस ने हैरत अंग्रेज तरक़्क़ी की है और डॉक्टर की ज़िंदगी दरअसल उसकी अपनी नहीं रहती है।"[66]

'शहला क्लीनिक' पर बैठकर वह अपने उद्देश्य में लग जाती है। फरहाना के केस में धार्मिक अड़चन आने पर एक विचार गोष्ठी के जरिए समाज के लोगों, बुद्धिजीवियों, औरतों आदि को विज्ञान की उपलब्धियों तथा शरीयत के नियमों के बारे में विस्तृत रूप से बताती है। दूसरे मुस्लिम देशों ने इस हेतु क्या बदलाव किये हैं और क्या–क्या ढिलाई दी हैं, जो न्यायोचित व धर्मोचित मानी गयी है। लोगों के प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर समाधान सुझाती है। जिसमें काफी हद तक सफल भी होती है। शहाब खुले दिल से उसका साथ देता है।

अब्बास परिवार के सभी पात्र संस्कार सम्पन्न, उदारहृदय, पढ़े–लिखे एवं हंसमुख स्वभाव के हैं। परिवार में बड़ों का आदर व सम्मान किया जाता है। नई पीढ़ी आधुनिकता और पारम्परिक विरासत में पूरा तालमेल बिठाकर चलते हैं। परिवार के ज्यादातर लोग डॉक्टर है। ज़फ़र अब्बास ने रुख़सामा के सपने को साकार करने के लिए हवेली के साथ ही क्लीनिक बनवायी।

क़मरुन अन्ना बुआ की पोती है। अन्ना बुआ पहले दूसरों के घरों के तरह–तरह के काम करके रोज़ी'–रोटी कमाती थी। अब्बास परिवार में शुरू से वही काम करती थी। बाद में क़मरून की माँ सुल्ताना विदेश में मिडवाइफ़ व हाऊस कीपिंग का काम करती है। क़मरुन अब्बास परिवार में ही पली–बढ़ी है और हाऊस कीपिंग संभालती है। अब्बास परिवार ने भी उसे अपनी बेटी की तरह पाला व पढ़ाया। वह शहाब की समवयस्क है। दोनों भाई–बहन में गहरा प्यार है। इसलिए शहाब की शादी के बाद भी वह भाई–भाभी के साथ रहकर भाभी की क्लीनिक पर नर्स का काम करने की इच्छा रखती है। ताकि वह भाई–भाभी के साथ रिश्ता बरकरार रख सके।

'सलीम' रुख़साना का भाई है जो रुख़साना की शादी के दौरान क़मरुन को देखकर उस पर मोहित होता है और क़मरुन भी उसे चाहने लगती है परन्तु जब सलीम को पता चलता है कि वह शहाब की सगी बहन नहीं होकर मिडवाईफ का काम करने वाली अन्ना बुआ की पोती है तो वह साफ इनकार कर देता है। सलीम के माँ–बाप सबीहा व मेजर असलम का भी यही मानना है।

उपन्यास में सर्वाधिक ध्यान खींचने वाला पात्र है **'फ़रहाना'**। वह और उसका पति पायलेट गुलज़ार नकवी दोनों रुख़साना के परामर्शानुसार आई.वी.एफ. तकनीक से अपने बच्चे 'शाद' को पाकर खुशी से रहते हैं। पर गुलज़ार स्वयं के अंश से बच्चा पाने की चाहत में छुपाकर दूसरी शादी कर लेता है और बच्चे पाकर फूला नहीं समाता। लेकिन जब फ़रहाना को इस बारे में पता चलता है तो तल़ाक की नौबत आ जाती है। मामला कोर्ट जाने पर निर्णय फ़रहाना के खिलाफ जाता है। शरीयत के नियमानुसार आई.वी.एफ. तकनीक से पैदा हुआ लड़का 'शाद' अवैध करार दे दिया जाता है। जब फ़रहाना के समझ में अपना भविष्य अधरझूल नजर आया तो गुलजार उसको बच्चे के असली पिता तक पहुँचाने में मदद करता है। उसके सारे गहने व पैसे भी उसके सुपुर्द करता है। डॉ. सुनीता की सहायता से वह शुक्राणु बैंक से शुक्राणु की फैमिली प्रोफाइल जुटाती है और उसकी तलाश में बच्चे 'शाद' को लेकर लेबनान पहुँच जाती है। इत्तेफाक से उसे वह परिवार और बच्चे का असली बाप मिल जाता है और वह उन्हें अपना लेता है। इस प्रकार फ़रहाना की एक जन्नत खत्म होकर 'दूसरी जन्नत' शुरू होती है।

'अजनबी जज़ीरा' नासिरा शर्मा के बेजोड़ रचनात्मक सामर्थ्य का परिचायक 'उपन्यास' है। इसमें इराक़ पर विदेशी सेनाओं के आक्रमण से नेस्तनाबूत बगदाद शहर की मार्मिक व्याख्या है। विध्वंस की राजनीति वस्तुतः क्या–क्या नष्ट करती है? और उस नियति से शुरु होता है अन्तःसंघर्ष, इसका संवेदनापरक चित्रण है। **'समीरा'** और **उसकी पाँच बेटियों** के माध्यम से यह साकार किया है। अन्य पात्रों में समीरा को चाहने वाला अंग्रेज फ़ौजी मार्क, समीरा का शौहर अलबनाही, रुया, अल–बाक़र, मुस्तफ़ा, समीरा के चचा–चची, समीरा की दोस्त ज़ैनब, जैनब का शौहर मुर्तुजा आदि प्रमुख है। उपन्यास में पात्र कम हैं पर कथ्य गहरा और प्रभावी।

'समीरा व उसका परिवार' स्वयं को बचाते हुए एक अनजान इलाके में चचा के पुराने मकान में छुपकर रहते हैं ताकि कोई उन्हें पहचान न सके। चारों तरफ हो रही गोलीबारी व बम के धमाकों के साथ उड़ा बारुद हवा के कणों में घुलकर समीरा के पति अलबनाही के पुराने दबे सांस को बढ़ा देते हैं। समीरा उसके लिए इन्हेलर की तलाश में बम के धमाकों व गोलीबारी के बीच स्वयं की जान जोखिम में डालते हुए दर–दर भटकती है पर इन्हेलर नहीं मिल पाता है और मरने से पहले वह यह कह जाता है कि यहाँ का पता किसी को नहीं बताना। नहीं तो तुम्हें ढूँढते

यहाँ तक आ जाएँगे क्योंकि पुरानी सरकार में जो सक्रिय थे उनको व उनके परिवारों को चुन–चुन कर मारा जा रहा था। इसलिए उस सुनसान मकान में अपने शौहर के मुर्दा ज़िस्म के चारों तरफ बैठी है समीरा और उसकी पाँचों बेटियाँ–**साजदा, लैला, वफ़ा, सबा, नेदा** पर उनकी विवशता है कि– "अब वह चीख़ भी नहीं सकती है, न दहाड़ें मारकर सियापा कर सकती है। जाते–जाते उसके वकील शौहर ने अपने आख़िरी पैग़ाम में वह सब कह दिया था जो उसे अंजाम देना था (अर्थात् उन्हें ही शव को घर पीछे दफ़नाना था।)"[67]

समीरा एक पढ़ी–लिखी, समझदार, सतर्क और साहसी महिला है। वह जीवन के अंतिम छोर तक स्वयं को व बेटियों को टूटने नहीं देती। दिनों–दिन बढ़ती चुनौतियों के बीच वह एक–एक पल को बड़ी समझदारी और सतर्कता से निकालती है। वह अपनी बच्चियों को दुनियाँ की नजरों से बचाये रखती है। भूख–मार कर स्थिति के ठीक होने का इंतजार करती है। पेट की आग बुझाने के लिए वह उनके पास मौजूद कीमती चीजें व यादगारें एक–एक कर बाजार में बेचती है और राशन सामग्री लाती है पर वह एक भली व दयालु औरत है। जब बाजार में एक बूढ़ी औरत रोटी की चोरी करने के आरोप में पकड़ी जाती है तो वह खुद तंगी में होने के बावजूद उसकी मदद करती है– "उसने दुकानदार से रोटी की क़ीमत पूछी और उसे अदा करते हुए कहा, यह मेरे साथ हैं, मैं माफ़ी चाहती हूँ।"[68]

समीरा अपनी खास सहेली को भी अपनी बच्चियों के बारे में इत्तला नहीं देती है। उसकी तरह ही रोटी की जुगत में दर–दर ठोकर खाती जब 'रुया' मिलती है तो उसके बेटियों के बारे में पूछने पर वह कहती है– "अलबनाही हमें छोड़ गए। बच्चियाँ मामू के पास लन्दन में हैं.....बस मैं अकेली जान..........।"[69]

वह एक सच्चरित्र बत्तीस वर्षीय विधवा औरत है, अतः विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी अपने ज़िस्म का सौदा नहीं करती। वह चाहती तो ऐसा करके बहुत आराम की जिंदगी जी सकती थी परन्तु वह ऐसा नहीं करती है। वह ख़ुद को तसल्ली देती मन ही मन सोचती है– "जिस्मफ़रोशी ने मुझे हालात ने महफूज रखा वरना वह भी मुझे करना पड़ता.......हालात अच्छाई और बुराई के मायने कैसे बदलकर रख देते हैं......पेट भरे लोगों के लिए उँगली उठाना कितना आसान होता है मगर भूखे के लिए रोटी हर फ़लसफे से बढ़कर अहम हो उठती है।"[70]

वह एक निर्भीक, निडर और बेहद साहसी औरत है। जब अंग्रेज फ़ौजी मार्क उसे चाहने लगता है और समीरा से अपने मन की बात कहना चाहता है परन्तु समीरा उसको बिलकुल मौका नहीं देती। जब मार्क़ उसे कहता है कि 'क्या मेरे साथ मेरे घर चलना पसन्द करोगी?' तो वह तौहीन करने पर आवेश में मार्क पर हाथ उठा देती है जबकि वह जानती है कि वे और लाखों जानों की तरह उसे एक पल में ढेर कर सकते हैं। जब उसे जबरन गाड़ी में बैठने के लिए

कहता है तो समीरा कहती है– "तैयार हूँ, मारो गोली लेकिन इतना जान लो तुम जो कर रहे हो वह किसी भी तहज़ीब–याफ़्ता क़ौम के लिए बाइसे शर्म है।"[71]

समीरा मार्क को पूरी तरह समझती है और उसके निश्छल प्रेम को भी। फिर भी वह अपने परिवार के बड़ों की अनुमति के बिना ऐसा नहीं करती। वह जोखिम उठाकर अपनी चची के घर जाती है तथा उनसे कहती है– "हमारे मोहल्ले में पिछले तीन–चार वर्षों से जिस फ़ौजी टुकड़ी की पहरेदारी है उसका अफ़सर है.........वह शादी करने को कह रहा था। उसकी छह माह बाद कनाड़ा वापसी है।.........मैं क्या करूँ, बस यही पूछने मैं आपके पास आई थी।"[72]

इस प्रकार हर तरह के खतरे से वह अपनी बच्चियों को महफ़ूज रखती है और ठोक–बजाकर व अपनों से अनुमति मिलने के बाद ही समीरा मार्क़ का शादी करने का प्रस्ताव स्वीकार करती है। इस तरह 'सीख़ पर भुनते भेड़' की तरह पूरी तरह से नेस्तनाबूत बगदाद शहर में वह स्वयं व अपनी बेटियों को बचा लेती है।

समीरा की बेटियों में सबसे बड़ी बेटी **'साजदा'** है। वह उम्र के साथ–साथ सबसे समझदार भी है। जब–जब समीरा घर से बाहर निकलती है, वही छोटियों को संभालती है, समझाकर रखती है। सबसे छोटी बेटी 'नेदा' में बचपना व चुलबुलाहट है। वह भूख से बार–बार विलखने लगती है। बाकि तीनों भी 'साजदा' की तरह समझदार है। सभी माँ के समझाये तरीके से ही बत्ती बुझाकर अंधेरे में रहती हैं। बिना नहाये और भरपेट खाना खाये उन्हें महीनों हो जाते हैं, पर माँ की विवशता देख वे कभी जिद नहीं करती हैं।

समीरा के **'चचा–चची'** बहुत संजीदा व्यक्ति हैं। एक जिम्मेदार बुजुर्गों के रूप में सामर्थ्य के अनुरूप समीरा की सहायता करते हैं तथा उसे समुचित सलाह देते हैं। वे समीरा को मकान के कागज़ात संभला जाते हैं तथा कुछ खर्चे के लिए रूपये भी देते हैं। जब समीरा अंग्रेज फौजी मार्क के इरादे बताती है कि वह शादी करना चाहता है। तब चची उसे समझाती हुई कहती है– "एक सलाह देती हूँ याद रखना.....माहौल के मुताबिक़ हमारे फ़ैसले होते हैं, जो माहौल के बदलते ही ख़ुद बदल जाते हैं। अभी तुम जैसे भी हो इस बारुदी ज़मीन से निकलो, यह ज़मीन हमारी हड्डियों की दफ़नगाह बन रही है.......जितने इराक़ी बच सकें उन्हें बचाना हम सब का फ़र्ज़ है। बाद में उसने तुम्हें छोड़ा या तुमने उसे क्या फ़र्क़ पड़ता है। प्यार अभी है कल नहीं है तो रोना क्यों, इन वर्षों में हमने बहुत–कुछ खोया है इसलिए पाने के हक़दार भी हमी हैं। यह मौक़ा किसी भी हाल में समीरा हाथ से मत जाने देना समझीं।"[73]

अंग्रेज फौजी मार्क इराक़ पर आक्रमण करने वाली "मल्टीनेशनल आर्मी का ऐसा अफ़सर है जो कि छोटा होकर भी ख़बरों में छाया रहता था। इंटरव्यू देता, सुरक्षा संभालता उसे टेलीविज़न पर पूरी दुनिया ने देखा और बग़दाद वालों ने उसे सड़क किनारे खड़ा, जीप से गुज़रते इधर–उधर हर दिन हर घंटे देखा है।"[74]

वह विदेशी आक्रान्ता होने के बावजूद आम इन्सान के प्रति उसे हमदर्दी है। वह लोगों की सहायता करता है। उनके साथ घुलता मिलता है। वह बिना सामने आये समीरा व उसकी पाँचों बेटियों की सुरक्षा करता है। समीरा की खुद्दारी, वतनपरस्ती व स्वाभिमान के कारण वह उससे प्रेम करने लगता है। समीरा उसकी सहायता लेना नहीं चाहती पर वह आगे बढ़कर सहायता करता है। वह समीरा से सच्चा प्रेम करता है। वह समीरा से कहता है– "मैं, इस बार छुट्टियों में गया था। मैं पल भर के लिए तुम्हारे ख़्याल से निकल न पाया। हर रात तुम्हें सपने में देखता कि तुम एक इन्हेलर के लिए इस दुकान से उस दुकान भागती, लोगों के बन्द दरवाज़े पीट उनसे इन्हेलर माँगती हो मगर मुझसे लेना गवारा नहीं किया.....तुम्हारा यह डिवोशन अपने शौहर और देश के लिए मुझे कहीं गहरे छू गया, जब मैंने सुना कि तुमने किडनी तक अपने शौहर के इलाज के लिए बेच डाली और मैं चाहकर भी तुम्हारी कोई मदद नहीं कर पाया।"[75]

वह चाहता तो और लोगों की तरह बन्दूक की नों पर समीरा और उसकी बेटियों को अपनी हवस का शिकार बना सकता था। पर वह ऐसा न करके अपनी ईमानदारी से उन्हें पाना चाहता है। जब समीरा उससे कहती है कि– "जब तुम्हें पूरी बात नहीं पता तो तुमने (अपनी माँ को) बताया क्या होगा? मैं एक नहीं पूरी पाँच लड़कियों की माँ हूँ।"[76] तब वह कहता है– "उन्हें तुम बहन भी कह सकती थीं।......मैं जानता था। तुम समझती हो कि तुमने खिड़की–दरवाज़े बन्द कर रखे थे तो हमने भी, मुझे तुम्हारी सारी बातों का इल्म है.........तुम्हीं क्या हर घर का नक़्शा हमारे सामने है।"[77]

वह समीरा की बेटियों को स्वयं की बेटियाँ मानते हुए वादा करता है– "बिलीव मी......आई विल आलवेज़ लुक आफ्टर ऑल ऑफ यू नाइसली।"[78] ...... "रिश्ते दिलों से बनते हैं, काग़ज़ या दस्तख़त से नहीं........मैं तुम सबकी इजाज़त से तुम्हारी माँ की उँगली में अपनी चाहत की अँगूठी पहनाता हूँ और ताउम्र फेथफुलनेस की क़सम खाता हूँ।"[79]

इस प्रकार पात्र–चित्रण की दृष्टि से यह बहुत ही मार्मिक एवं भावनापरक उपन्यास है।

'शब्द पखेरू' नये तेवर, नयी भाषा–शैली में लिखा नासिरा शर्मा का बहुत ही मार्मिक उपन्यास है जो नयी पीढ़ी के गहरे दु:खों व जद्दोज़हद से हमारा परिचय कराता है। उपन्यास में आधुनिकता की दौड़ में तालमेल बिठाते एक मध्यवर्गीय परिवार की कथा है। परिवार में चार लोग

हैं– मुखिया **'सूर्यकान्त'** पत्नी **'साधना',** दो बेटी **मनीषा** और **शैलजा**। चारों सदस्य अपनी–अपनी तरह से परिवार को सँभालने का सपना देखते हैं। सूर्यकान्त एक छोटे से कस्बे से निकलकर शहर में आया है। वह एक प्राईवेट कम्पनी में नौकरी करता है। पर जब से पत्नी साधना बीमार होकर बैडरैस्ट पर आयी है तब से वह नौकरी और परिवार के बीच चक्करघिन्नी होता रहता है। वह पत्नी साधना की खुद देखभाल करता है ताकि दोनों बेटियों का समय बर्बाद न हो और उनका परीक्षा परिणाम प्रभावित न हो। आखिर तंग आकर हताश–निराश होकर कम्पनी को अपना इस्तीफा लिख भेजता है क्योंकि उनका ट्रांसफर दूसरे शहर जयपुर कर दिया जाता है। पर उनका इस्तीफ़ा स्वीकार नहीं होता है।

वह बच्चों को घर पर बनाया खाना देते हैं। बजट को देखकर खर्च करते हैं पर जब उन्हें लगा कि इससे उसकी बेटियाँ खुश नहीं हैं तो वह इन्टरनेट पर रेसिपी देख–देखकर खाना बनाता है– "सरप्राइज़!.......नूडल?...ऑर्डर नहीं, मैंने स्वयं तैयार किया है। इन्टरनेट से रेसेपी लेकर।"[80]

वह परिवार की स्थिति को लेकर दिन–रात चिंतित रहता है। "सूर्यकान्त इस समय अपने हिसाब–किताब में डूबे थे। साधना की बीमारी, सेवा करने वाले रिश्तेदारों के टिकट, घर का राशन, फरमाइशों में जो पैसा आँख बन्द कर खर्च हुआ वह किसी भी तरह से बीमारी पर किए गये खर्चे से कम न था।......लगता था आत्महत्या कर लूँ मगर यह सारे दौरे उन्हें कभी–कभार पड़ते फिर वह ऊर्जा से भर जाते थे। समस्याओं से भरे काले समन्दर को पार करने का बीड़ा उठाते हुए दुगुनी उमंग से जुट जाते थे। अब सामने समस्या आर्थिक भी थी।"[81]

वह एक जिम्मेदार पति व पिता दोनों की भूमिका पूरी वफ़ादारी से निभाता है। वह अपनी बेटियों के बारे में मन ही मन सोचता रहता है– "मनीषा और शैलजा को जिस तरह मैंने पाला है मेरे लिए उनके ब्याह से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण उनका कैरियर रहा है। अब जब शैलजा बाहर जाना चाहती है जो मुझे उसका उत्साह बढ़ाना चाहिए। मेरे प्रोत्साहन से ही उसमें जीवन के प्रति विश्वास बढ़ेगा।"[82]

वह अपनी बेटियों से स्वयं में लाये बदलावों के बारे में कहता है– "तुम छोटे थे तुम्हें मैं अपनी तरह से पाल रहा था। अब तुम लोग बड़े हो गये तो मेरा फर्ज है मैं तुम्हारी ख़ुशी से चलूँ।"[83]

सूर्यकान्त को कम्पनी ऑफिसर अपने पास बुलाकर समझाता है कि नौकरी छोड़कर नहीं नौकरी करके परिवार का आप बेहतर तरीके से सँभाल सकते हो। तब सूर्यकान्त नौकरी ज्वाईन

करने का निर्णय लेता है और दोनों बेटियाँ भी 'मम्मी' तरफ से उन्हें निश्चिन्त रहने को कहती हैं। इस प्रकार आम नौकरीपेशा इंसान की ज़िन्दगी का जीवन्त चित्रण है– 'सूर्यकान्त'।

'साधना' सूर्यकान्त की पत्नी है। वह बीमारी के कारण बेडरेस्ट पर है। वह गहरे अवसाद में रहती है। अपने छोटे–छोटे काम के लिए वह पराश्रित है। मुँह से बोल नहीं पाती है। केवल इशारों पर निर्भर है। पर मौत की आशा करने वाली साधना अपने पति व बच्चियों का हौंसला देखकर स्वयं को आत्मसम्बल प्रदान करती है। उसमें मन ही मन स्वयं को स्वस्थ करने का हौंसला आने लगता है।

बड़ी बेटी **'मनीषा'** कॉलेज में पढ़ती है। वह पढ़–लिखकर नौकरी कर परिवार को सपोर्ट करना चाहती है। "उसका सपना था आई.ए.एस. की परीक्षा पास करना और इस तनाव भरी ज़िन्दगी में राहत की खोज।"[84] दोनों बहनें मिलकर मम्मी की देखभाल करती हैं और सूर्यकान्त की अनुपस्थिति में घर को अपनी तरह से संभालती है। मनीषा छोटी बहन शैलजा की अपेक्षा ज्यादा समझदार और जिम्मेदार है।

उपन्यास का केन्द्रीय व प्रधान पात्र है– **'शैलजा'**। सम्पूर्ण कथ्य जिसे नासिरा जी अपने पाठकों को समझाना चाहती है, वह शैलजा के इर्द–ग़िर्द ही घूमता है। शेष पात्र तो केवल सहायक पात्र हैं। यह सूर्यकान्त की छोटी बेटी है। यह भी पढ़–लिख कर परिवार को सपोर्ट करना चाहती है। वह कॉलेज की पढ़ाई के बाद विदेश में पढ़ाई करना चाहती है। पर घर की आर्थिक स्थिति से भी वह अच्छी तरह वाकिफ़ है। मनीषा से उलट दिशा में शैलजा शार्ट–कट तरीके से आगे बढ़ना चाहती है। "शैलजा उसकी उलट दिशा को पकड़ना चाह रही थी यानी 'फरार' सारे दुःखों से मुक्ति।....वह ऐसी 'उड़ान' चाहती है जिसमें नयापन हो, खुशी हो, उत्साह हो, एक विस्तृत आकाश हो।"[85]

इसी उड़ान की चाहत में वह दिनभर इण्टरनेट पर चैट करती रहती थी। "मनीषा शैलजा में बढ़ता विश्वास देख रही थी जो कभी–कभी उसे बड़ा आक्रामक लगता। हरदम लैपटाप की स्क्रीन पर आँखें गाड़े रहती। एक दिन उसने जलकर उसका नाम 'इण्टरनेट बेबी' रख दिया था मगर उस पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हर फ्रेण्ड रिक्वेस्ट को कनफर्म कर देना जैसे उसके लिए ज़रूरी था। किताब या नोटबुक खुली है सामने मैटर ढूँढने के बहाने चैट चल रही है। शो ऐसा करती है जैसे बेचारी पढ़ाई को लेकर हलकान हो रही है।......इण्टरनेट के विस्तृत आकाश पर देखने–पढ़ने और खोजने के लिए बहुत कुछ था। उसने गूगल को ग्रैण्डपा का नाम दे रखा था।

इसी चाह में वह स्वयं का हित–अनहित समझ नहीं पाती है और धीरे–धीरे कर साइबर अपराधियों के जाल में फँस जाती है। वह 'क्रिस एलेन' नाम के व्यक्ति से इण्टरनेट पर हुई

दोस्ती से आगे बढ़ती हुई उसके साथ शादी का सपना संजोने लगती है क्योंकि क्रिस एलेन उसे बड़ी प्रोपर्टी की मालकिन बनने का सपना दिखाता है। पर शैलजा की मित्र सादिया के चाचा, जो प्रोपर्टी डीलर हैं, उसे हर तरह से समझाते हैं तब जाकर उसे होश आता है और जमींनी हकीकत को समझती है। इस प्रकार जो सपने उसने इण्टरनेट की आभासी दुनियाँ में देखे थे वे सब शब्द पखेरू की भाँति उसे उड़ते नजर आते हैं। इस प्रकार शैलजा के पात्र के जरिये लेखिका ने आज की युवा पीढ़ी को इण्टरनेट व सोशल मीडिया की आभासी व काल्पनिक दुनियाँ की हकीकत से रूबरू करवाया है।

शैलजा की मित्र **'सादिया'** एक सच्ची मित्र है वह और सादिया के चाचा दोनों मिलकर शैलजा को सही परामर्श देते हैं। उसे हर अच्छे–बुरे को बतलाते हैं। सादिया शैलजा के लिए मन ही मन दुआ करती है– "अगर मेरी ग़रीब दोस्त के साथ ऐसा कुछ घटा तो वह दुखियारी तो मर ही जायेगी। उसके पास बचा ही क्या है? वह अन्दर से खोखली है तभी तो बजती है अल्लाह करे ऐसा न हो। सब अच्छा–अच्छा हो।"[86]

सादिया के अलावा **असलम, तरुण** भी उनके मित्र हैं। सादिया की दादी भी बहुत भली इंसान है। वह जब भी शैलजा या मनीषा उनके घर जाती है, तो खाना व सब्जी 'साधना' के लिए अवश्य भेजती है।

'कंचन' जो सूर्यकान्त के घर झाडू–पोंछो व बर्तन का काम करती है। आदत के मुताबिक पढ़ी–लिखी नहीं होने पर भी अंग्रेजी बोलने का प्रयास करती है और हँसी का पात्र बनती है। आये–दिन काम से छुटटी करती रहती है। इस प्रकार एक 'कामवाली बाई' के सारे गुण उसमें मौजूद हैं।

'भूरेराम' भी उपन्यास का महत्त्वपूर्ण पात्र है जो सूर्यकान्त की गाँव की जमींन की देखभाल करता था। पर जब सूर्यकान्त गाँव पहुँचता है तो सब कुछ बदला नजर आता है। 'भूरेराम' बुजुर्ग है, आँखों में मोतियाबिंद होने के कारण ठीक से दिखता नहीं है। उनकी पत्नी **'कुन्ती'** गठिया रोग के कारण खटिया पर है। बेटे कमाने बाहर निकल गये। साल दो साल में आते है। इस प्रकार भूरेराम के जरिये लेखिका ने गाँवों में रोजगार की समस्या और रोजी–रोटी की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने की समस्या की ओर ध्यान खींचा है।

इस तरह शैलजा के माध्यम से लेखिका ने वर्तमान में अपना विकराल रूप लेती जा रही इण्टरनेट की लत की ओर इशारा किया है।

(घ) नासिरा शर्मा के उपन्यास का भाषागत वैशिष्ट्य

भाषा और साहित्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भाषा है तो साहित्य है और जब साहित्य होता है तब भाषा स्वतः ही विकसित होने लगती है क्योंकि भाषा वैज्ञानिक जहाँ हमें शब्द देते हैं, वहीं साहित्यकार उन शब्दों को चुनकर एक सुन्दर रचना को जन्म देते हैं। भाषा वैज्ञानिक जहाँ संरचना का ज्ञान कराते हैं, वहीं साहित्यकार वाक्य का अर्थ सुरक्षित रखते हुए रचना में लालित्य पैदा करते हैं। भाषा वैज्ञानिक लेखन में भाषा अनुशासन का पाठ पढ़ाते हैं वहीं साहित्यकार किसी भी भाषायी अनुशासन से परे शब्दों के जोड़–तोड़ के कौशल से पाठक के दिलों में समा जाते हैं। इस प्रकार भाषा और साहित्य में बहुत ही घनिष्ठ संबंध है। समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर नासिरा शर्मा एक साक्षात्कार के दौरान भाषा और साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध पर टिप्पणी करती हुईं कहती हैं– "मेरे ख्याल से इनका अन्तर्सम्बन्ध बहुत गहरा है। भाषा है, जो कहानी कहती है, अभिव्यक्ति द्वारा इन्सानी अहसास को बयान करती है, वरना पुराने हकीमों की तरह नब्ज देखकर मर्ज पहचानने वाली खूबी हमको अपनानी पड़ती या फिर पहली खामोश फिल्म आलमआरा की तरह इशारों में चिन्ह द्वारा बात कहनी पड़ती। कहने से ज्यादा समझने पर यक़ीन होता। उसी के भरोसे कहानी कहनी पड़ती। भाषा आपके पूरे वजूद की आपके अंदर की दुनिया की पूरी सूचना देने में सक्षम है, जो आदमी के गुणों–अवगुणों के साथ उसके विभिन्न भावों को व्यक्त कर क्रोध, घृणा, प्रेम, व्यथा, ईर्ष्या, दया, जाने कितने रसों से इन्सानी जिंदगी की विभिन्न झाकियाँ हमें दिखाती है।"[87]

इस क्रम में नासिरा जी आगे कहती हैं कि– "बहुत बेतकल्लुफ जबान बेहद अदबी भाषा, दोनों गद्य को बोझिल और सतही बना बैठते हैं। इस तरह की परेशानियाँ उन नए लेखकों के यहाँ नजर आती हैं, जिन्होंने न भाषा का संस्कार पाया, न अपने से बड़े बुजुर्ग लेखकों को पढ़ा। उनकी सृजनात्मकता उनसे कहानी जरुर लिखवा लेती है, अच्छी कथावस्तु भी वहाँ मौजूद होती है, मगर मुनासिब और अक्सर सही शब्द का मौक़े से प्रयोग नजर नहीं आता है।"[88]

नासिरा शर्मा यद्यपि नयी पीढ़ी की कथाकार हैं फिर भी जिस अनुभव जगत को उन्होंने अपनी रचनात्मकता का आधार बनाया है, वह उन्हें और उनकी संवेदना को कालातीत बना देता है। उनका सम्पूर्ण साहित्य रचना–शिल्प की दृष्टि से बेहद सधा हुआ है। उनके साहित्य में आनुभाविक यथार्थता है इसलिए उन्होंने अपनी बात कहने के लिए किसी भी तरह के भाषायी आडम्बर व बनावटीपन का सहारा नहीं लिया है।

नासिरा जी की औपन्यासिक रचनाएँ उनके रचना–कौशल का अद्भुत निदर्शन है। उनके उपन्यासों में हमें आमजन की भाषा देखने को मिलती है। उपन्यास, जिस समग्र रूप में समाज का

चित्रण करता है, उसके लिए भाषा के सघन प्रयोग की उसी सीमा तक आवश्यकता होती है। अतः कहा जा सकता है कि औपन्यासिक प्रगति का आधार उस भाषा की समृद्धि भी है जो उसमें प्रयुक्त होती है। शांति स्वरूप गुप्त के मतानुसार– "भाषा उपन्यासकार के हाथों में एक शक्तिशाली उपकरण है। वह शब्दयोजना, वाक्य संरचना, वाक्य विन्यास और ध्वनि पैटर्न के प्रयोग द्वारा अपनी बात को विशेष प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने में समर्थ होता है। पाठक पर विशेष प्रभाव डाल सकता है।"[89]

अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की भाषा जितनी सहज, सरल एवं स्वाभाविक होती है, उपन्यास उतना ही भावात्मक एवं प्रभावशाली बनता है। वस्तुतः भाषा का प्रयोग तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए ही किया जाता है तो वह अधिक श्रेष्ठ होता है परन्तु उसमें सरलता भी उतनी ही जरूरी होती है जिससे आमजन परिचित हो सके। अतः उपन्यासों की भाषा जितनी सहज और सरल होगी, उतना ही समन्वय होगा अन्यथा अलगाव सा नजर आएगा और पाठक के साथ वह अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर पायेगा।

नासिरा जी के उपन्यास इस दृष्टि से अपनी अलग ही पहचान रखते हैं। उनके उपन्यासों में स्थानीय माटी की सौंधी खुशबू के साथ अनुकूल भाषा का जीवन्त प्रयोग है। भले ही वह भारतीय मुसलमानों की बात कर रही हो, चाहे ईरान, इराक, सऊदी आदि विदेशी मुसलमानों की, फारसी की जानकार होने से उनकी भाषा में रवानगी है। गज़ल की कशिश के साथ मर्सिया का दर्द भी है। नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में जिस भी विषय पर लेखनी चलायी है, उन विषयों से जुड़े लोगों का, उन–उन जगहों व आवोहवा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है, तदुपरान्त ही उन विषयों पर लेखनी चलाई है। इस निमित्त लगभग दर्जनभर देशों में घूमकर, वहाँ के लोगों के साथ रहकर, उन्हीं की जुबानी उनके दर्द व अहसास को महसूस कर नासिरा जी ने उन्हीं की आम बोल–चाल की भाषा में कथ्य को उकेरने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में क्षेत्रीय बोली का भरपूर प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में उनका मानना है कि– "साहित्यिक भाषा के साथ क्षेत्रीय बोली का प्रयोग आटे में नमक के बराबर किया जा सकता है। संवाद तक जरूर स्वाद के चलते क्षेत्रीय बोली का प्रयोग किया जा सकता है। वह भला भी लगता है, मगर पूरे उपन्यास या कहानी में हिन्दी की जगह वह बोली छाई रहे तो फिर पाठक उसे समझ नहीं पाएंगे, दूसरे नए शब्दों और अभिव्यक्तियों का वैसा लुत्फ भी नहीं उठा पाएंगे। सरल–सहज हिन्दी भाषा का अपना एक सौंदर्य है। जिसके रस को पाठक पाना चाहता है, यदि वही न मिले तो फिर पाठक के लिए ऐसी कहानी किस काम की?"[90] नासिरा जी औपन्यासिक रचनाओं के भाषागत वैशिष्ट्य को बिन्दुवार निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

1. भाषा व बोली

नासिरा शर्मा की भाषा उनके भावों और उद्देश्यों की वाहिका है। उन्होंने अपने उपन्यासों में पात्रों के स्तर एवं उनकी परिस्थिति के अनुरूप ही भाषा का अवलंबन लिया है। नासिरा जी की शिक्षा फारसी में होने के कारण उनके उपन्यासों में अरबी और फारसी शब्दों की बहुतायात देखने को मिलती है लेकिन पाठकों को उनकी सहजता व सरलता के कारण कहीं भी कठिनाई महसूस नहीं होती है। विषयवस्तु व कथानक की स्थानीयता के अनुरूप ही उन्होंने लोकभाषाओं व बोलियों का प्रयोग किया है फिर भी चूँकि उनका आरम्भिक जीवन इलाहाबाद में गुजरा है, अतः इलाहाबाद के आस–पास की बोली जाने वाली अवधि का उन्होंने खूब प्रयोग किया है। भोजपुरी, ब्रज व राजस्थानी भाषा के प्रयोग में भी वे अद्भुत क्षमता रखती हैं।

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में महरुख़ जिस गाँव में अध्यापिका हैं, वहाँ की लोकभाषा पाठक को मोह लेती है। ऐसा लगता है जैसे वह स्वयं वहाँ उपस्थित होकर उन बोलों को सुन रहा है। महरुख की नौकरानी लछमिनिया महरुख़ को परेशान सी देखकर उससे कहती है– "नाहीं, दीदी, घूमे से उलटा मन हलका होय जात है। खैर, कोई चिठ्ठी–पत्री आई घर से? अब माता जी को हियां बुलाए लो। तोहार जी लग जाई। सच्ची, जनै कैसा पियर–पियर मुंह निकलि आया है। जब आई रहीं, दीदी, तो खिला गुलाब रहीं।"[91]

वहीं गणपत काका गाँव के गरीबों के दर्द को अपनी बोली में कहते हैं– "का कहैं अपनी बिपदा तों से, बिट्टो रानी, हियां तो हम न सावन हरे, न भादों सूखे। बैंक से कर्जा ले के हम तो भर पाए। पाँच हजार का चइकवा दिहिन रहा। एक हजार आप ही जेब में रख लीन कि हम तोहार मदद किए रहे, सो पान–बीड़ी का खर्चा होए गवा। अब तोही बताव बेटवा, गइया जो छः मास पहले परलोक सिधारी और हम लदे–के–लदे रह गए कर्जा मां। कोनो है, जो हमार सुने?"[92]

'जिंदा मुहावरे' उपन्यास की कथा उत्तरप्रदेश के फैजाबाद व आस–पास के गाँवों से जुड़ी हुई है, अतः उपन्यास में वहाँ की लोकभाषा अवधी की मिठास बरबस ही मन को मोह लेती है हिन्दुस्तान के बँटवारे के समय निज़ाम पाकिस्तान जाना चाहता है। घरवाले उसे समझा–समझाकर थक चुके हैं। तब निज़ाम के पिता रहीउद्दीन कहते हैं– "बख़्त से पहले ससुरे को गधा पच्चीसी सवार होय गई है। दू दिन बाद, घूम टहल कर मुँह पा कालिख पोत इ मरदुदवा लौट अइहै। नया जोस, नई जवानी है। करे देव जी भरकर मनमानी। जाए देव सब लोगन एका। आखिर भोर का भूला सांझ गए तो घर लौटत है।"[93]

'दूसरी जन्नत' उपन्यास भी उत्तरप्रदेश के रामपुर कस्बे के परिवेश पर आधारित है। अब्बास परिवार उच्च शिक्षित परिवार है। सभी अंग्रेजी व हिन्दी में बात करते हैं परन्तु समीर

अपनी बीवी शहनाज़ से अपनी मादरी भाषा में कहता है, "कलवा की महतारी अब तोका का बताईं? तोहार काना कलवा फौज में चला गवा। अम्माँ से सहेज दियो कि खुस होएँ लाम पर अवश्य मारा जाएगा, ओका पेंशन मिलिए। पूरा परिवार आनंद में, दुआ करो ज़िंदा न लौटे।"[94]

नासिरा के उपन्यासों में ईरानी शब्दों का प्रयोग भी प्रचुरता के साथ देखने को मिलता है। इनकी क्लिष्टता से बचने के लिए उन्होंने उपन्यासों में पृष्ठों के नीचे पादटिप्पणी के रूप में शब्दों के अर्थ दिए हैं। कहीं–कहीं ईरानी भाषा के वाक्यांश भी आए हैं। 'सात नदियाँ एक समन्दर' ईरानी क्रांति पर आधारित होने के कारण उसमें ईरानी शब्दांश आए हैं। साथ ही कहीं–कहीं ईरानी वाक्यांश भी दिए हैं–

"खुदाया! खुदाया! खुमैनी रा निगेहदार ता इनकलाब मेंहदी।"[95]

"खुमैनी अजीजम बेगू कि खून बेरीज्म।"[96]

"ऐई वेशर्म हया कुन
वतन रा रिहा कुन (अरे वेशर्म, शर्म कर, वतन को छोड़ दो)।"[97]

"इन्क़ेलाब बराम इस्लाम न बराय नान
(इन्क़ेलाब इस्लाम धर्म के लिए रोटी के लिए नहीं)।"[98]

नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में कहीं–कहीं अंग्रेजी शब्दों व वाक्यों का पात्रानुकूल प्रयोग किया है, जो पूर्णतः समुचित है। इससे पात्रों के चित्रण में सहजता व स्वाभाविकता देखने को मिली है–

"यू आल आर केनेटिक्स नाट ओनली खुमैनी।"

"ही इज क्रुवेल, मैडम! बीग मर्डर।"[99]

अंग्रेजी फ़ौजी मार्क समीरा व उसकी बच्चियों से कहता है–

"बिलीव मी.......आई विल आलवेज़ लुक आफ्टर आल ऑफ यू नाइसली।"[100]

'पारिजात' उपन्यास में भी अंग्रेजी संवाद प्रचुरता के साथ देखने को मिलते है। जैसे–

"यू चीट। ऑल मैन आर सेम......."[101]

2. शब्द प्रयोग

नासिरा के उपन्यासों में शब्द प्रयोग की विविधता देखने को मिलती है। लेखिका ने बेहद नपे–तुले शब्दों द्वारा आम–बोल–चाल की भाषा में विचारों को अभिव्यक्त किया है। उनके उपन्यासों में स्थानीय भाषा व बोलियों के शब्दों के अलावा विदेशी भाषाओं के शब्दों का बहुत ही कुशलता से प्रयोग किया है। विदेशी शब्दों के अन्तर्गत अरबी, फारसी, उर्दू, ईरानी तथा अंग्रेजी शब्द प्रचुरता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। पर इन शब्दों का प्रयोग लेखिका ने इस तरह से किया है

कि कहीं भी किसी उपन्यास की भाषा बोझिल नहीं हुई है बल्कि इनकी स्वाभाविकता के कारण भाषा में जान आ गयी है। भाषा ज़्यादा प्रभावी नजर आती है।

कीमत, हाकिम, हुजूर, मुजस्में, माशा–अल्ला, फाल, खबर, कदम, खत्म, खाक, कब्र, मौत आदि (सात नदियाँ एक समन्दर), निजाम, हाफिज, दिमाग, कदम, मरज, जायज, गयास, ताजिर, फिक्र, खयाल, जुम्ला, अजना, लफ्ज, अल्फाज आदि (ज़िंदा मुहावरे) मलक़ानूर, तावीज़, आमिल, अल्लाह, हक़ीक़त, लिबास, बुर्क़ा, कफ़्फ़ारा, ख़िदमत, शौहर, दूध बख़्शना (काग़ज़ की नाव) इत्यादि अरबी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

उर्दू–अरबी शब्दों के साथ–साथ फारसी शब्द जैसे–खामोशी, बाल, नौरोज, खुदा, फैर, मादरकवहे, समंदर, गोसे, तुख्मे, आगोस, कब्रिस्तान, खैरियत, जंग, ख्वाब, चीज, जबान, परवाह, दोजख, जानमाज, खफगी, सिपाही, दुश्वार, आबादी, कनीज, खैर, रोज, जबरदस्ती, खामोश, गुजर इत्यादि फारसी शब्द सात नदियाँ एक समन्दर, ज़िंदा मुहावरे, ठीकरे की मंगनी, जीरो रोड, पारिजात, कागज़ की नाव, अज़नबी जज़ीरा, शब्द पखेरू, अक्षयवट इत्यादि सभी उपन्यासों में प्रायः देखे जा सकते हैं। 'शाल्मली' उपन्यास में हमें अरबी–फारसी शब्द दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

इसके अलावा हुलिया, इलाका, खतरा, कागज, शिकवा, गिरफ्त, इरफान, फातेहा, जनाजा, खादमखाह, सिजदा, ससरीक, जनानी, फिजा, जिन्दा, कबीला, वजूद, दीदार, सितार, सवाब, तखलीफ, तजरबा, फिकरा, माफ, पुरजा इत्यादि उर्दू शब्दों का प्रचुर प्रयोग उनके विभिन्न उपन्यासों में देखने को मिलता है।

'सात नदियाँ एक समन्दर' उपन्यास तो ईरानी क्रांति पर आधारित है अतः ईरानी पृष्ठभूमि के कारण इसमें–ख्वान, सैवुम, नक्काली, इजल, कामी, शबेयल्दा, पिगाल, अकसरिषतु, अकलियत, बखैर, मुनफीफीन, सबीलें, सीगा, लीमी, साजिंदगी, ताकूती, शहमाद, सग्रेकद, सुहेल, पहलुम, हमजाद, शहजाद इत्यादि ईरानी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

अंग्रेजी शब्दों जैसे पेस्टरी, प्रोफेसर, मिनिस्ट्री, मनीक्यूर, मिसिज, फैट, डीटौल, क्रीम, प्रोग्राम, एजेंट, चेकपोस्ट, लिपिस्टिक, ड्यूटी, कम्पनी, एमरजेंसी, ऑफिस, वारंट, ब्लैकबोर्ड, हैडमास्टर, फॉरेन सेक्रेटरी, डायरेक्टर, ड्राईंग रूम, फोन, ग्रैण्डपा, नेलपालिश, बंक, लॉस, शोरूम, लोन, ट्रे, लिस्ट, एलबम इत्यादि के प्रचुर प्रयोग बहुत ही स्वाभाविक रूप से उपन्यासों में दिखाई देते हैं।

3. वाक्य–प्रयोग

मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति वाक्यों के माध्यम से ही करता है। मानसिक पक्ष की पूर्ण प्रधानता के कारण यह भाषा का अभिव्यक्त रूप है। यह अपनी सार्थकता के कारण रसरूप

या आनन्दरूप होता है। अतः यह कहना सही है कि भावानुभूति, रसानुभूति या आनन्दानुभूति का प्रधान साधन वाक्य ही है। इसलिए किसी भी रचना का मूलाधार वाक्य–विन्यास ही होता है। यदि वाक्य–रचना सही व सटीक हो तो कथ्य और भी प्रभावी हो उठता है और वह पाठक पर गहरा असर छोड़ता है। नासिरा शर्मा के उपन्यासों की वाक्य–रचना बहुत ही सुन्दर, सटीक और सुदृढ़ है, जिससे पाठक के मन में उनकी छवि एक श्रेष्ठ विचारक व चिन्तक की स्वतः बन जाती है। उनके वाक्य गहराई तक छूते हैं। पाठक को सोचने के लिए मजबूर करते हैं और ज़िन्दगी को एक विशिष्ट दृष्टिकोण के साथ देखने–परखने का नजरिया देते हैं। जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसी घटित होती हैं जिनके कारण दुनिया का हर रिश्ता झूठा लगता है। हर चीज बेमानी सी लगती है। एतबार करना मुश्किल होता है।

इस प्रकार नासिरा शर्मा ने अपने कथा–साहित्य में उर्दू, अरबी–फारसी के ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिसे जानने के लिए शब्दकोश की आवश्यकता पड़ती है। लेखिका ने स्वयं कुछ स्थानों पर पाद टिप्पणियों द्वारा उनके अर्थ दिए हैं। यथा– माबूद (जिसकी पूजा की जाए)[102] तिलेदानी (महिलाओं का बटुआ)[103] चहलुम (शिया द्वारा चालीस दिन मनाया गया गम)[104], चहीर (चौदह मासूम)[105] मजाजी खुदा (शौहर)[106], मुअम्मे (वर्ग पहेली)[107] साल ख्वान (लकड़ी का बड़ा थाल, जिसमें प्रसाद रखा जाता हैं।)[108] बुग्ज (दुश्मनी)[109] हुमा (ख्याली परिंदा सर पर से उड़े तो खुशकिस्मत)[110], फालगीरन (भविष्यवेत्ता)[111] नक्काली (गाकर शाहनामा पढ़ना)[112], सीजदे बदर (नौरोज के बाद तेरहवा दिन, अशुभ दिन)[113] शबे यल्दा (25 दिसम्बर की रात जिसे जागकर काटते हैं)[114], खियानतकार (विश्वासघाती)[115], तागूती (शैतान)[116], संगसार (पति के रहते गैर मर्द से सम्बन्ध)[117], तीमी (मुजाहिदीनों के वे घर जिनमें हथियार से लैस वे छिपकर रहते हैं।)[118], सीगा (ऐसा विवाह जिसकी अवधि दो घंटे से दो वर्ष तक, सिर्फ विधवा से)[119], सबीलें (मरने पर ताजिए की शक्ल की बनी हुई)[120] जरदुश्ती (पारसियों का पेशावा)[121], ऐख्तेलाज (घबराने से दिल की धड़कन बढ़ना)[122], जहनीफिजा (बुद्धि की हालत)[123], लातादाद (अनगिनत)[124], पहचान (असलियत की अल्लाह की)[125], सर्दखाना (बर्फखाना)[126], जहरमार करना (किसी को मुश्किल से खाना)[127], सुहेल (यमन पर साल में एक बार निकलने वाला सितारा)[128], मुहाजरत (गमन) आदि।[129] उपर्युक्त शब्दों से समाहित नासिरा जी के कुछ वाक्य प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है–

तब महसूस होता है– "इन्सानी रिश्ते भी काग़ज़ की नाव तरह होते हैं जो सारी एहतियात के बाद हालात के समन्दर में डूब जाते हैं।"[130] उपन्यास के लिए नायिका "एक पोस्टर थी, एक नारा थी, जिसे रफ़त भाई समाज की दीवार पर चिपका कर अपनी पहचान का झण्डा ऊँचा रखना चाहते थे, अन्यथा वह महरुख़ का हक किसी और औरत को क्यों दे बैठते?"[131]

कुछ विद्वानों का आज के युग में भी यह विचार है कि लड़कियों का पढ़ने में समय गँवाना बेटिंग रूम में बैठकर ट्रेन के इंतजार करने जैसा है। इसलिए नासिरा शर्मा लिखती है– "लड़कियों की सारी जवानी शौहर के तखव्वर में कट जाती है। हर काम वे जो करती हैं, केवल शादी के लिए करती हैं कि कहीं अच्छी जगह ब्याह हो जाए।"[132] ईरान में कुछ ऐसा वातावरण बन गया था कि किसी भी औरत की इज्जत खतरे से खाली नहीं थी। अतः "बस इतना करना कि उसे गर्भनिरोधक गोलियाँ जरूर दे आना, जो हर माँ और हर बहन करती है..........हमारी औरतों का नसीब..........उनकी गंदगी भी अपने में खाली करो.........उनकी गंदगी का बोझ भी उठाओ, फिर ताने का बोझ सुनो।"[133] इससे बढ़कर और क्या त्रासदी हो सकती है कि जिन महिलाओं ने खुमैनी को सत्ता में लाने के लिए जुलूस निकाले उन पर ही उनके अनुयायियों द्वारा अत्याचार हुए। ऐसी स्थिति में लोग कहते थे। "हमारे पास यदि गांधी जैसा एक भी रहबर होता तो आज ईरानी कौम की यह हालत न होती।"[134] पर ऐसा कोई नहीं हुआ।

इसी तरह 'शाल्मली' उपन्यास की शाल्मली अपने पति नरेश से कहती है– "मैं कोरा कागज नहीं थी, जिस पर तुम अपने अधिकार का हस्ताक्षर कर सकते।"[135]

औरतों के सम्बन्ध में मर्द प्रायः स्वयं को एहसान करने वाला मानता है। इस सम्बन्ध में नासिरा जी लिखती हैं– "औरतों का दुःख–सुख पूछने, उनके हृदय की थाह लेने में मर्द अपना अपमान जो समझता है, वह तो पूर्ण संतुष्ट इसी एक बात से रहता है कि उसके कारण किसी औरत को सौभाग्यवती बनने का अवसर मिला।"[136]

आज हम देखते हैं कि औरत को सताने में दूसरी औरत भी कमी नहीं छोड़ती। मर्द किसी दूसरी औरत का सहारा लेकर ही औरत का शोषण कर पाता है। वह सास, ननद, जेठानी, बॉस इत्यादि अनेक रूपों में देखी जा सकती है। इसका कारण बताती हुई शाल्मली की सासू माँ उससे कहती है– "अपवाद की कमी नहीं, मगर मैं जानती हूँ कि अत्याचार सहते–सहते हम भी इतने निष्ठुर हो जाते हैं कि अत्याचार करना ही सीख पाते हैं। स्वयं मार खाते हैं और दूसरों को मारते हैं।"[137]

आज व्यवस्था के नाम पर चहुँओर सडाँध फैली हुई है। कानून के रखवाले ही कानून की धज्जियां उडा रहे हैं। आम आदमी स्वयं को ठगा हुआ सा महसूस कर रहा है। नासिरा जी इस पर टिप्पणी इस प्रकार करती हैं– "हमको इस दिमागी कैफियत में पहुँचाने वाले यही वे लोग हैं जो कानून के नाम पर गैरकानूनी हरकतें करते हैं। कानून को लागू होने से पहले ही उसको कैद कर देते हैं। आप कानून–कानून की दुहाई देते जाइए मगर वह कानून के नाम सारी गैरकानूनी कार्रवाई आपके साथ करते जाएंगे।"[138]

आज जिन बीमारियों का कभी नाम नहीं सुना, वे अब देखने—सुनने में आ रही हैं। तरकारियों और फलों में पहले वाला मजा नहीं मिलता। इसका कारण पूरी साफगोई से रखती हुई कहती हैं— "इस सबकी जड़ बाजार है। बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया।"[139]

हिन्दुस्तान के बँटवारे की पीड़ा आज हम सब किस न किसी रूप में भोग रहे हैं। हिन्दु—मुस्लिम भाईचारे की बात केवल जुमले बनकर रह गई है। इस सम्बन्ध नासिरा जी कहती हैं— "सच पूछो तो बँटवारा हमारी सोच का, हमारी भावना का हिस्सा बन चुका है। उस मानवीय विलाप से हम आज भी निकल नहीं पाए हैं, शायद अगले पचास वर्ष तक इससे निकल भी नहीं पाएंगे।"[140]

वर्तमान समय में लड़का—लड़की अपनी स्वेच्छा से, अपनी पसन्द से शादी करते हैं, घर बसाते हैं। माँ—बाप भी अपने बच्चों की खुशी के लिए सब कुछ आत्मसात कर लेते हैं परन्तु जब ऐसे रिश्ते टूटते हैं, तो यह दर्द केवल उन दोनों का नहीं होकर पूरे समाज व परिवार का बन जाता है। इसी सम्बन्ध में नासिरा जी रोहन की माँ के द्वारा एलेसन को कहलवाती है— "मैं तुम्हारी और रोहन की लड़ाई में रेफ़री नहीं बनने वाली हूँ, न तुमको या उसको अच्छा—बुरा कहने वाली हूँ। कहती तो मैं तब जब तुमने मुझे हक़ दिया होता। ऐसा क़दम उठाने से पहले पूछा होता। तुम अपनी मर्जी से जिस तरह आईं, उसी तरह अपनी मरज़ी से चली गईं। काश, यह जंग तुम दोनों तक सीमित होती, मगर ऐसा हुआ नहीं।"[141]

"वाक़ई ज़माना बदल गया है। अपने बुजुर्गों पर से औलादों का एतबार डगमगा चुका है।"[142]

आज औरत को सामाजिक रीति—रिवाजों के नाम पर, धर्म के नाम तथा विभिन्न प्रकारों से जकड़ने की कोशिश की जा रही है और वह सीने में दर्द लिये अपनी मुक्ति के लिए अपनी नई उड़ान के लिए नए—नए वितानों की तलाश कर रही है। फरहाना जब बेटे शाद को लेकर उसके असली बाप की खोज में लेबनान जाती है। तब लेखिका रुख़साना के मुँह से कहलवाती हैं— "हव्वा की बेटी लगातार उसकी नज़रों के सामने अपना क़द निकाल रही थी। वही हव्वा जो जन्नत से निकाली गयी तो इन्सानी आबादी वजूद में आई और आज वही हव्वा की बेटी अपनी जन्नत बचाने के लिए कमर कस चुकी है।"[143]

आज तकनीकी क्रान्ति के नाम पर समाज को खोखला करके रख दिया है लेखिका कहती हैं— "हम उस वर्ग को सस्ता अनाज देने से हिचकते हैं लेकिन स्मार्ट फ़ोन देते नहीं शर्माते, यह कौन सी तकनीकि क्रान्ति है कि हमारा मेहनतकश वर्ग बलात्कार के केस में पकड़ा जाता है और किसान आत्महत्या करता है।"[144]

आज की भागमभाग भरी ज़िन्दगी पर वे कहती हैं– "यह दुनिया खड़ी ज़रूर है मुहब्बत और हमदर्दी पर मगर चल रही है गला–काट प्रतिस्पर्द्धा पर........."[145]

"यह पूरी दुनिया तकनीकि दृष्टि से जिस तेज़ी से बदल रही है वहाँ संवेदना की जगह पैसे का महत्व बढ़ रहा है और हम कुछ ज़्यादा ही भावुक हैं। व्यावहारिक चाह कर भी नहीं हो पाते हैं।"[146] इस प्रकार वाक्य छोटे–छोटे हैं पर जबरदस्त असरकारक हैं।

4. भाषा–सौंदर्याधायक तत्त्व

किसी भी रचना की सार्थकता उसमें व्यक्त विचार और भावों को सहज, सुन्दर और आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त करने में होती है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा में, रवानगी, ताजगी और अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता लाने के लिया किया जाता है। मुहावरे भाषा की लाक्षणिकता की धरोहर होते हैं। अपनी बात को वक्र अभिव्यक्ति में कहने की वक्ता की ललक मुहावरों के द्वारा पूरी होती है। ये ढली–ढलाई वक्रताएँ हैं जो अपने स्थिर अर्थ के बावजूद भी वक्ता के मनोभाव को चमक के साथ प्रस्तुत करती है। वक्ता अपने व्यापक अर्थ को एक मुहावरे में समेट कर संतुष्ट हो जाता है। जिस लेखक/वक्ता में मुहावरे की पकड़ जितनी पैनी होगी उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही सरस और चुटीली होगी।

लोकोक्तियाँ एक भाषा–भाषियों की सांस्कृतिक विरासत होती है। वे इतिहास में किन्हीं विशिष्ट घटनाओं एवं स्थितियों से उपजती हैं और फिर भाषा के माध्यम से देश और काल में छा जाती हैं। लोकोक्तियाँ समाज का भाषाई इतिहास होती हैं। इसलिए लोकोक्तियों के माध्यम से एक समाज का सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक अध्ययन किया जा सकता है। लोकोक्तियों का प्रयोग प्रयोक्ता की सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सजगता का द्योतक होता है। किसी कहानी या घटना से निकली हुई बात या वाक्यांश बाद में 'लोकोक्ति' अथवा 'कहावत' बन जाती है। आंचलिक भाषा मुहावरों, लोकोक्तियों एवं कहावतों के सटीक और प्रसंगवश प्रयोग द्वारा समर्थ और सर्जनात्मक बन जाती है। साहित्य के अन्दर इनके प्रयोगों से ही आंचलिकता के रंग को उभारा जाता है जिससे भाषा में नवीनता एवं लालित्य पैदा होता है। इस सम्बन्ध में आदर्श सक्सेना का मत है कि– "आंचलिकता के हल्के–गहरे रूप शब्दों के लोक प्रचलित रूपों तथा आंचलिक भाषा के शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के विस्तृत प्रयोग द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।"[147]

पारुकांत देसाई का भी यह मानना है कि– "प्रेमचन्द के कथा साहित्य में सहज रूप से लोक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग पाया जाता है और उन्हीं की परवर्ती परम्परा में

मार्कण्डेय रेणु, शिवप्रसाद सिंह, भीष्म साहनी आदि में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है।"[148]

किसी भी रचना की सार्थकता उसमें व्यक्त विचार और भावों को सहज, सुंदर और आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त करने में होती है। नासिरा शर्मा ने अपनी अभिव्यक्ति को सुंदर और आकर्षक बनाने के लिए आलंकारिक भाषा, मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ, बिम्ब, प्रतीक आदि प्रमुख तत्त्वों का बेहद प्रभावी ढंग से प्रयोग किया है। इन तत्त्वों के कारण भाषा में कहीं भी क्लिष्टता व असहजता उत्पन्न नहीं हुई है।

उन्होंने आंचलिक जन–जीवन में व्यवहृत बोली–बानी और अभिव्यक्ति का सशक्त प्रयोग किया है। कहीं–कहीं तो उनके रचित वाक्य बिना किसी जाने–पहचाने, चर्चित अथवा स्थापित मुहावरे के बगैर ही मुहावरेदार प्रतीत होते हैं। जैसाकि 'अक्षयवट' उपन्यास के इन वाक्यों को ले– "चुप अन्धे मारे, जो सिखाओ वह तो बोलता नहीं, टांच टांच के कंकड़ फेंक कान के पर्दे फाड़ता है। बड़ी बी ने जोर की घुड़की लगाई और बर्तन धोने में लग गई।"[149]

"कउन साला......कहत है कि इलाहाबादी गाली बहुत बकते हैं। कुली बैग सिर से उठाकर गुस्से में पटकता हुआ बोला। बेचारा मुसाफिर कुली के इस तेवर को देख बौखला उठा। कुली ने सिर पर रखा अंगोछा झाड़ा और बाबू को लाल–पीली आँखें दिखा कंधे उलकाता हुआ बोला।"[150]

"हो न ताले वालों की बेटी! मुँह काहे खोलोगी, एक चुप में हजार बला टालोगी।"[151]

मुहावरों, लोकोक्तियों और कहावतों के प्रयोग द्वारा रचनाकारों की बुद्धि, अनुभव और प्रतिभा की विशेष पहचान होती है। ये हमारे दैनिक जीवन की बोल–चाल में बड़ी ही सहजता से व्यवहृत होते हैं। इनके प्रयोग से वाक्य में रोचकता और प्रभावकता बढ़ जाती है। अतः नासिरा शर्मा के उपन्यासों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग बड़े ही अर्थपूर्ण और स्वाभाविकता से हुआ है, जो उनके उपन्यासों में सजीवता बनाए रखते हैं।

4.1 मुहावरे

नासिरा शर्मा ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में मुहावरों का बहुत ही खुलकर व सटीक प्रयोग किया है। जैसे– 'लकीर का फकीर बनना'[152], 'तिल का पहाड़ बनाना'[153], 'कुएं का मेढ़क बनना'[154], 'कोल्हू का बैल बनना'[155], 'चिकना घड़ा होना'[156], 'काफूर की तरह उड़ जाना'[157], 'गधा पच्चीसी सवार होना'[158], 'दूध में मक्खी की तरह निकाल फैंकना'[159], 'छछून्दर के सर में चमेली का तेल'[160], 'बन्दर–बाट की सियासत'[161], 'हथेली पर सरसों जमाना'[162], 'कौवा चला हंस की चाल'[163], 'पल में तोला पल में माशा'[164], 'दिन–दूनी रात चौगुनी तरक्की करना'[165], 'गंजे सर पर जोर का बेलन मारना'[166], 'खोटा सिक्का'[167], 'दाल में काला होना'[168], दरिया में रहकर मगरमच्छ से बैर

मोल लेना’[169], ‘पारा सातवें आसमान पर पहुँच जाता’[170], ‘हाथ–पैर फूलना’[171], ‘कान बजना’[172], ‘बघारी जामुन की हँडिया होना’[173], ‘बूढ़े मुँह मुँहासा’[174], ‘आगे नाथ न पीछे पगहा’[175], ‘चींटी के पर निकलना’[176], ‘पेट में दाडी होना’[177], ‘आँख से काजल चुराना’[178], ‘हीरे की खान लगना’[179], ‘कान खड़े होना’[180], ‘हुकम की इक्का’[181], ‘उल्लू की तरह पहरा देना’[182], ‘रंग में भंग पड़ना’[183] इत्यादि।

4.2 लोकोक्तियाँ व कहावतें

लोकोक्तियों और कहावतों का प्रयोग भी नासिरा जी के उपन्यासों में बहुत अधिक हुआ है। जैसे– ‘न सावन हरे न भादों सूखे’[184], ‘मूल से ज्यादा ब्याज प्यारा होता है’[185], ‘जिस घर बेरी का पेड़ होगा, ढेले तो आएंगे ही’[186], ‘चांद पर कोई ख़ाक डालेगा, तो उलटकर उसी के मुँह पर गिरेगी’[187], हाथ कंगन को आरसी क्या’[188], ‘मरता क्या नहीं करता’[189], ‘अँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना’[190], ‘खाली दिमाग शैतान का घर होता है’[191], ‘इन्सानी रिश्ते काग़ज़ की नाव की तरह होते हैं,[192], ‘रुपया परखे बार–बार, आदमी परखे एक बार’[193] ‘सब धान सत्ताईस सेर’[194], दूध का जला छाछ को भी फूंक–फूंक कर पीता है’[195], ‘एक दिन बिलाई भी सूँघत–सूँघत अपने पुराने ठिकाने को लौटत है’[196] ‘आखिर भोर का भूला सांझ गए तो घर लौटत है’[197], ‘सूत न कपास जुलाहों से लट्ठम–लट्ठा’[198], ‘पास में नहीं दाने अम्मा चली भुनाने’[199], ‘आच्छे ने कटोरा पाया, पानी पी–पी पेट फुलाया’[200], ‘सांप निकल जाए और लकीर पीटते रहना’[201], ‘मीठा–मीठा हप और कड़वा–कड़वा थू’[202], लड़की पराया धन होती है’[203], दूधो नहाओ! पूतो फलो![204] ‘सौ सुनार की एक लुहार की’[205], ‘बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम’[206], ‘बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से होय’[207] ‘कुत्ते की दुम बारह बरस भी गाडो तो टेढ़ी की टेढ़ी रहेगी’[208], ‘सब धान बाईस पसेरी नहीं होते’[209], ‘सब दिन नहीं एक समान’[210], ‘बहता पानी अपनी थाह कहाँ लेने देता है’[211], ‘सफ़ेद चमड़ी सफ़ेद ख़ून’[212], ‘पग–पग रोटी, डग–डग नीर’[213], ‘सूप तो सूप चलनी भी बोलने लगी’[214], ‘सादा जीवन उच्चविचार’[215], ‘बग़ल में लड़का घर–घर ढिंढोरा’[216], ‘दो से भले तीन’[217], ‘बिना छत की दीवारें घर नहीं कहलाती’[218] जैसा देस वैसा भेष’[219], ‘पेट पुछनी औलाद’[220], ‘न जान न पहचान बड़ी बुआ सलाम’[221], बंद मुट्ठी लाख की खुल गई तो राख़ की’[222] इत्यादि।

4.3 लोकगीत

नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में लोकगीतों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करके कथ्य को अतिमनोहारी और चित्ताकर्षक बना दिया हैं ये लोकगीत पाठक को जमींनी हकीकत से रूबरू करवाते हैं। इनमें कथ्य को गति देने की अद्भुत क्षमता होती है तथा पाठक का सीधा जुड़ाव तद–तद् परिवेश से हो जाता है। ‘सात नदियाँ : एक समन्दर’ उपन्यास में लेखिका ने ईरानी लोकगीत के दर्शन कराए हैं जिसमें एक लड़की के सौंदर्य का वर्णन है–

"ओ शिराज़ी हसीना, आँखें हैं तेरी या काग़ज़ी बादाम?"

"बादाम का नाम मत लेना, बाज़ार में है बहुत महँगा।"

"ओ शिराज़ी हसीना, तेरे होंठ हैं या शहद?"

"शहद का नाम मत लेना, बाज़ार में है बहुत महँगा।"[223]

'दूसरी जन्नत' उपन्यास में ज़फ़र अब्बास के कहने पर कि "बेगम! आज तुम 'सावन' सुना ही दो....शायद तुम्हारी तान से बादल जी भरकर बरस ही जाए।"[224], शहला बानो सावन की मनमोहक प्रस्तुति देती है—

"झूला पड़ा क़दम की डारी
झूला झूलवें कृष्ण मुरारी
भीग रही है राधा प्यारी
बौर लगे हैं डारी डारी
कोयलिया कूके बारी बारी
झूला झूलावें कृष्ण मुरारी।"[225]

'पारिजात' उपन्यास में हिन्दु—मुस्लिम भाईचारे के प्रतीक लखनऊ शहर में रोहन के दादा ज्योतिदत्त की भारी और लयदार आवाज में होली गीत सुनकर हर पाठक का चेहरा खिल उठता है और वह आनन्दित हो नाना—नाना रंगों से सरोबार हो जाता है—

"होरी खेलूँगी कह बिस्मिल्लाह
नाम नबी की रतन चढ़ी है
बूँद पड़ी है इल्लल्लाह
रंग—रंगीली उही खिलावे—
जो सखी होवे फ़ना—फ़िल्लाह
होरी खेलूँगी कह बिस्मिल्लाह!
हाथ जोड़कर पाँव पड़ूँगी
आजिज़ होकर..........।"[226]

रोहन के पिता प्रहलाद दत्त जब लखनऊ से कुराली की तरफ निकलते हैं, तो वे राजभट डेरे को देखते हैं और वहाँ वे देखते हैं कि वे खानाबदोश परिवार की औरतें खाना खाने के बाद रात को इमाम हुसैन की जीवनी को लोकगीतों की तर्ज पर गा रही हैं—

"गलिया के गलिया घूमय रावल जोगिया,
अल्लाह कोई देता जोगिया को भिखयारे
भिखया तू दादी धरा अपनी कोठरिया,

अपनी महलिया

हम लेबय मक्का मदीना

मक्का की ख़ातिर क़त्ल होय जाब,

शहीद होय जाब,

ऐे दादी इहारे...।"[227]

'अक्षयवट' उपन्यास में मुँह–अँधेरे उठ के औरतों का झुण्ड पड़ौस के गाँव–देहात से गंगा गीत गाता इलाहाबाद में दाखिल हो गंगा–स्नान के लिए संगम की तरफ चलता हुआ दर्शाया है। इसे पढ़कर पाठक ग्रामीण संस्कृति में रचे–बसे आध्यात्म को लोकधुन में सुनकर मंत्र–मुग्ध हो जाता है–

"गंगा का जल लहराये चलो सखि गंगा नहाये,

गंगा नहाये, संगम नहाये चलो सखि गंगा नहाये।

हे गंगा मइया तुमका चढ़ाउब पीयर चुनरी रंगाये

चलो सखि गंगा नहाये।"[228]

4.4 नवीन अभिव्यंजना और उपमाएँ

उपन्यासकार अपनी नई–नई अभिव्यंजनाओं व उपमाओं के ज़रिए उक्ति–वैचित्र्य पैदा कर अपनी भाषा में सजीवता तथा नवीनता का उद्रेक करता है। नई–नई संवेदनाओं तथा नये–नये भावबोधों को एक नूतन ढंग से प्रस्तुत कर वह अपना काव्य–वैशिष्ट्य सिद्ध करता है। इसी क्रम में वह नये–नये उपमानों को गढ़ता है और उनको साहित्यिक रूप देकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। नासिरा शर्मा तो सहज प्रतिभा की धनी हैं। अतः उनकी हर रचना में पाठक कुछ न कुछ नया पाता है। नासिरा जी के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती कुछ उपमाएँ इस प्रकार है–

"सीख़ पर भुनते भेंड़ की तरह बग़दाद की सियासत केवल इराक़ में नहीं बल्कि पूरी दुनिया में बहस का मुद्दा बन चुकी थी तब **गिलगामिश की तरह** कोई शख़्स अपनी प्रेम कहानी बारुदों से भरी हवाओं पर लिखने की कोशिश कर रहा था।"[229]

"काग़ज़ की नाव"[230]

"उल्लू की तरह पहरा न दे, सो जा चुपचाप अच्छी लड़कियों की तरह।"[231]

"हवा में विलीन हुए आवारा शब्दों के गुम होने की चुभन–शब्द पखेरू।"[232]

"ख़ूटियों की तरह सारे चेहरे पर दाढ़ी उगी हुई–छी–छी.....।"[233]

"चलती तो फ्राक का घेरा एसा बल खाता कि लगता, लहरों को चीरती कोई जलपरी आगे बढ़ रही हो।"[234]

"तुम लोग भी अपने चेहरों को पेंट कर लो, वरना सनोबर के सामने सबके चेहरे फ्यूज बल्ब लगेंगे।"[235]

"आदत है मुझे। यहाँ की गर्मी तो मुझे महसूस नहीं होती........हाँ, भूल गई कि तुम रेगिस्तानी ऊँट जो ठहरे।"[236]

इस प्रकार नासिरा जी की उपमाओं में नवीनता है क्योंकि उनकी सोच में नयापन है।

4.5 बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक योजना

4.5.1 बिम्ब–योजना

दैनिक जीवन में हम अनेक वस्तुओं के सम्पर्क में आते हैं जिनकी संलिष्ट स्मृतियाँ हमारे मानस पर अंकित हो जाती हैं। जब हम उन स्मृतियों को शब्दों में बाँधने का प्रयास करते हैं तब 'बिम्ब' की सर्जना होती है। बिम्ब एक प्रकार से मानसिक पुनसर्जना है जो इन्द्रियों के पूर्वानुभावों को शाब्दिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसे चित्र, रूप अथवा सम्मूर्तन आदि नामों से भी जाना जाता है।

रचनाकार अपनी रचना को अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु अनेक प्रकार के बिम्बों की सृष्टि करता है। वस्तुतः बिम्ब जहाँ एक तरफ रचनाकार की कल्पना–शक्ति का प्रमाण है, वहीं दूसरी तरफ उसकी भाषा–सर्जन–सामर्थ्य का प्रतीक भी। गद्य हो या पद्य, बिम्बों का आयोजन रचनाकार के लिए अनिवार्य तत्त्व है। बिम्ब–विधान के बिना उसकी भाषा अधूरी लगती है और उसका भाषा–संगठन अपूर्ण। नासिरा शर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत में एक ऐसी रचनाकार हैं जो कल्पना के धरातल पर अन्य रचनाकारों से पूर्णतया अलग दिखाई देती हैं। चाहे उनके उपन्यास हों या कहानी, उनकी कल्पना–शक्ति का चमत्कार सर्वत्र देखने को मिल जाता है। भाषा के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं। ऐसी स्थिति में नासिरा जी अपनी औपन्यासिक रचनाओं में कल्पना–प्रसूत मानसिक चित्रों के समायोजन में तो अद्‌भुत बन पड़ी हैं। उनके बिम्ब कहीं तो पूर्णतया मानसिक दिखाई देते हैं और कहीं दृश्य जगत की घटनाओं के प्रत्यक्ष होते चित्र। नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में जो सामाजिक अभिव्यक्ति दी है, वस्तुतः वह उनके कल्पित जगत का प्रतिबिम्बित रूप ही है। इसलिए साहित्य में बिम्ब को वह शब्द चित्र माना जाता है, जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। इस प्रकार बिम्ब के कल्पना, भाव और ऐन्द्रिकता ये तीन मूलभूत तत्त्व माने जाते हैं। नासिरा जी के अद्‌भुत सामर्थ्य के कारण उनके बिम्ब–विधान में उत्तेजित करने की शक्ति व सामर्थ्य है, नवीनता व ताजगी है, प्रसंग के प्रति अनुकूलता एवं सार्थकता है तथा सजीवता व स्पष्टता है। अतः उनके उपन्यासों में हमें ऐन्द्रिक, काल्पनिक तथा अनुभूतिपरक सर्वविध बिम्ब–योजना परिलक्षित होती है।

'कुइयाँजान' उपन्यास में चन्दन हलवाई की दुकान के पास का बिम्बात्मक दृश्य उपस्थित करते हुए नासिरा लिखती है– "कुत्ते रेंगते हुए पास आकर खड़े हो दुम हिलाने लगे। रंगीला ने पास खड़े कुत्ते को पुचकारा और झोले से निकालकर उनकी तरफ चंद कचौरियाँ फेंकीं। तीनों कचौरियों पर झपटे। रिक्शे की घंटी सुन कुत्तों ने अपना बदन समेटा। रिक्शा उसकी दुम बचाता, पहिया काटकर आगे बढ़ गया। बत्तखें नाली के पास से कतार बांधे कुत–कुत–कफत करती आगे बढ़ रही थीं, फिर ठहरकर उन्होंने नाली में चोंच डाल पानी पिया और अपने घर के पत्थर पर पंजे रख अंदर दाखिल हो गईं।"[237]

यहीं पर अनुभूतिपरक बिम्ब उपस्थित करते हुए पानी के बिना रत्ना की स्थिति का चित्रण करती हुईं वे लिखती हैं– "कितनी ठंडी है! रत्ना ने बोतल अपने चेहरे पर लगाई। उसे सिर की तपक़न कम होती महसूस हुई।.....ऐसा सुख हमें रोज क्यों नहीं मिलता? रत्ना ने मन ही मन कहा और बोतल खोल घूंट भरा। उसका सारा शरीर तरावट से भर गया। एक ताजगी–सी अपने चारों तरफ फैलती महसूस हुई। उसने चुल्लू में पानी ले सिर पर डाला। बालों के बीच से रेंगते पानी ने एक सिहरन–सी बदन में दौड़ा दी। दूसरा चुल्लू भर उसने मुंह पर छींटा मारा। ठंठा पानी जलते चेहरे से गिर गरदन से होता हुआ सीने पर बहा। सुख की असीम अनुभूति से उसका अंग–अंग पुलक उठा। उसने बिना सोचे–समझे बाकी बचा पानी गरदन के आगे–पीछे उड़ेल लिया। उसे लगा कि वह ठंडे पानी से भरी किसी नदी में तैर रही है। पानी की लहरें उसके बदन से टकराती बन–बिगड़ रही हैं और उसका रोम–रोम अपनी प्यास बुझाता उस नदी के जल में अठखेलियाँ कर रहा है।"[238]

इसी तरह का बिम्बात्मक परिदृश्य हमें देखने को मिलता है 'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में। जब समीरा बाजार से खरीदारी कर लौट रही होती है। तब "उसने अपने हाल पर नज़र डाली और सोचा कि पहले फ़कीर औरतों का यह पहनावा होता था। बिना एड़ी के चप्पल, काला गन्दा लिबास, चेहरा उजाड़, बाल बिखरे और होंठ सूखे।

ख़रीदारी करते हुए अगर में यह हुलिया न बनाऊँ तो दुकानदार दाम सस्ता देगा ही नहीं। हालात ने हमें किस तरह की चालाकी सिखाई है।"[239]

'पारिजात' की याद में रोहन तिल–तिल कर घुटता रहता है। इसी दर्द को वह कविता के रूप में डायरी में उड़ेलता है। जो एक अद्‌भुत स्मृति–काल्पनिकपरक मिश्रित बिम्बात्मक दृश्य उपस्थित करता है–

"तुम मेरी आँखों में खिलते
पारिजात हो।

धीरे–धीरे पंखुड़ी खोलते
मेरे अंश के वंशज।
तुम्हीं हो मेरे प्यार के साक्षी
मेरी गंध, उसकी सुगंध
मेरा माथा, उसके होंठ
दादा की नाक, दादी की आँखें
सब का कुछ–कुछ लेकर तुम।
इकलौते प्यार हो
पारिजात मेरे।"[240]

'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में बँटवारे के लम्बे अरसे बाद जब निज़ाम हिन्दुस्तान आता है। तब रात को खाने पर शहर के कई सम्मानित लोगों के बीच बढ़िया महफ़िल जमती है और शुरू होता है सियासी लतीफ़ों व क़हक़हों का दौर। तब सब अपने–अपने अहसासों को खोलकर रखते हैं, जो बढ़िया स्मृति बिम्ब की संरचना करते हैं। हसनैन एडवोकेट कहते हैं– "तारीख़ को हमने जख़्मी किया, उसने हमें घायल किया। हम उस तहख़ाने से निकल आए, मगर आज फिर इन्सानों को तहख़ानों में बन्द करने की साजिश शुष्क हो गई।"[241]

प्रो. ज्वालाप्रसाद कहते हैं– "सच पूछे तो बंटवारा हमारी सोच का, हमारी भावना का हिस्सा बन चुका है। उस मानवीय विलाप से हम आज भी निकल नहीं पाए हैं, शायद अगले पचास वर्ष तक इससे निकल भी नहीं पाएँगे। मैं लाहौर का हूँ। ना शहर भूला, ना दोस्त, ना वह खुशबू! आज भी तालिब मुझे ख़्वाबों में नज़र आता है।"[242]

'बहिश्ते–ज़हरा' उपन्यास में महनाज़ की सुन्दरता का जिक्र है। जो चाक्षुष बिम्ब के रूप में कथानक में रोमांच ला देता है– "वैसे थी भी सबसे सुन्दर! चलती तो फ्राक का घेरा ऐसा बल खाता कि लगता, लहरों को चीरती कोई जलपरी आगे बढ़ रही हो! नर्म चमकीले बाल, कन्धे पर झूलते हुए। सुडौल पैर जिसमें नाजुक सैंडिलें होतीं। इस समय वह ऊपर से नीचे तक हल्के नीले रंग के कपड़े में थी जो उसके सफ़ेद रंग पर फब रहा था।"[243]

इस प्रकार 'स्थली–पुलाव न्याय' की भाँति हम समझ सकते हैं कि नासिरा जी के उपन्यासों में कथानक के बीच–बीच में बिम्ब–योजना बहुत आकर्षक और प्रभावी बनकर पाठक को लुभाती है।

4.5.2 प्रतीक–योजना

भाषिक संरचना को प्रभावित करने अवयवों में बिम्ब और प्रतीक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिम्ब और प्रतीक भाषा में 'मूल्य' बनने की स्थिति में है। इसका सबसे बड़ा कारण उनका विस्तार है। उपन्यास आधुनिक जीवन का महाकाव्य है अर्थात् आधुनिक जीवन को आज सशक्त और पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम उपन्यास ही है। साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा होने के नाते साहित्य की सभी विशेषताएँ इसमें होनी चाहिए। बिम्ब, प्रतीक और मिथक साहित्य की अभिव्यक्ति के जीवन्त माध्यम है। वस्तुतः इन तीनों का समायोजन भाषा को इतना सशक्त बना देता है कि रचनाकार एक साथ कई तथ्यों को उद्भाषित कर देता है। सीधी–सादी भाषा के माध्यम से वह एक दूसरी कथा कहता है और प्रतीक, बिम्ब एवं मिथक के माध्यम से वह कथा के एक दूसरे महत्त्वपूर्ण पक्ष की ओर इंगित कर देता है। प्रतीक साहित्य की व्यापकता को सीमित करने का कार्य भी करता है अर्थात् कथाकार प्रतीक के माध्यम से लम्बी कथा को अत्यन्त संक्षिप्त ढंग से प्रस्तुत कर देता है। दूसरे रूप में हम यह भी कह सकते हैं कि प्रतीक अभिव्यक्ति का वह माध्यम है जिसके द्वारा चेतना के धरातल पर अप्रत्यक्ष को अधिकाधिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

हिन्दी साहित्य कोश में प्रतीक शब्द को निम्न प्रकार से व्याख्यायित किया है– "'प्रतीक' शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु (अथवा गोचर) के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य, अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है; अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप–वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है।"[244]

अंग्रेजी भाषा के 'सिम्बल' शब्द के पर्याय के रूप में हिन्दी में भी 'प्रतीक' शब्द को ग्रहण किया गया है। 'सिबल', ग्रीक भाषा का वह शब्द है जिसका अर्थ है एक साथ जोड़ना, तुलना करना। तुलना करने के लिए दो वस्तुओं के मध्य सादृश्य अवश्य होना चाहिए।[245] अतः प्रतीक चिन्ह व उसके द्वारा अभिव्यक्त की जाने वाली वस्तु में सादृश्य की योजना अवश्य रहती है। यही अर्थ गद्य–क्षेत्र के 'प्रतीक' शब्द में भी निहित है।

वस्तुतः हमारे सामने उपस्थित वस्तु जब किसी अन्य वस्तु का स्मरण कराती है, जो अप्रस्तुत है, तो वह उसका प्रतीक कहलाता है।

जैसे 'स्तूप' बौद्ध धर्म का प्रतीक है। स्तूप को देखकर हमारे सम्मुख बौद्ध धर्म का विचार उसी क्षण आ जाता है। वास्तव में स्तूप स्वयं में कोई विशिष्ट अर्थ नहीं रखता, वह किसी अन्य अर्थ की ओर संकेत करता है। प्रतीक में अंकों की–सी निश्चितता होती है। जैसे 'एक' कहने से केवल एक संख्या का बोध होता है, दो अथवा पाँच का नहीं वैसे ही एक प्रतीक भी अनिवार्य रूप

से केवल उसी भाव अथवा विचार का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए वह अलग से लाया जाता है। इसलिए नगेन्द्र का कथन है कि– ''उपमान जब किसी पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तब प्रतीक बन जाता है।''[246] प्रतीक दो प्रकार के होते हैं– लघु एवं प्रौढ़। लघु प्रतीक कृति के एक या दो दृश्यों, चरित्रों एवं उनके क्रियाकलापों को स्पष्टता प्रदान करते हैं जबकि दीर्घ प्रतीक सम्पूर्ण कृति या कथानक को स्पष्टता प्रदान करता है। विषय के आधार पर प्रतीक को अनेक भेदों में बाँटा जा सकता है। जैसे–प्राकृतिक प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, रूढ़ प्रतीक, नवीन प्रतीक, पौराणिक प्रतीकों का आधुनिकीकरण इत्यादि।

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है 'प्रति' अर्थात् अपनी ओर, 'इक' अर्थात् झुका हुआ। प्रतीक अदृश्य सत्यों की इन्द्रिग्राह्य रूपों में सांकेतिक अभिव्यक्ति करते हैं। अनुभूतियों को प्रतीकों में बाँधना मनुष्य का स्वभाव है। मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है। वह प्रतीकों के माध्यम से ही सोचता है। नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों में इसका भरपूर प्रयोग किया है। इसे हम निम्न उदाहरणों से समझ सकते हैं–

नासिरा जी की सभी औपन्यासिक रचनाओं के शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। जैसे शाल्मली (सेमल के पेड़ की तरह हर पल मुसीबतों से झुलसने वाली), 'ठीकरे की मंगनी' (रस्मों–रिवाज के नाम पर समाज में प्रचलित कुरीतियाँ), 'जिंदा मुहावरे' (मुजाहिर), अक्षयवट (अपनी सभ्यता, संस्कृति, संस्कारों, जिजीविषा व संघर्षशीलता से सम्पन्न युवा), कुइयाँजान (प्राचीन जलस्रोत), पारिजात (अतीत की स्मृतियों, वर्तमान की दमित इच्छाओं, अवशेष हसरतों तथा भावी सपनों का वाचक), 'अजनबी जज़ीरा' (सभ्यता के विनाश, बदहाली तथा जर्जर इन्सानियत), 'काग़ज़ की नाव' (चन्द रुपयों के सहारे पारिवारिक दायित्वों को पूरा करने की कोशिश), 'शब्द पखेरू' (काल्पनिक व आभासाी दुनिया जिसमें आज का युवा खोया हुआ है), ज़ीरो रोड़ (हिन्दू–मुस्लिम सामाजिक यथार्थ) तथा 'दूसरी जन्नत' औरत को सामाजिक समादर व बिना किसी भेदभाव के बराबरी का हक।

'शाल्मली' उपन्यास का आरम्भ ही प्रतीकात्मक है। ''मैं केवल एक सूखा वृक्ष भर रह गई हूँ। न फल, न फूल, न शाख, न पत्ती, न छाया, न ठंडक, ऐसे सूखे वृक्ष की शरण में भला कौन आना पसन्द करेगा? धरती ने भी जैसे अपने स्रोत समेट लिए हैं, तभी तो मेरी जड़े तरावट को तरसती, धरती छोड़ने लगी है। ऐसा सूखा छायारहित, ठूंठ वृक्ष तो बस जलाने के काम का रह जाता है, लपटों के बीच कोयला बनती काली काया।''[247]

नायिका 'शाल्मली' की जिन्दगी ऐसी हो गयी है। अफसर बनकर बखूबी ऑफिस संभालने के कारण उसके पति नरेश को जलन हुई, जिसके कारण वह उसे पत्नी का प्यार नहीं दे पाया। इसी को प्रतीक स्वरूप लेखिका ने बयान किया है। अन्यत्र भी हम देख सकते हैं– ''अरे सेमल! तू

अन्दर से भी एकदम लाल है। छाल के अन्दर का गाढ़ा लाल रंग किसी खून की पतली धार की तरह सेमल के तने पर खिंच गया। शाल्मली का खोजी मन–मस्तिष्क। इस वृक्ष को और ज्यादा जान लेने की अपनी उत्सुकता को दबा न पाया।"[248]

'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में रमज़ान की दुकान पर जब रामप्रसाद की बेटी जूही को काले कढ़े बुर्क़े में देखकर लड़के अचंम्भित होते हैं। तब रमजान उन्हें समझाता है– "इस शहर में अरब देशों से हमारे मज़दूरों और कारीगरों के द्वारा कमाया धन आकर कहाँ जाएगा? जब हमारे लोग वहाँ का रुपया कमाकर लाते हैं तो साथ में वहाँ के तौर–तरीके भी साथ चले आते हैं। तोहफ़ों में एक तोहफ़ा बुर्क़ा भी है। मुझे तो ताज्जुब होता है कि ये वहाँ रहकर अरबी बोलना सीख लेते हैं। वैसे उर्दू का सही उच्चारण, मेरा मतलब है सही तलफ़्फ़ुज भी यहाँ उनके लिए मुश्किल होता है। अब खुदा हाफ़िज की जगह सब अल्लाह हाफ़िज कहने लगे हैं।"[249] इस प्रकार 'बुर्का' यहाँ प्रतीक है उस अरबी संस्कृति व सभ्यता का, जिसे कामगार अपने साथ लाते हैं।

रमेश और जहीर 'अक्षयवट' उपन्यास में वार्तालाप करते हैं। इलाहाबादी कवियों के सम्बन्ध में जहीर रमेश को बताता है। बात ही बात में रमेश को जहीर उस वक्त बिलकुल अलग इंसान लगा। महसूस हुआ उसके अन्दर पर्तदार चट्टानों का सिलसिला बहुत दूर तक फैला हुआ है। वह जैसा है वैसा दिखता नहीं है। अचानक वह पूछ बैठता है– 'तुम हो कौन जहीर?' तब जहीर कहता है– 'अक्षयवट.......।'[250] इस प्रकार यहाँ 'अक्षयवट' प्रतीक है उस अक्षय विरासत व धरोहर का जो जहीर जैसे नौजावनों के सीने में हिलोरे मार रही है।

'दूसरी जन्नत' उपन्यास जब फरहाना अपने बच्चे 'शाद' के असली बाप की तलाश में लेबनान जाने के लिए रुख़साना से विदा लेती है। "तब रुख़साना का गला रुँध गया था। शायद इसलिए की हव्वा की बेटी लगातार उसकी नज़रों के सामने अपना क़द निकाल रही थी। वही हव्वा जो जन्नत से निकाली गयी तो इन्सानी आबादी वजूद में आई और आज वही हव्वा की बेटी अपनी जन्नत बचाने के लिए कमर कस चुकी है।"[251] यहाँ 'हव्वा की बेटी' प्रतीक है उन सभी फ़रहाना जैसी महिलाओं का जो अपने हक के लिए संघर्षरत हैं।

इस प्रकार प्रतीकों के सटीक प्रयोग करके नासिरा जी ने अपने उपन्यासों के सौंदर्य में न केवल इजाफ़ा किया अपितु एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर पाठकों पर स्वयं की अमिट छाप छोड़ी है।

4.5.3 मिथक–योजना

डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने मिथक के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि– "मिथक मनुष्य का आदिम काव्य है।"[252] "मिथकों के निर्माण में सामूहिक चेतना काम करती है।

मनुष्य के संस्कार में विद्यमान ये मिथक आस्था एवं श्रद्धा के आधार स्तम्भों पर खड़े रहते हैं, तर्क के प्रवेश मात्र से वे भरभराकर गिर पड़ते हैं। 'मिथक' की यथार्थता ऐतिहासिक न होकर पुनीत होती है। मिथक की यह पुनीत यथार्थता उसे तर्कपूर्ण चिन्तन में अनुस्यूत करती है। इसलिए मिथक की अन्तर्भूमि चिन्तन न होकर अनुभूति है।"[253]

मिथ का अर्थ – पौराणिक आख्यान। आदिम युग के मानव ने प्रकृति के गहन रहस्यों को अपनी बुद्धि के परे पाया तो उसने कुछ कथाओं को जन्म दिया जो उसकी शंकाओं का समाधान करती थी। विश्व क्या है? इसका निर्माण कैसे हुआ? सूर्य, चन्द्र, दिवा, रात्रि, आंधी, तूफान आदि उसके लिए रहस्य से परिपूर्ण थे। सत्य क्या है? इसको खोजने की अपेक्षा उसने कुछ कल्पित कथाओं से सन्तोष कर लिया। धीरे–धीरे ये कथाएँ जाति या समाज द्वारा स्वीकृत कर ली गयीं और पौराणिक आख्यान कहलायीं। इन्हीं आख्यानों को 'मिथ' नाम दिया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से 'मिथ' शब्द धार्मिक अनुष्ठानों से उत्पन्न हुआ है। इन अनुष्ठानों का प्रतिपादन इष्ट के सम्पादन अथवा अनिष्ट के निवारण के लिये किया जाता है।

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में मिथक की सर्जना मिलती है। यहाँ मिथ पूर्णतया स्पष्ट हैं। जो पाठक की उत्सुकता को शान्त करते हैं। 'पारिजात' उपन्यास में पारिजात वृक्ष के सम्बन्ध में लेखिका ने मिथ का सहारा लेते हुए उसका सम्बन्ध पाण्डवों के साथ जोड़ा है। वे लिखती है– "पारिजात हरसिंगार को भी कहते हैं, मगर यह हरसिंगार नहीं, पूरे मोटे तने का बेहद सख़्त छाल का पेड़ (पारिजात) था, जिसके फूल अगस्त के दूसरे–तीसरे हफ़्ते में फूलते हैं। यह सफ़ेद फूल कम ही लोग देख पाते हैं। सुना है, दुनिया में नहीं तो भारत में यह इकलौता पेड़ है, जिसकी शाख़ कानन वन से लाकर लगाई थी। अपने कष्टकर समय में पाण्डवों ने अपने गांडीव सहित सारे शस्त्र इसकी डालों के बीच छुपाए थे।"[254]

'दूसरी जन्नत' उपन्यास में फ़रहाना अपने बेटे 'शाद' की तलाश में जब लेबनान जाती है तो डॉ. रुख़साना से मिलकर जाती है। वह कहती है– "भाभी! अपनी दुआओं में याद रखिएगा। तब रुख़साना भावुक मन से 'आदम–हव्वा' के मिथ का सहारा लेते हुए उसको हव्वा की उपमा देती है। लेखिका कहती है रुख़साना का गला रुँध गया था। शायद इसलिए कि हव्वा की बेटी लगातार उसकी नज़रों के सामने अपना क़द निकाल रही थी। वही हव्वा जो जन्नत से निकाली गयी तो इन्सानी आबादी वजूद में आई और वही हव्वा की बेटी अपनी जन्नत बचाने के लिए कमर कस चुकी है।"[255]

'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में भी अंग्रेज फ़ौजी मार्क को ईसा मसीह की भाँति आचरण करता हुआ दिखलाया है। नासिरा जी लिखती है– "रिश्ते दिलों से बनते हैं, काग़ज़ या दस्तख़त से नहीं...मैं तुम सबकी इजाज़त से तुम्हारी माँ की उँगली में अपनी चाहत की अँगूठी पहनाता हूँ

और ताउम्र फेथफुलनेस की क़सम खाता हूँ।......इस सरज़मीन पर ईसा ने कभी ज़हर का प्याला पिया था और मैंने इस सरज़मीन पर आकर होशमन्दी के शरबत का घूँट भरा है।"[256]

राजस्थान के पश्चिमी भाग पानी की कमी के सम्बन्ध में नासिरा जी 'उत्तुंग ऋषि–श्रीकृष्ण संवाद' का उल्लेख करती हैं– "उत्तुंग ऋषि ने कृष्ण से वर के स्थान पर प्रार्थना की थी कि यदि मेरे कुछ पुण्य हैं तो भगवान, इस क्षेत्र में कहीं जल का अभाव न रहे, यह घटना उस समय की है जब महाभारत समाप्त हो जाने के बाद श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र से अर्जुन को साथ लेकर वापस द्वारिका इसी रास्ते से लौटे थे। जैसलमेर के पास त्रिकूट पर्वत पर उन्हें ऋषि तपस्या मे ंलीन मिले थे। श्रीकृष्ण के 'तथास्तु' कहने के बाद हम उस वरदान भरोसे नहीं रहे, बल्कि अपनी इस 'कमी' को अनेक तरह से आजमाकर पानी के भंडार भरने का संघर्ष जारी रखा। वर्षा का जल तक सहेजकर रखने की रीति बनाई।"[257]

'अक्षयवट' उपन्यास में नासिरा जी ने हिन्दू संस्कृति की श्राद्ध पद्धति और उससे सुख–सौभाग्य की प्राप्ति होने के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है– "संगम तट पर नगर व बाहर से आये श्रद्धालु अपने पितरों के श्राद्ध करने में तल्लीन थे। श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराने की भी परम्परा है। इस क्रिया के द्वारा अपने पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है। शास्त्रों में मनुष्य के लिए देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण बताये गये हैं। तीनों में से पितृऋण को श्राद्ध द्वारा उतारना आवश्यक माना गया है इसलिए अपने सुख और सौभाग्य आदि की वृद्धि के लिए जिन माता–पिता ने अपना जीवन निछावर किया है, उसके प्रति सम्मान तो व्यक्त करना ही चाहिए।"[258]

इस प्रकार प्राचीन धार्मिक एवं पौराणिक आख्यानों को अपनी कथावस्तु में पिरोकर नासिरा जी ने गहरा प्रभाव छोड़ा है। इन मिथों के प्रयोग से उनके उपन्यास बहुत ही जीवन्त और सशक्त बन गये हैं।

5. भावानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा

किसी भी भाषा के लिये उसमें भावानुकूलता, पात्रानुकूलता, गुणों की परिपूर्णता, अलंकारों की योजना और प्रवाहमयता का होना आवश्यक है। नासिरा जी की भाषा हृदय के तीव्र भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ है। वह भावों एवं विचारों के अनुसार परिवर्तित होकर पाठक को स्थिति का रसास्वादन कराने में पूर्णतया समर्थ है। गम्भीर स्थलों पर भी भाषा की सशक्तता तथा क्षिप्रता देखते ही बनती है। जैसे– "कमरबन्द बाँधे की तमीज नाहीं, बच्चू बित्ता भर के जबान दिखाए रहे हैं।"[259].....आग खाय और अंगारा हगै की ज़रूरत नहीं है, बेटवा, हमार लोगन पै तू खाक डालो, हिआँ कोई तोहार राह खोटा करै का नाही बैठा है। जाय देव इमाम

ऐका। कहत है न, चढ़ते पानी का कौनव रोक सकत है और न ढलते सूरज का कौनव पकड़ सकत है।[260] रहीमुद्दीन का लहजा शुरू में जितना गर्म था, अन्त में उतना ही हारा हुआ। घर में सन्नाटा छा गया और रहीमुद्दीन बाहर निकल गए। यह कथन है उस हताश और निराश बाप का जिसकी औलाद 'निज़ाम' लाख समझाने पर भी विभाजन के समय हिन्दुस्तान छोड़कर जाना चाहता है।

जब निज़ाम वर्षों बाद हिन्दुस्तान लौटता है तब तक उसके अम्मी–अब्बू रुख़सत हो चुके थे। वह स्वयं भी तो बुजुर्गों के पायदान पर खड़ा था लेकिन जब वापस पाकिस्तान जाने के लिए इंदिरा गाँधी हवाई अडडे, नई दिल्ली पर वह पहुँचता है, तो उसे महसूस होता है कि उसकी अन्तर्रात्मा तो हिन्दुस्तान में ही बसी हैं परिवारजनों से मिलकर माहौल गमग़ीन हो उठा। तब वह बड़े भाई इमाम से जो कहता है, उन शब्दों के माध्यम से नासिरा जी ने भावों की ऊँचाईयों को छू लिया है। वह कहता है– "अब ज़्यादा दिन नहीं जिऊँगा। हो सके, तो जल्दी आना। बेटियों को साथ लाना।"...... 'आप तो मेरी मैय्यत पर भी आने से रहे, इसलिए क्या कहूँ?' निज़ाम का दिल 'हो सके तो' में जो ग़ैरियत का अहसास झलका, उससे कट कर रह गया। काश! सब लोग मिलकर उससे रुकने का इसरार करते, उसे जाने न देते, मगर.............।[261]

'ज़ीरो रोड़' उपन्यास रिटायर्ड क्लर्क रामप्रसाद अपने बेरोजगार बेटे को एक दलाल के अफसर की नौकरी दिलाने के झाँसे में आकर अवैध रूप से 'दुबई' भेज देता है। वहाँ जाकर सिद्धार्थ को पता चलता है कि उसके साथ धोखा हुआ है। वह दिन–रात इधर–उधर की ठोकर खाकर व मेहनत मजदूरी करके किसी तरह एक कम्पनी में सुपनवाइजर बन जाता है पर उसके पिता उसकी स्थिति के बारे में न पूछकर सिर्फ पैसे की चाह रखते हैं। इस पर एक हताश व निराश बेटे (सिद्धार्थ) के उद्‌गार हैं– "मेरी इन परेशानियों से बाबूजी को कुछ लेना देना नहीं है। उनके पास न दृष्टि है न संवेदना कि उनका बेटा इन बदली परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाता रोज मरता है। यह सोचकर कि वह किस ओर बढ़े? किस छत के नीचे खड़ा हो? पूरे विश्व में कहीं ठहरने व चैन से रुकने की जगह नज़र नहीं आती है। बस हालात के पैराशूट से जो जहाँ गिरा वहीं छटपटाता सा पड़ा है।"[262]

'कुइयाँजान' उपन्यास में दोनों बहनों की आपसी कलह से तंग आकर उनकी माँ क्षुब्ध है– "इन बातों के जहरीले तीरों का घाव शकरआरा बहन को तरह–तरह से तंग कर दिल की भड़ास निकाल लेती। यह देखकर मां अक्सर कुढ़ती कि मुझे खुदा ने दो ही लड़कियाँ दीं, दोनों अपने–अपने रंग की। उसका शुक्र है कि उन दोनों में कोई न कोई खूबी है, मगर यह दुश्मनी, यह लड़ाई–झगड़ा यह तो इनके बीच नहीं होना चाहिए।"[263]

'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में नासिरा जी ने दाने–दाने को मोहताज़ इराकी जनता के दर्द को बयां किया है। समीरा जब अपनी बेटियों के लिए कुछ खाने–पीने का सामान लेने बाजार में जाती है तो देखती है कि एक बूढ़ी औरत को रोटी चोरी करने के आरोप में दुकानदार घेर कर खड़े हैं। वह बिना देर किए उनके पास जाती है और रोटी के पैसे देकर उनसे कहती है– "यह मेरे साथ है, मैं माफ़ी चाहती हूँ।"[264] तब वह बूढ़ी औरत "फफककर रो पड़ी फिर धीरे से बोली, मेरे दो नवासे हैं, कल से भूखे हैं, चारा क्या था मेरे पास?"[265] क्योंकि एक भूखे के लिए रोटी हर फलसफ़े से ऊपर होती है।

'पारिजात' उपन्यास तलाश है उस पारिजात की जिसको रोहन की पत्नी अपने साथ लेकर कहीं गुम हो गयी। रोहन के अन्दर का बाप अपनी औलाद के लिए दिन–रात तड़पता है। वह हर पल उसके मिलने की आस लगाये रहता है। इसी आशा में लम्बे–लम्बे ई–मेल और खत लिखता है कि उनको पढ़कर कभी तो उनके कलेजे का टुकड़ा उन तक पहुँचेगा। एक बाप के उद्‌गार–

"तुम मेरी आँखों में खिलते
पारिजात हो।
धीरे–धीरे पंखुड़ी खोलते
मेरे अंश के वंशज
तुम्ही हो मेरे प्यार के साक्षी
मेरी गंध, उसकी सुगंध
मेरा माथा, उसके होंठ,
दादा की नाक, दादी की आँखें
सब का कुछ–कुछ लेकर तुम।
इकलौते प्यार हो
पारिजात मेरे।"[266]

जब हम बुजुर्ग सास–ससुर को अपना नहीं मानकर पराया मानते हैं तो उनके प्रति हमारा भाव, भाषा और व्यवहार सब बदल जाता है। वे बोझ लगने लगते हैं। ऐसा व्यवहार हमें देखने को मिलता है 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में। ज़ाकिर की पत्नी महलक़ा अपने ससुर से कहती है– "अरे, कब से पुकार रही हूँ, बुढऊ सुन क्यों नहीं रहे हैं?"[267] "यह लीजिए मोबाइल। रात को इनका फ़ोन आएगा। मेरी शिकायत न करिएगा, समझे।"[268]

'दूसरी जन्नत' उपन्यास में 'रुख़साना' एक डॉक्टर है जो निःसन्तान दम्पतियों का इलाज करती है। फरहाना जिसने टेस्ट ट्यूब तकनीक से एक लड़के को प्राप्त किया है लेकिन शरीयत

के नियमानुसार वह अवैध है। विरोध के बढ़ते स्तरों को देखते हुए रुख़साना एक विचार बैठक आयोजित करती है। तब लोगों को समझाती हुई वह कहती है– "ख़ाला जान! शाद, नाशाद नहीं अपनी माँ का 'दिलशाद' है, कलेजे की ठंडक है। एक ऐसी औरत के लिए जिसका दिल पहले नाशाद था, बच्चे न होने की वजह से दुखी था, अब तो शाद उसे माँ बनने का सौभाग्य दे बैठा जिसके पैरों के नीचे ख़ुदा ने जन्नत होने का दर्जा दिया है।"[269]

इस प्रकार भाव व पात्र के अनुरूप भाषा का सुंदर समन्वय नासिरा जी के उपन्यासों में देखने को मिलता है।

(ङ) नासिरा शर्मा के उपन्यासों का शैलीगत वैशिष्ट्य

भाषा–शैली का उपन्यास साहित्य में अद्वितीय स्थान है। उपन्यास के सभी तत्त्वों को ठीक से संयोजित करने का कार्य भाषा–शैली के द्वारा ही सम्भव है। भाषा और शैली को सामान्यतः हम पृथक् नहीं कर सकते हैं क्योंकि ये दोनों एक–दूसरे में समाहित रहते हैं। "भाषा को यदि साहित्य का शरीर माने तो शैली को उस शरीर की गर्दन (नाक–नक्श) मानना होगा।"[270] भाषा शैली के जरिए ही उपन्यासकार अपने विचार और भावनाओं को व्यक्त करता है साथ ही जिज्ञासा और कौतूहल बनाये रखता है। प्रेमचन्द जी का मानना है कि– "रचना–शैली सजीव और प्रभावोत्पादक होनी चाहिए।......जनता उन्हीं उपन्यासों को आदर का स्थान देती है, जिनकी विशेषता उनकी गूढ़ता नहीं बल्कि सरलता होती है।"[271]

सामान्य रूप में हम कह सकते हैं कि उपन्यासकार जिस ढंग से अपने विचार और भावनाओं को अभिव्यक्त करता है, उसे शैली कहते हैं। शैली एक ओर जहाँ लेखकीय व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है तो दूसरी तरफ उन पात्रों के चारित्रिक गुणावगुणों एवं स्वभावगत विशेषताओं का संकेत करती है, जिनके वक्तव्यों और विचारों को उपन्यासकार अपने कथ्य का विषय बनाता है। इसलिए कहा गया है कि– "शैली का संबंध सिर्फ रचना से ही नहीं होता बल्कि रचनाकार से भी होता है।"[272]

1. 'शैली का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषाएँ

'शैली' शब्द 'शीलमेव स्वार्थे ष्यञ् ङीपि यलोपः' होकर निष्पन्न होता है जो व्यवहार, काम करने का ढंग, आचरण, क्रम, अभिव्यक्ति या अर्थकरण का एक प्रकार–प्रायेणाचार्याणामियं शैली (यत्स्वाभिप्रायमपि परोपदेशमिव वर्णयन्ति–मनु. 1/4 पर कुल्लू.) इत्यादि अर्थों का सूचक है।[273] हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार 'शैली' श्ब्द अंग्रेजी के 'स्टाइल' (Style) का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है।[274] प्राचीन साहित्यशास्त्र में शैली से मिलते–जुलते अर्थ वाला एक शब्द प्रयुक्त हुआ है– 'रीति'। 'काव्यालंकारसूत्र' के रचनाकार आचार्य वामन ने

रीति को 'विशिष्टपदरचना' कहकर परिभाषित किया है जिसमें 'विशिष्ट' शब्द से तात्पर्य है– गुण युक्त।[275]

वस्तुतः शैली शब्द की व्युत्पत्ति का शील से गहरा सम्बन्ध है। शील का सम्बन्ध स्वभाव से है। काव्य में शैली शब्द कवि की विशेष काव्य रचना अथवा अभिव्यंजना पद्धति के रूप में ग्रहण किया जाता है। कवि के स्वभाव के अनुसार ही उसकी रचना शैली को मान्यता मिलती है। प्रत्येक कवि या लेखक की अपनी रचना शैली होती है। 'शैली' और 'रीति' में प्रारम्भिक अवस्था में बहुत साम्य था परन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्य शास्त्र में 'रीति' के स्थान पर 'शैली शब्द का प्रयोग हुआ है। भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र में 'रीति' और 'शैली' दोनों में कवि या लेखक के व्यक्तित्व को अवश्य मान्यता मिली है, किन्तु भारतीय काव्यशास्त्र में वह शैली का सर्वस्व नहीं बना है, जैसा कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में 'Style is the man' में दृष्टिगोचर होता है। एक भारतीय समीक्षक ने कहा भी है– "जितने कवि हैं, उतनी रीतियाँ हैं, जितने लेखक हैं, उतनी ही शैलियाँ हैं।"[276]

हिन्दी भाषा के प्रख्यात आलोचक डॉ. नगेन्द्र ने 'शैली' और 'रीति' में अन्तर स्वीकार करते हुए दोनों की तुलना प्रस्तुत की है। उनका मानना है कि "रीति और शैली का वस्तुतत्त्व एक ही है। आरम्भ में भारत और यूरोप दोनों के काव्यशास्त्रों में प्रायः वस्तुतत्त्व का ही विवेचन हुआ है। भारतीय रीति में व्यक्तित्व की सर्वथा अस्वीकृति नहीं है, जैसा कि 'डे' आदि ने माना है। फिर भी वर्तमान रूप में शैली में व्यक्तित्व का जितना महत्त्व है, उतना भारतीय रीति में कभी नहीं रहा...... इस प्रकार रीति और शैली के वर्तमान रूप में व्यक्तित्व की मात्रा का अन्तर अवश्य हो गया है।"[277]

पं. सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार– "कुछ लोगों ने रीति को ही शैली मान लिया है, किन्तु रीति तो केवल काव्य–रचना का ढंग है। इसके विपरीत शैली वह साधन है जो वाणी की अभिव्यक्ति में अभिनव आकर्षण शक्ति का संचार करे। आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में पदों की विशेष रचनाओं को रीति माना है, किन्तु गुणों के आधार पर की हुई विशेष पद–रचना की इस रीति को शैली के विशिष्ट और व्यापक रूप से सर्वथा भिन्न मानना चाहिए।"[278]

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने शैली को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

प्लेटो के मतानुसार, "जब विचार को तात्त्विक रूपाकार दे दिया जाता है, तो शैली का उदय होता है।"[279]

अरस्तू के अनुसार, "शैली से वाणी में वैशिष्ट्य (चमत्कार) का समावेश होता है।"[280]

गेटे का मन्तव्य है कि "किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है।"[281]

व्हियले के अनुसार, "शैली लेखक के व्यक्तित्व का घनिष्ठ सम्बन्ध एवं अविभाज्य तत्त्व हैं।"[282]

लुकस के अनुसार, "शैली वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरों से सम्पर्क स्थापक करता है..............साहित्यिक शैली वह साधन है जिससे एक व्यक्ति दूसरे को उद्दीप्त करता है।"[283]

निल्स. ऐरिक एंक्विल्ट ने शैली को छः स्तरों पर परिभाषित किया है– "शैली अभिव्यक्ति का केन्द्र है, शैली चयन है, शैली वैयक्तिक वैशिष्ट्यों का समुच्चय है, शैली प्रतिमान से विपथन है, सामूहिक विशेषताओं को समुदाय शैली कहते हैं। शैली उन भाषा तात्त्विक इकाइयों का अन्तः संबंध है, जिनका वाक्य की अपेक्षा काव्य खण्ड के व्यापक संदर्भ में कथन किया जा सकता है।"[284]

हिन्दी साहित्य के भारतीय आचार्यों एवं विद्वानों ने शैली के सम्बन्ध में विविध प्रकार से अपने विचार रखे हैं। डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का मन्तव्य है कि "यह एक ओर भाषा तथा साहित्य को जोड़ने वाली संकल्पना है, जिसके संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि शैली कलात्मक सौंदर्य की अभिव्यंजक भाषिक संरचना है।"[285]

डॉ. चौऋषि के अनुसार, "शब्दों में प्राण–प्रतिष्ठा करने की अपनी पद्धति शैली है।"[286]

डॉ. कमलापति त्रिपाठी के अनुसार, "साहित्य जगत में आकर्षक, रमणीय तथा प्रभावोत्पादक रीति से जब कोई विषय की अभिव्यक्ति की जाती है, उसी को शैली कहते हैं।"[287]

बाबू गुलाबराय का मानना है कि– "शैली अभिव्यक्ति के उन गुणों को कहते हैं जिन्हें लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप में दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाता है।"[288]

डॉ. भोलानाथ तिवारी का मन्तव्य है कि– "किसी भी कार्य करने के विशिष्ट ढंग का नाम शैली है।"[289]

डॉ. सत्यदेव चौधरी इस सम्बन्ध में कहते हैं कि– "किसी रचनाकार की ऐसी विशिष्ट अभिव्यक्ति शैली रहती है, जिसमें भाषा और वर्ण्य विषय की दृष्टि से प्रचलित मार्ग से उत्तर मार्ग का अवलम्बन किया जाता है।"[290]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि एक साहित्यिक कृति में शैली का आधारभूत महत्त्व है और यह भाषा का ही एक अंग है। इसके कारण ही कोई कृति साहित्य की कोटि में आती है।

2. नासिरा शर्मा के उपन्यासों का शैलीगत विवेचन

आधुनिक उपन्यासों की सफलता बहुत कुछ शैली पर ही निर्भर करती है। इसलिए प्रत्येक रचनाकार अपनी वर्ण्यविषयवस्तु की अभिव्यक्ति हेतु शैली के विविध रूपों का इस्तेमाल करता है। सामान्यतः शैली के वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, व्यंग्यात्मक, आत्मकथात्मक, इतिवृत्तात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, भावाभिव्यंजना, उद्‌बोधन, वार्तालाप एवं संवाद, वक्तव्य, डायरी, पत्रात्मक, नाटकीय, काव्यात्मक, आंचलिक, कथा–प्रतीकात्मक इत्यादि प्रकार माने जाते हैं। नासिरा शर्मा आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की अद्‌भुत शिल्पकार हैं। उन्होंने अपनी संवेगात्मक तीव्रता और कथ्य की सामाजिक व्यापकता के मुताबिक अपने विचार एवं भावों की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। वे किसी शैली विशेष से बंधकर नहीं रही है। इसके उपन्यासों का शैलीगत विवेचन निम्न प्रकार है–

2.1 वर्णनात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली में उपन्यासकार कथावस्तु, पात्र तथा स्थितियों का वर्णन तृतीय पुरुष के रूप में करता है। इसमें लेखक की कल्पना व अनुभूति भी रहती है। नासिरा जी ने 'शाल्मली' उपन्यास में प्रकृति–चित्रण के लिए इस शैली का सहारा लिया है। "जाड़े की ऋतु खिली धूप में खड़े शिरीष के वृक्षों की नंगी शाखाओं में सुनहरी फलियों का बादामी सुनहरा रंग नीले साफ आसमान पर एक विचित्र सौन्दर्य बिखेर रहा था। हवा के साथ फलियों का हिलना और उनके अन्दर बीजों का बजना किसी एक मद्धिम संगीत की तरह सुनाई पड़ रहा था। यहाँ से वहाँ तक फैले सफेद बादामी सुनहरे रंग के शिरीष के वृक्ष वातावरण में एक उजाला फैला रहे थे। हरियाली के बीच जैसे किसी ने पिघला सोना फैला दिया हो।"[291]

'ठीकरे की मंगनी' में लेखिका ने स्कूल से सम्बन्धित वर्णन इस प्रकार किया है– "स्कूल की इमारत पर जब से पुताई हुई थी, वह दूर से चमकने लगी थी। मरम्मत के बाद अच्छी–ख़ासी शक्ल निकल आई थी कमरों की। मैदान में भी अशोक के कई पेड़ लगवा दिये गए थे। सुलताना और किरण के आ जाने से स्कूल में खासी चहल–पहल आ गई थी। पाँच लोगों ने मिलकर दीपावली पर थोड़ा–सा कार्यक्रम भी रख दिया था, जिससे बच्चों और गाँव वालों में एक संबंध–सा बन गया था।"[292]

'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में समीरा के शौहर अलबनाही के आख़िरी रसूमात का दृश्य का वर्णन करती हुई लेखिका कहती हैं– "अंधेरा ख़ामोश घर एकाएक आवाजों से भर गया। क़ारी की आवाज़ के साथ अगरबत्ती का धुँआ कमरे में बादल बन लहराने लगा। पानी के गिरने की छल–छल आवाज़ और दुआ पढ़ने की मद्धिम गुनगुनाहट घर में तैर रही थी और वह हाल के

बन्द दरवाज़े के सामने काली चादर ओढ़े सोगवार बनी बैठी थी। कितना अजीब था कि वह इस वक़्त अलबनाही के गाने की आवाज़ अपने कानों में ज़्यादा ऊँची आवाज़ से गूँजती महसूस कर रही थी, जब वह नहाने में मगन हो गाता था।"[293]

'ज़िंदा मुहावरे' उपन्यास में वर्णनात्मक शैली में बंटवारे के समय हिन्दुस्तान से पाकिस्तान की ओर कूच करते हुए एक झुण्ड का वर्णन करती हुई नासिरा जी लिखती है– "निज़ाम के साथ गाँव छोड़कर पाकिस्तान जाने वालों की बहुत लम्बी चौड़ी कतार नहीं थी, मगर आस–पास देहात, क़स्बे से ज़मा होने वाले लोगों ने अलबत्ता एक क़ाफ़िला–सा रास्ते में बना लिया था। सबके साथ जरूरत का सामान, ज़ेवर और रुपयों की पोटली थी। खाना–पीना, बिस्तर कपड़े और तरह–तरह की चीजों से लदी–फदी पाकिस्तान जाने वालों की यह आखिरी खेप थी।......बीच सफ़र में, जाते हुए क़ाफ़िले पर कुछ हथियार बन्द टूट पड़े और ग़ाफिल मुसाफ़िरों को लूटा, मारा और क़त्ल किया। कुछ ज़वान औरतें और लड़कियाँ गायब हो गईं। शायद उनकी किस्मत का पड़ाव यही था। उनके मर्दों की लाशें खाक–खून में लिथड़ी पड़ी थीं। चील, कव्वे और गिद्धों से आसमान भर उठा था। बचे लोगों की कमर के टांके जैसे टूट गए थे। दिल ग़म से और ज़हन सदमों से चूर हो चुके थे। लुटा क़ाफ़िला पीछे लौट नहीं सकता था, सो फिर चल पड़ा आगे की ओर......।"[294]

'अक्षयवट' उपन्यास में सर्दी के मौसम व इलाहाबाद शहर की जीवन्तता का वर्णन करती हुई नासिरा जी लिखती हैं– "जाड़े के यह धूप से भरे दिन आँगन और छत पर गुजर रहे थे। जब तक धूप का छोटा–सा भी टुकड़ा बाकी बचता उसका पीछा करता पूरा खानदान वहाँ सिमट जाता था। कोहरे में डूबी सुबह को जब धूप की सुनहरी किरणें चीरतीं तो ताजगी भरी नमी नाक में सरसरा उठती थी।.....यह शहर मौसम के अनुसार कैसे अपनी छवि बदल लेता है और हर छपि अपने साथ नयी अनुभूतियों का खजाना लेकर आती है। शायद इसी कारण कोई अपने इस शहर से ऊबता नहीं है।"[295]

'दूसरी जन्नत' उपन्यास की शुरुआत ही वर्णनात्मक शैली से होती है– "डॉ. ज़फ़र अब्बास की कोठी का ड्राइंग रूम मर्द–औरतों के क़हक़हों से गूँज रहा था।........सारे मर्द–औरत अपनी शानदार पोशाकों के साथ एक समा बाँधे हुए थे। औरतें भर–भर कलाइयाँ काँच की रंग–बिरंगी चूड़ियाँ खनका रही थीं।....लड़की की तस्वीर देख उसकी सात पुश्तों की ख़बर ले रही थीं।"[296]

इस प्रकार नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में भी वर्णनात्मक शैली का रोचक प्रयोग किया है।

2.2 पूर्वदीप्ति शैली

अतीत से जुड़ी घटनाओं का वर्णन इस शैली में किया जाता है। "पात्रों के मानसिक संघर्ष को दिखलाने के लिए कहानीकार (उपन्यासकार) उन्हें अतीत की स्मृतियों से जोड़ता है और वर्तमान परिवेश के प्रति व्यक्त प्रतिक्रियाओं का आकलन करता है।"[297] वस्तुतः विगत की ओर उन्मुख होना ही पूर्वदीप्ति शैली का लक्षण है। 'पारिजात' उपन्यास में रूही की दोस्त मारिया मेनन उसे रोहन का पत्नी के साथ विवाद और उससे उत्पन्न हालातों के बारे में विस्तार से बताती है– "क़िस्सा मुख़्तसर था। लड़ाई घरेलू थी। बेटा सख़्त बीमार था। रोहन कई दिनों से घर के काम की ज़्यादती की वजह से सुबह के लगभग आता। बीच में फ़ोन कर बेटे की ख़ैरियत पूछता तो ऐलेसन का फ़ोन बंद पाता। नौकरानी साढ़े सात बजे तक चली ही जाती थी। उस रात जब वह परेशान–सा घर पहुँचा तो देखा, किचन में.......अफसोस तो यह कि जब उसकी माँ की डेथ हुई तो मुक़दमा चल रहा था। पासपोर्ट कोर्ट में जमा था। वह तो गैरक़ानूनी तरीक़े से भागने का मन बना चुका था। दोस्तों ने बड़ी मुश्किल से उसको रोका था। मेरे पास तो वह तब पहुँचा जब गहरे अवसाद में डूब चुका था।"[298]

'सात नदियाँ एक समन्दर' उपन्यास में परी अपने पति खालिद को अतीत के बारे में बताती है......... "आज से लगभग आठ–नौ वर्ष पहले की बात है, जब हम बी.ए. में थे। छुट्टी में शिराज गए थे। हम सब ही सहेलियाँ थीं। एक दिन उर्दू बाजार गए, फिर वही से कहवाखाने चले गए।.....इसी बीच जाने कहाँ से एक फालगीरन आ गई। हम लोगों ने तफरीह में आकर उसे बुलाया। तय्यबा की डाँट के बावजूद हम सब बारी–बारी से उसे हाथ दिखाती रही थी। उसने अच्छी–बुरी जाने कितनी बातें बताई थीं। तय्यबा उलटे उसकी खिंचाई कर रही थीं।"[299] यहाँ परी ने तय्यबा के बारे में अपने अतीत में घटित एक प्रसंग का वर्णन किया है।

'अक्षयवट' उपन्यास में प्रोफेसर मिश्रा जहीर के निलम्बन के संदर्भ में अतीत की एक घटना का सहारा लेते हुए कहते हैं– "हमारे जमाने में गुप्ता प्राक्टर थे। उन्होंने चार लड़कों को अनुशासनहीनता और कुछ अन्य बातों के चलते रेस्टीकेट किया था। वे चारों उग्र हो उठे और एक दिन उनके बँगले में घुस गये। दो ने उनके पैर पकड़े, दो ने हाथ और झूला झुलाने हुए उनको सीनेट हाल लाये। इस अपमान को वह सह नहीं पाये और कुछ दिन बाद चल बसे....।"[300]

2.3 चित्रात्मक शैली

चित्रात्मक शैली द्वारा लेखक विराट दृश्यों का चित्रण शब्दों के माध्यम से संक्षेप में प्रस्तुत करता है। "इस शैली में छोटे–छोटे दृश्यों के माध्यम से वातावरण और पृष्ठभूमि के साथ–साथ पात्रों की रूपाकृति एवं कार्यों का सजीव चित्र खींचा जाता है।"[301] इस शैली में प्रस्तुत किए जाने

वाले दृश्यों, प्रसंगों के साथ पाठकों का गहरा तादात्म्य होता है। नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग बड़ी ही कुशलता एवं सहजता के साथ किया है। 'सात नदियाँ एक समन्दर' में चित्रात्मक शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है– 'सूखा पतला चेहरा। गालों की हड्डियाँ उभरी हुई थी। होंठों पर पपड़ी जमा थी। फर्श पर घुटने पेट की ओर मोड़े–दोनों हाथों का तकिया बनाए दाहिनी करवट सो रहा था।'[302] यहाँ जेल में रह रहे हुसैन के चित्रण के द्वारा उसकी क्रशकाय होती देह का दर्शन लेखिका ने करवाया है।

'ज़ीरो रोड़' उपन्यास में भी सिद्धार्थ की दृष्टि से दुबई में दुनिया भर से आये मजदूरों की दयनीय रहन–सहन की दशा का चित्र खींचते हुए लेखिका कहती है– "वहाँ सौ कनटेनर लाइन से लगे थे जिनमें दो हज़ार मज़दूर जगह–जगह से आकर रह रहे थे। कनटेनर जो चालीस फीट लंबे 7.6 फीट चौड़े और आठ फीट ऊँचे थे, जिसके दो हिस्से करके हर हिस्से में आठ लोगों को रहना पड़ता था। उसी में ए.सी. लगे थे। आग बुझाने का सिलेण्डर मौजूद था। बाथरूम और किचन भी। सड़ी गर्मी, ढेरों लोग, अजीब हालात थी।"[303]

'अजनबी जज़ीरा' में अंग्रेजी फौजी मार्क के बैरकनुमा कमरे का चित्र खींचती हुई नासिरा जी लिखती हैं– "वह कमरा किसी स्कॉलर का लग रहा था। चारों तरफ़ क़िताबों की अलमारियाँ। बीच की दीवार पर बड़ी–सी एक तस्वीर बुजुर्ग अंग्रेज़ औरत की लगी थी। सिर पर हैट गले में मोतियों की माला और हँसता हुआ चेहरा। उसके चारों तरफ़ कई दूसरी तस्वीरें।"[304]

2.4 व्यंग्यात्मक शैली

जब सामान्य भाषा या अभिधापरक अभिव्यक्ति से काम नहीं चलता या कहें ज्यादा असरकारक नजर नहीं आती तब रचनाकार अपनी भावाभिव्यंजना हेतु व्यंग्य का सहारा लेता है नासिरा जी ने सामाजिक यथार्थ की ओर ध्यान खींचने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा का सहारा लिया है। 'कुइयाँजान' उपन्यास की निम्न अभिव्यक्तियों को हम देखते हैं, तो पाते हैं कि ये व्यंग्य के प्रयोग के सटीक प्रमाण हैं– "खालिस दूध नहीं मिलता–यह शिकायत तो पुरानी हो चुकी है, नई शिकायत है–खालिस पानी नहीं मिलता है देखने को, पीना तो दूर........खालिस शहद की तरह खालिस पानी भी लोग बोतल में बंद रखेंगे, ताकि उसकी एक–दो बूंद सूखे के समय चाहकर अमृत का स्वाद ले सकें। ऐसा दौर जल्द ही आने वाला है जब हीरे के मोल पानी मिलेगा और पूंजीपति उसको अपनी तिजोरी में बंद कर रखेंगे।"[305] जल की समस्या इस सदी की और सम्पूर्ण विश्व की सबसे बड़ी समस्या है। इसी ज्वलंत बिन्दु को केन्द्र में रखकर लिखे गए 'कुइयाँजान' उपन्यास में लेखिका ने व्यंग्यात्मक शैली में यह संवाद प्रस्तुत कर वाकई इस संदेश को और पुख्ता बनाया है कि जल है तो कल है।

'अक्षयवट' उपन्यास में भी व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग यहाँ उल्लेखनीय है– "सवालों की ट्रेन काफी बरसों से इलाहाबाद स्टेशन पर रुकी हुई है। उसको जवाब का इंतजार है। जवाब का मतलब था उसके टूटे–फूटे अंजर–पंजर की मरम्मत।.....वह ट्रेन आज भी इस इन्तजार में स्टेशन पर खड़ी उन मुसाफिरों का इन्तजार कर रही है जो अंग्रेजों के कभी न डूबने वाले साम्राज्य से लोहा लेने की तरह इस नई व्यवस्था को उखाड़ने का संकल्प ले, जो इलाहाबाद से दिल्ली तक भ्रष्टाचार की बजबजाहट से भर उठा है मगर.....दूर–दूर तक कोई मुसाफिर स्टेशन पर लुकाठी लिए खड़ा नजर नहीं आ रहा है। बस इंतजार है।"[306]

2.5 विश्लेषणात्मक शैली

जब लेखक अपनी बात को तर्कपूर्ण ढंग से पाठकों के समक्ष रखता है, तब उसे विश्लेषणात्मक शैली कहते हैं। 'सात नदियां एक समन्दर' उपन्यास में नासिरा जी इस शैली के माध्यम से अपनी बात रखती हुई कहती हैं– "उर्दू हिन्दुस्तान की नहीं तो किसी की बेटी है? हरामी औलाद को यूं बरसों गोदियों में खिलाकर पाल–पोसकर कौन बड़ा करता है– इस मुल्क़ में फारसी सात सौ साल राज कर गयी...., खैर, उसे मारो गोली। आज की बात करता हूँ..... अंग्रेजी–गैर की औलाद को कैसा गोद में अपना बच्चा बनाये बिठाये हुए हैं, फिर.....? यह चक्कर कुछ और है।"[307]

'शब्द पखेरू' उपन्यास में शैलजा को साइबर क्राइम में फँसी देखकर शैलजा की सहेली सादिया के चचा नईम उसे तर्कपूर्ण ढंग से समझाते हुए वस्तुस्थिति की जानकारी देते हैं कि तुम साइबर अपराधियों के जाल में फँस चुकी हो। अभी समय है सँभल जाओ। जैसे– "होश में आओ शैलजा! तुम्हें नज़र नहीं आ रहा है कि कोई आदमी शादी करने जा रहा हो वह न लड़की से मिलने की चाहत रखता हो न उसे 'हैपी बर्थडे' कहने के लिए फ़ोन करता हो........तो आख़िर यह है कौन बन्दा? कहीं तुम्हें वहाँ भेजकर यह डॉलर्स भरा बैग तुम्हारे ज़रिए कहीं और स्मगल्ड तो नहीं कराने वाला है? तुम जेल की सलाखों के पीछे एक अपराधी बन सड़ोगी और उसका मनी ट्रेफिकिंग हो जायेगा या फिर वहा झाँसा दे तुम्हें वहाँ बुला रहा हो ताकि तुम उसकी मर्जी की गुलाम बन कभी घर लौटो ही नहीं। जाने कितना कुछ घट रहा है चारों तरफ़।...ज़मीन–जायदाद को लेकर अपने ख़ून का नहीं छोड़ते बाप बेटा का और बेटा बाप का गला काटने को तैयार हो जाता है यह तो जाने किस जगह का आदमी है उसका किस हद तक ख़ून सफ़ेद है।"[308]

'ठीकरे की मंगनी' में 'राजनीति व औरतें' विषय पर तर्कपूर्ण व विश्लेषणात्मक ढंग से अपनी बात रखती हुई महरुख सोचती हैं– "सही और ग़लत की कसौटी 'औरत' होती है, मज़हब़ और रीति–रिवाजों की जिम्मेदार भी औरत होती है, राजनीतिक बदलाव को दर्शाने वाली भी औरत होती है। परिवार और कुल की मर्यादा औरत होती है। कुल मिलाकर इस दुनिया को ज़िंदा

रखने वाली शै भी औरत होती है, फिर औरत को इतनी हिकारत की नज़र से क्यों देखा जाता है? क्या सिर्फ़ इसलिए कि एक गुलाम, एक बेजुबान कनीज़ की जो आदत सदियों से पड़ गई है, उसे कोई छोड़ना नहीं चाहता है। वरना संबंधों की तानाशाही किस पर चलेगी और तानाशाही का अपना एक मजा होता है। क्या स्वयं में यह दृष्टिकोण एक प्रकार की राजनीति नहीं है? फिर उससे औरत दूर क्यों रहे? उस राजनीति में उसका बराबर से हिस्सा होना चाहिए। उसकी मांग ज़रूरत और पुकार को तभी दूसरा पक्ष समक्ष पायेगा।"[309]

2.6 स्मृतिपरक अथवा फ्लैश बैक शैली

पात्र की स्मृति में कुछ घटनाओं को दिखाकर उसकी याद ताजा करने के लिए सिनेमा की भाँति साहित्य में भी स्मृतिपरक या फ्लैश बैक शैली अपनायी जाती है। इसमें पात्र वर्तमान में जीते हुए भी अतीत में चला जाता है और दोनों स्थितियों की तुलना करता है। लेखिका ने अपने उपन्यासों में इस शैली का सुंदर प्रयोग किया है। खालिद को जब पता चलता है कि ईरान में उसका घर लुट गया। तब वह बरसों पूर्व की यादों में खो जाता है। जैसे– "उसकी आँखों के सामने घर का नक्शा उभर रहा था। फूलों और पेड़ों से भरे लॉन से गुजरकर तीन सीढ़ियां चढ़कर वह बड़े हॉल का दरवाजा, जहाँ बड़े भारी गुलदान रखे हुए थे, जिन पर मीनाकारी का काम था। उसके बाद छत से लटकता बड़ा–सा झाड़–फानूस था। उसी के नीचे भारी कीमती कालीन और चारों तरफ हसीन चमड़े की कुरसियाँ और बीच मेज पर रखा घर के बगीचे के फूलों से भरा गुलदान।"[310]

इसी तरह जब सूसन और उसके पति अब्बास हवाई अड्डे की तरफ टैक्सी से जा रहे थे तब तय्यबा के मन में अपने बिताए हुए जीवन के चित्र आन खड़े होते हैं– "सूसन का अपना बचपन, जवानी, फिर इन्कलाब का समय, उसकी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ......शहयाद के सामने कभी–शाही जश्न मनाए जाते थे। हजारों की संख्या में लोग इस इमारत को देखने आते थे।.... जुलूस, भाषण, गोली इन सारी आवाजों से ईरान भरता गया और........।"[311]

'पारिजात' उपन्यास में प्रहलाद दत्त जब सफेद कोठी पर रूही के साथ कुछ दिन ठहरते हैं। तब वह ज़ुल्फिकार अली के किताबख़ाने की किताओं में डूबे रहते थे। आराम कुर्सी पर टेक लगाये। तब वह पिछले दिनों को याद करते हैं– "प्रभा की गहरी आँखें भारी पलकों के पीछे छुपी थीं। पपोटे सूजे थे। चेहरे पर आँसुओं के बेशुमार धब्बे थे। प्रहलाद का मन झरबेरी में अटककर लहूलुहान हो रहा था। इतना रोते मैंने प्रभा को पहले कभी नहीं देखा...कहती है मेरी कोख अकारत गई। दूसरी औरत ने मेरी अटठाइस साल की मेहनत पर पानी फेर दिया। उसकी दलीलों, इल्ज़ामों के आगे मैं शून्य हो गई।..."[312]

'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में अपनी बेटी महलक़ा के मकान की मरम्मत करवाने के लिए जब अहमद मियाँ किसी राजमिस्त्री की तलाश करते हैं तो उन्हें ख़याल आया भोलानाथ। "उसका काला, माता के दाग से भरा चेहरा याद आया। आँखें बड़ी–बड़ी और जमे हुए सफ़ेद दाँत। हँसता रहता था। शाम होते ही गर्म भुंजा काग़ज़ की पुड़िया में दबाए लाकर मेज़ पर रख देता, ''खाइए सर।"

''इसकी लत लगती जा रही है भोलानाथ।'' अमजद फंकी पर फंकी मारते मगन होकर चबैना चबाते।

''अब सुनिए.....हमारी तरफ का बिरहा.....'' इतना कह भोलानाथ शुरु हो जाता।"[313]

2.7 संवादात्मक शैली

कहानी और उपन्यास में इस शैली का महत्त्व इसीलिए है क्योंकि यह कथानक को गति प्रदान करती है। नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में कथानक को गति प्रदान करने के लिए कई स्थानों पर लम्बे–लम्बे संवाद गुम्फ़ित किये हैं। 'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में 'समीरा और मुस्तफ़ा' के बीच हुए संवाद के कुछ उदाहरण स्वरूप यहाँ प्रस्तुत हैं–

'मीठे ठंडे तरबूज़ लोगी बीबी!' एकाएक सामने से गुज़रती गधा–गाड़ी के गाड़ीवान ने कहा और लगाम खींची।

"क्या भाव है?"

"बे–भाव है बीबी।"

"अभी भी नहीं पहचानी आप मुझे मैम?"

"मुस्तफ़ा?"

"शागिर्द अपने उस्ताद को कभी नहीं भूलता....दूर से आपका चेहरा मेरे ज़हन में ऐसा कौंधा कि पहचानते देर न लगी और सबूत के तौर पर मैम आपका यह तिल। वह मासूमियत भरे लहजे में बोला।"[314]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में गाँव से किसान रैली में भाग लेने कुछ लड़के दिल्ली जाते हैं। जब वे लौटकर आते हैं तो गोपू और सन्तू की महरुख़ से बातचीत होती है। जैसे–

"कैसी रही रैली?" महरुख़ ने पूछा

"ले तो गए चिरौरी करके, मगर औके बाद हमार पहचान खत्म हो गई अपने नेता से–लौटने का न कोई इन्तजाम रहा न खाये–पिये का"–गोपी कुढ़ा–सा बोला।

"अच्छा! दिल्ली घूमे?" महरुख़ ने दूसरा सवाल किया।

"ईश्वर की माया, कहीं धूप कहीं छाया......" सन्तू छिन्नता से बोला।

"अपनी बात कह सके?" महरुख ने पूछा।

"उसके लिए तो हम सब लड़ गए—टरेन के सामने लेट गए बहिनी—या हम सब को बिठाये ले चलो या हमरे ऊपर से चलाय के हमका कुचल देव"—गोपी कहकर हँसा।[315]

'शाल्मली' उपन्यास में भी लम्बे—लम्बे संवादों के माध्यम से लेखिका ने अनेक विचारात्मक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। शाल्मली और नरेश के मध्य होने वाले संवाद के कुछ अंश—

"शालू!"

"क्या?"

"विदेश जाना चाहिए?"

"अवश्य, पर क्यों?"

"कमाने।"

"मैं समझी घूमने।"

"घूमना तो कमाने के साथ हो जाएगा।"

"ठीक है।"

"ठीक क्या? एक एजेन्ट से बात हुई है।"

"कहाँ भेज रहा है?"

"तुम मजाक समझ रही हो?"

"मैं तो खुश हो रही हूँ।"

"कुवैत या दुबई।"

"क्या काम मिलेगा वहाँ?"

"अभी अपने लायक तो कोई काम है नहीं।"

"फिर?"

"तुम्हारी राय जानना चाह रहा था।"

"तुम्हारा दिमाग इन सब बातों में क्यों भटकता है, नरेश?"

"खूब पैसा कमाना चाहता हूँ।"

"क्या करोगे इतना पैसा?"

"सुखपूर्वक रहूँगा, जो मन में आएगा वह करुँगा।"

"तुम्हारा मन वास्तव में भटका कहाँ है?"[316]

2.8 सूचनात्मक शैली

जब लेखक अपनी रचना के मध्य किसी घटना विशेष की तथ्यात्मक सूचना देकर अकथित कथानक को स्पष्ट करता है, तो वह सूचनात्मक शैली कहलाती है। अपने 'सात नदियाँ : एक समन्दर' उपन्यास में ईरानी क्रांति में मरने वालों की सूचनाएँ उनकी कब्रों पर से दी हैं। इन सूचनाओं के माध्यम से पता चलता है कि क्रांतिकारियों के नाम पर बिना किसी उम्र का लिहाज किये निरपराध लोगों को मारा गया। कब्रों पर लगे पट्टे देखिए–

"कहकशाँ, उम्र 16 वर्ष, शहादत 1982

मुस्तफा, उम्र 18 वर्ष, शहादत 1982

गुलमोहम्मद, उम्र 19 वर्ष, शहादत 1982

नुसरत, उम्र 14 वर्ष, शहादत 1980

फरजाना, उम्र 13 वर्ष, शहादत 1981

शाहीना, उम्र 16 वर्ष, शहादत 1981

फात्मा, उम्र 20 वर्ष, शहादत 1980"[317]

2.9 मनोविश्लेषणात्मक शैली

अचेतन को पकड़ने का प्रयास इस शैली द्वारा होता है। कई बार यह शैली दुरूह हो जाती है तो कभी विश्रृंखल या असम्बद्ध। जैसे– 'जिंदा मुहावरे' उपन्यास में जब निज़ाम बँटवारे के लम्बे समय बाद हिन्दुस्तान आता है तब अपने भतीजे गयासुद्दीन उर्फ गोलू को बड़ा अफ़सर बना हुआ और उसकी शानो–शौक़त देखकर वह मन ही मन सोचता है– "निज़ाम का दिमाग तेजी से एक बात में उलझा हुआ था। आज तक हिन्दू मुसलमान फ़साद की खबरें तो पाकिस्तान में पहुँचती रही थी, मगर यह इत्तला वहाँ नहीं पहुँची थी कि एक मुसलमान अफसर के नीचे हजारों मातहत हिन्दू भी हो सकते हैं और.....दंगे–फ़साद में मारे जाने के बाद भी इस मुल्क में उनकी खुशहाली पिछले चालीस वर्षों में पनप उठी हैं।"[318]

'शाल्मली' उपन्यास में भी शाल्मली पड़ोस में रहने वाली 'श्रीमती वर्मा' के बारे में अपनी मकान मालकिन से जानकारी लेती है। "सब कुछ सुन कर शाल्मली को लोगों का जीवन अधिक जटिल नजर आया। कौन दोषी है और कौन निर्दोष! जीवर भर पति को छूने की लालसा, बुढ़ापे में उनके कपड़े का स्पर्श करके अपने ज़ख्मों पर मरहम रख कर संतोष करने वाली औरत कौन है? और उत्साहित दिनों का कोई भी साथी वर्मा जी के पास उनको सहारा देने के लिए इस बीमारी में नहीं ठहरा, तो वह कौन थी? और अब थके दिनों में केवल एक बूढ़ी औरत जन्म–जन्म की साथी अग्नि को साक्षी मानकर खाई सौगन्ध को निभा रही है और वर्मा जी किस चीज की

तलाश में उस सौगन्ध को भूल बैठे थे? क्या दिमागी ताल–मेल सम्बन्धों की कसौटी होता है या कुछ और? और क्या? शाल्मली उलझी।"[319]

'कुइयाँजान' उपन्यास में 'बदलू' चुपके–चुपके गाय के लिए रोटी देता है। एक दिन जेब में रोटी रखते हुए बुआ देख लेती है और उससे रोटी वापस निकलवा लेती है। तब वह मन की मन बहुत व्यथित होता है। इसका चित्रण करती हुई लेखिका कहती हैं– "उदास बदलू चुपचाप बरतन धोने लगा, फिर जमीन साफ कर वह अपने बिछावन पर जाकर लेट गया। बार–बार उसे ग्लानि हो रही थी कि उसको गाय को रोटी देनी ही थी तो बुआ अम्मा को बता देता। ठीक है, मैं अपने हिस्से की रोटी देता था तो भी........तो भी........मेरी कोई गलती नहीं है। मैं भूखा रहकर अपना हिस्सा देता था। फिर बुआ अम्मा क्यों गुस्सा हुई? अच्छे–बुरे, गलत–सही के सवालों में उलझा–उलझा बदलू सो गया।"[320]

2.10 पत्रात्मक शैली

पत्र द्वारा एक पात्र दूसरे पात्र तक अपने दिल की बात पहुँचाना चाहता है। उत्तर मिले या न मिले पर वक्ता तो अपनी बात पत्र द्वारा कह ही देता है। पत्रात्मक शैली उपन्यास की कथावस्तु को भावुक बनाती है। "पत्रों के माध्यम से औपन्यासिक पात्रों को भावाभिव्यक्ति में यह सुविधा रहती है कि वे उन बातों को भी सहज रूप से प्रकट कर देते हैं, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में कहने में उन्हें संकोच होता है।"[321] पात्र के हृदय में होने वाली हलचल तथा पात्रों के मन की गूढ़तम बातों को सुगमता से व्यक्त करने में यह शैली विशेष रूप से उपयोगी होती है। नासिरा शर्मा ने भी अपने उपन्यासों में इसका प्रयोग किया है। 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में अमजद मियाँ अपने बड़े भाई के नाम पत्र लिखते हैं– "सिवान, 2014, भाईजान, आदाब। आपका नवाजिशनामा मिला। पढ़कर दिल पर अजीब सी कैफ़ियत तारी हुई। मैंने महजबीं से वह ख़त छुपाया था मगर जाने कैसे ख़त उसके हाथ लग गया और उसने पढ़ा। इस ख़त के बाबत कल रात उससे बात हुई। वह आपकी सुनाई सज़ा को न सिर्फ़ कुबूल करती है बल्कि अपने को गुनहगार भी मानती है......अम्मी, अब्बा, भाभी को हम सबकी तरफ से दस्तवस्ता सलाम और बच्चों को दुआ। ख़ुदा हमें जल्द मिलवाए। माज़रात के साथ, आपका छोटा भाई अमजद।"[322]

'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में भी निज़ाम की बीवी सबीहा हिन्दुस्तान पत्र लिखती है– "रिश्ते में हम छोटे हैं, इसलिए आपकी क़दमबोसी के लिए पहले हाजिर होंगे, मगर इसका यह हरग़िज मतलब नहीं है कि आप लोग कराची न आएँ। बच्चे चचा–चची को देखने के लिए तरस रहे हैं। लड़कियाँ अपने घर की हो गयीं हैं, मगर आपका भतीजा अख़्तर हमारे साथ आ रहा है। गोलू तो अब बाल–बच्चों वाला हो गया। यही क्या कम है कि हमें सालों बाद ही सही, आप लोगों के दीदार का मौक़ा नसीब हो रहा है....।"[323]

'सात नदियाँ : एक समन्दर' में परी अपनी सखी महनाज को पत्र लिखती है– "महनाज़ जान! छुट्टियों में हम लोग नहीं निकल पाएँगे।....अच्छा है! फिर खत डालूँगी। जवाब जल्द देना। सुलेमान को सलाम बच्चों को प्यार। तुम्हारी–परी।"[324]

ई–मेल व मैसेज 'पत्र' का ही आधुनिक रूप हैं। अतः 'ई–मेल व मैसेज' को भी पत्रात्मक शैली में ही समाहित करना समुचित प्रतीत होता है। अतः नासिरा जी के नवीन उपन्यासों जैसे पारिजात, शब्द पखेरू, दूसरी जन्नत आदि में पत्र लेखन के साथ–साथ 'ईमेल' भेजकर भी कथानक को गति प्रदान की है तथा पात्रों के भावों को अभिव्यक्त किया है। 'पारिजात' उपन्यास में रात के आख़िरी पहर में रोहन अपने गुम हुए बेटे 'पारिजात' के नाम एक लंबा ई–मेल लिखता है। यह जानते हुए भी कि वह अभी पढ़ नहीं सकता है– प्यारे बेटे! तुम मेर अंश हो! कहाँ हो मुझे पता नहीं, मगर मेरी दुआएँ हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगी। मैं तुम्हें पालता, बहुत कुछ बताने की कोशिश करता और अपनी ज़बान में बोलना सिखाता, तुम्हारे तुतलाने पार हँसता। वह सब नहीं हो सका। पता नहीं यह मेरी क़िस्मत थी या तुम्हारा भाग्य या फिर हम दोनों का दुर्भाग्य। मैं तुम्हारा शुक्रगुज़ार हूँ कि तुम्हारी वजह से.......तुम्हें ढेर सारा प्यार और दुआएँ! आरजू के नाम पर क्या कह सकता हूँ, बस इतनी–सी ख़्वाहिश है कि तुम इनसान कि शक्ल में आदमी बने रहना।.... तुम्हारा डैडी रोहन दत्त।"[325]

'दूसरी जन्नत' उपन्यास में लेबनान से फ़रहाना डॉ. रुख़साना को अपनी स्थिति व हाल–चाल बताने के लिए ई–मेल भेजती है– "भाभी, मुझे आप पहचान नहीं पाई होंगी। सच तो यह है कि मैं ख़ुद अपने को भूल चुकी हूँ। डेढ़ साल की लंबी यातना के बाद मैं अपने फफोले पड़े पैरों को सहला सकती हूँ। ख़ुशी की बात यह है कि शाद को उसका असली बाप मिल चुका है......अब मैं अपना अतीत भूल जाना चाहती हूँ और दोज़ख़ की आग में जलने की जगह मैं इस ज़िंदगी को जन्नत बनाना चाहती हूँ। मैंने गुलज़ार को भी कोई इत्तला नहीं दी है। मैं नहीं चाहती मेरी नई ज़िंदगी के बारे में कोई जाने और फिर मुझे लेकर एक ग़ैरज़रूरी बहस की शुरूआत हो मगर मुझे आपको यह सारी इत्तला देनी ज़रूरी थी।"[326]

'शब्द पखेरू' उपन्यास में शैलजा और क्रिस एलेन नाम के व्यक्ति के मध्य फेसबुक पर मैसेजेज के द्वार बात होती रहती है। जैसे– "माई लार्ड, आई सरेण्डर माई सेल्फ़ इन फ्रण्ट ऑफ योर लव! मैं अब तुम्हारे बिना नहीं रह सकती हूँ। तुम्हारी भावना से अलग मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। मैं उस अनुभव की तड़प से गुज़र चुकी हूँ जब चन्द घण्टों की जुदाई में सहन नहीं कर पायी थी। मैं तुम्हारी पत्नी बनने को तैयार हूँ। तुम्हारे परिवार का मैं पूरा ध्यान रखूँगी, यह मैं वायदा करती हूँ।"[327]

2.11 डायरी व पुस्तक लेखन शैली

डायरी लेखन व्यक्ति के द्वारा लिखा गया व्यक्तिगत अनुभवों, सोच और भावनाओं का लिखित रूप में अंकित करके बनाया गया एक संग्रह है। डायरी गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है इसमें लेखक आत्म साक्षात्कार करता है। डायरी एक तरल विधा है, जिस बर्तन में डालो उसी का आकार वह ले लेती है। उपन्यास में डालें तो वह उपन्यास का आकार ले लेती है और यदि किसी अन्य विधा में डाले तो वह उसका आकार ले लेती है। नासिरा शर्मा ने अपने 'पारिजात' उपन्यास में डायरी शैली व पुस्तक लेखन शैली का भरपूर प्रयोग किया है।

'पारिजात' उपन्यास का नायक रोहन 'डायरी' लिखने का शौकीन है। रोहन और उसकी पत्नी के मध्य विवाद की जानकारी तथा रोहन का अपने बेटे 'पारिजात' के प्रति असीम प्यार और उसको पाने की तड़पन की जानकारी रूही को उसकी डायरी से ही मिलती है, जो गलती से उसके घर छूट गयी थी और रूही की सखी मारिया के हाथ लगी। रूही फोन कर रोहन को उसकी डायरी में लिखी कविता पढ़कर सुनाती है–

> **"जब–जब**
> **गंध–मंद पवन–सी**
> **बहती मेरे मन में**
> **याद तुम्हारी बहुत सताती।**
> **हँसते होंठ, दिखते जिनके बीच**
> **चावल जैसे दो दाँत सफ़ेद**
> **निकलने को बेचैन।**
> **मेरे सीने पर तुम सोते दोनों मुटठी बाँध**
> **खुली हथेली थपकी देती**
> **दो धड़कन पर एक साथ**
> **गंध तुम्हारी**
> **श्वास ढूँढे**
> **सात समंदर पार।"**[328]

उपन्यास में रूही की माँ फिरदौस जहाँ 'माँ का ख़त बेटी के नाम' शीर्षक से पुस्तक लिखती है। पुस्तक के बारे में वह कहती है कि– "मुझे यक़ीन है कि मेरी यादों में बसे लखनऊ की बातें ख़त की शक्ल में पढ़कर लोगों को लुत्फ़ आएगा।"[329] ख़त के सिलसिले में वह अनेक खत लिखती है जिनमें वह लखनऊ के सामाजिक जीवन, गंगा–जमुनी संस्कृति, सामाजिक सद्भाव, तीज–त्यौहार, आर्थिक व सामाजिक ढाँचे, लघु व कुटीर उद्योग, खान–पान, आभूषण,

पहनावे, तवायफों का जीवन इत्यादि के बारे में बहुत ही बारीकी से समझाती है। एक ख़त के कुछ अंश– "रूही! आज में तुम्हें ऐसी औरतों के बारे में बताऊँगी, जो अपने ज़माने की अहम और जानदार शख़्सियतें थीं। तवायफ़ों के रक़्स तुमने फ़िल्मों में देखे होंगे, यहाँ मैं उनकी सामाजिक ज़रूरत और कल्चरल ताने–बाने का ज़िक्र करना चाहती हूँ। डेरेदार तवायफ़ों के लिए दो बातें मशहूर थीं।......।"[330]

2.12 वक्तव्य एवं उद्‌बोधन शैली

नासिरा जी ने 'शाल्मली', कुईयाँजान और 'दूसरी जन्नत' इन उपन्यासों में वक्तव्य व उद्‌बोधन शैली के माध्यम से अपने पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ा है। उन्होंने इस शैली के माध्यम से न केवल उपन्यास के उद्देश्य व मूलभूत समस्या की ओर पाठकों का ध्यान खींचा है अपितु कथानक में रोचकता पैदा कर उसको गति भी प्रदान की है।

'शाल्मली' उपन्यास में शाल्मली जिस पर्यावरण विभाग की डायरेक्टर है, के तत्त्वावधान में 'वन सम्पदा और सामाजिक विकास' विषय पर एक सेमिनार होती है। जिसमें अनुभवी विशेषज्ञों व अध्यापकों द्वारा सरकारी नीति और योजनाओं पर चुटीला प्रहार और कड़ी आलोचना होती है। इसी सेमिनार में एक उद्‌बोधन के माध्यम से लेखिका अपने उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता भी सिद्ध करती है। बूढ़े रिटायर विशेषज्ञ वर्मा साहब अपने संबोधन में कहते हैं– "औद्‌भिदी के आधुनिक विद्वान् इस सेमल को 'साल्मालिआ मालावारिका' कहते हैं। संस्कृत में इसक नाम 'शाल्मली' है, जिसका रूपानतर 'साल्मलिआ' है......सेमल की लकड़ी फीकी होती है और इससे आग खूब सुलगती है।"[331]

'कुइयाँजान' उपन्यास का मुख्य पात्र 'डॉक्टर कमाल' देश–विदेश में आयोजित विभिन्न सेमिनारों व कार्यशालाओं में भाग लेता है और उनमें अपने वक्तव्यों के ज़रिये 'जल–समस्या' व उससे जुड़ी अन्य समस्याओं, जो उपन्यास का उद्देश्य भी है कि ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता है। इलाहाबाद के गांधी प्रतिष्ठान द्वारा 'नदियों का जुड़ना : एक महत्त्वाकांक्षी परियोजना' विषय पर आयोजित सेमिनार में अपने विचार रखते हुए डॉ. कमाल के उद्‌बोधन के कुछ अंश– "योजना–परियोजना के बीच हम स्वास्थ्य को नकार देते हैं। यह सोचकर कि जल–जमीन–जानवर से शरीर का क्या सम्बन्ध?..........नदियों का जोड़ना संभव हो सकता है–आज के दौर में कुछ भी असंभव नहीं है, मगर जो नदियां गंदगी का जखीरा बन चुकी हैं, वे आपस में जुड़ने के बाद अपने साथ क्या कुछ नहीं लाएंगी! इन कीटाणुओं की रोकथाम का क्या बंदोबस्त सरकार करने वाली है? अभी ते हम एक नदी को साफ नहीं कर पा रहे हैं, तब अनेक नदियों की देखरेख का क्या होगा?....."[332]

इसी तरह बाँझपन व संतानहीनता की समस्या और उसके समाधान तथा धार्मिक अवरोधों की ओर पाठकों का ध्यान खींचने वाले उपन्यास 'दूसरी जन्नत' में डॉ. रुख़साना 'फ़रहाना–गुलजार नकवी प्रकरण' को लेकर एक विचार–गोष्ठी का आयोजन करती है। जिसमें उपस्थित समाज के लोगों व बुद्धिजीवियों को वह विस्तृत रूप में संबोधित करती है– "बाँझपन हमारे समाज में एक बहुत बड़ी लानत है। इस लानत से करोड़ों की तादाद में दुनिया की औरतें दुःखी हैं। औरत–मर्द का मिलाजुला दुःख है तो भी औरत ज़्यादा सहती है क्योंकि कोख ख़ुदा ने उसे बख़्शी है। किसी मजहब की तरह मेडिकल साइंटिस्टों का भी इस बात पर ज़ोर रहा है कि इंसान अपनी ज़िन्दगी बेहतर से बेहतर तरीक़े से गुजारे.........।"[333]

2.13 कथा शैली

नासिरा जी ने अपने अक्षयवट उपन्यास में कथा शैली का प्रयोग किया है। ज़हीर जब ग्यारह साल का था तब वह अपनी दादी फिरोजजहाँ को अकेले शतरंज खेलता देखता है तो नाराज हो जाता है। वह कहता है– यह गलत आदत है। जुआ खेलना तो बुरा है। उसकी जिज्ञासा को शान्त करने के बहाने उपन्यास के पाठकों को जहीर के पारिवारिक इतिहास से रूबरू करवाने के लिए लेखिका कथा शैली का प्रयोग करती है। जहीर को उसकी दादी फिरोजजहाँ एक कहानी के ताने–बाने में उसके खान–दान के इतिहास को समझाती है। "बहुत सालों पहले हिन्दुस्तान के सन्दल नाम के शहर में जमहूर नाम का एक राजा राज करता था। उसका राज्य बस्त से कश्मीर और कश्मीर से चीन तक फैला हुआ था। राजा के पास बेशुमार खजाना और लश्कर था। हर जगह उसका हुक्म चलता था। चूँकि राजा बहुत अक्लमन्द था इसलिए जहाँ प्रजा उससे खौफ खाती थी, वहीं उसकी इज्जत भी बहुत करती थी। राजा के घर कुछ दिनों बाद एक प्यारा सा बेटा पैदा हुआ जिसका नाम 'गव' रखा गया.......तब से आज तक कितने साल गुजर गये......हजार–दो हजार मगर औरतें नहीं बदलीं। वह आज भी अपनों को खोकर, यूँ ही सच्चाइयाँ तलाश करती भटकती रहती है। इन्सानी कमजोरियों और ख्वाहिशों का भी तो कोई ओर–छोर नहीं। अच्छाई और बुराई के बीच होती जंग भी कहाँ खत्म होने वाली है। बस चेहरे बदलते रहते हैं और वक्त खामोश बिना आवाज सफर करता रहता है।"[334]

इस प्रकार नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यासों में लेखन की विविध शैलियों का प्रयोग करके उपन्यासों को बहुत ही सरस और रूचिकर बनाया है।

(च) उपन्यासों के शीर्षकों की सार्थकता

सामान्यतः लेखों, पुस्तकों आदि के ऊपर दिया जाने वाला नाम 'शीर्षक' कहलाता है। साहित्य में किसी कहानी या उपन्यास का शीर्षक सामान्यतः कथावस्तु की यथातथ्यता में विश्वास

उत्पन्न करने वाला होता है। उसे एक–दूसरे से अलग कर, उसकी विषयवस्तु का परिचय देने हेतु प्रयोग में लाया जाता है। पहले शीर्षक के रूप में प्रायः नायक या नायिका का नाम प्रयुक्त होता था परन्तु साहित्य की विकास यात्रा व साहित्यिक विधाओं के विकास के साथ–साथ 'शीर्षक–लेखन' में भी युग–क्रमानुसार परिवर्तन आता चला गया। आज शीर्षक इतने अधिक सटीक, आकर्षक और उत्सुकता जगाने वाले होते हैं जिसके कारण पाठक का ध्यान उस ओर सहज ही चला जाता है और वह उसे जानना चाहता है। नासिरा शर्मा ने तो अपने उपन्यासों के साथ–साथ कहानियों के भी ऐसे–ऐसे शीर्षक दिए हैं जो पाठकों को सोचने पर विवश कर देते हैं कि इसका क्या अर्थ है? जैसे– 'संगसार', 'पत्थर गली', 'इब्ने मरियम', 'आबे तौबा', 'शामी कागज', 'नमक का घर', 'सात नदियाँ एक : समन्दर', 'बहिश्ते–ज़हरा', 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'अक्षयवट', 'कुइयांजान', 'ज़ीरो रोड', 'ज़िंदा मुहावरे', 'पारिजात', 'अजनबी जज़ीरा', 'काग़ज़ की नाव', 'दूसरी जन्नत', 'शब्द पखेरू' आदि।

'शाल्मली' उपन्यास की नायिका का नाम है और सेमल के पेड़ का नाम भी है। "औद्भिदी के आधुनिक विद्वान् इस सेमल को 'साल्मालिआ मालावारिका' कहते हैं। संस्कृत में इसका नाम 'शाल्मली' है, जिसका रूपान्तर 'साल्मलिआ' है।....सेमल की लकड़ी फीकी होती है और इसे आग खूब सुलगती है। गर्मियों में जब कभी जंगल में आग लग जाती है, तो शाल्मली वनों को तो यह बड़ी तेजी से जलाती है।"[335] नासिरा उपन्यास में लिखती हैं कि "बाहर आग बरस रही है और इनके बीच शाल्मली तेजी से बाहर की तरफ भागती है और बरामदे में जाकर ठिठकती है। सामने सेमल का दरख्त सफेद रुई के गोलों से भरा है। फल गर्मी की अधिकता से फट रहे हैं। पूरा लॉन और आकाश सफेद, मुलायम, गोल, लम्बे रेशों से भरा है। इतने में आंधी का तेज झोंका आता है और उन्हें जाने कहाँ–कहाँ उड़ा कर ले गई। शाल्मली सोचती है कि वह आँधी इनके बीजों को जहाँ–तहाँ बिखेरेगी, सेमल के दरख्तों को रोपेगी। बिना किसी संवाद के, बिना किसी पूर्व निर्णय के, परन्तु मनुष्य से मनुष्य का सम्बन्ध इतना सरल कहाँ और उनके संवाद का अन्त कहाँ!"[336]

यह संवाद जो सदियों से स्त्री–पुरुष के बीच चला आ रहा है, इसी की ओर इशारा करता है शीर्षक 'शाल्मली'। क्योंकि जिस प्रकार सेमल के पेड़ को आग जल्दी से पकड़ती है, उसी तरह शाल्मली भी जीवन की विभीषिका से भीतर ही भीतर सुलग रही होती है।

ठीकरे की मंगनी उपन्यास में ज़ैदी खानदान में कई बच्चियों के मरने के बाद महरुख़ पैदा होती है और जीवित बचती है। इस कारण वह सभी की लाड़ली होती है। "उसके पैदा होते ही कानपुर वाली खाला ने गन्दगी से भरे ठीकरे पर चांदी का चमचमाता रुपया फेंक कर महरुख की माँ से कहा खालिद! आज से यह लड़की मेरी हुई।"[337] टोटके की यह रस्म 'ठीकरे की मंगनी'

में बदल डाली थी। इस तरह बचपन में की गई यह मंगनी परिवार वालों के लिए गले की फाँस बन जाती है। पढ़–लिखकर बड़े होने पर लड़का रफ़त भाई अमेरिका जाकर किसी अंग्रेज लड़की के साथ लिव इन रिलेशनशिप में रहने लगता हैं जो महरुख़ को बहुत आहत करता है और वह रिश्ते को मानने से इंकार कर देती है और आजीवन कुँवारी रहती है। जीवन की नई दिशा देती हुई वह एक गाँव में अध्यापिका की नौकरी करती हुई स्वयं के साथ–साथ गाँव वालों को संवारती है।

महरुख़ के अब्बू कहते हैं– ″इनकी शादी अगर न हुई, तो समझो अब दोनों को रिश्ता मिलना मुश्किल है। जो 'ठीकरे की मंगनी' के टूटने को सुनेगा, सोचेगा कि कहीं दाल में कुछ काला था। महरुख़ को छोड़ो, रफ़त मियां को अब कोई अपनी लड़की नहीं देगा।″[338] इस प्रकार 'ठीकरे की मंगनी' का दंश उपन्यास में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

'**ज़िन्दा मुहावरे**' उपन्यास के शीर्षक नामकरण के पीछे लेखिका को मिली वह प्रेरणा थी, जो उन्हें 'सिब्ते हसन' की किताब 'माज़ी के मज़ार' की चंद पंक्तियों से मिली। वे पंक्तियाँ हैं– ″जब किसी भी ज़बान का कोई बोलने वाला नहीं बचता तो वह ज़बान 'मुर्दा' कहलाती है मगर उस ज़बान के चन्द मुहावरे दूसरे किसी भाषा में जाकर ज़िन्दा हो उठते हैं और समय के गुज़रने के साथ उनका प्रयोग उस ज़बान में इस तरह खप जाता है कि वे उस ज़बान का हिस्सा लगने लगते हैं मगर इस तरह घुलने–मिलने के बावजूद यह 'ज़िन्दा मुहावरे' अपनी 'मुर्दा ज़बान' का पुरातन इतिहास अपने में समाए होते हैं।″[339]

नासिरा जी कहती हैं कि– ″जब पाकिस्तान की पृष्ठभूमि पर कहानी लिखने का सिलसिला शुरू हुआ तो एक ख़्याल बिजली की तरह दिमाग में कौंधा कि महाजिर भी तो उस मोहब्बत की ज़बान के 'ज़िन्दा मुहावरे' हैं जो मुल्क के बँटवारे से पहले पूरे हिन्दुस्तान में बोली जाती थी।″[340]

इसी क्रम में वे आगे लिखती हैं– ″जब यह उपन्यास शुरू हुआ और अचानक 'ज़िन्दा मुहावरे' ज़हन के दरवाज़े खोल कुछ इस तरह रचना के माथे पर टँक गया कि चाहने पर भी कोई दूसरा नाम न मुनासिब और न ही इतना अर्थपूर्ण अपनी इस नई कृति के लिए लगा जिसकी पृष्ठभूमि बँटवारे के बाद का भारत–पाक समाज है।″[341]

शीर्षक की सार्थकता की ओर इशारा करती हुई लेखिका कहती है कि ″मेरी कोशिश इस उपन्यास के जरिए सिर्फ इतनी है कि मैं 'ज़िन्दा मुहावरे' के पाठकों को उस सेतु पर लाकर खड़ा कर सकूँ जो एक इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है।″[342]

'सात नदियां : एक समन्दर' उपन्यास का पहला नाम 'बहिश्ते–ज़हरा' था लेकिन यह प्रकाशित हुआ 'सात नदियां : एक समन्दर के नाम से। बहिश्ते–ज़हरा तेहरान स्थित बहुत बड़ा कब्रिस्तान है। चूँकि ईरान की क्रांति पर लिखे इस उपन्यास के सारे चरित्र आज जिन्दा नहीं है। "वे सब बहिश्त–ए–ज़हरा के दामन में, धरती के आगोश में, अँधेरी कब्रों में सो रहे हैं। मेरे अन्दर उन्हीं की यादों का एक कब्रिस्तान आबाद है, जिसकी सच्ची तस्वीर यह उपन्यास है।"[343] पेरिस से उड़कर खुमैनी जब ईरान आया तब वह सीधे 'बहिश्त–ए–ज़हरा' कब्रिस्तान पहुँचना चाहता था। ईरानी ऐसे भावुक हो उठे कि उन्होंने मीलों तक कंधों पर खुमैनी का कार को उठाकर ले गये। आगे वही बहिश्त–ए–ज़हरा लाखों लोगों की मौत के घाट उतार देने से कब्रों से भर गया। केवल दो–तीन साल में ही उसके नये हिस्से को इतना बड़ा बनाना पड़ा कि आने वालों को चकित होना पड़ता था। सनोबर की कब्र ढूंढते सभी सहेलियों को घंटों लग गए। इसलिए यह नाम सार्थक प्रतीत होता था किन्तु यह उपन्यास 'सात नदियां : एक समन्दर' के नाम से प्रकाशित हुआ क्योंकि उपन्यास में सात सहेलियों की कहानी है। अख़्तर, महनाज़, परी, सूसन, सनोबर, मलीहा तथा तय्यबा इन सातों सहेलियों की अलग–अलग कहानी होने पर भी क्रांति के सागर में ही उनका समा जाना निश्चित हुआ है। प्रत्येक को क्रांति के परिणाम भुगतने पड़ते हैं। प्रत्येक–अलग क्षेत्रों में तरह–तरह के प्रभाव दिखाती हुई अन्त में महासागर में जाकर विलीन हो जाती है।

'अक्षयवट' उपन्यास का शीर्षक "'अक्षयवट' प्रतीक है उस अविराम भावधारा का, उस अक्षर विरासत का, जिसका शहर इलाहाबाद की धमनियों में निरन्तर विस्तार है।"[344] 'अक्षयवट' भारतीय वनस्पति में सबसे विशालकाय वृक्ष है, जो पुरातन परम्परा, प्राचीन विरासत, घनी जटाओं और बड़ी उम्र का प्रतीक है, बिल्कुल वैसे ही जैसे इलाहाबाद अपनी प्राचीन, गौरवशाली परम्परा के लिए जाना जाता है, किन्तु उसके वर्तमान पर अपराध, आतंकवाद, अत्याचार और भ्रष्टाचार की नज़र है।

उपन्यास में ज़हीर, मुरली, सलमान, जगन्नाथ, रमेश, बसन्त ये युवा, जिनका नायक ज़हीर है, जीवन की जकड़न और समय की विसंगतियों को पहचानने और उनसे मुठभेड़ करने की कोशिश करते हैं। जहाँ भी उन्हें गलत लगता है, वे अपने अन्दाज में उसे ठीक करने में लग जाते हैं। वस्तुतः कथानायक ज़हीर ही 'अक्षयवट' है। लेखिका ने इसको स्पष्ट भी किया है। मित्रों की बीच हो रहे आपसी वार्तालाप में रमेश के प्रश्न 'तुम कौन हो ज़हीर?' का उत्तर देते हुए ज़हीर कहता है– 'अक्षयवट'।[345]

उपन्यास के नामकरण के सम्बन्ध में नासिरा जी कहती हैं कि– "उपन्यास चूँकि इलाहाबाद के परिवेश को उठाता है इसलिए मेरी कोशिश थी कि उपन्यास का नाम उसी मिट्टी से निकले जिसकी सुगन्ध को पकड़ने के लिए मैंने यह उपन्यास लिखा। इस उपन्यास का दूसरा

नाम भी हो सकता था मगर जो ध्वनि, अर्थ, ऐतिहासिक परिदृश्य इस नाम में पर्तदार तरीके से अपनी अभिव्यक्ति पेश करता है शायद उतना सार्थक दूसरा नाम न होता। बेशक इलाहाबाद शहर और भारतीय संस्कृति से यह नाम जुदा नहीं है। उसमें यह संकेत भी निहित है कि अक्षयवट की तरह ज़हीर भी एक यथार्थ है जिसको खत्म करना तो दूर नकारना तक नामुमकिन है। इस नाम की अन्तर्धारा में वह कैफ़ियत कई–कई स्वरों पर उपन्यास में झलकती है जो बेचैनी के साथ आपकी सोच को भी खटखटाता है।"[346]

'कुइयाँजान' उपन्यास में 'कुइयाँ' तात्पर्य उस जलस्रोत से है जो मनुष्य की प्यास आदिम युग से ही बुझाता आया है और जो शायद जिजीविषा की पुकार पर मानव की पहली खोज थी। पहली उपलब्धि जो हमने अतीत में अपनी प्राण रक्षा के लिए प्यास बुझाकर हासिल की थी और जो आज भी उतनी ही तीव्र है।

इंसानी संवेदना और धरती से पानी के सूखते जाने की कहानी को लेखिका नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास में ढाला है। यह उपन्यास बताता है कि जमीन और इंसान की प्यास कैसे एक–दूसरे से जुड़ी हैं। पानी के रहने और न रहने पर, दोनों हालातों में इंसानी रिश्ते के रंग और संबंध मुखतलिफ (भिन्न–भिन्न) हो उठते हैं। आधुनिक टेक्नोलॉजी में मनुष्य ने उस मूलस्रोत को आदिम करार दे दिया है और अपनी मशीनी ताकत के बल पर प्रकृति के इस अक्षय स्रोत 'जल' से खिलवाड़ कर रहा है।[347]

"कुआं पुल्लिंग है, कुई स्त्रीलिंग। कुईं केवल अपने व्यास में छोटी होती है मगर गहराई में नहीं।....कुईं एक अर्थ में कुएं से बिलकुल अलग है। कुआं भूजल तक पहुंचने या पाने के लिए बनता है, पर कुईं भूजल से ठीक वैसे नहीं जुड़ती है जैसे कुआं, बल्कि कुईं वर्षा के जल को बड़े विचित्र ढंग से समेटती और संजोती हैं तब भी जब वर्षा नहीं होती। यानी कुईं न तो सतह पर बहने वाला पानी है न भूजल है। यह तो 'नेति–नेति' (चारों तरफ से रेत में समाई नमी को बूंदों के रूप में समेटती है) जैसा कुछ पेचीदा मसला है।"[348]

उपन्यास का नायक डॉ. कमाल' पानी की समस्या सम्बन्धी एक सेमिनार में बोलते–बोलते अचानक मूर्छित हो जाते हैं। नर्सिंग होम के चिकित्सा कक्ष में मूर्छित अवस्था में वह एक सपना देखता है जिसमें वह स्वयं को छोटी अम्मी के आंगन बनी कुईं के पानी से बुआ के द्वारा नहलाता पाता है। बुआ उससे कहती है, 'यह हमरी गुइयां कुइयां रानी' है! यह हमरी जान है, बेटवा! जाड़े में गरम और गरमी में ठंडा पानी दे हमें निहाल कर देत है!' तब कमाल धीरे से कहता है– "बुआ जब यह तुम्हारी जान है तो इसका नाम रख दो, कुइयांजान!"[349] इस प्रकार प्राचीन जल स्रोतों के

प्रतीक 'कुइयांजान' की तरफ पाठकों का ध्यान खींचकर नासिरा जी ने उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध की है।

'ज़ीरो रोड़' उपन्यास की कथा का केन्द्र इलाहाबाद के ज़ीरो रोड़ का 'चक' मुहल्ला और व्यापारिक शहर दुबई है। उपन्यास का प्रमुख पात्र सिद्धार्थ 'चक' मुहल्ले का रहने वाला है, जो दुबई जाकर नौकरी करता है। उपन्यास की सारी कथा सिद्धार्थ के ही इर्द–गिर्द घूमती है। उपन्यास में 'चक' मुहल्ले के चार मध्यवर्गीय परिवारों (रामप्रसाद, जगतराम, मुन्ना हाफ़िज एवं हामिद के परिवार) की कथाओं के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को समझाया है। साथ ही धर्म पर आधारित हिन्दू–मुस्लिम समाज की सारी बुराईयों को भी उजागर किया है। अतः कथानक का केन्द्र–बिन्दु होने के कारण 'ज़ीरो रोड़' शीर्षक सार्थक बन पड़ा है। साथ पाठक की जिज्ञासा का कारण भी बनता है। 'ज़ीरो रोड़' प्रतीक है उस सामाजिक यथार्थ का जो हर शहर, हर मुहल्ले में देखा जा सकता है।

'पारिजात' उपन्यास का शीर्षक शब्द 'पारिजात' पीढ़ियों, संस्कारों, देशी–विदेशी संस्कृतियों और धर्मों के द्वन्द्वों–तनावों व उपादेयताओं के साथ ही अतीत की स्मृतियों, वर्तमान को दमित इच्छाओं व अवशेष हसरतों तथा भविष्य के सपनों का वाहक–वाचक संकेत बनकर तो आया ही है, इन सभी रूपों का केन्द्रीभूत एक पात्र बनकर भी उपस्थित है– बल्कि यूं कहें कि इसका पात्रत्व प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित होने के बावजूद पूरे उपन्यास में उपस्थित है– पूरी कथा और हर प्रमुख पात्र के मनों में 'सबके दिल में है जगह तेरी' बनकर। और इन सभी तरहों में अद्‌भुत रूप से साकार होता है 'पारिजात' का शीर्षकत्व और शीर्षक का पारिजातत्त्व–'पादपों में पारिजात' जैसा।[350]

पात्र के रूप में पारिजात है उपन्यास के नायक रोहन व उसकी ब्रिटिश प्रेमिका–पत्नी एलेसन का दो साल का बेटा, जिसे लेकर एलेसन गायब तो हो ही जाती है, लेकिन रोहन पर बहुत सारे झूठे इल्जामात लगाकर उसे जेल भी भिजवा देती है। यह त्रासदी पूरे उपन्यास पर तारी है। पारिजात को पाने की तड़प व आतुरता प्रतीक्षाओं में यूं अटकी है जो उपन्यास में आद्यंत बनी रहती है।

'पारिजात' वृक्ष के साथ इसका तादात्म्य स्थापित करते हुए लेखिका रोहन के पिता प्रह्लाद दत्त से कहलवाती हैं– "मैंने कल रामगढ़ जाते हुए एक अजीब पेड़ देखा। उसका नाम 'पारिजात' है। परिजात हारसिंगार को भी कहते हैं, मगर यह हरसिंगार नहीं, पूरे मोटे तने का बेहद सख़्त छाल का पेड़ था, जिसके फूल अगस्त के दूसरे–तीसरे हफ़्ते में फूलते हैं। यह सफ़ेद फूल कम ही लोग देख पाते हैं। सुना है, दुनिया में नहीं तो भारत में यह इकलौता पेड़ है, जिसकी शाख़ कानन वन से लाकर लगाई थी।......मेरा मन है कि मैं तुम्हारे बेटे का नाम पारिजात रखूँ।"[351]

'पारिजात की खोज में नासिरा' शीर्षक से अपने ब्लॉक में गीता श्री लिखती है कि "उपन्यास लिखते समय पारिजात फूल नासिरा के दिमाग में इस कदर बस गया था, कि उसे देखना उनकी अनिवार्यता बन गई थी। उसे देखने के लिए उचित मौसम का इंतजार बहुत धैर्यशाली लेखक ही कर सकते हैं। उपन्यास को बीच में छोड़कर वे निकल पड़ी थीं दुनिया के इकलौते बचे पारिजात वृक्ष की खोज में। उन्हें वह वृक्ष मिला भी, उत्तरप्रदेश की घाघरा नदी के तट पर स्थित बाराबंकी जनपद के बदोसराय कस्बे के पास, जहाँ एक शाम वे उसके फूल को खिलते देखतीं हैं।"[352]

'अजनबी जज़ीरा' उपन्यास में नासिरा जी ने समीरा और उसकी पाँच बेटियों के माध्यम से इराक़ की बदहाली बयान की है। बारुद, विध्वंस और विनाश के बीच समीरा ज़िन्दगी की रोशनी व ख़ुशबू बचाने के लिए जूझ रही है साथ ही समीरा को चाहने वाले अंग्रेज फ़ौजी मार्क के पक्ष से क्षत–विक्षत इराक़ की एक मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत की है। विदेशी सेनाओं से क्षत–विक्षत बगदाद शहर की मार्मिक गाथा पर लिखा गया यह उपन्यास अक्स बनकर उभरता है दुनियां की ऐसी दारुण स्थितियों का। 'अजनबी' अर्थात् अनजाना और 'जज़ीरा' मतलब 'द्वीप'। मतलब विदेशी आक्रमणकारियों से नेस्तनाबूत हुआ बगदाद शहर उस अनजान द्वीप की भाँति है जिसमें कब क्या हो? कहा नहीं जा सकता। हर पल खतरे की आशंका में जीती इंन्सानियत, सब कुछ बेचने को मजबूर लोग ऐसी अनेक स्थितियों–मनःस्थितियों का यहाँ चित्रण किया गया है। समीरा से उसकी सहेली रुया कहती है– "मैं अपना बदन नुचवाती हूँ...अपने हम–शहरियों से.......और क्या करूँ, ईमान को लेकर चाटूँ या इस्मत को लेकर नाचूँ? देखो, अब मेरे पास इतने रियाल हैं कि मैं हफ़्ता आराम से गुज़ार सकूँ...............ज़िन्दगी का इतना बदसूरत चेहरा देखने के हम हक़दार नहीं थे, जो हमने बोया नहीं वह हम क्यों काट रहे हैं?"[353]

इसी तरह समीरा की चची उससे कहती है– "अभी तुम जैसे भी हो इस बारूदी ज़मीन से निकलो, यह ज़मीन हमारी हड्डियों की दफ़नगाह बन रही है......जितने इराक़ी बच सकें उन्हें बचाना हम सब का फ़र्ज़ है।"[354] इस प्रकार इराक़ी जनता एक अजीब स्थिति से गुजर रही होती है। उसी का प्रतीक है 'अजनबी जज़ीरा'।

'काग़ज़ की नाव' नासिरा शर्मा का नया और विशिष्ट उपन्यास है। यह उपन्यास बिहार में रहने वाले उन परिवारों का वृत्तांत है, जिनके घर से कोई न कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया हुआ है। वतन से दूर रहने वाले यहाँ छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक का भरा–पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से आने वाले रुपए.........और रिश्तों के अंधेरे उजाले। 'काग़ज़ की नाव' शीर्षक एक रूपक बन जाता है, यानी ज़रूरतों और ज़िम्मेदारियों के समंदर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश।[355] इस प्रकार यह बहुत ही सटीक व सार्थक शीर्षक है।

'शब्द पखेरू' एक नये तेवर, नयी भाषा–शैली में लिखा गया नासिरा शर्मा का बहुत ही मार्मिक उपन्यास है जो नयी पीढ़ी के गहरे दुःखों व जद्दोज़हद से हमारा परिचय करवाता है।

"बाज़ार और तकनीक के इस विकसित हो रहे माहौल में सूर्यकान्त की छोटी बेटी शैलजा अपना मार्गदर्शक 'गूगल' को समझ लेती है और 'गूगल–ग्रैण्डपा' के जरिए वह बेहतर दुनिया में साँस लेने की तमन्ना पाल लेती है। अपने परिवार को सुखमय जीवन देने की इच्छा में साइबर क्राइम में फँस जाती है। शब्दों के दग़ा देने पर वह अविश्वास के उस मरुस्थल में आन खड़ी होती है जो शब्द पखेरू की तरह अपनी लहरों को पल–पल हवा में गुम कर देते हैं।"[356] इस प्रकार यह शीर्षक एक मुहावरा सा बन पड़ा है।

'दूसरी जन्नत' नासिरा जी का नवीनतम उपन्यास है। उपन्यास के शीर्षक शब्द 'दूसरी जन्नत' से संकेत मिलता है उस दूसरी दुनिया का, जिसकी तलाश में फ़रहाना सरीखी औरतें दर–दर भटक रहीं हैं। यह कहानी है उस मुस्लिम समाज की जो ऊपर से ठहरा हुआ और शांत दिखता है पर उसके अन्दर ही अन्दर बहुत कुछ बदल रहा है और उसको बदलने की ख्वाहिशें व कोशिशें भी कम नहीं चल रही हैं। आज की मेडिकल उपलब्धियाँ व धर्म के नियमों के चक्रव्यूह में बुरी तरह उलझ चुकी ज़िन्दगियों के जरिये नासिरा जी ने उसी सरसराहट को छूने का प्रयास किया है।

कहानी में डॉक्टर रुख़साना की सलाह से फ़रहाना व उसके पति पायलट गुलजार नकवी टेस्ट ट्यूब व आई.वी.एफ. तकनीक से बच्चे 'शाद' को प्राप्त करते हैं। परन्तु गुलजार के छुपकर दूसरी शादी कर लेने पर विवाद उत्पन्न होता है। मामला कोर्ट–कचहरी से गुजरता हुआ शरीयत के अनुसार वह बच्चा अवैध घोषित कर दिया जाता है। तब शुरू होती तलाश बच्चे के असली बाप तक पहुँचने की। शुक्राणु बैंक से मिली शुक्राणु की फैमिली प्रोफाईल के आधार पर शाद के असली बाप तक लेबनान पहुँचती है दूसरी जन्नत की तलाश में फ़रहाना। जिसमें वह सफल हो जाती है और खुशहाल ज़िंदगी जीती है। तब फ़रहाना रुख़साना को ईमेल करती है– "उनकी ठोकरों ने मुझे बहुत दूर उछाल कर फेंका है और अब मैं अपना अतीत भूल जाना चाहती हूँ और दोज़ख की आग में जलने की जगह मैं इस ज़िंदगी को जन्नत बनाना चाहती हूँ।"[357]

इस पर डॉ. रुख़साना मन ही मन सोचती है– "हव्वा की बेटी लगातार उसकी नज़रों के सामने अपना क़द निकाल रही थी। वही हव्वा जो जन्नत से निकाली गयी तो इन्सानी आबादी वजूद में आई और आज वही हव्वा की बेटी अपनी जन्नत बचाने के लिए कमर कस चुकी है।"[358]

इस प्रकार उपन्यासों के शीर्षक इतने प्रभावी और आकर्षक बन पड़े हैं कि नाम सुनते ही पाठक के मन में उन्हें पढ़ने, जानने की लालसा जाग उठती है।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम यह सकते हैं कि नासिरा शर्मा हिन्दी उपन्यास साहित्य की कुशल चितेरी हैं। उनके उपन्यासों में जहाँ भाषा–शैली का विलक्षण प्रयोग मिलता है वहीं शिल्प के स्तर पर भी पर्याप्त वैविध्य देखने को मिलता है। उन्होंने कथ्य के अनुरूप ही भाषा–शैली का चयन किया है। अपनी अभिव्यक्ति में भाषा की तरलता और सहजता के सम्बन्ध में उनका कहना

है कि– ''इसका श्रेय उन चरित्रों को दूंगी, जो मेरी रचना की जमीन पर खड़े हो वैसी ही भाषा मुझसे लिखवाते हैं जैसे वे खुद होते हैं।''[359] नासिरा जी के लेखन का वैशिष्ट्य है कि उनके उपन्यासों में सर्वत्र सहजता व सरलता है। कहीं भी भाषा–शैली बोझिल नजर नहीं आती है। उन्होंने पात्र, परिवेश, भाव, कथ्य, स्थिति विशेष को देखकर ही तदनुकूल भाषा–शैली अपनायी है। साथ ही उनका लेखन अनुभव की भूमि पर आधारित है। अपने लेखन का अर्थ बताते हुए वे कहती हैं– ''लेखन का अर्थ केवल आपबीती कहना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है, उसे पचाना पड़ता है। उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि वह आप की आपबीती न लगकर जगबीती लगे।''[360] उनके उपन्यासों में माटी की गंध है, परिवेश की महक है, ज़मींनी हकीकत, जीवन की सच्चाई है, अतः तदनुरूप ही उनकी बनावट और रंगीनीयत है। उनकी लेखनी ज़मीन–ज़मीन का फ़र्क़ भली–भाँति पहचानती है। इसलिए कथ्य के परिवेश में आम बोल–चाल में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों व सूक्तियों का उनहोंने भरपूर प्रयोग किया है। पात्र, परिवेश, भाव व भाषा को ध्यान में रखते हुए ही बिम्ब व प्रतीकों को समाविष्ट किया है। शब्द व वाक्यों का प्रयोग भी उसी अनुरूप हुआ है। इसलिए उनकी औपन्यासिक रचनाएँ लेखकीय प्रतिभा का प्रदर्शन करने की बजाए स्वाभाविकता की चारद ओढ़े हुए हैं।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, 1/3
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग, पृ.–242
3. रोहिताश्व, समकालीन कविता : मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में, पृ.–262
4. सत्यदेव त्रिपाठी, 'पारिजात' से परीजाद तक......, ओपिनियन पोस्ट, http://www.opinionpost.in/13181-2/
5. डॉ. सुरेश सिन्हा, उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, पृ.–64
6. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–20
7. नासिरा शर्मा, शाल्मली, पृ.–56
8. शाल्मली, पृ.–75
9. शाल्मली, पृ.–165–166
10. शाल्मली, पृ.–164
11. शाल्मली, पृ.–33
12. शाल्मली, पृ.–33
13. शाल्मली, पृ.–74
14. शाल्मली, पृ.–81
15. शाल्मली, पृ.–128
16. शाल्मली, पृ.–11
17. शाल्मली, पृ.–11
18. नासिरा शर्मा, ज़िंदा मुहावरे, पृ.–11
19. ज़िंदा मुहावरे, पृ.–126
20. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.–127
21. ठीकरे की मंगनी, पृ.–131
22. ठीकरे की मंगनी, पृ.–34
23. ठीकरे की मंगनी, पृ.–116
24. ठीकरे की मंगनी, पृ.–174
25. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, पृ.–91
26. अक्षयवट, पृ.–109
27. अक्षयवट, पृ.–123
28. अक्षयवट, पृ.–123

29. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, पृ.—125
30. अक्षयवट, पृ.—493
31. अक्षयवट, पृ.—495
32. अक्षयवट, पृ.—225
33. अक्षयवट, पृ.—253
34. नासिरा शर्मा, कुइयाँजान, पृ.—98
35. कुइयाँजान, पृ.—168
36. कुइयाँजान, पृ.—404—405
37. कुइयाँजान, पृ.—47
38. कुइयाँजान, पृ.—398—399
39. नासिरा शर्मा, 'ज़ीरो रोड़', पृ.—78
40. 'ज़ीरो रोड़', पृ.—68
41. 'ज़ीरो रोड़', पृ.—71
42. 'ज़ीरो रोड़', पृ.—101
43. 'ज़ीरो रोड़', पृ.—286
44. 'ज़ीरो रोड़', पृ.—286
45. 'ज़ीरो रोड़', पृ.—287
46. नासिरा शर्मा, पारिजात, पृ.—351
47. पारिजात, पृ.—482
48. पारिजात, पृ.—136
49. पारिजात, पृ.—334—337
50. पारिजात, पृ.—450
51. पारिजात, पृ.—491
52. पारिजात, पृ.—491
53. नासिरा शर्मा, कागज़ की नाव, पृ.—14
54. कागज़ की नाव, पृ.—16
55. कागज़ की नाव, पृ.—15
56. कागज़ की नाव, पृ.—49
57. कागज़ की नाव, पृ.—49
58. कागज़ की नाव, पृ.—18
59. कागज़ की नाव, पृ.—18—19

60. कागज़ की नाव, पृ.–21

61. कागज़ की नाव, पृ.–21

62. कागज़ की नाव, पृ.–22

63. कागज़ की नाव, पृ.–25

64. कागज़ की नाव, पृ.–17

65. कागज़ की नाव, पृ.–94

66. कागज़ की नाव, पृ.–37

67. नासिरा शर्मा, अजनबी जज़ीरा, पृ.–13

68. अजनबी जज़ीरा, पृ.–23

69. अजनबी जज़ीरा, पृ.–26

70. अजनबी जज़ीरा, पृ.–120

71. अजनबी जज़ीरा, पृ.–69

72. अजनबी जज़ीरा, पृ.–84–85

73. अजनबी जज़ीरा, पृ.–85

74. अजनबी जज़ीरा, पृ.–113

75. अजनबी जज़ीरा, पृ.–71

76. अजनबी जज़ीरा, पृ.–109

77. अजनबी जज़ीरा, पृ.–109

78. अजनबी जज़ीरा, पृ.–133

79. अजनबी जज़ीरा, पृ.–143

80. नासिरा शर्मा, शब्द पखेरू, पृ.–17

81. शब्द पखेरू, पृ.–18–19

82. शब्द पखेरू, पृ.–25

83. शब्द पखेरू, पृ.–26

84. शब्द पखेरू, पृ.–20

85. शब्द पखेरू, पृ.–20

86. शब्द पखेरू, पृ.–103

87. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, सं. : एम. फीरोज अहमद, पृ.–342

88. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, सं. : एम. फीरोज अहमद, पृ.–348

89. शांति स्वरूप गुप्त, उपन्यास : स्वरूप, संरचना तथा शिल्प, पृ.–169

90. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, पृ.–345

91. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.–32
92. ठीकरे की मंगनी, पृ.–79
93. ज़िंदा मुहावरे, पृ.–10
94. दूसरी जन्नत, पृ.–14–15
95. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–333
96. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–334
97. बहिश्ते ज़हरा, पृ.–42
98. बहिश्ते, पृ.–42
99. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–306
100. अजनबी जज़ीरा, पृ.–133
101. पारिजात, पृ.–491
102. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.–9
103. ठीकरे की मंगनी, पृ.–21
104. ठीकरे की मंगनी, पृ.–25
105. ठीकरे की मंगनी, पृ.–27
106. ठीकरे की मंगनी, पृ.–31
107. ठीकरे की मंगनी, पृ.–40
108. ठीकरे की मंगनी, पृ.–53
109. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–47
110. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–99
111. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–11
112. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–15
113. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–19
114. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–53
115. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–57
116. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–304
117. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–287
118. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–274
119. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–269
120. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–267
121. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–258

122. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–141
123. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–115
124. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–114
125. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–89
126. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–86
127. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–322
128. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–328
129. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.–328
130. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.–61
131. ठीकरे की मंगनी, पृ.–62
132. सात नदियाँ, एक समंदर, पृ.–25
133. सात नदियाँ, एक समंदर, पृ.–221–222
134. सात नदियाँ, एक समंदर, पृ.–240
135. शाल्मली, पृ.–75
136. शाल्मली, पृ.–85
137. शाल्मली, पृ.–93
138. अक्षयवट, पृ.–123
139. कुइयाँजान, पृ.–139
140. ज़िंदा मुहावरे, पृ.–123
141. पारिजात, पृ.–141
142. दूसरी जन्नत, पृ.–21
143. दूसरी जन्नत, पृ.–93
144. कागज़ की नाव, पृ.–171
145. अजनबी जज़ीरा, पृ.–109
146. शब्द पखेरू, पृ.–92
147. आदर्श सक्सेना, हिन्दी आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प–विधि, पृ.–262
148. पारुकांत देसाई, साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास, पृ.–379
149. अक्षयवट, पृ.–482
150. अक्षयवट, पृ.–378
151. अक्षयवट, पृ.–135
152. ठीकरे की मंगनी, पृ.–22

153. ठीकरे की मंगनी, पृ.—25

154. ठीकरे की मंगनी, पृ.—29

155. ठीकरे की मंगनी, पृ.—103

156. ठीकरे की मंगनी, पृ.—103

157. ठीकरे की मंगनी, पृ.—109

158. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—10

159. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—37

160. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—46

161. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—47

162. शाल्मली, पृ.—12

163. शाल्मली, पृ.—21

164. शाल्मली, पृ.—37

165. ज़ीरो रोड़, पृ.—144

166. ज़ीरो रोड़, पृ.—18

167. ज़ीरो रोड़, पृ.—67

168. अक्षयवट, पृ.—79

169. अक्षयवट, पृ.—79

170. अक्षयवट, पृ.—83

171. पारिजात, पृ.—43

172. पारिजात, पृ.—161

173. पारिजात, पृ.—483

174. कुइयाँजान, पृ.—7

175. कुइयाँजान, पृ.—10

176. कुइयाँजान, पृ.—59

177. कुइयाँजान, पृ.—61

178. कुइयाँजान, पृ.—61

179. कुइयाँजान, पृ.—107

180. कुइयाँजान, पृ.—131

181. शब्द पखेरू, पृ.—78

182. शब्द पखेरू, पृ.—111

183. बहिश्ते—ज़हरा, पृ.—104

184. बहिश्ते—ज़हरा, पृ.—49

185. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.—15

186. ठीकरे की मंगनी, पृ.—21

187. ठीकरे की मंगनी, पृ.—21

188. ठीकरे की मंगनी, पृ.—36

189. ठीकरे की मंगनी, पृ.—37

190. ठीकरे की मंगनी, पृ.—39

191. ठीकरे की मंगनी, पृ.—39

192. ठीकरे की मंगनी, पृ.—61

193. ठीकरे की मंगनी, पृ.—97

194. ठीकरे की मंगनी, पृ.—110

195. ठीकरे की मंगनी, पृ.—115

196. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—10

197. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—10

198. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—36

199. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—36

200. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—46

201. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.—47

202. शाल्मली, पृ.—62

203. शाल्मली, पृ.—72

204. शाल्मली, पृ.—87

205. अक्षयवट, पृ.—50

206. अक्षयवट, पृ.—55

207. अक्षयवट, पृ.—57

208. अक्षयवट, पृ.—69

209. अक्षयवट, पृ.—78

210. पारिजात, पृ.—134

211. पारिजात, पृ.—135

212. पारिजात, पृ.—375

213. कुइयाँजान, पृ.—11

214. कुइयाँजान, पृ.—112

215. काग़ज़ की नाव, पृ.–174

216. काग़ज़ की नाव, पृ.–157

217. काग़ज़ की नाव, पृ.–125

218. अजनबी जज़ीरा, पृ.–45

219. दूसरी जन्नत, पृ.–25

220. दूसरी जन्नत, पृ.–49

221. दूसरी जन्नत, पृ.–88

222. दूसरी जन्नत, पृ.–90

223. बहिश्ते–ज़हरा, पृ.–41

224. दूसरी जन्नत, पृ.–27

225. दूसरी जन्नत, पृ.–27

226. पारिजात, पृ.–488

227. पारिजात, पृ.–412

228. अक्षयवट, पृ.–38

229. अजनबी जज़ीरा, पृ.–135

230. कग़ज़ की नाव़, उपन्यास शीर्षक

231. शब्द पखेरू, पृ.–111

232. शब्द पखेरू, पृ.–111

233. बहिश्ते–ज़हरा, पृ.–21

234. बहिश्ते–ज़हरा, पृ.–15

235. सात नदियाँ, एक समन्दर, पृ.–143

236. पारिजात, पृ.–45

237. कुइयाँजान, पृ.–63

238. कुइयाँजान, पृ.–80

239. अजनबी जज़ीरा, पृ.–25

240. पारिजात, पृ.–296

241. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–124

242. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–125

243. बहिश्ते–ज़हरा, पृ.–15

244. प्रो. राजमणि शर्मा, काव्यभाषा : रचनात्मक सरोकार, पृ.–124

245. प्रो. राजमणि शर्मा, काव्यभाषा : रचनात्मक सरोकार, पृ.–124

246. डॉ. नगेन्द्र, काव्य बिम्ब, पृ.–8
247. शाल्मली, पृ.–9
248. शाल्मली, पृ.–105
249. काग़ज़ की नाव, पृ.–47
250. अक्षयवट, पृ.–125
251. दूसरी जन्नत, पृ.–93
252. प्रो. राजमणि शर्मा, काव्यभाषा : रचनात्मक सरोकार, पृ.–126
253. प्रो. राजमणि शर्मा, काव्यभाषा : रचनात्मक सरोकार, पृ.–126
254. पारिजात, पृ.–375
255. दूसरी जन्नत, पृ.–93
256. अजनबी जज़ीरा, पृ.–143
257. कुइयाँजान, पृ.–312
258. अक्षयवट, पृ.–13
259. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–11
260. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–11
261. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–135
262. ज़ीरो रोड़, पृ.–78
263. कुइयाँजान, पृ.–133
264. अजनबी जज़ीरा, पृ.–23
265. अजनबी जज़ीरा, पृ.–24
266. पारिजात, पृ.–296
267. कागज़ की नाव, पृ.–14
268. कागज़ की नाव, पृ.–14
269. दूसरी जन्नत, पृ.–83
270. विपिन कुमार, उपन्यासकार शिवानी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.–254
271. विपिन कुमार, उपन्यासकार शिवानी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ.–255
272. डॉ. पाण्डुरंग पाटील, उपन्यासकार देवेश ठाकुर, पृ.–204
273. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–987
274. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ.–680
275. आचार्य वामन, काव्यालंकारसूत्र, पृ.–76
276. बलदेव उपाध्याय, भारतीय काव्यशास्त्र, पृ.–137

277. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ.–53–54
278. पं. सीताराम चतुर्वेदी, शैली और कौशल, पृ.–27
279. डॉ. कमलापति उपाध्याय, हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन, पृ.–46
280. डॉ. कमलापति उपाध्याय, हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन, पृ.–46
281. डॉ. कमलापति उपाध्याय, हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन, पृ.–47
282. डॉ. कमलापति उपाध्याय, हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन, पृ.–47
283. डॉ. कमलापति उपाध्याय, हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन, पृ.–47
284. कृष्ण कुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा, पृ.–19
285. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैलीविज्ञान, पृ.–1
286. डॉ. चौऋषि–द्विवेदी युग की हिन्दी गद्य शैलियों का अध्ययन, पृ.–49
287. डॉ. कमलापति उपाध्याय, हिन्दी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्ययन, पृ.–48
288. डॉ. कमलापति उपाध्याय, हिन्दी आत्मकथा साहित्य का शैलीगत अध्ययन, पृ.–48
289. डॉ. भोलानाथ तिवारी, शैलीविज्ञान, पृ.–7
290. डॉ. सत्यदेव चौधरी, भारतीय शैली विज्ञान, पृ.–27
291. शाल्मली, पृ.–37–38
292. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.–64
293. अजनबी जज़ीरा, पृ.–19
294. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–13
295. अक्षयवट, पृ.–38
296. दूसरी जन्नत, पृ.–5
297. डॉ. इंदु रश्मी, नई कहानी का स्वरूप विवेचन, पृ.–169
298. पारिजात, पृ.–298–300
299. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–161
300. अक्षयवट, पृ.–200
301. प्रो. सतीश पाण्डेय, कथाशिल्पी देवेश ठाकुर, पृ.–127
302. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–321
303. ज़ीरो रोड़, पृ.–32
304. अज़नबी जज़ीरा, पृ.–70
305. कुइयाँजान, पृ.–271
306. अक्षयवट, पृ.–378
307. सात नदियां एक समन्दर, पृ.–159

308. शब्द पखेरू, पृ.–105–106
309. ठीकरे की मंगनी, पृ.–178
310. सात नदियां एक समन्दर, पृ.–199
311. सात नदियां एक समन्दर, पृ.–320
312. पारिजात, पृ.–401–402
313. काग़ज़ की नाव, पृ.–87
314. अजनबी जज़ीरा, पृ.–29–30
315. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृ.–184
316. शाल्मली, पृ.–79
317. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–296
318. ज़िंदा मुहावरे, पृ.–127
319. शाल्मली, पृ.–39
320. कुइयाँजान, पृ.–87
321. डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, अज्ञेय का उपन्यास साहित्य, पृ.–237
322. काग़ज़ की नाव, पृ.–136–137
323. ज़िन्दा मुहावरे, पृ.–103
324. सात नदियाँ एक समन्दर, पृ.–325
325. पारिजात, पृ.–380–382
326. दूसरी जन्नत, पृ.–95–96
327. शब्द पखेरू, पृ.–95–96
328. पारिजात, पृ.–351
329. पारिजात, पृ.–333
330. पारिजात, पृ.–334
331. शाल्मली, पृ.–132
332. कुइयाँजान, पृ.–404
333. दूसरी जन्नत, पृ.–83
334. अक्षयवट, पृ.–157–163
335. शाल्मली, पृ.–132
336. शाल्मली, पृ.–171–172
337. ठीकरे की मंगनी, पृ.–17
338. ठीकरे की मंगनी, पृ.–121

339. ज़िंदा मुहावरे, दो शब्द, पृ.—7

340. ज़िंदा मुहावरे, दो शब्द, पृ.—7

341. ज़िंदा मुहावरे, दो शब्द, पृ.—7

342. ज़िंदा मुहावरे, दो शब्द, पृ.—8

343. सात नदियाँ : एक समन्दर, पृ.—10

344. अक्षयवट, आवरण पृष्ठ से

345. अक्षयवट, पृ.—125

346. अक्षयवट, पृ.—136

347. कुइयाँजान, आवरण पृ. से

348. कुइयाँजान, पृ.—314

349. कुइयाँजान, पृ.—408

350. सत्यदेव त्रिपादी, 'पारिजात से परीजाद तक.......।'
पारिजात / http://www.opionpost.in/13181-2/

351. पारिजात, पृ.—375

352. गीता श्री, पारिजात की खोज में नासिरा,
http://hindiyourstory.com/read/7b8270a33c/in

353. अजनबी जज़ीरा, पृ.—27

354. अजनबी जज़ीरा, पृ.—85

355. काग़ज़ की नाव, आवरण पृष्ठ से

356. शब्द पखेरू, आवरण पृष्ठ से

357. दूसरी जन्नत, पृ.—96

358. दूसरी जन्नत, पृ.—93

359. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, सं. एम. फीरोज अहमद, पृ.—345

360. नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, सं. एम. फीरोज अहमद, पृ.—53

उपसंहार

"मेरे मन–मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है, मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है।"

— शाल्मली / 165

उपसंहार

"नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना" शीर्षक पर आधारित इस शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर एवं वरिष्ठ साहित्याकार नासिरा शर्मा द्वारा रचित उपन्यासों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण एवं विवेचन करने का प्रयास किया है। नासिरा शर्मा उन विरले रचनाकारों में से एक हैं जिनकी हर कृति का कैनवास बहुत विराट है। उनके उपन्यासों में गहरे शोध की छाया है। उनके उपन्यासों का अध्ययन करते हुए शोधार्थी ने महसूस किया कि लेखिका के उपन्यासों में कुछ ऐसा है कि वे मानवीय धरातल के बाह्य आवरण को भेदकर अन्तःस्थल के सत्य का हठात् साक्षात्कार कर लेती हैं। उनके उपन्यासों में समकालीन समाज स्फटिक के समान प्रतिबिम्बित होता है। उनमें सर्वसाहित्यावगाही विलक्षण रचनाधर्मिता है। उनकी औपन्यासिक रचनाओं पर खण्डशः काम होता आया है। साथ ही उनके सद्यः प्रकाशित उपन्यास तो शोधपरक अध्ययन से पूर्णतः अछूते ही हैं। अतः नासिरा जी के सभी उपन्यासों के शोधपरक एवं समग्र विश्लेषण की परमावश्यकता अनुभव करते हुए यह उद्घाटित करने का प्रयास किया जाना शोधार्थी को समुचित प्रतीत हुआ कि वर्तमान समय में आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की बहुचर्चित, बहुपठनीय व प्रख्यात लेखिका की दृष्टि में समाज को किस तरह चित्रित किया गया है? उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक चित्रण के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं को समाधान की दिशा किस प्रकार प्रदान की है? अपने लेखन में किन–किन सांस्कृतिक तंतुओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है? तथा लोकचेतना को गहराई से छूने वाली लेखिका की रचनाओं से वर्तमान पीढ़ी को क्या संदेश प्राप्त होगा? उपर्युक्त समस्त प्रश्न बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में संधारित प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत नासिरा शर्मा के उपन्यासों के विश्लेषण उपरान्त प्राप्त निष्कर्षों को सुधी साहित्यानुरागीजनों के समक्ष यहाँ निस्यूत रूप में रखने का प्रयास किया है।

किसी भी साहित्यकार के कृतित्व की महत्ता व उपादेयता उसके व्यक्तित्व की प्रामाणिकता से ही सिद्ध की जा सकती है। अतः उनके उपन्यासों में निहित सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतनामूलक तत्त्वों के अन्वेषण से पूर्व उनके समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर बिहंगम दृष्टिपात किया है ताकि विषय–प्रवेश एवं भावभूमि के निर्माण में तथा विविध पक्षों पर प्रस्तुत उनके दृष्टिकोण को समझने में सुगमता हो सके।

नासिरा शर्मा का जन्म एक शिक्षित एवं सम्पन्न शिया मुस्लिम परिवार में 22 अगस्त, 1948 को उत्तरप्रदेश की साहित्यिक नगरी इलाहाबाद में हुआ। गंगा—जमुनी साझा संस्कृति एवं सांस्कृतिक एकता की सरजमी पर पली—बढ़ी नासिरा जी बचपन से ही सूक्ष्म निरीक्षण एवं तार्किक दृष्टिकोण से सम्पन्न रहीं हैं। इनके परिवार का माहौल भी साहित्यिक था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद फारसी भाषा साहित्य में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और पश्तों भाषाओं पर गहरी पकड़ होने के बावजूद अपनी रूचि के आधार पर हिन्दी भाषा को अपने साहित्य सृजन का आधार बनाया। अध्यापन कार्य करते समय उन्होंने अपनी प्रतिभा व कौशल से विद्यार्थियों को न सिर्फ प्रभावित किया अपितु अध्यापक का सच्चा दायित्व भी निभाया। परन्तु अपनी सृजन कार्य की व्यस्तता तथा बार—बार विदेश यात्रा पर जाने में होने वाली कठिनाईयों को देखते हुए उन्होंने स्वयं को अध्यापन कार्य से मुक्त कर स्वतन्त्र पत्रकारिता एवं साहित्य सर्जना में समर्पित कर दिया। तथा कुछ दिनों तक रेडियो स्टेशन पर प्रोग्राम ऑफिसर के रूप में भी सेवाएँ दी।

नासिरा जी ने अजमेर निवासी ब्राह्मण परिवार में जन्मे डॉ. रामचन्द्र शर्मा के साथ स्पेशल मैरिज एक्ट के तहत प्रेम विवाह किया। अन्तर्धर्मीय विवाह होने के बावजूद नासिरा जी की प्रबल इच्छा शक्ति और डॉ. शर्मा जी के आपसी सहयोग, विश्वास व समन्वय के कारण उनका वैवाहिक जीवन एक आदर्श रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

नासिरा शर्मा का बहिरंग और अन्तरंग उभयविध व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावकारी रहा है। परम्परागत भारतीय परिधान व वेशभूषा प्रिय नासिरा जी सादगी पसन्द महिला हैं। साड़ी पहने हुए, गोल चेहरा, कंधों से नीचे जाते खुले—लम्बे सीधे बाल, चमकती हुई आँखें व चेहरे से टपकता बौद्धिक उजास और विश्वास लेखकीय व्यक्तित्व एवं संजीदगी का परिचायक है। वे उदारहृदया, अनुशासनप्रिय, स्वाभिमानी, आत्मबल, साहस, निर्भीकता, निडरता और दृढ़ता से भरपूर, स्पष्टवादी तथा अहं से पूर्णतः परे रहने वाली महिला हैं। उनकी आम्मीयतापूर्ण मेहमाननबाजी, प्राचीन परम्पराओं में गहरी आस्था, सर्वधर्म समभाव की प्रवृत्ति, कर्मकाण्डों के नाम पर धार्मिक आडम्बरों का विरोध, आमजन के दुःखों से द्रवीभूत होने वाला मन उनको वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। पढ़ना, पढ़ाना, घर सजाना, खाना पकाना, सिलाई, विभिन्न शीर्षकों से एलबम बनाना, शायरी पढ़ना इत्यादि उनके रुचिकर कार्य रहे हैं। साहित्य सृजन से सराबोर, उनका परिवारिक एवं शैक्षिक वातावरण, इलाहाबाद की गलियों व मोहल्लों के परिवेश से जुड़ी

बाल्यकालीन स्मृतियाँ व अनुभव, इलाहाबाद का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक माहौल, दो संस्कृतियों का संगम उनका वैवाहिक जीवन, समय–समय पर की गई विदेश यात्राएँ व बुद्धिजीवियों के साथ सम्पर्क, समकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि नानाविध युगीन परिवेश इत्यादि तत्त्वों ने उनके व्यक्तित्व को निखारा है, तराशा है और उसे सुनिश्चित आकार प्रदान किया है। मजहबी रियायत उन्हें कभी नहीं बाँध पायी। स्कूली दिनों में जब नमाज का पीरियड होता था तो अन्य लड़कियों से इतर वे पत्रिका खोलकर कहानियाँ पढ़ने में व्यस्त होती थीं।

अतः उनके लेखन में उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो उनका लेखन उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है। उनके लेखन में साहित्यिक मानदण्डों की गहरी समझ, सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता और मानवीय मूल्यों की स्थापना के प्रति गहरी प्रतिबद्धता भी द्योतित होती है। इसी प्रतिबद्धता के कारण उनके अन्दर अन्तर्निहित लेखक देश–काल की सीमाओं का अतिक्रमण कर बाहर से अनुभव बटोर लाता है तथा महिला लेखन से जुड़ी भ्रांतियों को चुनौति देता हुआ समकालीन लेखन की अग्रिम पंक्ति में पूरे दम–खम के साथ आ खड़ा होता है और इसकी कसौटी है उसका साहित्य–समाज में समादृत होना। उनके रचना–संसार की युगानुकूलता, वरेण्यता, गूढ़ता, मौलिकता, जीवन्तता, यथार्थता आदि वैशिष्ट्य के कारण नासिरा जी सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त विविध पुरस्कारों से सम्मानित होती रही है। अर्पण सम्मान (1987–88), गजानन माधव मुक्तिबोध पुरस्कार (1995), महादेवी वर्मा पुरस्कार (1997), लन्दन के हाउस ऑफ लाड्र्स में 14वें अन्तर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान (2008), यू.के. कथा सम्मान (2008) इत्यादि सम्मानों से उनको नवाजा जा चुका है। साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा उन्हें 'पारिजात' उपन्यास के लिए हिन्दी विषय में साहित्य अकादमी सम्मान, 2016 से सम्मानित किया गया है। पर वे कभी भी पुरस्कारों से प्रेरित होकर लेखन नहीं करती अपितु पुरस्कार उनकी सर्जना की बाट जोहता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महिला साहित्यकारों की श्रृंखला में नासिरा शर्मा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने अपनी अथक एवं अनवरत लेखनी से हिन्दी साहित्य के भण्डार को अपार समृद्धि प्रदान की है। उन्होंने अपनी सुदीर्घ सृजनयात्रा में कहानी, उपन्यास, अनुवाद, समीक्षा, रिपोर्ताज, राजनीतिक विश्लेषणपरक रचनाएँ, लेख संग्रह, संस्मरण, संपादन, आलोचना, पत्रकारिता, बाल–साहित्य, नाट्य–रूपान्तरण आदि विविध आयामी लेखन कार्य किया है। नासिरा जी प्रारम्भ से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति की महिला रही है। अतः उनकी कोई भी रचना कल्पनाप्रसूत नहीं होकर

यथार्थ बोध से सम्पृक्त नजर आती है। उनके अन्दर छुपा पत्रकार उन्हें शोध की ओर अग्रसर करता है। समाज के संघर्षों को नजदीक से देखने के बाद ही वे अपनी लेखनी चलाना शुरु करती है। इसी कारण उनकी लेखनी में हमें खुलापन साफ–साफ नजर आता है। उनकी कृतियों में जहाँ एक तरफ मुस्लिम समाज व जीवन की सच्चाईयाँ कड़वाहट के साथ सामने आई हैं, वहीं दूसरी तरफ हिन्दू समाज का वह तबका भी है जो धार्मिक अंधविश्वासों से घिरा हुआ है। उनके साहित्य में रस–रंग, रोमानी आर्द्रता, सौंदर्य के विविध आयाम, चिन्तन और विचार, दुःख–सुख आदि के साथ पात्रों की अन्तरंग और बहिरंग छवियाँ कई धरातलों पर जीवन्त हो उठती है। खास बात यह है कि अपने लेखन के लिए उन्होंने अपने आस–पास के परिवेश से ही सामग्रियाँ जुटायी हैं।

नासिरा जी के उपन्यासों की बात करें तो हर एक रचना में भारतीय एवं पश्चिम एशियाई समाज के विविध पक्षों पर चिंतायें व्यक्त की गई है। **'सात नदियाँ एक समन्दर'** जो अब 'बहिश्ते–ज़हरा' के नाम से भी प्रकाशित हो चुका है, ईरानी क्रांति के दौरान आमजन पर हुए अत्याचारों का जीवन्त चित्रण करने वाला दुनिया का पहला उपन्यास है। **'शाल्मली'** स्वतन्त्रता के बाद अस्तित्व में आयी उस महिला की कहानी है जो वैचारिक रूप से परिपक्व है और वैवाहिक जीवन में स्त्री–पुरुष के मध्य प्रेम और बराबरी पर विश्वास रखती है। इसी तरह **'ठीकरे की मंगनी'** में आजादी के बाद की संघर्षशील व हालात की मार से उत्पन्न उस लड़की की कहानी है, जो अपनी मेहनत और काबिलियत से साबित करती है कि पितृसत्ता में औरत की एक अपनी पहचान भी होती है। वह न केवल स्वयं को अपितु समाज को भी एक नई दिशा देने में समर्थ है। **'ज़िंदा मुहावरे'** में हिन्दुस्तान के बँटवारे की तकलीफ़ को आम इंसान के नजरिये से देखने की सार्थक पहल है। **'अक्षयवट'** उपन्यास में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, विसंगतियों व कुव्यवस्था के खिलाफ संघर्षरत युवा पीढ़ी का चित्रांकन है। यह समाज की एक बनती–बिगड़ती और बदरंग होती सभ्यता से साक्षात्कार करवाता है। **'कुइयाँजान'** इंसानी संवेदना और धरती से पानी के सूखते जाने की त्रासदी की ओर इशारा करता है। **'ज़ीरो रोड'** में समकालीन विश्व की अनेक ज्वलन्त समस्याओं को एक सूत्र में पिरोकर दर्शाया है, जिनमें बेरोजगारी, सांप्रदायिकता, जातिवाद, प्रवासी मानसिकता, शोषण व अन्याय आदि प्रमुख हैं। **'अजनबी जज़ीरा'** विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा नेस्तनाबूत इराक़ की बदहाली तथा बारुद, विध्वंस और विनाश के बीच सांस लेती इंसानियत को दर्शाता है। यह सभ्यता, संस्कृति और मानवीय नियति के आत्मबल व अन्तःसंघर्ष का संवेदना सम्पन्न चित्रण है। **'पारिजात'** उपन्यास पीढ़ियों, संस्कारों, देशी–विदेशी संस्कृतियों,

वर्तमान की दमित इच्छाओं व अवशेष हसरतों तथा भविष्य के सपनों की दास्तान है। **'काग़ज़ की नाव'** मौजूदा समय के एक बड़े सामाजिक संकट की ओर इशारा करता है। अर्थात् विभिन्न मजबूरियों के चलते पारिवारिक ज़रूरतों और ज़िम्मेदारियों के समन्दर को चंद रूपयों के सहारे पार करने की कोशिश। **'शब्द पखेरू'** नये तेवर, नयी भाषा–शैली में लिखा गया एक मार्मिक उपन्यास है जो नयी पीढ़ी के गहरे दुःखों व जद्दोज़हद से हमारा परिचय कराता है। **'दूसरी जन्नत'** आधुनिकता की तेज़ रफ़्तार में मेडीकल व विज्ञान की उपलब्धियों और धार्मिक नियमों के अन्तःसंघर्ष के बीच पिसती इंसानी जिंदगी का चित्रांकन है। इस प्रकार अपनी औपन्यासिक रचनाओं के माध्यम से नासिरा जी ने समय और समाज की भीतरी तहों में छिपी सच्चाइयों से पाठकों को रूबरू करवाने का प्रयास किया है।

'साहित्य समाज का दर्पण है' इस लोक प्रसिद्ध सूक्ति के अनुसार साहित्य रूपी दर्पण में समाज यथारूप प्रतिबिम्बित होता है। एक साहित्यकार समाज को जैसा महसूस करता है वही उसके साहित्य में प्रतिफलित होता है। साथ ही सृजनकार की सृजनशीलता का आधार या उत्प्रेरक तत्त्व भी समान ही होता है। जिस प्रकार साहित्य का सम्बन्ध समाज से जुड़ा होता है, वहीं चेतना का सम्बन्ध साहित्यकार से होता है। एक साहित्यकार अपने जीवन और जगत् के आदर्शों को परोक्ष रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। रचनाकार की चेतना का सामाजिक सरोकार ही उसकी चेतना को स्फुरित करता है। वही स्फुरित चेतना सामाजिक जन–जीवन में हस्तक्षेप करती हुई बहुआयामी स्तरों पर अपना विकास करती है। रचनाकार सामाजिक यथार्थता, वर्ग–वैषम्य, वर्ग–संघर्ष, व्यवस्था की अमानवीयता, लोकजीवन को प्रभावित करने वाले षडयन्त्रों आदि के युगीन संदर्भों की यथार्थ समझ से अपनी चेतनाशक्ति को प्रबुद्ध करता हुआ उन्हें यथारूप साहित्य में चित्रित करता है। इस सम्बन्ध में नासिरा शर्मा कहती है कि– "लेखन का अर्थ केवल आपबीती कहना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है, उसे पचाना पड़ता है। उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"

नासिरा शर्मा के उपन्यासों का सामाजिक चेतना मूलक दृष्टि से अनुशीलन करने के बाद कहा जा सकता है कि नासिरा जी का लेखन सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है। वर्णित घटनाक्रम को पाठक स्वयं से जुड़ा हुआ महसूस करता है। यहाँ नासिरा जी की जो सबसे बड़ी खासियत है कि जिन सन्दर्भों पर लेखनी चलाने से अकसर लेखक या कथाकार झिझकते हैं, उन विषयों पर उन्होंने निर्भीकता से बहुत ही सहजता के साथ साफ–साफ शब्दों में वर्णन किया है।

समाज में व्याप्त समस्त अच्छाईयों और बुराईयों को इस कदर उपन्यासों के ताने–आने में पिरोया है कि वे सब स्वाभाविक व सहज बन उठी हैं। सामाजिक परिदृश्य में व्याप्त प्रत्येक पहलू उनकी रचनाओं में स्थान पाकर जीवन्त हो उठे हैं। समाज में व्याप्त समस्त रिश्ते–नाते जैसे माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी, सास–बहू, सास–ससुर, माँ–बेटा, पिता–पुत्र, दादा–दादी, मामा–बुआ, मौसा–मौसी, चाचा–चाची, ताया–ताई, नाना–नानी, देवरानी–जेठानी, देवर–जेठ, शत्रु–मित्र, गुरु–शिष्य, नौकर–नौकरानी, आमजन–खास यहाँ तक कि समस्त मानवीय रिश्तों को नाना–नाना संदर्भों में जगह दी है तथा विभिन्न परिस्थितियों में उनकी गरिमा व मर्यादा को चित्रित किया है। हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्ध, घरेलू और कामकाजी औरत, भ्रष्ट पुलिस व प्रशासनिक तंत्र, सामान्य जनजीवन, तीज–त्योहार, बेरोजगार युवक और उनका संघर्ष, जातिगत ऊँच–नीच, भ्रष्टाचार, गरीबी, शोषण, अनाथ व अभावग्रस्त बच्चे, कच्ची बस्तियाँ, स्वास्थ्य की समस्या, धर्म और राजनीति का घालमेल, उपनिवेशवाद, साम्यवाद, रिश्तों में बढ़ती दूरियाँ, बाजार की चकाचौंध, साइबर अपराध, पर्यावरण व पानी समस्या, ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि ऐसे अनेक मुद्दे हैं जिन पर लेखिका ने अपने विचार रखे हैं, ताकि पाठक के मन में उनके प्रति गहरी समझ विकसित हो सके। चीजों व घटनाओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने का नजरिया विकसित हो सके।

अपने स्त्री–पात्रों की जीवन–गाथाओं के वर्णन तथा नारी–चित्रण में लेखिका ने पूरी तटस्थता व निष्पक्षता के साथ अपनी बात रखी है। स्वयं को नारी के प्रति कहीं भी नहीं झुकाया है अपितु एक संवेदनशील रचनाकार के रूप में पूरी सच्चाई के साथ जीवन–यथार्थ से पाठक को रूबरू करवाया है। उनके उपन्यासों में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की प्रधानता देखने को मिलती है। नासिरा जी का मानना है कि यदि हमें सभ्य समाज का निर्माण करना है तो औरत को बराबरी का हक देना चाहिए। उसकी अक्ल पर शक करने की बजाय परस्पर सम्मान का भाव जगाना होगा क्योंकि एक स्तर के बाद हम औरत–मर्द नहीं रह जाते हैं, बल्कि हमारा काम हमारी पहचान होती है, हमारी अक्ल हमारी कसौटी होती है। साथ ही लेखिका के मन में ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं हो। वे पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हैं और उनका मानना है कि अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है। स्वस्थ समाज की परिकल्पना को साकार करने की उम्मीद, वे आज की ऊर्जावान और प्रगतिवादी सोच से युक्त नई पीढ़ी से लगाती हैं। समाज को विकृत मानसिकता और अमानवीयता से छुटकारा इसी समाज की युवा पीढ़ी ही दिलवा सकती है। अक्षयवट का जहीर और उसके साथी, कुइयाँजान के डॉ. कमाल और

समीना, ठीकरे की मंगनी की महरुख़, दूसरी जन्नत की रुख़साना, सात नदियाँ एक समन्दर की तय्यबा व उसकी सखियाँ, काग़ज़ की नाव का ज़ाकिर और उसके दोस्त ऐसे ही नवयुवकों व नयी पीढ़ी का प्रतीक हैं जो विभिन्न तरीकों से समाज को बदलने की चेष्टा करते हैं, समाज में व्याप्त शोषण, गरीबी, अत्याचार व अन्याय को मिटाना चाहते हैं। यदि वर्तमान समाज ऐसे पात्रों से प्रेरणा लेकर तथा सबको साथ लेकर आगे बढ़ने का प्रयास करे तो निश्चित ही एक सुनहरे भारत का निर्माण संभव हो सकेगा।

'साहित्य, समाज और संस्कृति' इन तीनों में परस्पर आधार–आधेय सम्बन्ध है और एक–दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं। अतः इन तीनों में आपसी सामंजस्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साहित्य का आदि और अन्त समाज से होता है। समाज की अभिव्यक्ति साहित्य का प्रारम्भिक उद्देश्य है तो समाज को सुसंस्कृत व संस्कार सम्पन्न बनाकर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की सृष्टि करना उसका अंतिम ध्येय है। साहित्य अपनी विभिन्न विधाओं के माध्यम से समाज के आचार, विचार और व्यवहार को चित्रित करने व संवारने का कार्य करता है। इसमें व्यक्ति और समाज के अन्तः और बाह्य दोनों रूपों का चित्रण होता है। प्रत्येक व्यक्ति और समाज का अन्तः उसका मनोविज्ञान एवं संस्कृति बोध है और बाह्य उसका सामाजिक बोध। जिन तत्त्वों से मानव अपना मानसिक एवं शारीरिक परिष्कार करता है और परिष्कार के उपरान्त अपनी उज्जवल वृत्तियों से समाजोन्नयन तथा राष्ट्रोत्थान करता है, वह संस्कृति है। संस्कृति विषयक बोध ही सांस्कृतिक चेतना कहलाती है। सांस्कृतिक चेतना व्यक्तिगत स्तर पर अनुभूत होकर भी 'स्व' से ऊपर उठकर सामाजिक हित की बात करती है। इसी कारण एक साहित्यकार सृजन के दौरान 'स्व' का इस तरह से विस्तार करता है कि सम्पूर्ण विश्व के सांस्कृतिक तन्तु उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त एक तत्त्व का दर्शन करने लगता है। यही चेतना का सर्वोत्कृष्ट रूप है और इसी को सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है अतः प्रत्येक साहित्यिक रचना आवश्यक रूप से सांस्कृतिक भूमिका अदा करती है परन्तु इसकी अभिव्यक्ति साहित्य के तीनों पक्षों–लेखक, कृति और पाठक के आधार पर तीन स्तरों पर होती है। इन तीनों पक्षों या कहें उपकरणों के माध्यम से ही कोई भी साहित्यिक कृति सांस्कृतिक चेतना की संवाहिका बनती है। 'उपन्यास' एक ऐसी ही अन्यतम साहित्यिक विधा है जो व्यष्टि और समष्टि को रूपायित करने में पूर्णतः समर्थ है।

नासिरा जी समकालीन हिन्दी कथा साहित्य की प्रख्यात उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यास साहित्य में विभिन्न संदर्भों व कथानकों के अन्तर्गत उनके सामाजिक बोध के साथ–साथ सांस्कृतिक बोध स्वतः ही चित्रित हो आया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में समकालीन सांस्कृतिक

तंतुओं को गहराई से छूकर अपनी विशिष्ट शैली के माध्यम से उसके मायनों को पाठकों को समझाया है। समकालीन समाज में चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों के खान–पान, रीति–रिवाज, रस्में, रहन–सहन, वेशभूषा, तीज–त्योहार, आचार–विचार, जीवन–पद्धति, परम्पराएँ, साज–सज्जा, आभूषण, संस्कार इत्यादि सांस्कृतिक मूल्यों का कुशल चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नासिरा जी के सभी उपन्यास अलग–अलग पृष्ठभूमि, परिवेश, विषय एवं कथानकों पर आधारित है। साथ ही ये विभिन्न कालखण्डों में लिखे गये हैं। अतः स्वाभाविक है कि सबके सांस्कृतिक मूल्यों व तत्त्वों में भी कुछ विभिन्नताएँ अवश्य होगी। साथ ही रचनाओं में सांस्कृतिक तन्तु एक–दूसरे में इस प्रकार सुगुम्फित हैं कि उन्हें बिन्दुवार दर्शाना विषय के स्पष्टीकरण हेतु समीचीन प्रतीत नहीं होता। अतः रचनागत सांस्कृतिक चेतना का अनुशीलन भी प्रत्येक रचना का भिन्न–भिन्न किया गया है। **'शाल्मली'** उपन्यास में नासिरा जी ने भारतीय संस्कृति के उस पवित्र रिश्ते की ओर इशारा किया है, जो अग्नि को साक्षी मानकर दो अनजान हृदय पति–पत्नी के रिश्ते में बंधकर एक हो जाते हैं तथा सात जन्मों तक साथ निभाने की कसम खाते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध की कसौटी होता है एक–दूसरे की भावनाओं का आदर व सम्मान। परन्तु न जाने किस चीज की तलाश में इंसान उस सौगन्ध को भूलकर इधर–उधर भटकता रहता है और जब बुरे दिन आते हैं तो उत्साहित दिनों के साथी पास भी नहीं फटकते। अतः रिश्ते की पवित्रता व उदात्तता को बनाये रखना ही सुखी जीवन का मूल है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी अपनी दिशा से कहीं भटक गयी सी लगती है क्योंकि एक तरफ तो हम बड़ी–बड़ी डिग्रियों और मोटे–मोटे शोध–ग्रन्थों से दबे जा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ मानवीय सम्बन्ध की पकड़ हमारे हाथों से छूटती जा रही है। **'ठीकरे की मंगनी'** में लेखिका ने बोसीदा हो चुकी रस्मों को छोड़कर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। उनका मानना है कि व्यक्ति को परिस्थिति अनुकूल निर्णय लेने चाहिए, न कि आँख बन्द करके परम्पराओं को ढोना चाहिए। **'जिंदा मुहावरे'** सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें बताया गया है कि हर प्राणी का अपनी जगह, अपनी जमीन या सरजमीं से बेहद प्रेम होता है, आत्मिक जुड़ाव होता है। इसी कारण अपनी सरजमीं से बिछोह को वह सहन नहीं कर पाता। जैसे–तैसे यदि जी भी गया तो वह मुर्दा ज़िस्म के समान ही होता है। साथ ही यह भी समझाने का प्रयास किया है कि किसी भी मुल्क, कौम या राष्ट्र की समृद्धि का पैमाना उसकी धन–दौलत आदि भौतिक चकाचौंध नहीं होती अपितु उसका आधार होता है उसकी तहजीब और तरीक़े। धार्मिक उन्माद और साम्प्रदायिकता के परिणाम बड़े वीभत्स होते हैं। इनका धर्म के मूल तत्त्व से कोई लेना देना नहीं

होता है। सिर्फ और सिर्फ मानवता शर्मसार होती है। वर्तमान में धर्म का बाजारीकरण हो गया है। लोग धार्मिक अवसरों को भी निजी स्वार्थों की पूर्ति का साधन बनाने से भी नहीं चूकते। धर्म आचरण से हठकर दिखावेपन का शिकार होता जा रहा है। **'सात नदियाँ एक समन्दर' (बहिश्ते–ज़हरा)** में ईरानी संस्कृति का बहुआयामी चित्रण है। ईरानी क्रांति के ताने–बाने पर आधारित इस रचना में बताया गया है कि धर्म जो मनुष्य को दया, ममता, त्याग, परोपकार, धैर्य और सहिष्णुता का पाठ पढ़ाता है, का मूल भाव कहीं खो गया है। कभी राजनीतिज्ञों द्वारा तो कभी धर्म के ठेकेदारों द्वारा लोगों की धार्मिक भावनाओं को उकसाकर धार्मिक उन्माद को बढ़ावा दिया जाता है। अपनी निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु करवाई गई ईरानी क्रांति को धार्मिक क्रांति का रूप देकर आम इंसान को उसमें झोंक दिया जाता है।

'अक्षयवट' उपन्यास तो गंगा–जमुनी संस्कृति या तहज़ीब का जीवन्त दस्तावेज है। इस उपन्यास में हिन्दु–मुस्लिम की मिली–जुली संस्कृति, रीति–रिवाजों, परम्पराओं, तीज–त्योहारों और उत्सवों को चित्रित किया है। इलाहाबादी संस्कृति के सूक्ष्म से सूक्ष्मतम पहलू का सजीव चित्रांकन कर नासिरा जी ने महनीय स्थान प्राप्त कर लिया है। साथ ही मजहब, मत, पंथ, जाति, सम्प्रदाय इत्यादि के वैचारिक मतभेदों को भुलाकर एक मानवीय दृष्टिकोण की प्रेरणा दी है। इसी में समाज व राष्ट्र का विकास निहित है। यही सोच वह अक्षयवट है जिसकी आगोश में नानावर्णीय संस्कृति की अद्भुत छटा देखने को मिलती है। **'कुइयाँजान'** उपन्यास में तकनीकी अनुसंधान के नाम पर प्रकृति के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ के विरुद्ध आवाज उठाकर प्रकृति व प्राकृतिक जल–स्रोतों के संरक्षण की प्रेरणा दी है। किसी भी संस्कृति को सही तरीके से पुष्पित एवं पल्लवित होने के लिए जल एवं प्राकृतिक संसाधनों की महती आवश्यकता होती है। हर प्रदेश व क्षेत्र की जलवायु के अनुरूप ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक ताना–बाना विकसित होता है। प्रत्येक जगह का खान–पान, पहनावा, रीति–रिवाज, संस्कृति यहाँ तक कि लोकगीत, संगीत, लोककला आदि भी प्रादेशिक स्थिति के आधार पर विकसित व पल्लवित होते है। हमारे जो ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थल हैं, उनके प्रति आज उपेक्षा भाव देखा जाता हैं। इनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व को पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाने में हम असमर्थ रहे हैं। इस कारण हमारी धरोहर, जो हमारी जीवन–शैली का हिस्सा थी, वह काल का ग्रास बनती जा रही है। अतः वर्तमान में इनका संरक्षण ही एकमात्र उपाय है।

'ज़ीरो रोड' उपन्यास के एक छोर पर धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत का केन्द्र इलाहाबाद है और दूसरे छोर पर ताज़िरों का शहर दुबई। इस प्रकार यह उपन्यास मध्यपूर्व

एशिया और भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति को दर्शाता है। दुबई में अलग–अलग धर्म एवं संस्कृति के लोग रहते हैं तथा सभी लोगों को अपने–अपने धर्म एवं संस्कृति के अनुसार जीने की स्वतन्त्रता है लेकिन अपनी मान्यताओं को यहाँ सार्वजनिक बनाया नहीं जा सकता है। दुबई में धर्म संस्कृति को उतना महत्त्व नहीं है जितना व्यापार को है। यहाँ इस्लाम धर्म है मगर धर्म की जकड़न नहीं है।

'काग़ज़ की नाव' वृत्तान्त है उन बिहारी परिवारों का, जिनका कोई न कोई पुरुष सदस्य खाड़ी देशों में नौकरी करने गया हुआ है। वतन से दूर रहने वाले अपने पीछे छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक का भरा–पूरा संसार। चंद रूपये भेजकर वे ज़रुरतों व जिम्मेदारियों को पूरा करने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक विछिन्नता उत्पन्न हो जाती है। साथ ही इन प्रवासीजनों के द्वारा अनायास ही सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी होता है। समाज में व्याप्त अंधविश्वास, जो एक व्यवसाय का रूप ले चुका है, के विरुद्ध भी गहरा आक्रोश व्यक्त किया गया है। **'अजनबी जज़ीरा'** के माध्यम से लेखिका ने संदेश दिया है कि विश्व में जहाँ कहीं भी विध्वंस का ताण्डव देखने को मिलता है, वहाँ मानवता शर्मसार हो उठती है। संस्कृति व मूल्य तहस–नहस हो जाते हैं। उनके मायने बदल जाते हैं। इसी स्थिति में बगदाद शहर में इराकी समाज व संस्कृति को यहाँ दर्शाया गया है।

संस्कृति और परम्परा की बाड़ेबंदियों के आर–पार जाकर संबंधों के नए सूत्र खोजने की कोशिश है उपन्यास **'पारिजात'**। इसमें तीन प्रगाढ़ मित्र परिवारों की जीवन गाथाओं व कहानियों के माध्यम से अनेक संस्कृतिगत परतें खुलती हैं। उपन्यास का प्रधान पात्र 'रोहन' इलाहाबाद से है तथा नायिका रूही लखनऊ से है। इन दोनों शहरों की गंगा–जमुनी संस्कृति के चित्रण के अलावा इस कृति का सांस्कृतिक फलक यूरोप के साथ–साथ पश्चिम एशियाई अरब देशों तक फैला हुआ है। "इलाहाबाद, तेरा कोई जवाब नहीं। मैं बदल गया, जिंदगी बदल गई, मगर यार, तेरी गंध में कोई फ़र्क नहीं आया। वही पुराने दुलार और प्यार की गर्मी। नायक के इस कथन के माध्यम से इलाहाबाद की अक्षय विरासत, उसकी जीवन्तता, लोक–संस्कृति व उन्मुक्त जीवन–शैली का साकार हो उठती है। वहीं दूसरी तरफ तारीख़ी शहर लखनऊ की तमीज़ व तहज़ीब, आदर्श गुरु–शिष्य परम्परा, आंचलिक लोककला व संस्कृति, भारतीय व पाश्चात्य परिवरिश का स्वरूप, हुसैनी ब्राह्मण का इतिहास इत्यादि से रूबरू होता हुआ पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ''इलाहाबाद एक हक़ीक़त है और लखनऊ एक ख्वाब।"

'शब्द पखेरू' उपन्यास से हमें पता चलता है कि प्रत्येक देश के सांस्कृतिक मूल्य अलग–अलग होते हैं। यहाँ तक कि संस्कृति, परिवेश, भाषा, खान–पान, जीवन–मूल्य और नैतिकता का पैमाना भी। आज की युवा पीढ़ी सामाजिक मूल्यों व सिद्धान्तों से ज्यादा तकनीक पर भरोसा करती है। वह शार्ट कट रास्ते से आगे बढ़ने की चाह रखती है और इसी महत्त्वाकांक्षा के कारण अनायास ही साइबर अपराध की ओर बढ़ जाती है लेकिन जब शब्द दगा देते हैं तो समझ में आता है कि सफलता का कोई शॉर्टकट नहीं होता। साथ ही पीढ़ी दर पीढ़ी हो रहे सांस्कृतिक परिवर्तनों पर भी यह उपन्यास प्रकाश डालता है। **'दूसरी जन्नत'** उपन्यास चिकित्सा विज्ञान और शरीयत के अन्तःसंघर्ष के बीच फँसी इंसानी ज़िन्दगी की मनोव्यथा का जीवन्त चित्रण है। इसके अलावा इसमें बताया गया है कि संयुक्त परिवारों में बुजुर्गों के साये में नई पीढ़ी को सहज में ही संस्कार मिल जाते हैं। ऐसी परिवारों में पले–बड़े बच्चे मानसिक रूप से ज्यादा सशक्त व समर्थ बनते हैं। स्वस्थ परिवार व स्वस्थ समाज की परिकल्पना करते हुए लेखिका कहती है कि जीवन में हर नये रिश्ते के लिए जगह बनानी पड़ती है। तरक्की के साथ–साथ हमें आज के दौर में रिश्तों को संभाले रखना एक बड़ी चुनौती है। साथ ही यह संदेश भी मिलता है कि धर्म इंसान को किस हद तक भीरू बना देता है कि माँ की ममता का उबलता स्रोत तक अचानक सूख जाता है। इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यम से नासिरा जी ने मुस्लिम समाज में हो रही उस हलचल को छूने का प्रयास किया है जो रीति–रिवाजों, खान–पान, पहनावा, धार्मिक मान्यताओं, विज्ञान और धर्म का अन्तःसंघर्ष, निःसन्तान दम्पती की ललक इत्यादि विभिन्न रूपों में देखने को मिलती है।

इसके अतिरिक्त सभी रचनाओं में गंगा–जमुनी संस्कृति, पारस्परिक प्रेम व सौहार्द्रता के प्रतीक हिन्दु–मुस्लिम तीज–त्योहारों, ईद, मुहर्रम, रमजान, नौरुज, संस्कारों व रस्मों–दूध बख़्शना, बिस्मिल्ला की रस्म, जन्मोत्सव, गोद भराई, विवाह आदि विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक क्रियाओं तथा उनके सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्त्व से पाठकों को रूबरू करवाया है। इस प्रकार नासिरा जी की लेखनी मानवी संस्कृति की हिमायती है। वह मनुष्य को सरहदों के दायरे में नहीं बाँधती बल्कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की दृष्टि से देखती है।

आज मानव जीवन नानाविध समस्याओं से घिरा हुआ है, जो मानव को जकड़कर उसका शोषण कर रही हैं। प्रयोगधर्मी लेखिका नासिरा जी ने अपनी औपन्यासिक रचनाओं में समकालीन समस्याओं एवं सामाजिक ताने–बाने को इस प्रकार पिरोया है कि वे किसी व्यक्ति व पात्र विशेष की न लगकर सम्पूर्ण जन की लगती है। लेखिका ने सिर्फ समस्याओं का उद्‌घाटन ही नहीं किया है बल्कि उनके मूल तक जाकर उनके समाधान भी सुझाने का प्रयास किया है। समस्याओं

को केवल एक नज़रिये से देखने की बजाय लेखिका ने उनका चित्रण करते समय किसी एक वर्ग या समाज की समस्याओं को स्थान न देकर वर्ग भेद की दूरी को मिटाने का प्रयास करते हुए 'सर्वधर्म समभाव' पर विश्वास प्रकट किया है। हर वर्ग, हर प्रांत, हर देश की समस्याएँ अलग–अलग होती हैं, अतः उनके समाधान भी अलग–अलग तरह से सुझाये हैं। कई स्थानों पर समस्याओं का चित्रांकन इस ढंग से किया है कि पाठक बिना समाधान सुझाये ही समाधान के मुहाने तक पहुँच जाता है। उनकी रचनाओं में गाँव की छोटी से छोटी समस्या से लेकर वैश्विक समस्याओं तक का जिक्र किया गया है। पारिवारिक समस्याओं में उन्होंने ज्यादातर परिवार व समाज को आघात न पहुँचाने की बात की है। स्त्री–पुरुष असमानता, असफल दाम्पत्य जीवन, संतानहीनता, नारी–शिक्षा के प्रति सामाजिक नज़रिया, बाल–विवाह, दहेज की समस्या, गाँवों की उपेक्षा, भ्रष्टाचार, अन्याय व शोषण, जातिवाद, ऊँच–नीच, छुआछूत, साम्प्रदायिकता, अंधविश्वास, बुजुर्गों की उपेक्षा, सूचना क्रांति के बढ़ते दुष्प्रभाव, एड्स की भयावहता, वेश्यावृत्ति एवं लेसबियन सम्बन्ध, बच्चों के साथ हो रहा अमानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं अत्याचार, बेकारी, बेरोजगारी, मजदूर वर्ग की दयनीय स्थिति, भौतिकवाद एवं बाजारीकरण, पानी की समस्या, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की उपेक्षा, विभाजन का दंश इत्यादि महत्त्वपूर्ण समस्याओं की ओर पाठक का ध्यान खींचा है। जिनमें सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनीतिक, धार्मिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सर्वविध समस्याओं का समावेश है। चाहे स्त्री–पुरुष सम्बन्ध की बात हो, चाहे बच्चों, जवान और बुजुर्गों की, चाहे मजदूर व शोषित वर्ग हो, चाहे साहूकार व पूँजीपति वर्ग, चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे तकनीकी व औद्योगिकीकरण का क्षेत्र, हर बारीक से बारीक समस्या के प्रति लेखिका ने आवाज उठायी है। न केवल ध्यान खींचा है बल्कि पूरी निडरता, साहस व साफगोई के साथ तथ्यपूर्ण तरीके से उन्हें पेश किया है। केवल काल्पनिक मसाला तैयार कर उन्हें नहीं परोसा गया है अपितु उन्हें अनुभव व व्यवहार की कसौटी पर पूरी तरह कसकर पाठकों के सम्मुख रखा है। इसलिए हर पाठक स्वयं को उस समस्या के इर्द–गिर्द ही महसूस करता है। इससे साबित होता है कि नासिरा शर्मा एक संवेदनशील एवं जागरूक महिला कथाकार हैं।

नासिरा शर्मा आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की ऐसी उत्कृष्ट लेखिका हैं, जिन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नया पड़ाव समवर्ती एवं परवर्ती साहित्यकारों के लिए निर्मित किया है। उनके उपन्यासों में नवीन भावबोध के साथ–साथ प्रतिभाजन्य नवीन शैल्पिक विधान परिलक्षित होता है। साथ ही रचना–शिल्प की दृष्टि से भी वे बेहद सधे हुए हैं। उनकी रचनाओं में जीवन–यथार्थ अपने आनुभूतिक आवेग के कारण काव्यात्मकता से सरोबार है। यही कारण है कि

लेखिका अपनी बात कहने के लिए न तो भाषायी आडम्बर का सहारा लेती हैं, न किसी अमर्तन का। उनकी रचनाओं में धरती को मोह लेने वाली सौंधी खुशबू के साथ अनुकूल एवं सहज भाषा का जीवंत प्रयोग है। अतः वे अन्तः एवं बाह्य, दोनों प्रकार से अद्‌भुत शिल्प में आबद्ध हैं।

उपन्यासों के अन्तःस्वरूप के अन्तर्गत उपन्यासों की कथावस्तु तथा वस्तुगत परिवेश समाहित होता है। नासिरा जी के सभी उपन्यास सामाजिक हैं। इनमें भारतीय एवं पश्चिम एशियाई समाज के यथार्थ चित्रण के साथ ही समकालीन समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया गया है। नासिरा जी ने प्रत्येक उपन्यास में मौलिक, समकालीन एवं नवीन कथ्य का चयन किया है। कथ्य की मौलिकता व वैचारिकता लेखिका की लेखकीय प्रतिभा की परिचायक है। कथानक में पारस्परिक सम्बद्धता, प्रवाह की अनवरतता, घटनाक्रम की सत्यता, शैलीगत निर्माण कौशल, वर्णात्मक रोचकता, तदनुरूप भाषा व पात्रों का चयन इत्यादि नासिरा जी के उपन्यासों के कथ्य की विशिष्टताएँ हैं जो उन्हें अग्रिम पंक्ति में विराजमान करती हैं। उनके उपन्यासों में कहीं भी भाषा–शैली का बोझिलपन नजर नहीं आता है क्योंकि उन्होंने पात्र, परिवेश, भाव, कथ्य व स्थिति विशेष को देखकर ही तदनुकूल भाषा–शैली अपनायी है। अपनी अभिव्यक्ति में भाषा की तरलता और सहजता के सम्बन्ध में उनका कहना है कि– "इसका श्रेय में उन चरित्रों को दूंगी, जो मेरी रचना की जमीन पर खड़े हो वैसी ही भाषा मुझसे लिखवाते हैं जैसे वे खुद होते हैं।" नासिरा जी के उपन्यासों में माटी की गंध है, परिवेश की महक है, ज़मींनी हकीकत व जीवन की सच्चाई है, अतः तदनुरूप ही उनकी बनावट और रंगीनियत है। उनकी लेखनी ज़मीन–ज़मीन का फ़र्क़ भली–भाँति पहचानती है। इसलिए कथ्य के परिवेश में आम बोल–चाल में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों व कहावतों का उन्होंने भरपूर प्रयोग किया है। पात्र, परिवेश, भाव व भाषा को ध्यान में रखते हुए ही बिम्ब व प्रतीकों का समावेश किया है। शब्द व वाक्यों का प्रयोग भी उसी अनुरूप हुआ है। साथ ही उन्होंने अपनी संवेगात्मक तीव्रता और कथ्य की सामाजिक व्यापकता के मुताबिक अपने विचार एवं भावों की अभिव्यक्ति के लिए वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक, संवादात्मक, सूचनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, पत्रात्मक, पूर्वदीप्ति, स्मृतिपरक व फ्लैश बैक, डायरी व पुस्तक लेखन, वक्तव्य व उद्‌बोधन, कथा इत्यादि विविध शैलियों का प्रयोग किया है। लेखिका की अपनी औपन्यासिक रचनाओं के शीर्षक इतने प्रभावी, सार्थक और आकर्षक बन पड़े हैं कि नाम सुनते ही पाठक के मन में उन्हें पढ़ने व जानने की लालसा जाग उठती है। इसलिए उनकी सभी रचनाएँ लेखकीय प्रतिभा का प्रदर्शन करने की बजाए स्वाभाविकता की चादर ओढ़े हुए हैं।

इस प्रकार नासिरा शर्मा के उपन्यासों में निहित सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतनामूलक तत्त्वों के अनुशीलन के उपरान्त कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी साहित्य और बौद्धिकता के संसार में कुछ गिने–चुने लोग ही होंगे जिनके पास विषयों का इतना बड़ा वितान हो और इतनी सारी भाषाओं की समझ हो। हिंदी के अलावा अंग्रेजी, उर्दू, फ़ारसी और पश्तो पर अपने अधिकार के साथ उन्होंने जितना कुछ लिखा है, वह हिंदी साहित्य और समाज के लिए अमूल्य निधि है। वह भारत की नहीं, एशिया की सांस्कृतिक धरोहर हैं। 'शाल्मली, 'ठीकरे की मंगनी', 'सात नदियाँ एक समन्दर', (बहिश्ते–ज़हरा), 'ज़िन्दा मुहावरे', 'अक्षयवट', 'कुइयाँजान' व 'दूसरी जन्नत' जैसी दर्जन भर औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से इन्होंने सिर्फ़ स्त्री लेखन की ही नहीं, साहित्य की सरहदें भी तोड़ी हैं। इससे सिद्ध होता है कि नासिरा शर्मा हिन्दी कथा साहित्य की पुरोधा हैं, एक संवेदनशील साहित्यकार हैं, समाज की सूक्ष्म अध्येता हैं, मानवता की पक्षधर हैं, मानव मन की कुशल मनोविश्लेषक हैं, मनोभावों की मूर्तिकार हैं, शब्द साम्राज्ञी हैं, वाग्विदग्ध हैं, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं की रक्षक हैं, युगानुकूल परिवर्तनों की प्रबल पक्षधर हैं, समाज की जड़ों को खोखला करने में लगी हुई विसंगतियों को सुसंगतियों में बदलने की समर्थक हैं। अन्त में पाठकों को समर्पित नासिरा जी की इन पंक्तियों के साथ अपनी लेखनी को विराम देना चाहूँगी–

"आकाश एक यथार्थ है, सूरज का एक अस्तित्व है, जो बुनियादी है, मगर उन पर छा जाने वाले मेघ तो ऋतु के बदलते रंग समान हैं, जो गरजते भी हैं, बरसते भी हैं और उड़ भी जाते हैं। धरती एक स्थायी यथार्थ है। अब प्रश्न है यह वर्षा बरसी कहाँ खद्दर धरती पर या उपजाऊ धरती पर? किसने स्थाई रूप से कुछ पाया और स्थायी रूप से उसे वापस किया।" (शाल्मली / 163–164)

♦ ♦ ♦ ♦

शोध–संक्षेपिका

शोध–संक्षेपिका

"लेखन का अर्थ केवल आपबीती कहना या अपना सुख–दर्द उड़ेलना या दोषारोपण कर अपना क्रोध निकालना नहीं होता है। बल्कि उसे कलात्मक ढंग से इस तरह कहना होता है कि वह आपकी आपबीती न लगकर जगबीती लगे।"

कथाकार नासिरा शर्मा की आत्मानुभूतिपरक इस उक्ति के अनुसार लेखक की लेखकीय प्रतिभा समाजोपयोगी व प्रभावशाली सृजन का आधार बनती है। एक संवेदनशील लेखक की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा जब स्वर्णमय कलेवर से आवृत्त मिथ्या के भीतर स्थित अन्तः सत्ता का साक्षात्कार करती है तब वह लेखक की संवेदनामूलक अजस्र काव्यधारा के रूप में प्रस्फुटित हो उठती है। चिंतन और सृजन के सहज प्रस्फुटन की इस प्रक्रिया में रचनाकार मानव हृदय से एकाकार होकर उसकी संवेदनाओं को महसूस करता है तथा उसके हृदय की गहराईयों तक जाकर व उसकी पीड़ाओं को यथोचित समाधान की दिशा देकर जीवन को आनन्दानुभूति से परिपूर्ण कर देता है और वस्तुतः सृजन का यही लक्ष्य है। रचनाकार की हृदयानुभूति की शब्दार्थरूप सम्यक् अभिव्यक्ति सकल समाज के मूल स्वरूप को, उसकी पीड़ा को, उसके आचार–विचारों को, मनोभावों को व संवेदनाओं को प्रतिबिम्बित करती है, उनको समाधान की दिशा प्रदान करती है तथा भटकाव से हटाकर ध्येय मार्ग की ओर उन्मुख करती है। साथ ही रचना–वैशिष्ट्य भी स्वतः साकार हो उठता है। इसलिए "साहित्य समाज का दर्पण है" यह उक्ति पूर्णतः सत्य है।

आदिकाल से लेकर अद्यावधि हिन्दी साहित्य–सरिता सहज व सरल रूप में प्रवाहमान होती हुई विश्व–साहित्य में अपना अप्रतिम स्थान बनाये हुये है। कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तान्त, संस्मरण, आत्मकथा, आलोचना, डायरी, नाटक, रेडियो रूपक, लघुकथा, लेख–संग्रह, अनुवाद, संपादन कविता संग्रह आदि समस्त समृद्ध विधाओं रूपी रत्नों को धारण करने वाले हिन्दी साहित्य का सृजन अनवरत रूप से हो रहा है और नित नये आयाम व स्वरूपों के रूप में विकसित हो रहा है। हिन्दी साहित्य के अवलोकन से प्रतीत होता है कि साहित्य सृजन की प्रक्रिया में गद्य–साहित्य ही सर्वप्रथम सहज रूप से प्रस्फुटित हुआ है। हिन्दी गद्य–साहित्य का उदीयमान सितारा भारतेन्दु युग से देखने को मिलता है। भारतीय एवं भारतेतर साहित्य पर अपना व्यापक प्रभाव स्थापित करने वाले कथा साहित्य का विशाल संसार भारतेन्दु युग से लेकर अद्यावधि अत्यन्त लोकप्रिय, उपादेय एवं समृद्ध रूप में विराजमान है। वैसे तो साहित्य की प्रत्येक विद्या में 'कथा तत्त्व' मूल रूप से विद्यमान रहता है, परन्तु लोक जीवन में शुद्ध कथा–विधा में

कोई अद्‌भुत ही बात होती है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी कथा–साहित्य का एक नया रूप 'उपन्यास' के रूप में उद्‌भूत हुआ। उपन्यास शब्द 'उप अर्थात् समीप' तथा 'न्यास' अर्थात् धरोहर के शब्द–योग से निर्मित है। इस शब्द का मूल अर्थ है– 'पास में रखी हुई वस्तु'। यह साहित्य की आधुनिक विधा है। इस विधा में मानव जीवन को सर्वांगीण रूप में चित्रित किया जाता है। इसमें मुख्य कथा के साथ अन्य प्रासंगिक कथाएँ भी जुड़ी रहती हैं। उपन्यास में चरित्र विकास हेतु पूर्ण अवकाश भी मिल जाता है। यह कहानी की भाँति जीवन की एक झांकी प्रस्तुत नहीं करता अपितु जीवन का प्रत्यक्ष, सम्पूर्ण एवं बृहद् दर्शन कराता है।

आधुनिक उपन्यासों में विषय–वैविध्य के साथ–साथ शैलियों के भी विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। आत्मकथात्मक शैली, डायरी शैली, पत्र–शैली, वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली आदि विविध शैलियों में उपन्यास लिखे जा रहे हैं। आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों की सूची में 'नासिरा शर्मा' एक प्रख्यात एवं चर्चित उपन्यासकार के रूप में विराजमान है। नासिरा जी के 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'सात नदियाँ एक समन्दर (बहिश्ते–ज़हरा)', 'ज़िन्दा मुहावरे', 'अक्षयवट', 'कुइयाँजान', 'ज़ीरो रोड़', 'पारिजात', 'अजनबी जज़ीरा', 'काग़ज़ की नाव', 'शब्द पखेरू' एवं 'दूसरी जन्नत' इन दर्जन भर उपन्यासों में अधुनातन विषयों में आबद्ध, आधुनिक भारतीय नारी, स्त्री–विमर्श, संघर्ष एवं विद्रोह, जीवन की गहन जकड़न और समय की विसंगतियाँ, कुण्ठा, मूल्यों का ह्रास, हिन्दु–मुस्लिम सौहार्द्रता, शोषण व अन्याय, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, ग्राम्य जीवन व पलायन की प्रवृत्ति, बाजारीकरण, सूचना व तकनीकी के दुरुपयोग व दुष्प्रभाव, जल की व्यथा, शुष्क होती संवेदना तथा अतीत व भविष्य के स्वरूप को अत्यन्त बारीकी से उकेरा है। उनके उपन्यासों में समकालीन समाज स्फटिक की भाँति प्रतिबिम्बित होता है। उनमें सर्वसाहित्यावगाही विलक्षण रचनाधर्मिता है।

लेखिका नासिरा शर्मा के इसी वैशिष्ट्य व कृतित्व से प्रभावित होकर ही मैंने उनकी औपन्यासिक रचनाओं को अपने शोध–कार्य का विषय बनाया। **'नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना'** शीर्षक पर आधारित इस शोधकार्य के अन्तर्गत मैंने लेखिका द्वारा विरचित उपन्यासों में प्रतिबिम्बित लेखिका के जीवनदर्शन, रचनागत वैशिष्ट्य, युगबोध, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना, सामयिक समस्याओं व रचनाओं में निहित उनके समाधानों इत्यादि को उद्‌घाटित कर विश्लेषित एवं विवेचित करने का प्रयास किया। 'दुस्तरं सागरं उडुपेन तितीर्षुः (छोटी नौका के सहारे दुस्तक सागर को पार करने की इच्छुक) सदृश मैंने पूरी गहनता एवं गम्भीरता के साथ उनके उपन्यासों में निहित विविध आयामों के साथ तादात्म्य स्थापित करने की कोशिश की है। 'आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्' की मनोस्थिति से युक्त

होकर मैं विद्वज्जनों के श्रीचरणों में अपने इस शोध–प्रबन्ध को समर्पित करती हूँ। उपसंहार को समाहित करते हुए कुल सात अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की अध्याय–योजना निम्न प्रकार है–

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय : नासिरा शर्मा का व्यक्तित्व परिचय

द्वितीय अध्याय : नासिरा शर्मा की सृजन यात्रा के विविध आयाम

तृतीय अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना के विविध आयाम

चतुर्थ अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना के विविध आयाम

पंचम अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में अन्तर्निहित समस्याएँ

षष्ठ अध्याय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों का रचना विधान

उपसंहार

उपर्युक्त अध्यायों व शीर्षकों के अन्तर्गत विवेच्य विषयों का संक्षिप्त प्रतिवेदन निम्न प्रकार है–

प्रथम अध्याय में उपन्यासकार नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिनन पहलुओं पर बिन्दुवार निम्न प्रकार से विचार किया गया है–

(क) नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व का सामान्य परिचय

1. जन्म
2. परिवार
3. शिक्षा
4. व्यवसाय
5. विवाह
6. नैसर्गिक वैशिष्ट्य
7. अभिरूचि

(ख) नासिरा शर्मा के व्यक्तित्व के नियामक तत्त्व

1. पारिवारिक वातावरण
2. शैक्षिक वातावरण
3. बाल्यकालीन स्मृतियाँ एवं अनुभव
4. इलाहाबाद का वातावरण
5. वैवाहिक वातावरण
6. वैदेशिक सम्पर्क व यात्राएँ
7. युगीन परिवेश
7.1 सामाजिक परिवेश
7.2 राजनीतिक परिवेश
7.3 आर्थिक परिवेश
7.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

(ग) पुरस्कार व सम्मान

उपर्युक्त विवरणानुसार कथाकार नासिरा शर्मा के जीवन के विविध आयामों को उपस्थापित करने का प्रयास किया है। नासिरा जी का जन्म एक शिक्षित एवं सम्पन्न शिया मुस्लिम परिवार में 22 अगस्त, 1948 को उत्तरप्रदेश की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक नगरी इलाहाबाद में हुआ। उनका पारिवारिक नाम 'नासिरा अली' था। शादी के उपरान्त अपने पति रामचन्द्र शर्मा के नाम से उपनाम 'शर्मा' ग्रहण कर 'नासिरा शर्मा' नाम पड़ा। नासिरा जी के पिता प्रोफेसर जामिन अली उर्दू के जाने–माने विद्वान् होने के साथ–साथ प्रगतिशील विचारों वाले अच्छे कवि भी थे। माँ नाझनीन बेगम गृहिणी थी। नासिरा शर्मा के दो भाई और दो बहिनें हैं। बड़े भाई सय्यद मोहम्मद हैदर अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन कार्य करते हैं। छोटा भाई सय्यद मज़हर हैदर एक पत्रकार है। दोनों बहिनें साहित्य सृजन में रूचि रखती हैं। बड़ी बहिन फात्मा उर्दू की प्रसिद्ध लेखिका रही हैं। मझली बहिन का नाम शायरा है। बड़े अब्बा, दादा सब ही कवि थे। नासिरा जी की अल्पायु में ही उनके पिता का इंतकाल हो जाने के कारण उनका अधिकांश समय अपनी माँ के सानिध्य में गुजरा। परिवार में सबसे छोटी होने के कारण उनका बचपन बहुत ही लाड़–प्यार में बीता। उनकी प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा इलाहाबाद के कान्वेंट स्कूल में हुई तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से वर्ष 1967 में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली से फारसी भाषा साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और पश्तो भाषा पर गहरी पकड़ होने के कारण ईरान उनके साहित्य शोध का विषय रहा है। अपनी शिक्षा पूरी होने पर नासिरा शर्मा ने सन् 1980 से 1983 तक जामिया मिलिया विश्वविद्यालय दिल्ली में फारसी और उर्दू का अध्यापन कार्य किया। कुछ समय तक रेडियो स्टेशन पर प्रोग्राम ऑफिसर के रूप में भी सेवाएँ दीं। परन्तु सृजन कार्य की व्यस्तता तथा बार–बार विदेश यात्रा में होने वाली कठिनाईयों को देखते हुए उन्होंने स्वयं को स्वतन्त्र पत्रकारिता एवं साहित्य सर्जना में समर्पित कर दिया। नासिरा जी ने 19 वर्ष की उम्र में अजमेर निवासी ब्राह्मण परिवार के डॉ. रामचन्द्र शर्मा के साथ स्पेशल मैरिज एक्ट के तहत अन्तर्धर्मीय प्रेम विवाह किया। विवाहोपरान्त इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान ही बेटी अंजु और बेटे अनिल का जन्म हुआ।

हिन्दी साहित्य की बहुचर्चित उपन्यासकार नासिरा शर्मा का बहिरंग व अन्तरंग उभयविध व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावकारी है। जो उनके लेखकीय व्यक्तित्व एवं संजीदगी का परिचायक है। नासिरा जी स्वभाव से बहुत ही संयमी, सरल, सादगीसम्पन्न, अनुशासन प्रिय, स्पष्ट व मुखर वक्ता, साहसी एवं निर्भीक महिला हैं। दृढ़ता व आत्मबल की धनी, उदारहृदया नासिरा जी के द्वारा की जाने वाली आत्मीयतापूर्ण मेहमाननबाजी, प्राचीन परम्पराओं में उनकी गहरी आस्था,

सर्वधर्म समभाव की प्रवृत्ति, पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्धों को सहेजने का स्वभाव तथा इंसानियत से सराबोर दृष्टिकोण उनको वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। लेखिका होने के साथ–साथ वे कुशल गृहिणी भी हैं। पढ़ना, पढ़ाना, घर सजाना, खाना पकाना, सिलाई, विभिन्न शीर्षकों को लेकर एलबम बनाना आदि उनके रूचिकर कार्य रहे हैं।

नासिरा जी बचपन से ही धार्मिक कर्मकांडों से दूर रही हैं। स्कूल में नमाज़ के पीरियड में भी कहानियों की किताओं में डूबी रहती थीं। नासिरा जी के व्यक्तित्व को सँवारने व निखारने में समकालीन विभिन्न परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके परिवार में स्त्री–पुरुष की समान स्थिति, घर का साहित्यिक वातावरण, उनकी माँ का अनुशासन, शिक्षण संस्थाओं का वातावरण, उनके फारसी के ट्यूशन टीचर रहे उस्ताद खुसरू कसरवी व अन्य शिक्षकों के विचार, बचपन में अपने घर व शहर के आस–पास रहने वाले लोग, दुकानदार व फुटकर विक्रेता तथा उनके साथ रहे निजी अनुभव, इलाहाबाद का सौहार्दपूर्ण साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वातावरण, हिन्दु परिवार में विवाह होने के बाद प्राप्त निजी अनुभव, समय–समय पर की गई विदेश यात्राओं के दौरान उनके जिज्ञासु मन का जमीनी हकीकत से रूबरू होना, समकालीन धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ इत्यादि का उनके व्यक्तित्व व लेखन पर खासा प्रभाव रहा है। इस प्रकार अनुभव व यथार्थ की भूमि पर आधारित उनके महान् सर्जनात्मक योगदान को हिन्दी साहित्य जगत् ने विविध पुरस्कारों व सम्मानों से नवाजा है। जिनमें अर्पण सम्मान (1987–88), गजानन माधव मुक्तिबोध पुरस्कार (1995) महादेवी वर्मा पुरस्कार (1997), कीर्ति सम्मान (1980), इंडोरशन चिल्ड्रेन्स राईटिंग अवार्ड (2000) अन्तर्राष्ट्रीय इन्दु कथा सम्मान (2008), यू.के. कथा सम्मान (2008), साहित्य अकादमी सम्मान (2016) इत्यादि प्रमुख है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नासिरा जी का वैचारिक दृष्टिकोण बहुत ही उन्नत है। वे रुग्ण परम्पराओं की प्रबल विरोधी व आदर्श परम्पराओं की पुनर्स्थापना की आग्रही रही हैं। उनका हर धर्म के प्रति विशाल दृष्टिकोण है। वे सदैव मानवीयता व इंसानियत की पक्षधर रही हैं। उनकी भाषा व लहजे का आरोह व अवरोह बरबस ही मन को बाँध लेता है।

द्वितीय अध्याय में नासिरा जी की सृजन यात्रा के विविध आयामों पर बिहंगम दृष्टिपात निम्न प्रकार से किया है–

(क) नासिरा शर्मा की सृजन यात्रा : एक परिचय

(ख) नासिरा शर्मा के कहानी संग्रह

1. शामी कागज (1980)
2. पत्थर गली (1986)
3. संगसार (1993)
4. इब्ने मरियम (1984)
5. सबीना के चालीस चोर (1997)
6. खुदा की वापसी (1998)
7. इनसानी नस्ल (2000)
8. शीर्ष कहानियाँ (2001)
9. दूसरा ताजमहल (2002)
10. बुतखाना (2002)

(ग) उपन्यास साहित्य

1. शाल्मली (1987)
2. ठीकरे की मंगनी (1989)
3. ज़िन्दा मुहावरे (1993)
4. सात नदियाँ एक समन्दर (1995)–बहिश्ते–ज़हरा
5. अक्षयवट (2003)
6. कुइयाँजान (2005)
7. ज़ीरो रोड (2008)
8. पारिजात (2011)
9. अजनबी जज़ीरा (2012)
10. काग़ज़ की नाव (2014)
11. शब्द पखेरू (2017)
12. दूसरी जन्नत (2017)

(घ) राजनीतिक विश्लेषणपरक रचनाएँ

1. मर्जीना का देश–इराक़ (2003)
2. अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान (1990)
   (i) अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान–देश और क्रांति (भाग–1)
   (ii) अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान–क्रांति और पड़ोसी देश (भाग–2)

(ङ) लेख संग्रह

1. किताब के बहाने (2001)
2. राष्ट्र और मुसलमान (2003)
3. औरत के लिए औरत (2003)
4. औरत की दुनिया (2015)
5. वो एक कुमारबाज़ थी (2010)
6. औरत की आवाज़ (2010)

(च) रिपोर्ताज – जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं (2003)

(छ) संस्मरण – यादों के गलियारे (2009)

(ज) अनुवाद – क़िस्सा जाम का (1977), शाहनामा–ए–फ़िरदौसी (1990), प्रेम कथा (2001), अन्य अनूदित रचनाएँ

(झ) संपादित रचनाएँ

1. इकोज़ ऑफ ईरानियन रिवोल्यूशन : प्रोटेस्ट पोयटरी (1979)
2. क्षितिज पार (1988)
3. अन्य सम्पादन

(ञ) आलोचना–ग्रन्थ – किताब के बहाने (2001), सबसे पुराना दरख़्त (2005), जब समय बदल रहा हो इतिहास (2010)

(ट) बाल साहित्य – बदलू, दिल्लू दीमक, भूतों का मैकडोनल, बाज की नजर, अंधार पत्थर, संसार अपने–अपने, दर्द का रिश्ता, गुल्लू व अन्य रचनाएँ।

(ठ) नाट्य रूपान्तरण

नासिरा शर्मा हिन्दी की प्रख्यात एवं प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य में जितना योगदान दिया है उससे कहीं अधिक योगदान साहित्येतर लेखन के क्षेत्र में दिया है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, बाल–साहित्य, रिपोर्ताज, संस्मरण, साक्षात्कार, आलोचना, लेख, संपादन, अनुवाद, स्तम्भ व सर्जनात्मक लेखन इत्यादि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अनवरत लेखनी चलाई है। इनकी हर रचना साहित्य–जगत् में अपना अलग ही महत्त्व रखती है। इनकी हर कृति में आयी कहानियाँ और उनके पात्र हमेशा अपने व समाज के हक की लड़ाई लड़ते नजर आते हैं। कोई भी पात्र विपरीत परिस्थितियों से घबराकर निराश व टूटता नजर नहीं आता है अपितु पाठक के मन में आशावादी दृष्टिकोण का संचार कर जाता है। नासिरा जी प्रारम्भ से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति की महिला रही है। अतः उनकी कोई भी रचना कल्पनाप्रसूत नहीं होकर यथार्थबोध से सम्पृक्त नजर आती है। उनके अन्दर छुपा पत्रकार उन्हें शोध की ओर अग्रसर करता है। समाज के संघर्षों को नजदीक से देखने के बाद ही वे अपनी लेखनी चलाना शुरु करती है। इसी कारण उनकी लेखनी में खुलापन साफ–साफ नजर आता है। उनकी कृतियों में जहाँ एक तरफ मुस्लिम समाज व जीवन की सच्चाईयाँ कड़वाहट के साथ सामने आई हैं, वहीं दूसरी तरफ हिन्दू समाज का वह तबका भी है जो धार्मिक अंधविश्वासों से घिरा हुआ है।

जहाँ तक अनुसंधेय औपन्यासिक रचनाओं की बात की जाए तो **'शाल्मली'** उपन्यास में दाम्पत्य जीवन के संतुलन में बाधक बनती जा रही पुरुष की परम्परागत व संकीर्ण मानसिकता के चित्रण के साथ–साथ आदर्श और आधुनिकता में तालमेल बिठाती आधुनिक व शिक्षित नारी का चित्रण किया गया है। **'ठीकरे की मंगनी'** उपन्यास में मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति और रूढ़िग्रस्त वातावरण से बाहर निकलने के संघर्ष की दास्तान है। यह उस नारी की गाथा है जो अपने आपको खोकर और कुछ पाना नहीं चाहती। यह 'महरुख़' के पात्र के माध्यम से संघर्षों की अग्नि में तपकर और भी मजबूत होती नारी के अन्तः साक्षात्कार का उपन्यास है, उसकी अपनी पहचान का उपन्यास है। हिंदुस्तान के बँटवारे की ऐतिहासिक त्रासदी पर आधारित **'ज़िन्दा मुहावरे'** उपन्यास धर्म के नाम पर हुए कत्ले आम और इनसानियत के मारे जाने का वीभत्स चित्रण करता है। उस त्रासदी में धर्मान्धता अपनी पताका फहरा रही थी और मनुष्यता धरती पर

पड़ी हुई तड़प रही थी। यह उपन्यास हमें बतलाता है कि विभाजन जितना विनाशकारी हिन्दुओं के लिए था उतना ही विनाशकारी मुस्लिमों के लिए भी था। **'सात नदियाँ एक समन्दर'** उपन्यास के सभी प्रमुख चरित्र औरतें हैं। इसमें लेखिका द्वारा अन्यायी शाह व खुमैनी शासनों के विरुद्ध पीड़ित लोगों के खड़े होने विशेषतः वहाँ की औरतों के द्वारा ईरानी क्रांति के दौरान लड़ाई का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। **'अक्षयवट'** उपन्यास प्रतीक है उस अविराम भावधारा का—उस अक्षर विरासत का, जिसका शहर इलाहाबाद की धमनियों में निरन्तर विस्तार है। इसमें शहर की धड़कन में रची—बसी ऐसा युवा जिन्दगियों की मर्मस्पर्शी कहानी है, जो जीवन की गहन जकड़न और समय की विसंगतियों को पहचानने और उनसे मुठभेड़ करने की कोशिश करती है। समसामयिक जवलन्त समस्या 'जल की समस्या' को कथावस्तु का आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास **'कुइयाँजान'** हमें बतलाता है कि पानी के होने और नहीं होने पर, दोनों हालातों में इंसानी रिश्ते के रंग और सम्बन्ध किस प्रकार मुख़तलिफ़ हो उठते हैं। **'ज़ीरो रोड़'** उपन्यास के कथानक का केन्द्र इलाहाबाद के ज़ीरो रोड का 'चक मुहल्ला' और व्यापारिक शहर दुबई है। इसमें प्रवासी मानसिकता, महानगरों का एकाकीपन, धर्म के नाम पर होने वाले झगड़े, कामगारों व मजदूरों का शोषण, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आदि समकालीन विश्व की अनेक ज्वलंत समस्याओं को उठाया गया है। साहित्य अकादमी सम्मान, 2016 से पुरस्कृत **'पारिजात'** उपन्यास के विषय में नासिरा जी कहती हैं कि "पारिजात त्रिकोणीय भार पर आधारित है। इस उपन्यास की तहज़ीब को हमने उठाया लखनऊ, इलाहाबाद से। लखनऊ की पुरानी तहज़ीब नवाबों की है और कैसा मिला—जुला कल्चर है वहाँ, कैसे आर्ट एण्ड कल्चर को बढ़ावा मिला था। इलाहाबाद कैसे शिक्षा केन्द्र था। उसके साथ हम ले आए हुसैनी ब्राह्मण का इतिहास, मर्सिया और कर्बला को। इसमें हमने बहुत से किरदार गढ़े हैं, बहुत सी कहानियाँ कही हैं, जैसे जहरे इश्क को ले आई हूँ। मर्सियां को ले आई हूँ।" **'अजनबी जज़ीरा'** में समीरा और उसकी पाँच बेटियों के माध्यम से इराक़ युद्ध के दौरान हुई इराक़ की बदहाली बयान की गई है। दुनियाँ में जहाँ कहीं ऐसी दारुण स्थितियाँ हैं, यह उपन्यास वहाँ का एक अक्स बन जाता है। **'कागज़ की नाव'** इस उपन्यास में बिहार के उन परिवारों का वृत्तान्त है, जिनके घर से कोई न कोई पुरुष खाड़ी मुल्कों में नौकरी करने गया है। वतन से दूर रहने वाले यहाँ छोड़ जाते हैं बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक का भरा—पूरा संसार। खाड़ी मुल्कों से आने वाले रुपए.....और रिश्तों के अंधेरे उजाले। इस प्रकार 'काग़ज़ की नाव' शीर्षक एक रूपक बन जाता है, यानि ज़रूरतों और ज़िम्मेदारियों के समन्दर को चंद रुपयों के सहारे पार करने की कोशिश। **'शब्द पखेरू'** उपन्यास दास्तान है उस आधुनिक युवा पीढ़ी की, जिसको स्वयं से ज्यादा भरोसा है इन्टरनेट और सूचना तकनीकी पर। लेकिन जब शब्दों के दगा देने पर साइबर क्राइम में फँसकर अविश्वास के सुदूर मरुस्थल पर आन खड़ा होती

है, तब उसे असलियत समझ में आती है। **'दूसरी जन्नत'** उपन्यास समकालीन मुस्लिम समाज में हो रही उन हलचलों की ओर इशारा करता है, जो अन्दर ही अन्दर विभिन्न बदलावों के रूप में देखने को मिल रही है। इसमें निःसन्तान दम्पतियों की लालसा और शरीयत के मध्य टकरावों का जीवन्त चित्रण है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा अपने समय की एक समर्थ एवं सशक्त लेखिका है। हिन्दी साहित्य की प्रत्येक विधा में लेखनी चलाकर उन्होंने अपार समृद्धि प्रदान की है।

तृतीय अध्याय में नासिरा जी के उपन्यास साहित्य में चित्रित लोक संवेदना एवं सामाजिक चेतना को पहचाने का उपक्रम है। उपन्यासों में परिलक्षित सामाजिक चेतना को निम्न शीर्षकों में निरूपित किया है—

(क) समाज का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

(ख) सामाजिक चेतना का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यास : सामाजिक चेतना के विविध रूप

1. धार्मिक चेतना
2. आर्थिक चेतना
3. राजनीतिक चेतना
4. सामाजिक चेतना
5. ऐतिहासिक चेतना
6. दलित चेतना
7. नारी चेतना

एक साहित्यकार समाज को जैसा महसूस करता है वही उसके साहित्य में प्रतिफलित होता है। समाज के प्रति संवेदनशीलता ही साहित्य का मूल होता है। साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी समाज विषयक अवधारणाओं को अनायास ही स्पष्ट कर देता है। 'समाज' शब्द संस्कृत के सम् उपसर्गपूर्वक अज् गमनार्थक धातु से घञ् प्रत्यय मिलकर निष्पन्न होता है, जो 'सभा', 'समिति', 'मिलन', 'मजलिस', 'समुच्चय', 'दल' इत्यादि अर्थों का द्योतक है। सामान्यतः 'समाज' शब्द का प्रयोग जनसमूह के लिए किया जाता है। अतः सामूहिक जीवन दृष्टिकोण को लेकर जीवन—यापन करने वाले प्राणी—समूह को समाज कहते हैं। यह एक ऐसा उद्देश्यपूर्ण समूह होता है जो किसी एक क्षेत्र में बनता है, उसके सदस्य एकत्व एवं अपनत्व में बंधे होते हैं। व्यक्ति अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। समाज के बगैर व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है। समाज में कुछ सार्वभौमक विशेषताएँ, जैसे—परस्पर सहयोग, समानता, अमूर्तता, संघर्ष, अन्योन्याश्रितता आदि पाई जाती हैं, जिन्हें अपनाकर ही मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाए रख सकता है।

सामाजिक चेतना से तात्पर्य है समाज से सम्बन्धित चेतना, ज्ञान, समझ, प्रज्ञा, बोध, संवेदनशीलता, चिन्तन, विचार–विमर्श अथवा जागरुकता। लोककल्याणपरक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए साहित्य के माध्यम से प्रयत्न करना तथा सामाजिक मूल्यों का प्रचार–प्रसार करना साहित्य में सामाजिक चेतना का अभिप्राय है। साहित्य का सम्बन्ध एक ओर समाज से जुड़ा होता है अर्थात् वह समाज की चेतना की प्रस्तुति करता है, तो दूसरी ओर चेतना का सम्बन्ध साहित्यकार से भी जुड़ा होता है। वह अपने जीवन और जगत् के आदर्शों को परोक्ष रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार रचनाओं में प्रत्यक्षतः यदि युगीन सामाजिक–सांस्कृतिक चेतनाएँ विद्यमान रहती हैं तो उसमें रचनाकार की चेतनाएँ भी झांकती प्रतीत होती है। 'सामाजिक' शब्द 'समाजः समावेशनं प्रयोजनमस्य ठञ्' के अनुसार समाज्+ठञ् प्रत्यय से मिलकर निष्पन्न होता है। वहीं हिन्दी व्याकरणानुसार समाज+इक के योग से यह शब्द बनता है। 'चेतना' शब्द 'चित्' धातु से भावार्थक 'ल्युट्' व स्त्री प्रत्यय 'टाप्' से मिलकर निष्पन्न होता है। जो ज्ञान, संज्ञा, प्रतिबोध, समझ, प्रज्ञा, जीवन, प्राण, सजीवता, बुद्धिमत्ता, विचार–विमर्श आदि अर्थों को उद्भासित करता है। इस प्रकार सामाजिक चेतना समाज में विद्यमान सुसंगत व असंगत स्थितियों से पाठक को रूबरू करवाकर सचेत करने का प्रयास करती है। सामाजिक चेतना–सम्पन्न प्रत्येक रचनाकार अपनी सृजनधर्मिता के बल पर एक सुखी और उत्कृष्ट समाज का निर्माण करने का प्रयास करता है।

हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन में महिला उपन्यासकारों ने 'समाज' को अपना केन्द्रीय विषय माना है। इनमें सर्वाधिक चर्चित समकालीन रचनाकार हैं 'नासिरा शर्मा'। नासिरा शर्मा जीवन की मार्मिक अनुभूतियों की कथा लेखिका है। जहाँ आदमी और आदमीयत है वहाँ ज़िन्दगी और उसके मर्म का आलेखन ही रचना को मार्मिक और जीवन्त बनाता है। उनके लेखन में दृष्टिगोचर होने वाली सजगता और सतर्कता ही उन्हें वैशिष्ट्य प्रदान करती है। उनका आत्मचिंतन और अवलोकन दृष्टि ही उनके लेखन का आधार बनते हैं। सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर उन्होंने गहनता से विचार किया है। समाज में व्याप्त समस्त अच्छाईयों और बुराईयों को उन्होंने इस कदर उपन्यासों के ताने–बाने में पिरोया है कि वे सब स्वाभाविक व सहज बनकर पाठक को प्रभावित कर जाती हैं। हिन्दु–मुस्लिम सम्बन्ध, घरेलू और कामकाजी औरत, भ्रष्ट पुलिस व प्रशासनिक व्यवस्था, सामान्य जनजीवन, तीज–त्योहार, बेरोजगारी, बेकारी, रोजगारविहीन युवा पीढ़ी का संघर्ष, जातिगत ऊँच–नीच, छुआछूत, भ्रष्टाचार, गरीबी, शोषण, अनाथ व अभावग्रस्त बच्चे, कच्ची बस्तियाँ और उनकी समस्याएँ, स्वास्थ्य व पेयजल की समस्या, धर्म और राजनीति का घालमेल, धर्म का बाजारीकरण, उपनिवेशवाद, साम्यवाद, रिश्तों में आती दूरियाँ, बाजार की चकाचौंध, साइबर अपराध, पर्यावरण और ग्लोबल वार्मिंग इत्यादि ऐसे अनेक

मुद्दे हैं जिन पर लेखिका ने अपने विचार रखे हैं और पाठक को उनके प्रति सोचने के लिए विवश किया है। इसके अलावा समाज में व्याप्त समस्त रिश्ते–नाते जैसे माता–पिता, भाई–बहिन, पति–पत्नी, सास–बहू, पिता–पुत्र, माँ–बेटा, माँ–बेटी, पिता–पुत्री, बुआ–फूफा, देवरानी–जेठानी, देवर–जेठ, मौसा–मौसी, नाना–नानी, शत्रु–मित्र, नौकर–नौकरानी, आमजन–खास आदि समस्त मानवीय रिश्तों को नाना–नाना संदर्भों में जगह दी है तथा विभिन्न परिस्थितियों में उनकी गरिमा व मर्यादा को चित्रित किया है। संक्षेप में कहें तो 'साहित्य समाज का दर्पण है' इस उक्ति को उन्होंने बखूबी चरितार्थ किया है।

चतुर्थ अध्याय में नासिरा जी के उपन्यासों में निहित सांस्कृतिक मूल्यों व सांस्कृतिक चेतना पर निम्न प्रकार से प्रकाश डाला है–

(क) संस्कृति : अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषा

(ख) सांस्कृतिक चेतना : अर्थ, स्वरूप व परिभाषा

(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना : विविध आयाम

1. शाल्मली : सांस्कृतिक चेतना
2. ठीकरे की मंगनी : सांस्कृतिक चेतना
3. ज़िन्दा मुहावरे : सांस्कृतिक चेतना
4. सात नदियाँ एक समन्दर (बहिश्ते–ज़हरा) : सांस्कृतिक चेतना
5. अक्षयवट : सांस्कृतिक चेतना
6. कुइयाँजान : सांस्कृतिक चेतना
7. ज़ीरो रोड़ : सांस्कृतिक चेतना
8. काग़ज़ की नाव : सांस्कृतिक चेतना
9. अजनबी जज़ीरा : सांस्कृतिक चेतना
10. पारिजात : सांस्कृतिक चेतना
11. शब्द पखेरू : सांस्कृतिक चेतना
12. दूसरी जन्नत : सांस्कृतिक चेतना

'साहित्य, समाज और संस्कृति' इन तीनों में परस्पर आधार–आधेय सम्बन्ध है और परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। अतः इन तीनों में आपसी सामंजस्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। समाज की अभिव्यक्ति साहित्य का प्रारम्भिक उद्देश्य है तो समाज को सुसंस्कृत व संस्कार सम्पन्न बनाना उसका अंतिम ध्येय है। साहित्य अपनी विभिन्न विधाओं के द्वारा समाज के आचार, विचार और

व्यवहार को चित्रित करने व संवारने में लगा रहता है। साहित्य और समाज पर हम पूर्व अध्यायों में विचार कर चुके हैं। अतः यहाँ संस्कृति, उसके अर्थ एवं स्वरूप इत्यादि का अनुशीलन करना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य अपने चिन्तन, मनन व सृजन अर्थात् विवेकशीलता के कारण अन्य प्राणियों से इतर एक सुव्यवस्थित समाज का निर्माण कर सकता है। साथ ही वह इसी चेतनामूलक शक्ति के बल पर सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना और युगानुकूल उनमें संशोधन एवं परिवर्तन करता रहता है तथा उनका अनुपालन कर स्वयं को सुसंस्कृत एवं सभ्य समाज का सदस्य मानता है। कहने का आशय यह है कि जिन तत्त्वों से मानव अपना मानसिक एवं शारीरिक परिष्कार करता है और परिष्कार के उपरान्त अपनी उज्जवल वृत्तियों से समाजोन्नयन तथा राष्ट्रोत्थान करता है, वह संस्कृति है। 'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से बनता है, जिसका अर्थ होता है– 'सम्यक् क्रियाकलाप'। तदनुसार मानव की बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों के सुसंस्कृत या परिष्कृत समूह को ही 'संस्कृति' कहा जाता है और इन बाह्य एवं आन्तरिक स्थितियों में मानव के विचार, भावनाएँ, परम्पराएँ, कल्पनाएँ, चेष्टाएँ, आदर्श आदि सन्निहित हैं।

'संस्कृति' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय लगकर 'सांस्कृतिक' शब्द बनता है। सांस्कृतिक चेतना अर्थात् संस्कृति से सम्बन्धित चेतना। सांस्कृतिक चेतना व्यक्तिगत स्तर पर अनुभूत होकर भी 'स्व' से ऊपर उठकर सामाजिक हित की बात करती है। इसी कारण साहित्यकार सृजन के दौरान 'स्व' का इस तरह विस्तार करता है कि सम्पूर्ण विश्व के सांस्कृतिक तन्तु उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। वह सम्पूर्ण सृष्ट्रि में व्याप्त एक तत्त्व का दर्शन करने लग जाता है। यही चेतना का सर्वोत्कृष्ट रूप है, जिसे सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है।

प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। इसलिए समाज के चित्रण के साथ–साथ संस्कृति स्वतः ही साहित्य में परिलक्षित हो जाती है। नासिरा शर्मा समकालीन हिन्दी साहित्य की एक सशक्त और प्रभावी सृजनकार हैं। उनके उपन्यास साहित्य में विभिन्न संदर्भों व कथानकों के अन्तर्गत उनके सामाजिक बोध के साथ–साथ सांस्कृतिक बोध स्वतः ही चित्रित हो आया है। नासिरा जी का उपन्यास साहित्य चूँकि अलग–अलग कालखण्ड, अलग–अलग पृष्ठभूमि व भावभूमि पर आधारित है। साथ ही इन रचनाओं में सांस्कृतिक तन्तु एक–दूसरे में इस प्रकार सुगुम्फित हैं कि उनको किन्हीं निश्चित बिन्दुओं में बाँधना समुचित प्रतीत नहीं हुआ। अतः विषय के पर्याप्त स्पष्टीकरण एवं युग व परिवेशानुकूल विश्लेषण हेतु शोध–प्रबन्ध में सांस्कृतिक चेतना को उपन्यास क्रम से ही समझने का प्रयास किया गया है। जिसका समाहार यहाँ निस्यूत रूप में प्रस्तुत है।

नासिरा जी ने अपनी उपन्यास–रचनाओं में समकालीन सांस्कृतिक तन्तुओं को गहराई से छूकर अपनी विशिष्ट शैली के माध्यम से उसके मूलतत्त्वों को समझाने का प्रयास किया है। समकालीन समाज में चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, दोनों के खान–पान, रीति–रिवाज, रस्में, रहन–सहन, आचार–विचार, तीज–त्योहार, जीवन–पद्धति, परम्पराएँ, साज–सज्जा, आभूषण, सांस्कृतिक मूल्य इत्यादि का कुशल चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। नासिरा शर्मा प्रणीत **'शाल्मली'** नारी वैशिष्ट्य से परिपूर्ण एक महत्त्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है। इसमें नारी–जीवन के सम्बन्ध में परम्परागत एवं आधुनिक सोच के मध्य अन्तसंघर्ष का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। साथ ही शिक्षा के प्रसार के कारण नारी–जीवन में आये बदलावों तथा उनके साथ तालमेल बिठाकर चलने के लिए सावचेत किया है। समाज में लड़का–लड़की व स्त्री–पुरुष की समान भागीदारी होनी चाहिए तथा उन्हें बराबरी की नज़र से ही देखना चाहिए। क्योंकि एक स्तर के बाद हम औरत–मर्द नहीं रह जाते हैं, बल्कि हमारा काम ही हमारी पहचान होती है, हमारी अक्ल ही हमारी कसौटी होती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी अपने उद्देश्य से भटककर जीवन जीने की कला सिखाने की बजाय सरकारी नौकरी पाने तक सिमट कर रह गई है।

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास हिन्दु–मुस्लिम तीज–त्योहारों, उत्सवों व रस्मों के चित्रण के साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द का पाठ पढ़ाता है। ग्राम्य एवं लोक–संस्कृति को साकार करने के साथ ही गाँवों के शैक्षिक एवं चहुँमुखी उन्नयन पर बल देता है। यदि हमें अपने समाज व राष्ट्र का विकास करना है तो हमें सामाजिक अभिशाप बन चुकी बोसीदा रस्मों जैसे–बाल–विवाह, दहेज–प्रथा, अन्धविश्वास, जातिगत ऊँच–नीच, छुआछूत, धार्मिक भेदभाव आदि से छुटकारा पाकर बराबरी का हक देना होगा। इसके अलावा बुजुर्गों की सेवा व आदर, मानव–सेवा, सर्वधर्म समभाव, बिस्मिल्लाह की रस्म, जन्मोत्सव व उससे जुड़ी रस्मों, विवाह संस्कार आदि के प्रति भी खासा ध्यान खींचा गया है।

हिन्दुस्तान के बँटवारे की त्रासदी पर आधारित **'ज़िन्दा मुहावरे'** सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास का उद्देश्य भी यह है कि पाठक उस सेतु पर आकर खड़े हो सकें, जो एक इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है। यह बताता है कि कोई मुल्क, कोई क़ौम धन–दौलत, मोटर–गाड़ी से अज़ीम नहीं बनती, बल्कि उसी तहज़ीब और तरीक़े ही उसकी श्रेष्ठता व उन्नति का आधार होते हैं।

'सात नदियाँ एक समन्दर' (बहिश्ते–ज़हरा) उपन्यास ईरानी क्रांति पर आधारित होने के कारण इसमें ईरानी संस्कृति की पर्याप्त जानकारी वर्णित है। साथ ही राजनीतिक लिप्सा की पूर्ति

हेतु आमजन में धार्मिक उन्माद पैदा किस प्रकार इंसानियत को कुचला जाता है, इसका मार्मिक चित्रण यहाँ मिलता है। **'अक्षयवट'** उपन्यास तो इलाहाबादी पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण गंगा–जमुनी तहज़ीब का जीवन्त दस्तावेज है। इसमें हिन्दु–मुस्लिम समाज की मिली–जुली संस्कृति, रीति–रिवाजों, परम्पराओं, उत्सवों व आपसी सौहार्द को दशहरा, दुर्गापूजा, रामलीला, होली, रक्षाबन्धन, मकरसंक्रान्ति, कुंभ व माघ मेले, कार्तिक स्नान, रमजान, ईद, ताजिये, क्रिसमस पर्व आदि विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से दर्शाया गया है। **'कुइयाँजान'** उपन्यास में प्रकृति व पर्यावरण के समायोजन से सम्पृक्त हमारी प्राक्तन परम्पराओं व संस्कृति के मेल–जोल का चित्रण है। प्राकृतिक जल–स्रोतों का किस प्रकार संरक्षण व संवर्धन किया जाए? यह आचार–विचार हमारी संस्कृति व जीवन–शैली में इस कदर गुम्फित था कि वह परम्परागत ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी सहज रूप में सम्प्रेषित होता रहता था। परम्परागत जीवन–मूल्यों से विछिन्न आज हम तकनीक के नाम पर समस्याओं को सुलझाने के बजाय और विकराल बनाते चले जा रहे हैं। इस पर चिन्तन–मनन की महती आवश्यकता है। **'ज़ीरो रोड़'** उपन्यास इलाहाबादी व दुबई संस्कृति के साथ–साथ वैश्विक संस्कृति का परिचायक है। इसमें स्थानीय खान–पान, रीति–रिवाज, संस्कृति, विवाह प्रथा, लीवा नृत्य, दैनिक जीवन में ऊँट और गाफ के वृक्ष का महत्त्व, अभिवादन पद्धति, फन ड्राइव इत्यादि का सजीव वर्णन किया गया है। साथ ही अर्थोपार्जन की लिप्सा में अमानवीयतापूर्ण आचरण, रिश्तों व सम्बन्धों के बाजारीकरण, धार्मिक उन्माद इत्यादि के प्रति भी जागरुक करता है।

'कागज़ की नाव' उपन्यास वैश्वीकरण की दुनिया में हो रहे सांस्कृतिक आदान–प्रदान, मध्यवर्गीय परिवारों व समाज में व्याप्त अंधविश्वास, नैतिक अधःपतन, बुजुर्गों के प्रति बदलता दृष्टिकोण इत्यादि की ओर ध्यान खींचता है। इराक़ युद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित **'अजनबी जज़ीरा'** उपन्यास आर्थिक नाकाबन्दी के कारण त्रस्त जन–जीवन, बारूद, विध्वंस व गोलीबारी से खण्डित बगदाद की सभ्यता व संस्कृति, हालात के दबे–तले व धाराशायी होते संस्कृतिगत मानदण्ड, स्थानीय खान–पान, वेशभूषा, विधवा–विवाह की अनिवार्यता, अधिक बच्चों की पैदाईश हेतु दी जाने वाली सरकारी सहूलियतें, समकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य इत्यादि का संवेदनापरक चित्रण है। नासिरा शर्मा का **'पारिजात'** उपन्यास उनकी अभी तक की सृजनात्मकता का निचोड़ है, जिसमें विचार, बयान, भाषा, संवेदना और सरोकार बहुत ही संजीदा और धारदार बनकर उभरे हैं। धार्मिक एवं सांस्कृतिक नगरी इलाहाबाद और तारीख़ी शहर लखनऊ की लोक कला व संस्कृति के चित्रण के साथ ही उनमें युगानुकूल आये परिवर्तनों की बहुमूल्य जानकारी यहाँ दी गई है। साथ ही गुरु–शिष्य परम्परा, बच्चों की भारतीय एवं पाश्चात्य परवरिशगत भिन्नता, पीढ़ीगत दूरियाँ, ऐतिहासिक धरोहरों के प्रति उपेक्षा, सगुन और अपसगुन, अन्धविश्वास,

मोहयाल एवं हुसैनी ब्राह्मण का इतिहास, कर्बला, मर्सिया इत्यादि का भी सटीक चित्रण है। **'शब्द पखेरु'** उपन्यास में खान–पान, पहनावा, रहन–सहन, बोल–चाल, आचार–विचार आदि में हुये युगानुकूल परिवर्तनों की ओर पाठकों का ध्यान खींचा है। साथ ही सूचना एवं तकनीकी के कारण आये सामाजिक एवं सांस्कृतिक बदलावों का भी मार्मिक एवं संवेदनात्मक चित्रण है। **'दूसरी जन्नत'** उपन्यास में ऊपर से शान्त नजर आने वाले मुस्लिम समाज में अन्दर ही अन्दर चल रही सामाजिक एवं सांस्कृतिक हलचलों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही वैज्ञानिक एवं मेडीकल उपलब्धियों और धार्मिक कानूनों के अन्तःसंघर्ष के मध्य पिसती हुई ज़िन्दगियों की मनोस्थिति का विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार नासिरा जी अपनी रचनाओं में संस्कृति व उससे जुड़े तत्त्वों का सूक्ष्म विश्लेषण व विवेचन किया है।

पंचम अध्याय में नासिरा जी द्वारा विरचित उपन्यासों में अन्तर्निहित समस्याओं पर बिन्दुवार दृष्टिपात किया गया है। नासिरा जी का लेखन समकालीन समाज का जीवन्त दस्तावेज है। उन्होंने अपनी लेखनी बड़ी ही बेबाकी, निर्भीकता और साफगोई के साथ उन सरोकारों पर चलाई, जो सीधे–सीधे युगीन समाज से जुड़े हुए हैं। नासिरा जी ने अपने उपन्यासों में समकालीन व ज्वलन्त समस्याओं को कथानक में इस तरह पिरोया है कि वे किसी व्यक्ति व पात्र विशेष की न लगकर सम्पूर्ण जन की लगती है। उन्होंने न केवल समस्याओं को उठाया है अपितु उनके सटीक व तर्कयुक्त समाधान सुझाकर समस्या के मूल तक जाने का प्रयास किया है। हर वर्ग, प्रान्त व देश की समस्या परिवेशगत व सांस्कृतिक भिन्नता के कारण अलग–अलग होने के फलस्वरूप उनके समाधान भी अलग तरह से उसी परिवेश में ढूँढ़ा गया है। साथ ही अनेक स्थलों पर समस्या को इस तरह पाठकों के सम्मुख रखा है कि वे स्वतः समाधान के मुहाने पर आ खड़े होते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में समकालीन समाज में व्याप्त हर वर्ग की समस्याओं पर लेखनी चलाई है। स्त्री–पुरुष असमानता, संतानहीनता, नारी–शिक्षा में आने वाली बाधाएँ, बाल–विवाह, दहेज–प्रथा, उपेक्षित ग्राम्य जीवन, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, जातिवाद, ऊँच–नीच व छुआछूत, साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास, बुजुर्गों की उपेक्षा, सूचना क्रांति के बढ़ते दुष्प्रभाव, एड्स की भयावहता, वेश्यावृत्ति एवं लेसबियन सम्बन्ध, बच्चों के साथ अमानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं अत्याचार, बेरोजगारी, मजदूर व कामगारों की दयनीय स्थिति, भौतिकवाद एवं बाजारीकरण के दुष्प्रभाव, धार्मिक आडम्बर, जल की कमी, ऐतिहासिक धरोहर की उपेक्षा, विभाजन की पीड़ा इत्यादि समस्याओं को अपनी रचनाओं में चित्रित कर नासिरा जी ने पाठक के अन्तर्मन को झकझोरने का प्रयास किया है और उन समस्याओं के प्रति स्वयं की भूमिका तय करने के लिए विवश किया है।

षष्ठ अध्याय में नासिरा जी की औपन्यासिक रचनाओं के रचना–विधान को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझने का उपक्रम है–

(क) रचना–विधान से अभिप्राय एवं स्वरूप

(ख) नासिरा शर्मा के उपन्यास : अन्तःस्वरूप विवेचन

(ग) नासिरा शर्मा के उपन्यासों में पात्र–परिकल्पना

(घ) नासिरा शर्मा के उपन्यासों का भाषागत वैशिष्ट्य

1. भाषा व बोली
2. शब्द प्रयोग
3. वाक्य प्रयोग
4. भाषा–सौंदर्याधायक तत्त्व
4.1 मुहावरे
4.2 लोकोक्तियाँ व कहावतें
4.3 लोकगीत
4.4 नवीन अभिव्यंजना और उपमाएँ
4.5 बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक–योजना
4.5.1 बिम्ब–योजना
4.5.2 प्रतीक–योजना
4.5.3 मिथक–योजना
5. भावानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा

(ङ) नासिरा शर्मा के उपन्यासों का शैलीगत वैशिष्ट्य

1. शैली का अर्थ, स्वरूप एवं परिभाषाएँ
2. नासिरा शर्मा के उपन्यासों का शैलीगत विवेचन
2.1 वर्णनात्मक शैली
2.2 पूर्वदीप्ति शैली
2.3 चित्रात्मक शैली
2.4 व्यंग्यात्मक शैली
2.5 विश्लेषणात्मक शैली
2.6 स्मृतिपरक अथवा फ्लैश बैक शैली
2.7 संवादात्मक शैली
2.8 सूचनात्मक शैली
2.9 मनोविश्लेषणात्मक शैली
2.10 पत्रात्मक शैली
2.11 डायरी व पुस्तक लेखन शैली
2.12 वक्तव्य एवं उद्बोधन शैली
2.13 कथा शैली

(च) उपन्यासों के शीर्षकों की सार्थकता

भाषा न केवल आत्माभिव्यक्ति का माध्यम होती है अपितु वह विचारों के सम्प्रेषण का, सामूहिक चेतना के अभिव्यक्ति पक्ष का साकार स्वरूप भी होती है। प्रत्येक साहित्यकार की अपनी अलग भाषा, शैली, छवि एवं शिल्पगत पहचान होती है। उसी के अनुरूप एक साहित्यकार का अनुभवगत विस्तार, लेखकीय गाम्भीर्य, अनूठा शैली–शिल्प एवं लोक–संपृक्ति पाठकीय संवेदना को जागृत एवं झंकृत करने में समर्थ होते हैं और इस सामर्थ्य का आधार है–लेखक की स्वाभाविक प्रतिभा 'शक्ति', शास्त्र–पर्यायालोचन से उत्पन्न 'निपुणता' और साहित्य के मर्मज्ञों की शिक्षा के

अनुसार कृत 'अभ्यास'। उपर्युक्त तीनों गुणों से परिपूर्ण नासिरा शर्मा हिन्दी उपन्यास साहित्य की कुशल चितेरी हैं। उनके उपन्यासों में जहाँ भाषा–शैली का विलक्षण प्रयोग मिलता है वहीं शिल्प के स्तर पर भी पर्याप्त वैविध्य देखने को मिलता है। उन्होंने कथ्य के अनुसार ही भाषा–शैली का प्रयोग किया है। उनके उपन्यासों में सर्वत्र परिलक्षित सहजता व तरलता उनके शैल्पिक वैशिष्ट्य को प्रमाणित करती है। उन्होंने पात्र, परिवेश, भाव, कथ्य, स्थिति विशेष को देखकर ही तदनुकूल भाषा–शैली अपनायी है। साथ ही उनका लेखन अनुभवजन्य यथार्थभूमि पर आधारित है। उनकी लेखनी ज़मीन–ज़मीन का फ़र्क़ भली–भाँति पहचानती है। इसलिए कथ्य के परिवेश में आम बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों व सूक्तियों का उन्होंने भरपूर प्रयोग किया है। पात्र, परिवेश, भाव व भाषा को ध्यान में रखते हुए ही बिम्ब व प्रतीकों को समाविष्ट किया है। शब्द व वाक्यों का प्रयोग भी उसी अनुरूप हुआ है। इसलिए उनकी औपन्यासिक रचनाएँ लेखकीय प्रतिभा का प्रदर्शन करने की बजाए स्वाभाविकता की चादर ओढ़े हुए हैं।

उपसंहार रूप समापन खण्ड के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी साहित्य की पुरोधा एवं अथक लेखनी की धनी कथाकार नासिरा शर्मा द्वारा प्रणीत एवं अनुसंधेय औपन्यासिक रचनाओं के शोधगत निष्कर्षों को सार रूप में प्रस्तुत किया है। साथ ही शोधाध्ययन की सीमाओं का आकलन कर संभाव्य दिशाओं का अनुमान भी प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा अपने समय की एक समर्थ एवं सशक्त लेखिका है। समकालीन हिन्दी साहित्य और बौद्धिकता के संसार में कुछ गिने–चुने लोग ही हैं जिनके पास विषयों व विधाओं का इतना बड़ा वितान हो और एक साथ इतनी सारी भाषाओं की समझ हो। हिन्दी के अलावा अंग्रेजी, उर्दू, फारसी और पश्तों भाषाओं पर अपने अधिकार के साथ उन्होंने जितना कुछ लिखा है, वह हिन्दी साहित्य और समाज के लिए बहुत मूल्यवान है। उनके उपन्यास साहित्य के अनुशीलन उपरान्त कहा जा सकता है कि नासिरा जी एक संवेदनशील साहित्यकार हैं, समाज की सूक्ष्म अध्येता हैं, मानवता व इंसानियत की पक्षधर हैं, मानव मन की कुशल मनोविश्लेषक हैं, मनोभावों की मूर्तिकार हैं, शब्द साम्राज्ञी हैं, वाग्विदग्ध हैं, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं की रक्षक हैं, युगानुकूल परिवर्तनों की पक्षधर हैं तथा समाज की जड़ों को खोखला करने में लगी हुई विसंगतियों को सुसंगतियों में बदलने की समर्थक हैं। उनके उपन्यासों के अनुशीलन व अध्ययन–मनन के द्वारा पाठक में गहरी समझ व सूझबूझ विकसित हो सकती है। किस्सागोई के फन में माहिर नासिरा जी के उपन्यासों का कथ्य दादी–नानी के किस्से कहानियों की भाँति पाठक के अन्तर्मन में समा जाता है और एक जागरूक नागरिक में उसका रूपान्तरण करने में सफल हो जाता है। इस प्रकार एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं लोकल्याणकारी राष्ट्र के निर्माण

में नासिरा जी की महती भूमिका है। उनकी रचनाएँ समाज व राष्ट्र को सही दिशा देने में सक्षम है। शोधगत उद्देश्यों व लक्ष्यों को सुस्पष्ट करती लेखिका की कुछ पंक्तियाँ यहाँ समुद्धरणीय हैं–

"मेरे मन–मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है।.. ...मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है।"

नासिरा शर्मा द्वारा विरचित उपन्यासों का यथाशक्ति अनुशीलन कर यह शोध–कार्य विद्वज्जनों व सुधी उपासकों के सम्मुख सादर प्रस्तुत है।

♦♦♦♦

संदर्भ ग्रन्थ सूची

नासिरा शर्मा के ग्रन्थ

सहायक–ग्रन्थ

व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ

शोध–पत्रिकाएँ

संकेत स्थल

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) नासिरा शर्मा के ग्रन्थ

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	पुस्तक–विधा	प्रकाशक व प्रकाशन वर्ष
1.	सात नदियाँ एक समन्दर	उपन्यास	अभिव्यंजना प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984
2.	शाल्मली	उपन्यास	किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1987, संस्करण, 2010
3.	ठीकरे की मंगनी	उपन्यास	किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1989, संस्करण 2010
4.	ज़िन्दा मुहावरे	उपन्यास	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1993, संस्करण 2017
5.	अक्षयवट	उपन्यास	भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2003
6.	कुइयाँजान	उपन्यास	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2005, संस्करण, 2011
7.	ज़ीरो रोड	उपन्यास	भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्रं. सं. 2008
8.	बहिश्ते–ज़हरा	उपन्यास	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र. सं. 2009
9.	पारिजात	उपन्यास	किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली प्र.सं. 2011, संस्करण, 2018
10.	अजनबी जज़ीरा	उपन्यास	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 2012, संस्करण, 2017
11.	कागज़ की नाव	उपन्यास	किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2014, संस्करण, 2018
12.	शब्द पखेरू	उपन्यास	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2017
13.	दूसरी जन्नत	उपन्यास	साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, संस्करण, 2017
14.	शामी कागज़	कहानी संग्रह	सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1980, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
15.	पत्थर गली	कहानी संग्रह	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1986, संस्करण, 2011

16.	संगसार	कहानी संग्रह	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1963
17.	इब्ने मरियम	कहानी संग्रह	किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1994, संस्करण, 2010
18.	सबीना के चालीस चोर	कहानी संग्रह	किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1997, संस्करण, 2011
19.	खुदा की वापसी	कहानी संग्रह	भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1998
20.	इनसानी नस्ल	कहानी संग्रह	प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र.सं. 2001 तथा किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010
21.	शीर्ष कहानियाँ	कहानी संग्रह	हंसा प्रकाशन, जयपुर प्र.सं. 2001
22.	दूसरा ताजमहल	कहानी संग्रह	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं.–2002
23.	बुतखाना	कहानी संग्रह	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. 2002, प्र.आ. 2008
24.	मरजीना का देश–इराक	राजनीतिक विश्लेषणपरक रचनाएँ	प्र.सं.–2003
25.	अफगानिस्तान : बुजकशी का मैदान	राजनीतिक विश्लेषणपरक रचनाएँ	सरस्वती प्रेस, द यूनिवर्सिटी ऑफ विरगीनिया 1990 डिजीटिलाईज्ड 24.4.2009
26.	किताब के बहाने	लेख संग्रह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2011
27.	राष्ट्र और मुसलमान	लेख संग्रह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2011
28.	औरत के लिए औरत	लेख संग्रह	सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2003, संस्करण, 2007
29.	औरत की दुनिया	लेख संग्रह	हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, प्र.सं. 2015
30.	वो एक कुमारबाज़ थी	लेख संग्रह	2010
31.	औरत की आवाज़	लेख संग्रह	2010
32.	जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं	रिपोर्ताज	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2003
33.	यादों के गलियारे	संस्मरण	2009

34.	क़िस्सा जाम का	अनुवाद	साक्षी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1994
35.	शाहनामा–ए–फ़िरदौसी	अनुवाद	1990
36.	प्रेम कथा	अनुवाद	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 2000
37.	गुलिस्ताँ–ए–सादी	अनुवाद	1985
38.	बरनिंग पैयर	अनुवाद	1985
39.	वियतनाम की लोककथाएँ	अनुवाद	1985
40.	ईराक की रोचक कहानियाँ	अनुवाद	1980
41.	अदब में बाईं पसली	अनुवाद	2017
42.	इकोज़ ऑफ ईरानियन रिवोल्यूशन : प्रोटेस्ट पोयटरी	संपादित रचनाएँ	विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., दिल्ली, प्र.सं. 1979
43.	क्षितिज पार	संपादित रचनाएँ	सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, प्र.सं. 1988
44.	सबसे पुराना दरख़्त	आलोचना ग्रन्थ	2005
45.	बदलू (लघु उपन्यास)	बाल साहित्य	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
46.	दिल्लू दीमक (लघु उपन्यास)	बाल साहित्य	
47.	भूतों का मैकडोनल (लघु उपन्यास)	बाल साहित्य	
48.	बाज की नजर (कहानी संग्रह)	बाल साहित्य	
49.	अंधार पत्थर (कहानी संग्रह)	बाल साहित्य	
50.	संसार अपने–अपने	बाल साहित्य	2012
51.	दर्द का रिश्ता व अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह)	बाल साहित्य	2010
52.	गुल्लू (कहानी संग्रह)	बाल साहित्य	2005

(ख) सहायक ग्रंथ

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक व प्रकाशन वर्ष
53.	नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन	संपा. एम. फीरोज अहमद	सामयिक बुक्स, नई दिल्ली संस्करण, 2010
54.	नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि	संपा. ललित शुक्ल	किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2012
55.	हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना	डॉ. राजेश रानी	के.के. पब्लिकेशन, दिल्ली, 2007
56.	नासिरा शर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. विजय राऊत	दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2010
57.	नासिरा शर्मा के उपन्यासों का अनुशीलन	डॉ. विजय कुमार राऊत	दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2008
58.	नासिरा शर्मा का कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार	डॉ. शेख अफरोज फातेमा	अतुल प्रकाशन, कानपुर
59.	नासिरा शर्मा कृत ज़ीरो रोड एक अध्ययन	टी. घनश्याम	ए.बी.एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, 2016
60.	नासिरा शर्मा कृत अक्षयवट उपन्यास : एक मूल्यांकन	संपा. डॉ. शगुफ़्ता नियाज़	वाङ्मय प्रकाशन, अलीगढ़, 2013
61.	हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डॉ. शिव कुमार शर्मा	नवभारत प्रकाशन, जोधपुर 2010
62.	सामाजिक चेतना और हिन्दी साहित्य	रत्नाकर पाण्डेय	बायो–ग्रीन, 2007
63.	हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ	डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, 2007
64.	समकालीन हिन्दी साहित्य : संवेदना और विमर्श	डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ	अमन प्रकाशन, कानपुर, 2012

65.	सामयिक संचेतना और नासिरा शर्मा : वैश्वीकरण, स्त्री–विमर्श, दलित–चेतना	डॉ. (श्रीमती) मनीषा शर्मा	साहित्यागार, जयपुर, 2010
66.	हिन्दी उपन्यासों में नारी का चित्रण	डॉ. शैलजा तुलसाराम होटकर	नवभारत प्रकाशन, दिल्ली, 2009
67.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की सामाजिक चिन्ता	डॉ. कुसुम राय	अमन प्रकाशन, कानपुर, 2012
68.	समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी विमर्श	डॉ. मुक्ता त्यागी	अमन प्रकाशन, कानपुर, 2012
69.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2007
70.	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. बच्चन सिंह	राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009
71.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. नगेन्द्र	मयूर पेपर बैक्स, 2006
72.	हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
73.	औरत एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	ज्ञानेन्द्र रावत	विश्वभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
74.	भारतीय समाज और महिलाएँ	डॉ. सुषमा जैमन	साहित्यागार, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2009
75.	हिन्दी साहित्य	डॉ. विवेक शंकर	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2016
76.	काव्य प्रकाश	आचार्य मम्मट व्या. आचार्य विश्वेश्वर	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005

77.	हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग	डॉ. त्रिभुवन सिंह	हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1973
78.	उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ	सुरेश सिन्हा	रामा प्रकाशन, नजीराबाद, लखनऊ
79.	उपन्यास : स्वरूप, संरचना तथा शिल्प	शांति स्वरूप गुप्त	अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1980
80.	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास	डॉ. पारुकान्त देसाई	सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1984
81.	हिन्दी आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प–विधि	डॉ. आदर्श सक्सेना	सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर, 1979
82.	काव्यभाषा : रचनात्मक सरोकार	प्रो. राजमणि शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
83.	शैली और कौशल	पं. सीताराम चतुर्वेदी	हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, 1957
84.	काव्यालंकारसूत्र	आचार्य वामन	श्रीवाणीविलासमुद्रायन्त्रालय, श्रीरंगनगर, 1909
85.	भारतीय काव्यशास्त्र	बलदेव उपाध्याय	नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, 1963
86.	हिन्दी आत्मकथा–साहित्य का शैलीगत अध्ययन	डॉ. कमलापति उपाध्याय	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
87.	शैली विज्ञान की रूपरेखा	कृष्ण कुमार शर्मा	संघी प्रकाशन, जयपुर, 1974
88.	शैलीविज्ञान	डॉ. भोलाराम तिवारी	शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, 1997
89.	भाषा और समाज	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2004
90.	भाषा का समाजशास्त्र	रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1995
91.	भाषा, बोली और समाज : एक अन्तः संवाद	रमाकांत अग्निहोत्री, संजय कुमार	देशकाल प्रकाशन, दिल्ली, 2001
92.	संरचनात्मक शैलीविज्ञान	डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव	आलेख प्रकाशन, दिल्ली, 1980
93.	भारतीय शैलीविज्ञान	डॉ. सत्यदेव चौधरी	अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1980

94.	नई कहानी का स्वरूप विवेचन	डॉ. इन्दु रश्मि	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1992
95.	नये साहित्य : नये संदर्भ	डॉ. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1970
96.	परम्परा की आधुनिकता	हजारी प्रसाद द्विवेदी	पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
97.	हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा	डॉ. रामदरश मिश्र	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
98.	आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि	डॉ. रामदरश मिश्र	अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1975
99.	कथाशिल्पी देवेश ठाकुर	सं. प्रो. सतीश पाण्डेय	अरविन्द प्रकाशन, मुम्बई, प्र.सं. 1986
100.	अज्ञेय का उपन्यास साहित्य	डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र	हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ 1976
101.	काव्य के रूप	डॉ. गुलाब राय	प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1967
102.	नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में संवेदना एवं शिल्प	डॉ. जाहिदा जबीन	निर्मल पब्लिकेशन्स, कबीर नगर, दिल्ली, 2007
103.	उपन्यासकार देवेश ठाकुर	डॉ. पांडुरंग पाटील	क्वालिटी बुक पब्लिशर्स, कानपुर, 1988
104.	पृथ्वीराजरासो	चन्दरवरदाई संपा. मोहनलाल, विष्णुलाल पूंडिया व अन्य	नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला सीरिज, नं. 4
105.	नीतिशतकम्	भर्तृहरि व्या. मूलचन्द्र पाठक	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2017
106.	तुलसीदास दोहावली	व्या. रघु राघव	प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
107.	विश्व प्रपञ्च की भूमिका	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983

108.	समाजशास्त्र	डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार	श्री सरस्वती सदन, मंसूरी, प्र.सं. 1972
109.	समाजवाद	डॉ. सम्पूर्णानन्द	काशी विद्यापीठ, बनारस, संवत् 2004
110.	समाजशास्त्र के आधार	शम्भूरत्न त्रिपाठी	किताबघर प्रकाशन, कानपुर, 1974
111.	यशपाल के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना	चमन लाल गुप्ता	प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 1986
112.	Society : An Introdu-ctory Analysis	Maciver and page	Mamillan Company London, 1962
113.	साहित्य का आधार दर्शन	जयनाथ 'नलिन'	आलोक प्रकाशन, भिवानी (हरियाणा) प्र. सं. 1976
114.	चिंतामणि (भाग–1,2)	रामचन्द्र शुक्ल	नमन प्रकाशन, दिल्ली, 2003
115.	समकालीन कविता : मार्क्स–वादी सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में	रोहिताश्व	प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1986
116.	उग्र और उनका साहित्य	डॉ. रत्नाकर पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2026
117.	हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना	डॉ. कुंवरपाल सिंह	पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1976
118.	बींसवी शती की सामाजिक चेतना	डॉ. सोमनाथ शुक्ल	आशीष प्रकाशन, जूही, कानपुर
119.	हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना	डॉ. सुषमा गुप्ता	सूर्य प्रकाशन, नई दिल्ली
120.	अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्	आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2009
121.	साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका	मैनेजर पाण्डेय	हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकुला, 2006

122.	आचार्य हजारी प्रसाद दिवेदी के उपन्यास और आधुनिक चेतना	मंजु तंवर	युवराज पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, संस्करण, 1991
123.	दलित साहित्य आन्दोलन	डॉ. चन्द्र कुमार वरठे	रचना प्रकाशन, जयपुर, 1997
124.	रघुवंशम् (कालिदास)	व्या. हरि दामोदर वेलणेकर	चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी, 2002
125.	रामचरितमानस (बालकाण्ड)	तुलसीदास	गीताप्रेस गोरखपुर
126.	वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्	डॉ. हर्षदेव माधव	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2011
127.	भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व	डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी	पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2013
128.	प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व	डॉ. बाबूराम त्रिपाठी डॉ. श्री भगवान शर्मा	महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 1997–98
129.	संस्कृति और सौंदर्य	रामसजन पाण्डेय	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली
130.	संस्कृति के स्वर	महादेवी वर्मा	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली 2008
131.	बौद्ध संस्कृति	राहुल सांकृत्यायन	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
132.	फ्रीडम एण्ड कल्चर स्वतन्त्रता और संस्कृति	डॉ. राधाकृष्णन् अनु. विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी	अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, लखनऊ
133.	अशोक के फूल	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्र.सं. 1948
134.	कला और संस्कृति	डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल	हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद, 1992
135.	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना, 1970

136.	भारतीय संस्कृति का विकास	सत्यकेतु विद्यालंकार	श्री सरस्वती सदन, मसूरी, 1976
137.	मुगलकालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण	डॉ. रत्नचन्द्र शर्मा	जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर, 1973
138.	हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली	डॉ. अमरनाथ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2009
139.	भारतीय काव्यशास्त्र	डॉ. कृष्णदेव शर्मा	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1972

(ग) व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ

140.	बृहत् शिक्षार्थी अंग्रेज़ी–हिन्दी शब्दकोश	डॉ. हरदेव बाहरी	राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, संस्करण, 2011
141.	हिन्दी विश्वकोश	डॉ. हरदेव बाहरी	राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, संस्करण, 2006
142.	भारतीय साहित्य कोश	संपा. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1981
143.	हिन्दी विश्वकोश	संपा. नगेन्द्रनाथ 'बसु'	बी.आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली, प्र.सं. 1991
144.	हिन्दी साहित्य कोश	संपा. धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र.सं. अश्विन संवत् 2020
145.	संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश	वामन शिवराम आप्टे	अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 2006
146.	द ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी	संपा. जेम्स मुरे	ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, प्र.सं. 1884
147.	ऑक्सफोर्ड इंग्लिश–हिन्दी डिक्शनरी	संपा. एस.के. वर्मा	ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003
148.	राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश	संपा. आ. बदरीनाथ साकरिया प्रो. भूपतिराम साकरिया	पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्र.सं. 1977

149.	व्यावहारिक उर्दू–हिन्दी शब्दकोश	डॉ. सैयद असद अली	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
150.	फ़ारसी हिन्दी शब्दकोश	संपा. डॉ. चन्द्रशेखर	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2001
151.	प्रभात–व्यावहारिक हिन्दी–अंग्रेजी कोश	बदरीनाथ कपूर	प्र.सं. जनवरी, 2004
152.	व्यावहारिक सामान्य हिन्दी	डॉ. राघव प्रकाश	पिंकसिटी पब्लिशर्स, जयपुर 2002
153.	सम्पूर्ण हिन्दी व्याकरण एवं रचना	डॉ. अरविन्द कुमार	लुसेन्ट पब्लिकेशन, पटना 2010
154.	हिन्दी भाषा	डॉ. हरदेव बाहरी	अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006
155.	ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी	सर मोनियर विलियमस	मनोहर, 2006
156.	वृहद् हिन्दी कोश	संपा. मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव व कालिका प्रसाद	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, 2013
157.	अभिधानरत्नमाला	हलायुध संपा. जयशंकर जोशी	सरस्वती भवन, वाराणसी प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, प्र.सं. 1879

(घ) शोध–पत्रिकाएँ

158.	साहित्य चंद्रिका (साहित्यिक–सांस्कृतिक मासिक पत्रिका)	साहित्यागार, जयपुर
159.	मीरायन (साहित्यिक–सांस्कृतिक त्रैमासिक शोध पत्रिका)	मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़
160.	गवेषणा	केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, दिल्ली
161.	भाषा	केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली

162. मधुमति — राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
163. विश्व हिंदी पत्रिका — विश्व हिन्दी सचिवालय
164. हंस — संपा. राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली
165. माही सृजन — संपा. डॉ. मनोज पंड्या, बाँसवाड़ा
166. समकालीन भारतीय साहित्य — साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
167. समीक्षा — संपा. गोपाल राय, नई दिल्ली
168. वाङ्मय — संपा. एम. फीरोज अहमद, अलीगढ़
169. आलोचना — राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., नई दिल्ली
170. पंचशील — संपा. हेतु भारद्वाज, जयपुर
171. अक्षरपर्व — संपा. सर्वमित्रा सुरजन देशबन्धु कार्यालय, नई दिल्ली
172. गगनाँचल — भारतीय संस्कृति सम्बन्ध परिषद्, दिल्ली
173. नया ज्ञानोदय — भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
174. दो आबा — संपा. जाबिर हुसैन, पटना
175. साहित्य अमृत — संपा. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी, नई दिल्ली
176. साक्षात्कार — संपा. हरि भटनागर, भोपाल (म.प्र.)
177. समरलोक — संपा. मुरली मोहन, भोपाल (म.प्र.)
178. प्रकर — संपा. वि.सा. विद्यालंकार, अक्टूबर, 1991
179. सारिका — संपा. कन्हैयालाल नंदन, टाइम्स ऑफ़ इण्डिया, मई, 1981
180. युद्धरत आम आदमी — संपा. रमणिका गुप्ता, हजारीबाग
181. सम्बोध — संपा. कमर मेवाड़ी, सामाजिक विज्ञान अध्ययन एवं शोध संस्थान, इलाहाबाद

(ङ) संकेत स्थल

182. http://hindi.yourstory.com
183. sahitya-akademi.gov.in
184. http://www.opinionpost.in/13181-2/
185. http://epustakalay.com/...
186. rachanapravesh.blogspot.com
187. m-hindi.webduniya.com
188. satyagrah.scroll.in
189. http : en.oxforddictionaries.com
190. www.charachamanch.com
191. www.rafttar.com
192. www.hindinest.com
193. www.yugmanas.blogpost.com
194. pragyan-vigyan.blogspot.com
195. dir.hinkhoj.com
196. https://www.hindibook.com
197. https://samalochan.blogspot.com

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका / पुस्तक का नाम	ISBN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय
01.	अजीब नामहरुमी से भरी जिन्दगी है यह!	2019	शब्दार्णव	2395–5104	Volume-9, Part-I जनवरी–जून, 2019	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	नासिरा शर्मा के उपन्यास और सामाजिक बोध	2019	International Journal of Hindi Research	2455–2232	Volume-5, Issue-4 जुलाई, 2019	अन्तर्राष्ट्रीय

IIJ Impact Factor : 2.206 ISSN : 2395 - 5104

शब्दार्णव Shabdarnav

International Peer Reviewed Journal of Multidisciplinary Research

Year 5 Vol. 9, Part-I January-June, 2019

Scientific Research
Educational Research
Technological Research
Literary Research
Behavioral Research

Editor in Chief
DR. RAMKESHWAR TIWARI
Assist. Professor, Shree Baikunth Nath Pawahari Sanskrit Mahavidyalay
Baikunthpur, Deoria

Executive Editors
DR. KUMAR MRITUNJAY RAKESH
MR. RAGHWENDRA PANDEY

Published by
SAMNVAY FOUNDATION
Mujaffarpur, Bihar

अनुक्रमणिका

- मानसिक स्वास्थ्य प्रबन्धन में योग का महत्त्व — 1–5
  डॉ0 रमेश कुमार
- वैदिक देव दर्शन — 6–9
  देविका कुमारी
- संगीत के मूलाधार में नवाचार — 10–12
  डॉ0 अंशु वर्मा
- गायत्री मंत्र का माहात्म्य — 13–14
  डॉ0 दिलारा रिज़वी
- भारतीय संस्कृति और संस्कृत एक अनुपम चिन्तन — 15–17
  नीलम यादव
- संस्कृत पत्रकारिता के बदलते आयाम — 18–20
  अतीत कुमार त्रिपाठी
- भारतीय दर्शन परम्परा में वर्णित योगदर्शन का स्वरूप एवं महत्त्व — 21–25
  भावना जोशी व तनुजा जोशी
- नागार्जुन का जीवन–दर्शन — 26–29
  चन्द्रशेखर कुशवाहा
- संस्कृत–वाङ्मय में पर्यावरण — 30–33
  डॉ0 अरुण कुमार त्रिपाठी
- उपनिषदों के आधार पर नैतिक मूल्यों का शिक्षा के क्षेत्र में महत्व — 34–35
  डॉ0 चन्द्रावती
- उपनिषदीय संन्यास का तात्त्विक स्वरूप — 36–38
  डॉ0 महेश कुमार
- वैदिक वाङ्यम का कालिदास के साहित्य पर प्रभाव — 39–41
  डॉ0 मुकेश कुमार
- किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में वर्णित राजधर्म — 42–46
  डॉ0 नरेन्द्र कुमार वेदालंकार
- भारत–नेपाल के सामाजिक एवं आर्थिक संबंध : एक सिंहावलोकन — 47–49
  डॉ0 प्रियंका कुमारी
- गुप्तकालीन दण्ड विधान एवं प्रासंगिकता — 50–51
  डॉ0 प्रियंका सिंह
- भावुक और सरस गीतकार केदारनाथ सिंह — 52–55
  डॉ0 राखी उपाध्याय
- अजीब नामहरुमी से भरी जिन्दगी है यह! — 56–60
  डॉ0 मुरलिया शर्मा, श्रीमती प्रेमलता मीणा, डॉ0 समय सिंह मीना
- सत्ता की राजनीति और जयप्रकाश नारायण — 61–63
  डॉ0 सत्य प्रकाश
- मीरा के काव्य का लोकपक्ष — 64–67
  डॉ0 तारावती मीना

अजीब नामहरुमी से भरी जिन्दगी है यह!

डॉ0 मुरलिया शर्मा*, श्रीमती प्रेमलता मीणा**, डॉ0 समय सिंह मीना***

शोध सार : *दलित वह वर्ग विशेष है जिसका युगों–युगों से विभिन्न कारणों एवं विभिन्न प्रकारों से शोषण किया जाता रहा है तथा जिसके कारण वे समाज की मुख्य धारा से विच्छिन्न होकर हाँसिये पर पहुँच गये। इसी वर्ग की आवाज जो सदियों से दबायी जाती रही है, उसको अभिव्यक्ति देना समकालीन बुद्धिजीवियों, लेखकों, चिन्तों, उपन्यासकारों तथा कथाकारों ने अपना युगधर्म समझा है। ऐसी ही युगधर्मी एवं लोकधर्मी लेखिका हैं– 'नासिरा शर्मा'। इनकी रचनाओं में समाज की इस विसंगति पर प्रकाश डालकर उसे सही दिशा दिने का प्रशंसनीय कार्य किया है। समाज में व्याप्त धनिकों और पूँजीपतियों की तानाशाही पूर्ण सामन्ती व्यवस्था पर प्रहार करते हुए एवं आर्थिक एवं सामाजिक समता पर बल देते हुए नासिरा जी ने बड़ी साफगोई के साथ लेखनी चलाई है तथा पाठकों को आत्मानुशीलन के लिए विवश किया है। उनके समकालीन कथा साहित्य में मानवीय संवेदनशीलता का प्राधान्य है। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में उन्होंने बताया है कि लोकतन्त्र के इतने समय बाद भी ज्यादातर गाँवों व दलित बस्तियों का वही हाल है, जो अन्तर आया है वह न के बराबर है। महरूख जब गाँव में अध्यापिका बनकर जाती है तो वहाँ का दृश्य देखकर वह बेहद दुःखी होती है। उसका व्यथित मन कह उठता है कि "**अजीब नामहरुमी से भरी जिन्दगी है यह!** खाना है, तो कपड़ा नहीं, कपड़ा है, तो घर नहीं और अगर तीनों हैं, तो पढ़ाई और नौकरी की सहूलियतें नहीं हैं, मगर ये सारी कमियाँ तो बस इस तबके की तकदीर बन गई हैं, वरना एक तबका हिन्दुस्तान में ऐसा भी है, जहाँ में चीजें न सिर्फ बहुतायत से हैं, बल्कि बरस रही हैं। यह फर्क क्या कभी मिटेगा?*

संकेताक्षर : शोषित, झोपड़पट्टी, उपपत्तिपूर्वक, ठाकुर का कुआँ, नामहरुमी, जिजीविषा, दो कुब्बे (रोटी), सुनहरे भारत, अवज्ञा, वैश्विक गाँव (ग्लोबल विलेज़)।

शोध पत्र : दलित पद 'दल्' धातु से 'क्त' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है।[1] धात्वर्थ के अनुसार दलित शब्द का तात्पर्य है–टूटा हुआ, दबा हुआ, कुचला हुआ, पिसा हुआ, उपेक्षित, अधिकारों से वंचित एवं शोषित व्यक्ति। सामाजिक अर्थ में 'समाज का वह वर्ग जो दबा हुआ है, कुचला हुआ है, पिसा हुआ है और शोषित है, दलित कहलाता है। हिन्दी भाषा में व्युत्पत्ति के अनुसार 'दल+इत' प्रत्यय के योग से 'दलित' शब्द बनता है।[2]

'दलित' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण है– 'Depressed class'[3] Depress का अर्थ है Push or pull down; lower, make dispirited or dejcted तथा depressed का अर्थ है dispirited of miserable, suffering from depression (based on latin 'pressare' to keep pressing)[4]

इस प्रकार दलित समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसे षड्यन्त्रपूर्वक वर्चस्व सम्पन्न वर्ग ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इन आधारों पर मोटे रूप में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों, लघु तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन, मजदूरों एवं परम्परागत श्रमजीवी शोषित लोगों को दलित वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के प्रखर विद्वान् आचार्य हर्षदेव माधव जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्र 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' के अन्तर्गत दलित चेतना का निरूपण बड़े ही विस्तार के साथ एवं उपपत्तिपूर्वक करते हैं–

"शोषितदलितजनगतानां पीडाव्यग्रतारोषादीनां निरूपणं दलितचेतना।"[5]

अर्थात् शोषित, दलित लोगों की पीड़ा, व्यंग्रता, रोष आदि का निरूपण दलित चेतना है।

उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में माधव जी आगे लिखते हैं– दलित अर्थात् मृदित, पिष्ट (पिसा हुआ), शोषित (सोख लिया हुआ)। दल् धातु से क्त प्रत्यय से उत्पन्न यह शब्द खण्डित, पेषित, पीड़ित, विदीर्ण वस्तुओं का संकेत देता है। इसके अनुसार जो अन्त्यज, अस्पृश्य जो व्यक्ति है, वह दलित है। दलित शब्द से शोषण, पीड़ा, व्यथा, दुःखादि से मृदित, कष्टापन्न लोगों का अर्थ सूचित होता है। समाज व्यवस्था–वर्णव्यवस्था से, समृद्ध वर्गों के शोषण व बल से, जिन्होंने कष्ट पाया है, वे दलित हैं। दलितों के लिए आत्मगौरव बोध व उनके अधिकार ज्ञान के लिए जो क्रान्ति है, वह दलित चेतना है। दलितों ने शारीरिक कष्ट सहे। उन्होंने बहिष्कार की यातना

*पूर्व उपाचार्य, **शोधार्थी हिन्दी, ***सहायक आचार्य, संस्कृत

पाई। गरीबों का धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, शारीरिक शोषण हुआ। मानवाधिकारों से भी इन्हें वञ्चित किया गया। धनिकों ने गरीबों की अवज्ञा (तिरस्कार) की। वे भी दलित हैं।

दलित लेखक केवल भारती कहते हैं– "दलित वह है जिसे कठोर और गन्दे काम करने के लिए बाध्य किया गया, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और जिस पर सवर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की है, वही दलित है।"[6]

अवंतिका प्रसाद मरमट के अनुसार– "जिसका दलन हुआ हो अथवा जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो, ध्वस्त या नष्ट किया गया हो।"[7]

चन्द्र कुमार वरठे के अनुसार– "दलित वह व्यक्ति है, जो विशिष्ट सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है, जिसके जीने के अधिकार को छीना गया है। मात्र जन्म के आधार पर जिनको समाज में एक विशेष प्रकार का जीवन मिला है। मनुष्य के रूप में जिनके अधिकारों को ठुकराया गया है।"[8]

डॉ० माता प्रसाद ने दलित आन्दोलन को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि "दलित आन्दोलन का उद्देश्य दलित की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक असमानताओं को दूर कर सभ्य समाज का निर्माण करना है।"[9]

इस प्रकार उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित वह वर्ग विशेष है जिसका युगों–युगों से विभिन्न कारणों एवं विभिन्न प्रकारों से शोषण किया जाता रहा है तथा जिसके कारण वे समाज की मुख्य धारा से विच्छिन्न होकर हाँसिये पर पहुँच गये। इसी वर्ग की आवाज जो सदियों से दबायी जाती रही है, उसको अभिव्यक्ति देना समकालीन बुद्धिजीवियों, लेखकों, चिन्तों, उपन्यासकारों तथा कथाकारों ने अपना युगधर्म समझा है। ऐसी ही युगधर्मी एवं लोकधर्मी लेखिका हैं– 'नासिरा शर्मा'। इनकी रचनाओं में समाज की इस विसंगति पर प्रकाश डालकर उसे सही दिशा दिने का प्रशंसनीय कार्य किया है। समाज में व्याप्त धनिकों और पूँजीपतियों की तानाशाही पूर्ण सामन्ती व्यवस्था पर प्रहार करते हुए एवं आर्थिक एवं सामाजिक समता पर बल देते हुए नासिरा जी ने बड़ी साफगोई के साथ लेखनी चलाई है तथा पाठकों को आत्मानुशीलन के लिए विवश किया है। उनके समकालीन कथा साहित्य में मानवीय संवेदनशीलता का प्राधान्य है।

अपने 'अक्षयवट' उपन्यास में नासिरा जी ने इलाहाबाद की सांस्कृतिक विरासत को चित्रित करने के साथ–साथ वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक ताने–बाने में आई विकृतियों और प्रशासनिक स्तर पर फैले भ्रष्टाचार का वर्णन बड़ी ही मुखरता के साथ किया है। साथ ही अनेक स्थलों पर गरीब, वंचित एवं अभावग्रस्त वर्ग को अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत दिखलाया गया है। जब अन्याय कदाचार और शोषण अपनी हद पार कर जाता है तो वही शोषित वर्ग कोई रास्ता न पाकर अत्याचारों व अन्याय के खिलाफ उठ खड़ा होता है, इसका जीवन्त चित्रण इस उपन्यास में है। जब प्रशासन ज़मादारों की समस्याओं पर ध्यान नहीं देता है तब सभी जमादार सामूहिक हड़ताल पर उतर आते हैं जिससे सम्पूर्ण शहर की सफाई व्यवस्था ठप हो जाती है– "शहर में एक तरफ रामलीला खेली जा रही थी तो दूसरी ओर दलित सेना जैसी संस्थाएँ जमादारें की हड़ताले को लेकर चिन्ति थीं। पिछले एक सप्ताह से कुछ इलाकों में नाली कीचड़ से भर गयी थीं और कूड़े के ढेर टीले बन गये थे। सीवर की सफाई और जगह–जगह बिजली के लटकते तार दलों के निकलने में कई तरह की अड़चने पैदा कर सकते थे। नगर निगम, जल–संस्थान, बिजली विभाग की उदासनीता को लेकर कार्यकर्ता चिन्तित थे। उनका आक्रोश इस बात पर अधिक था कि चौड़ी सड़कें और बड़े मोहल्ले साफ हो जाते हैं मगर गलियों का बुरा हाल रहता है......।"[10]

श्रमजीवी मजदूरों व गरीबों की सुध–बुध लेने वाला कोई नहीं रहता है न प्रशासन और न ही धनिक वर्ग। उनकी मजबूरी को सहज रूप में अपराध की श्रेणी में रखकर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है। जब जनवरी माह में शीत से पीड़ित अपने को बचाने कुछ मजबूर जतन करते हैं तब कैसे उनके साथ व्यवहार किया जाता है, वह दृश्य है– "उन्हीं दिनों राजापुर में एक दिल दहलाने वाली घटना गुजरी। होली के अलाव को लोग जमा करते हैं सड़क किनारे और चौराहों पर, यह कोई नयी बात न थी। उसी में दीमक लगा एक खोखला तना भी था जिसको किसी ने अपने घर के सामने आँगन से निकाल डलवा दिया था। उसको सर्दी की तेजी के कारण कुछ मजदूर जला बैठे। जिसके कारण मालिक मकान को इतना गुस्सा चढ़ा कि उसने आव देखा न ताव, मजदूरों की जी भरकर पिटाई की और फिर उनके खिलाफ चोरी की रिपोर्ट दर्ज करा दी। इस तरह जाड़े से बचने की कोशिश के जुर्म में तीनों मजदूर धर लिये गये। ..मानवीय–अमानवीय घटनाओं से भरी शीतलहर हफ्ता भर बाद सारे शहर को हिलाकर चली गयी। उसके जाने से जो राहत गरीबों को नसीब हुई उससे हफ्ते

भर भोगा कष्ट सब भूल गये। इन्सान ही यह सबसे बड़ी खूबी है कि वह हर जख्म की हर पीड़ा को समय के गुजरने के साथ बिसरा देता है और जिजीविषा उसको फिर से जीने के लिए तैयार कर देती है।"[11]

जब मालिन की लड़की मुनिया जो दूसरों के घरों में साफ–सफाई का काम करती थी, वह धीरे–धीरे अपने सपनों व घर की जरुरतों को पूरा करने के लिए गलत लोगों का संग करने लगती है और गर्भवती हो जाती है। एक दिन दूसरे मोहल्ले में उसकी कुचली लाश पड़ी मिली। मुरली और ज़हीर इकट्ठी भीड़ में जाकर सारा माजरा समझ लेते हैं। मुरली द्वारा मुनिया के चाल–चलन पर प्रश्न उठाने पर जहीर उसे समाज के उस कढ़वे यथार्थ से अवगत कराता है, जिसी ओर प्रशासन की निगाह भी नहीं जाती, बस केवल उसका अपराध नजर आता है। जहीर कहता है कि "वे भी क्या करें? आस–पास जो घट रहा है, उससे कट तो नहीं सकती हैं। सिर्फ इसलिए कि वह निचले तबके की है या गरीब हैं और चारों ओर फैली सुख–सुविधाओं से वंचित हैं। ..जिन्हें इसकी पाने की ललक होती है, वह कुछ भी कर गुजरती हैं। याद है 'नजाकत' ब्यूटी पार्लर की रेड ?"[12]

प्रशासन किस कदर एक आम गरीब इन्सान के साथ जीते जी तो शोषण करता ही है अपितु उसकी लाश को भी अपनी रोटी सेकने का साधन बना लेता है। लगता है मानवीय संवेदना व इन्सानियत उनके अन्दर मर चुकी है। उन्हें केवल अपना स्वार्थ नजर आता है। जब श्यामलाल त्रिपाठी के थाने में दो सिपाही एक भिखारी को जेबकतरा साबित करने के लिए लाते हैं तब हालात से मारा वह भिखारी उनकी डाँट, लाताड़ व मार से प्राण छोड़ देता है। दूसरे दिन वास्तुविद् ओमेश पारुथी, जिसने सप्ताह भर पहले भूख से बेहाल उस व्यक्ति को खाना खिलाया था परन्तु अखबार में प्रकाशित खबर से बेहद परेशान पारुथी जानता था कि यह झूँठी खबर है क्योंकि वह भूख से मरा है। जबकि अखबार में उस भिखमंगे की लाश की फोटे इस खबर के साथ छपी थी कि "नशीले पदार्थ का सेवन नगर में बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। यह लावारिस लाश स्टेशन के पास पायी गयी, जिसकी जेब में स्मैक का खाली पैकेट पाया गया।"[13]

अपने 'कुइयाँजान' उपन्यास में लेखिका ने चित्रित किया है कि कुछ स्वार्थी व दबंग लोग गरीब व झोपड़पट्टियों में रहकर गुजर–बसर करने वाले लोगों के जीवन का कोई मूल्य नहीं होता है। शायद वे इस वर्ग के लोगों को इन्सान भी नहीं मानते तभी तो जमना किनारे वाली झोपड़पट्टी में जब सो रहे थे, अचानक आग लगा दी जाती है। सब कुछ जलकर खाक हो जाता है, फिर भी सिर्फ दो पुलिस वालों के द्वारा खाना–पूर्ति करने के अलावा कोई भी उनकी सहायता व सांत्वना देने आगे नहीं आया। कमाल और समीना जब उधर से गुजरते हैं और पास जाकर पूछते हैं, तब एक औरत रोते हुई कहती है कि "किसी को कुछ नहीं पता, बाबू। हम सब सोबत रहे। जब आग ने जो पकड़ा तो गरमी से हमारी आंख खुल गई। फिर भगदड़ मची। जिसके पास जितना पानी था, डाला, मगर आग न बुझी। ...कुछ बचा नहीं, चावल आग मा भुन गवा, तेल जल गवा .... बस तसला, बाल्टी, पतीला बचा है, वह भी पहचान मा नहीं आवत।"[14]

प्राकृतिक आपदाओं जैसे पानी की कमी, अनावृष्टि, बाढ़, तूफान, महामारी फैलना इन समस्याओं से धनिक व दबंग वर्ग तो जैसे–तैसे पैसे के बल पर अपना समय निकाल लेते हैं किनतु एक गरीब व दलित वर्ग का व्यक्ति स्वयं को नहीं सँभाल पाता क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं के साथ–साथ कुछ दबंग लोग उनको चूसने में कोई कसर नहीं छोड़ते। परिणामस्वरूप वह वर्ग अकाल काल का ग्रास बन जाता है। एक पानी को ही लें, यह तो प्रकृति का उपहार है और इस पर प्राणीमात्र का अधिकार है। फिर भी दलितों को इसे खरीद कर पीना पड़ रहा है। इस सच को उजागर करता एक व्यक्ति पानी की समस्या पर बहस करते हुए कहता है, "आपकी परेशानी अपनी जगह, हमारी धरती पर किए गए अत्याचार अपनी जगह। आप लोग प्रबुद्ध हैं। परन्तु मैं आपके सामने कह सकता हूँ कि गांव–कस्बों में 'ठाकुर का कुआं' आज भी जीवित है। उन गांवों में जहां मीठे पानी से कुएं लबालब–भरे हैं, वहां दलितों को आज भी तीन रुपए घड़ा उसी गांव का आदमी बेचता है, आप इस समस्या का समाधान कैसे ढूंढेंगे?"[15]

'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में लेखिका ने बताया है कि लोकतन्त्र के इतने समय बाद भी ज्यादातर गाँवों व दलित बस्तियों का वही हाल है, जो अन्तर आया है वह न के बराबर है। महरूख जब गाँव में अध्यापिका बनकर जाती है तो वहाँ का दृश्य देखकर वह बेहद दुःखी होती है। उसका व्यथित मन कह उठता है कि "**अजीब नामहरुमी से भरी जिन्दगी है यह!** खाना है, तो कपड़ा नहीं, कपड़ा है, तो घर नहीं और अगर तीनों हैं, तो पढ़ाई और नौकरी की सहूलियतें नहीं हैं, मगर ये सारी कमियाँ तो बस इस तबके की तक़दीर बन गई हैं, वरना एक तबका हिन्दुस्तान में ऐसा भी है, जहाँ में चीजें न सिर्फ़ बहुतायात से हैं, बल्कि बरस रही हैं। यह फ़र्क क्या कभी मिटेगा ?"[16]

लेखिका आगे लिखती हैं कि हमारे भारतीय समाज में ऊँच–नीच व छुआ–छूत इस कदर बसी हुई है कि व्यक्ति के मन से ये भाव निकलना ही नहीं चाहते। समाज में ऊँचे पदों पर बैठे व्यक्ति ही इस निम्न सोच से ग्रस्त हो तो समाज में न्याय की अपेक्षा करना बेमानी लगती है। समाज में दबा–कुचला वर्ग अन्याय व जुल्म सहकर थका–हारा चुपचाप अपने घर में बैठ जाता है। यदि कोई आवाज उठाने की कोशिश करता है, तो दबंगों के साथ–साथ प्रशासन द्वारा भी वह कुचल दिया जाता है। 'ठीकरे की मंगनी' का यह वृत्तान्त व वार्तालाप इस व्यवस्था के नकाब को उतारने के लिए काफी है। गाँव में आतंक का माहौल छाया है। पासी टोले में मुर्दा–घर जैसी खामोशी है। शाम से पुलिस ने इस टोले को घेर रखा है। लोगों को बात पुरानी लगकर भी कुछ नई–सी लग रही थी। हुआ क्या था? यही न कि घर लौटती बिन्दो को अंधेरे में काशी अपने कमरे में घसीट ले गया था। इसमें कौन–सी नई बात थी? हरिजनों पर यह जुल्म तो ढाया ही जाता रहा है। रो–धोकर, ग़म–गुस्से को पीकर सब कुछ सह लिया जाता है, मगर नई बात जो हुई थी, वह यह थी कि बिन्दो के भाई ने काशी की आंतें बाहर निकाल ली थीं और बिन्दो कुएं में समा गई थी।

"दिमाग़ बहुत खराब हो गया है? नस्लों का सुधार इनकी समझ में नहीं आता" खाट पर लेटे सिपाही ने पासियों के टोले की तरफ नजर उठाकर कहा।

"लौंडिया का जिगरा देखो, पूरा शरीफों–सा व्यवहार। अरे, बेकार पड़ी थी, काम में आ गई, तो कौन–सी अपवित्र हो गई!" लेटे हुए सिपाही ने करवट बदल कर कहा।

"नया खून है, चन्द दिन का शौक! चमार, पासी जहाँ है, वहीं ठीक हैं। सर पर बिठाने का मजा आ तो रहा है।" कान खुजाते और ज़मीन पर थूकते हुए दूसरे सिपाही ने कहा।

"कल की मार से इन सबको छठी का दूध याद आ गया होगा।" उठकर बैठते हुए जोर से अंगड़ाई ली पहले ने।[17]

अपने 'जीरो रोड़' उपन्यास में नासिरा जी ने विश्व के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्वरूप को पाठकों के समक्ष रखा है। यह उपन्यास एक वैश्विक गाँव (ग्लोबल विलेज़) दुबई की स्थिति को उजागर करता है। दुबई एक औद्योगिक एवं व्यापारिक शहर है। यहाँ सैंकड़ों राष्ट्रों के लोग अपनी रोजी–रोटी के जुगाड़ में आते हैं। भारत में भी हालात से उखड़े हुए लोग मजदूरी के लिए मध्यपूर्वी देशों की ओर जाने लगे हैं ताकि उनके घर का कर्ज चुक सके, गिरवी रखे खेतों को छुड़ा सकें, बहन–भाईयों की शादी हो सके। लेकिन दुबई में पहुँचकर वे दोहरी मार झेलते हैं। यह हसीन शहर वास्तव में ताजिरों और मज़दूरों का है। लेकिन ताजिरों के लिए जन्नत है और मज़दूरों के लिए नरक। उनके रहन–सहन की स्थिति बेहद तकलीफदेह की होती है। सिद्धार्थ देखता है कि "वहाँ सौ कनटेनर लाईन से लगे थे जिसमें दो हजार मजदूर जगह–जगह से आकर रह रहे थे। कनटेनर जो चालीस फ़ीट लंबे 7.6 फीट चौड़े और आठ फीट ऊँचे थे, जिसके दो हिस्से करके हर हिस्से में आठ लोगों को रहना पड़ता था। बाथरूम और किचन भी। सडी गर्मी, ढेरों लोग, अजीब हालात थी।"[18]

कंपनी मालिक लेबर लॉ की ताक पर रखकर मजदूरों से ऑवर टाईम तक काम करवाते हैं। गर्मी चक्कर आ जाए, आदमी बेहोश हो जाए, उल्टी कर दे तो भी इन मालिकों का दिल नहीं पसीजता। आधे दिन की छुट्टी तो दूर आधे घंटे की भी छुट्टी नहीं देते। क्रोध में आकर एक मजदूर कहता है– "अब हमको चू.. बनाने के लिए पाँच दिन काम और दो दिन की छुट्टी देने की बात कर रहे हैं। वह भी काम के घंटे बढ़ाके। तुम खुद सोचो, सुबह साढ़े छह से साढ़े तीन बजे तक बिना सुस्ताये हम बेदम हो जाते हैं। साला हमें लोहे का समझा है जो अब हमसे साढ़े छह से साढ़े पाँच तक काम करने की बात कर रहे हैं।"[19]

पेट की आग व्यक्ति को कुछ भी करने को विवश कर देती है। जब बात पेट की हो और जीवन–मरण का प्रश्न हो तो उस समय नैतिकता के मायने बदल जाते हैं। बस आपद्धर्म ही दिखाई पड़ता है। 'सात नदियाँ एक समंदर' और 'अजनबी जज़ीरा' इन दोनों औपन्यासिक रचनाओं में यही सब कुछ दिखलाया है। व्यक्ति न चाहते हुए भी वह काम कर बैठता है जो समाज की नजरों में गलत है, अपराध है, बदचलन है किन्तु उस स्थिति को जो जीता है, वही जान सकता है कि यह अपराध नहीं अपितु पेट की आग की तपन है तो सही नहीं जाती। विदेशी सेनाओं के आक्रमण और बम हमलों से ईराक पूरी तरह तहस–नहस हो जाता है। फौजी शासन के तले लोगों को जरुरत की चीजों के लिए घरेलू सामान बेचना पड़ता है। अधिकांश ईराकी समर्थक मारे जा चुके हैं। काम–धन्धे सब चौपट हैं। लोग घरों–मकानों की बिडकियों तक को बेच कर जरुरत का सामान कहें तो खाने की वस्तुएँ खरीदकर गुजर–बसर करते हैं। ऐसे भीषण समय में जब एक बूढ़ी औरत जो अपने दो छोटे नवासों की एकमात्र

संरक्षक है, ने बच्चों की भूख को शांत करने के लिए बाजार में दो कुब्बे (रोटी) छुपाकर अपने अबा में डाल ली और पकड़ी गई। तब वह समीरा से अपना दुःखड़ा रोती हुई कहती है कि "मेरे दो नवासे हैं, कल से भूखे हैं, चारा क्या था मेरे पास?"[20] यह औरत भी इस समय दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही है क्योंकि जो समर्थ थे, जिनके पास पैसा था, वे तो विदेशों में पलायन कर गये। बचे हैं तो केवल बिबस व लाचार लोग।

लेखिक इसी सत्य को पुनः समीरा के मुँह से कहलवाती हैं– "युद्धग्रस्त समाज की कठिनाइयाँ कितनी नई परेशानियों से हमारा परिचय कराती हैं तब पेट के आगे वदन बेचना, यहाँ तक कि अपने बच्चों तक को बेचना मुश्किल काम नहीं लगता बल्कि मौत को नज़दीक पाकर जीने की तमन्ना ज्यादा बढ़ जाती है, मुझे ही देखों, जवान बेटियों की भूख के आगे मैं अपनी भूख को दबा नहीं पाती...।"[21] "जिस्मफरोशी से मुझे हालात ने महफूज रखा वरना वह भी मुझे करना पड़ता....हालात अच्छाई और बुराई के मायने बदलकर रख देते हैं. ... पेट भरे लोगों के लिए उँगली उठाना कितना आसान होता है मगर भूखे के लिए रोटी हर फ़लसफ़े से बढ़कर अहम हो उठती है।"[22]

इसके अतिरिक्त दलित वर्ग का ही करने वाली उत्पीड़ित नारी का चित्रांकन अन्तिम बिन्दु में है– "लेकिन इन सब बदहालियों, गरीबी, लाचारी, अत्याचार, अन्याय, शोषण और उत्पीड़न के बीच पाठकों को खड़ा कर लेखिका उनको एक आशा की चिनगारी व रोशनी भी दिखलाती हैं। वे कहती हैं तथा अपनी रचनाओं के कुछ चरित्रों द्वारा समझाती हैं कि इस विकृत मानसिकता और अमानवीयता से छुटकारा इसी समाज के युवकों द्वारा संभव है। आज की युवा पीढ़ी की सोच धीरे–धीरे बदलने लगी है। यदि इसको समाज का साथ मिले और प्रशासन सहारा बने तो दलित वर्ग शोध व अत्याचारों से मुक्त हो सकता है। अक्षयवट के जहीर और उसके साथी, कुइयाँजान के डॉ. कमाल और समीना, ठीकरे की मंगनी की महरुख़, दूसरी जन्नत की रुखसाना ऐसे ही नव–युवकों व नई पीढ़ी का प्रतीक हैं जो अपनी–अपनी तरह से समाज को बदलने की चेष्टा करते हैं, समाज में व्याप्त शोषण, गरीबी, अत्याचार व अन्याय को दूर भगाना चाहते हैं। यदि समाज ऐसे पात्रों से प्रेरणा लेकर तथा सबको साथ लेकर चलने की चेष्टा करे तो निश्चित ही एक सुनहरे भारत का निर्माण हो जायेगा।"

सन्दर्भ :

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ0 45
2. डॉ. राघव प्रकाश, व्यावहारिक सामान्य हिन्दी, पृ0 186
3. डॉ. हरदेव बाहरी, बृहत् शिक्षार्थी अंग्रेजी–हिन्दी शब्दकोश, पृ0 200
4. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ0 219
5. डॉ. हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/2.20, पृ0 181
6. युद्धरत आम आदमी (अंक 41–42) वर्ष 1998, पृ0 41, पंचशील शोध प्रभा में उद्धृत, पृ0 125
7. पत्रिका क्रान्ति, 27 मार्च से 2 अप्रैल, 2005, पृ0 12
8. डॉ. चन्द्र कुमार वरठे, दलित साहित्य आन्दोलन, पृ0 67
9. पत्रिका हंस, जून 2002 डॉ0 माता प्रसाद, पृ0 84
10. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृ0 16
11. वही, पृ0 32
12. वही, पृ0 106
13. वही, पृ0 267
14. नासिरा शर्मा, कुइयाँ जान, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृ0 43–44
15. वही, पृ0 105
16. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ0 88–89
17. वही, पृ0 101
18. नासिरा शर्मा, ज़ीरो रोड़, पृ0 32
19. वही, पृ0 254
20. नासिरा शर्मा, अजनबी जज़ीरा, लोकभारती प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृ0 24
21. वही, पृ0 78
22. वही, पृ0 120

◆◆◆

International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 14-04-2019; Accepted: 18-05-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 4; July 2019; Page No. 26-29

नासिरा शर्मा के उपन्यास और सामाजिक बोध

डॉ. मुरलिया शर्मा [1], श्रीमती प्रेमलता मीणा [2], डॉ. समय सिंह मीना [3]

[1-3] राजकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान भारत

सारांश

युग परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन का वह साक्षी होता है। इसी बदलाव का सच हमें समकालीन साहित्य में देखने को मिलता है। नासिरा शर्मा जी का साहित्य भी समकालीन समाज तथा उसके अन्तर्मन को मुखरता के साथ अभिव्यक्त करता है। उनकी औपन्यासिक कृतियों के अध्ययन करते समय पाठक स्वयं उस परिवेश में खो सा जाता है। लेखिका ने हिन्दू–मुसलमान दोनों समाज के वास्तविक स्वरूप, सोच व मन्तव्य को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है तथा पाठक को यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि आप और हम जो सुनते हैं, समझते है या मानते हैं, सच उससे अलग भी हो सकता है। समाज में शांति, सदाचार, समानता तथा मानवता की रक्षा के लिए हमें सदा तत्पर रहना चाहिए। नर की सेवा ही नारायण की सेवा है। जरुरतमन्दों, गरीबों, दीन–दुःखियों, अनाथों व असहायों की सेवा ही ईश्वर या अल्लाह की सच्ची सेवा है, पूजा है। सुधी पाठकों को यह समझाने के लिए अपने उपन्यासों में अक्षयवट के ज़हीर कईयाँजान के कमाल काग़ज़ की नाव के रमज़ान और दूसरी जन्नत की रुखसाना सरीखे पात्र लेखिका ने रचे हैं। ज़हीर 'मुस्कान' संस्था के द्वारा अनाथ बच्चों की सेवा, पालन–पोषण, शिक्षा आदि की व्यवस्था कर, कुईयाँजान के कमाल कच्ची बस्तियों में जा–जाकर जरुरत मन्दों को निःशुल्क दवाई, खाने की वस्तुऐं, कपड़े आदि की व्यवस्था कर तथा रमज़ान असहायों की सहायता कर मानवता की रक्षा करने का संदेश देते हैं। नासिरा जी हमेशा से स्त्री–पुरुष समानता की बात करती आई हैं और यही सोच उनके उपन्यास--लेखन में हमें देखने को मिलती है। वे एक समाज की परिकल्पना करती हुई 'शाल्मली' की शाल्मली से कहलवाती है कि– "मेरे मन–मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है, फिर एक बार मैं बता दूँ कि मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म न हो होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है।

मूल शब्दः आत्मबोध, मध्यवर्ग, स्त्री–पुरुष समानता, रिश्तों की दूरी, कफ़्फ़ारा, जनजागृति, काग़ज़ की नाव, औपन्यासिक, संवेदनशील, परिकल्पना।

प्रस्तावना

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होता है। अतः कोई भी लेखक, साहित्यकार, कथाकार अथवा कवि प्रथमतः व्यक्ति होने के नाते समाज का ही एक अंग होता है। समाज की एक इकाई या घटक के रूप में लेखक दिन–रात जो कुछ भी जीता है, अनुभूत करता है, वह सब उस संवेदनशील ह्रदय–गह्वर में प्रवेश कर साहित्य के रूप में प्रस्फुटित हो उठता है। युग परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन का वह साक्षी होता है। इसी बदलाव का सच हमें समकालीन साहित्य में देखने को मिलता है। नासिरा शर्मा जी का साहित्य भी समकालीन समाज तथा उसके अन्तर्मन को मुखरता के साथ अभिव्यक्त करता है। उनकी औपन्यासिक कृतियों के अध्ययन करते समय पाठक स्वयं उस परिवेश में खो सा जाता है। लेखिका ने हिन्दू–मुसलमान दोनों समाज के वास्तविक स्वरूप, सोच व मन्तव्य को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है तथा पाठक को यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि आप और हम जो सुनते हैं, समझते है या मानते हैं, सच उससे अलग भी हो सकता है।

आज के दौर में नई पीढ़ी ज्यादातर भटकाव का शिकार है। पश्चिम के प्रभाव से वह अपने मूल संस्कारों से दूर होती जा रही है। उसके आचार–विचार, पहनावा, खान–पान, उठने–बैठने का ढंग दिखावे की प्रवृत्ति का शिकार हो चली है। नववर्ष के आयोजन को ले या किसी और आयोजन व त्योहार को, सभी के मानने के तरीके व मायने बदल गये हैं। आज की पीढ़ी पूर्णतः उन्मुक्त व स्वच्छन्द विचरण कर रही है। उसमें आत्मबोध की न्यूनता दृष्टिगोचर हो रही है। इसी की ओर संकेत करती हुई नासिरा जी अपने उपन्यास 'अक्षयवट' में आंग्ल नववर्ष के समय उपस्थित एक दृश्य का जहीर की नजर से वर्णन करती हुई लिखती है कि "इन सारी रंगीनियों को देखने जहीर और मित्र मण्डली भी पहुँची हुई थी। वे सब जवान थे, मगर इन नवजवानों को देखकर, जो पन्द्रह से बीस तक की उम्र के थे वे अपने को बुजुर्ग महसूस कर रहे थे। इस बीच समय किस तेजी से बदला है, इसका अन्दाजा उन्हें आज हो रहा था कि हर लड़की–लड़के का कोई न कोई ब्वॉयफ्रेण्ड और गर्लफ्रेण्ड था, जिसके साथ वह नये आने वाले वर्ष का सपना देख रहे थे। इनमें से जाने कितने जोड़े विवाह मण्डप तक पहुँचे और कितनों कि मित्रता साल के मध्य तक जाते–जाते टूट गयी। सम्बन्धों का इतनी जल्दी खिलना और उतनी ही शीघ्रता से कुम्हला जाना शायद ही आज का यथार्थ है?.......वहाँ आये सभी लड़के--लड़कियों ने अच्छे कपड़े पहन रखे थे। कुछ जवान लड़कियों ने ऐसी पोशाकें पहन रखी थीं जिसको देखकर यह गुमान हो रहा था कि यह दिसम्बर माह की सर्द रात नहीं बल्कि जून माह की गर्म दोपहर है..............।" [1]

साथ ही लेखिका ने यह भी है कि इस भटकाव की शिकार नई पीढ़ी को यदि माँ--बाप चाहें तो सही और गलत के मायने समझाकर, अच्छे संस्कार देकर पुनः रास्ते पर ला सकते हैं। पर इसके लिए बड़े--बुजुर्गों को चाहिए कि वे अपनी औलादों के सामने आदर्श बनकर खड़े हों। जैसे 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में महजबीं अपनी बेटी महलक़ा को समझाती हुई कहती है– "मैंने तुम्हें कई बातों में ग़लत मशविरे दिए, वह मेरी ममता की खुदगर्ज़ी थी। अब मेरी आँखें खुल चुकी हैं। जैसे मैंने अपनी ग़लती मान ली है, अब तुम भी मान लो और तौबा करो। तौबा का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। उस नेक बंदे को जो तुम्हारे शौहर का बाप है उसकी ख़िदमत कर अपना कफ़्फ़ारा अदा करो

वरना मैं तुम्हें दूध बख़्शने वाली नहीं हूँ, यह मेरा आख़िरी फ़ैसला है।" [2]

आज सामाजिक ताना–बाना टूटता जा रहा है। इसक एक कारण बाजारवाद व भौतिकवाद है। सारे–रिश्ते–नाते स्वार्थपरक होते जा रहे हैं। परिवार में जो कमाता है उसके साथ सारे लोग चिपके रहते हैं। इस प्रकार के अर्थ–प्रधान समाज का चेहरा हमारे सामने रखते हुए नासिरा जी लिखती हैं कि "इस शहर को बाज़ार ने बिगाड़ा है और बाज़ार आया कहाँ से ? बात सिर्फ़ पैसे की है। हमारा इलाका पैसे का लालची हो चुका है। बाहर का आया पैसा जो मर्दों के खून–पसीने की कमाई है, उनकी कुर्बानी और तन्हाई का निचोड़ है। वह अपनी जगह से चलकर हमारे बैंकों में जब पहुँचता है तो कभी दुगना तो कभी चौगुना हो जाता है। उस मेहनतकश इनसान के कुनबे वाले उससे सिर्फ़ पेट नहीं भरते हैं बल्कि अय्याशी में लग गए हैं। गुलछर्रे उड़ाते हैं। इस पैसे ने हमारे रिश्तों में दरारें डाल दी हैं। माँ हो या बाप, भाई हो या बहन, सास हो या ससुर, नंद हो या फूफी, सब सोने के अंडे देने वाली मुर्गी को अपना बनाकर रखना चाहते हैं, कोई तुतेरेपन से तो कोई भुस में चिंगी डालकर तो कोई शैतानी अमल करवाकर। और मारा जाता है वह इनसान जो रात–दिन मेहनत करता है अपने खानदान के लिए ताकि सारे लोग घर के पढ़ सकें, साफ़–सुथरे घर में रह सकें। माँ का इलाज हो सकें, बाप की आँख खुल सके, बहन की डोली उठ सके और रहन पड़ी ज़मीन छूट सके...... ।" [3]

लेखिका ने मलकानूर के चरित्र के माध्यम से पाठकों को यह भी समझाया है कि समाज में पीढ़ीगत अन्तंराल व सोच में परस्पर तालमेल बिठाना अत्यावश्यक है। नौजवान पीढ़ी नई सोच व ज़ज्बात लिए आगे बढ़ रही है और बुजुर्ग लोग पुरानी रीतियों व मर्यादाओं का हवाला देते हुए उन्हें बाँधना चाहते हैं। यहाँ चाहिए कि दोनों को एक–दूसरे के ज़ज्बातों, समय की जरुरतों व मर्यादाओं को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना होगा। नहीं तो मलकानूर की तरह परिवार नष्ट होते चले जायेंगे और हम एक–दूसरे को, समकालीन परिस्थितियों को दोष देते हर जायेंगे। पीढ़ीगत सोच को उजागर करती हुई लेखिका मलकानूर से कहलवाती है कि "हम नौ कक्षा पास हैं, अंग्रेजी मीडियम स्कूल में पढ़े और शादी यहां कर दी जहां कोई कुछ नहीं समझता।....छत की सीढ़ी वाले दरवाज़े में ताला डाल दिया। बाहर निकल ही नहीं पाती थी। छत पर भी जाना बंद हो गया। घर फ़ोन पर मां से बताया तो वह सास से बात करने के उलटे हमें समझाने लगीं। मायके जाने को कहा तो इनकार। इनका फ़ोन आया तो बोले, हमारे मां–बाप की बात मानो। हमारा दुःख सुनने का किसी के पास टाइम न था। बच्चे को हमसे दूर रखती थीं। इस सबके बाद हम उस घर में रहकर क्या करते ? शादी से पहले तय हुआ था हम आगे पढ़ाई जारी रखेंगे मगर अब कहते हैं हमें कुछ भी याद नहीं।...........देखा, कैसा घुटा–घुटा घर है? कमरे की खिड़की जो गली की तरफ खुलती थी उसे चुनवा दिया। गर्मी और हब्स से बच्चा सारी रात रोता था तो भी हमें बातें सुनातीं–बच्चा पालना नहीं जानती, मायके वालों ने वायदा किया था कि मोटर साईकिल के साथ नक़द लाख रूपया देंगे मगर अस्सी हज़ार देकर कुड़क मुर्गी हो गए।" [4]

समाज में भ्रष्टाचार इस कदर बढ़ गया है कि मानो वह मानव–जीवन का हिस्सा हो। किसी भी महकमें की गिरेबां में छाँक कर देखो, सबका हाल–बेहाल है। बिना जान–पहचान और मुट्ठी गर्म किये किसी भी कार्य का करवाना बहुत कठिन है। इसमें पुलिस महकमा तो बेहद बदनाम है। 'सात नदियाँ एक समंदर', 'अजनबी ज़ज़ीरा', 'ज़ीरो रोड़', 'अक्षयवट', इन सभी उपन्यासों में बड़ी मुखरता के साथ इस यथार्थ को लेखिका ने उजागर किया है। देश की सीमा पार कराना हो, बीजा बनवाना हो, नौकरी दिलवानी हो या कोई भी काम निकलवाना हो तो वैसे सबसे महत्त्वपूर्ण साधन दर्शाया गया है। सिपाही रामस्वरूप अपने पट्टीदारी के विवाद से तंग आकर अपने साथी बलवीर से कहता है– "पुलिस की जात तो तुम जानत हो, दरोगा हरपाल सिंह बड़ा हरामी है। खाये–पिये के आगे ओका कुछ औस सूझत नाही है। ठाकुर का लौण्डा बोतल–वोतल देय–दिलाय के और मुट्ठी गर्म कर सच्चाई दबाय दीस,.....पुलिस के मोहकमा में आये के, जानो आँख खुल गयी। सब समझ के भी हाथ कटवाये का पड़त है। अब का बोलें?" [5]

आज गाँवों से शहरों की ओर पलायन होने के कारण समाज अनेक प्रकार की समस्याओं का शिकार होता जा रहा है। युवकों के काम–धन्धे की तलाश में शहर व परदेश में लम्बे समय के लिए चले जाने के कारण पीछे रह जाते हैं असहाय व बूढ़े मां–बाप, अबोध व अजन्मे बच्चे, और अनेक बंदिशों व विरह वेदना से पीड़ित पत्नी। इस कारण परस्पर विश्वास, प्रेम, त्याग, सेवा, मेलजोल इत्यादि शुष्क होते चले जाते हैं। कागज़ की 'नाव' जहूर मियाँ व मलकानूर हो, चाहे 'जीरो रोड' का सिद्धार्थ सभी इस समस्या से त्रस्त है। लगभग यही रिश्तों की दूरी का जीते–जागते उदाहरण है, शाल्मती की शाल्मती, ठीकरे की मंगनी की महरुख़ और पारिजात का रोहन।

पर अनेक समस्याओं के बावजूद भी लेखिका ने पाठकों को समझाया है कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्ताँ हमारा'। निज़ाम बँटवारे के बाद पाकिस्तान चला गया और अपनी मेहनत के बाद बड़ा अमीर आदमी बनता है घर परिवार बसाता है और मौज से रहता है पर जब वह लम्बे अरंसे बाद अपने मूल वतन भारत लौटता है और अपने भतीजे की जीवन–शैली को देखता है, तो वह कुंडत सा हो जाता है और पछताते हुए कहता है "पछतावा.... .बहुत पछतावा हो रहा है, बेटे! तुम से क्या छिपाना। कुछ मज़ा नहीं आया ज़िन्दगी में सब कुछ पाकर भी। क्या खोया, यह आज समझ में आया। आज तक हिन्दू–मुसलमान फसाद की खबरें तो पाकिस्तान में पहुँचती रही थीं, मगर यह इत्तला वहाँ नहीं पहुँची थी कि एक मुसलमान अफसर के नीचे हजारों मातहत हिन्दू भी हो सकते हैं और..........दंगे–फसाद से मारे जाने के बाद भी इस मुल्क में उनकी खुशहाली पिछले चालीस वर्षों में पनप उठी है, जो बहुत कुछ न कहकर थी बहुत कुछ बताती है कि असलियत वह नहीं, जो बताई है, बल्कि सच्चाई वह है, जो नज़र आ रही है।" [6]

समाज में शांति, सदाचार, समानता तथा मानवता की रक्षा के लिए हमें सदा तत्पर रहना चाहिए। नर की सेवा ही नारायण की सेवा है। जरुरतमन्दों, गरीबों, दीन–दुःखियों, अनाथों व असहायों की सेवा ही ईश्वर या अल्लाह की सच्ची सेवा है, पूजा है। सुधी पाठकों को यह समझाने के लिए अपने उपन्यासों में अक्षयवट के ज़हीर कईयाँजान के कमाल काग़ज़ की नाव के रमज़ान और दूसरी जन्नत की रुखसाना सरीखे पात्र लेखिका ने रचे हैं। ज़हीर 'मुस्कान' संस्था के द्वारा अनाथ बच्चों की सेवा, पालन–पोषण, शिक्षा आदि की व्यवस्था कर, कुईयाँजान के कमाल कच्ची बस्तियों में जा–जाकर जरुरत मन्दों को निःशुल्क दवाई, खाने की वस्तुऐं, कपड़े आदि की व्यवस्था कर तथा रमज़ान असहायों की सहायता कर मानवता की रक्षा करने का संदेश देते हैं।

वहीं रुख़साना अपने चिकित्सकीय पेशे के द्वारा सन्तानहीन माँ–बाप के जीवन में खुशियाँ लाने का प्रयास करती है। लेखिका ने फ़रहाना और गुलज़ार की कहानी के द्वारा समाज के सामने अनेक प्रश्न उपस्थित कर सोचने को विवश किया है। मुस्लिम समाज में व्याप्त बुराईयों, स्त्री–पुरुष असमानता, इनसानी जिंदगी, धर्म और ज़रुरत के मध्य तालमेल बैठाना इन सब विषयों पर बहस करना आज समय की जरुरत है यह बताया है। अतः लेखिका लिखती हैं कि "लंबी बहस के बाद यह तय पाया कि हमको कमेटी बना आलिमों व मौलवियों से मिलकर इस बाबत

दरख़्वास्त करनी चाहिए कि जब धर्म का दखल हम, इन्सानी जीवन में रोक नहीं सकते हैं और मेडिकल साइंस के बढ़ते कदम को भी नकार नहीं सकते हैं। ऐसी हालत में वह इस समस्या को औरत को नज़र में रखते हुए एक नया रास्ता निकालें ताकि औरतें सताई न जाएं।" [7]

स्वातंत्र्योत्तर काल में समाज में जमीदार पद्धति का उन्मूलन हुआ और उसके स्थान पर पूँजीपति व्यवस्था पनप गई। शोषक का सिर्फ नाम बदला है। पूँजीपति, महाजन या साहूकार के शोषण से त्रस्त गाँवों में रहने वाला मजदूर, किसान व आम आदमी अपनी थोड़ी सी जमीन को भी अपने अधिकार में रखने में असमर्थ है। ठीकरे की मंगनी उपन्यास में इस शोषण की समस्या को उठाया गया है। महरूख जिस ग्रामीण इलाके में अध्यापन कराती है वहाँ पर कृषकों, निम्न वर्गों व मजदूरों का शोषण होता हुआ दिखलाया है। महरूख गणपत काका और उसके परिवार को शोषण से मुक्त होने का मार्ग दिखलाती है तब जो संवाद होता है वह शोषण के स्वरूप को उजागर करने में काफी है। कामता कहती है ""देखो बड़की दीदी, अब गलत बात नाहीं सहनी....ठीक है, इस गांव का हर फैसला पक्के मकान वाले और पत्थर वाले लाल के घर तय होता है। मगर इसका यह मतलब नहीं है कि हम सब लोगन हथियार डाल के बैठ जाये। हमारी बात भला वह क्यों समझिए! वह तो हमें का करनी पड़ि हे, अब कौनो चारा नाही है। एके सिवाय हम खुदम अपनी लड़ाई लड़ैं।" [8] तब गणपत काका कहते हैं कि "अत्याचारों का कौनो धर्म नाहीं होत बेटवा–ई राक्षस तो हम लोगन का निगले के वास्ते सदा रहि हैं।" [9]

समान में धीरे–धीरे जन–जागृति व शिक्षा के प्रसार के परिणामस्वरूप जातिगत बंधन कुछ ढीले अवश्य हुए हैं। आपसी भेदभाव व छुआछूत कुछ कम हुआ है परन्तु अभी भी यह कलंक भारतीय समाज के माथे पर लगा हुआ है। कुछ राजकीय मजबूरीवश कहें या कुछ अन्तर्मन से इस कुरीति से स्वयं को मुक्त अवश्य मानते हैं परन्तु आज भी निम्न जातियों, गरीबों के साथ वही भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जा रहा है। विशेषकर गाँवों में आज भी पिछड़ी जातियों के लोगों के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया ज़ाता है। कुछ कथित ऊँची जाति के लोग भले ही राजकीय पदों पर प्रतिष्ठापित हो गये है और दिखावे के लिए समानता का व्यवहार करते हैं परन्तु उनके मन का कीडा अभी मरा नहीं है। ऐसे लोगों की नजरों में निम्न जाति के लोग हेय हैं, उनके लिए कोई सम्मान नहीं है। आज भी गाँवों में आये दिन निम्न वर्गों की बहू–बेटियों, औरतों के साथ कदाचार हो रहे हैं, परन्तु कुछ ही मामले उजागर हो पाते हैं, अधिकांश मामले तो दबंगों द्वारा वहीं दबा दिये जाते हैं। 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास में जब हरिजन लड़की बिन्दो को अंधेरे में काशी अपने कमरे में घसीट ले गया था उसका वृत्तान्त इस प्रकार है– "घर लौटती बिन्दो को अंधेरे में काशी अपने कमरे में घसीट ले गया था। इसमें कौन–सी नई बात थी ? हरिजनों पर यह ज़ुल्म तो ढाया ही जाता रहा है। रो–धोकर, ग़म–ग़ुस्से को पीकर सब कुछ सह लिया जाता है, मगर नई बात जो हुई थी, वह यह थी कि बिन्दो के भाई ने काशी की आतें बाहर निकाल ली थीं और बिन्दो कुएं में समा गई थी।"[10] इस घटना के सम्बन्ध में जो सरकारी महकमे के सिपाही आपस में वार्तालाप करते हैं, वह बेहद शर्मनाक और वर्तमान समाज की हकीकत को बयां करता है। साथ ही संकेत करता है कि सरकारी स्तर पर भी इनके साथ कितना न्याय होता है? इसका विस्तृत विवरण दलित चेतना के अन्तर्गत दिया गया है।

समाज में धीरे–धीरे पेशेवर कारीगर, मजदूर, मिस्त्री, कलाकार अपने–अपने पुश्तैनी काम–धन्धों को छोड़कर रोजी रोटी की तलाश करते हुए दूसरे काम–धन्धे करने लगे हैं। जिसके कारण किसी कार्य को करने वाले पेशेवर दक्ष कामगारों का अभाव होता जा रहा है। 'काग़ज़ की नाव' उपन्यास में जब अमज़द अपनी बेटी महलका के मकान की मरम्मत करवाने की तलाश करते हैं और इसके लिए अपने दफ़्तर में पूर्व कार्यरत व सेवा निवृत सहायक कर्मचारी भोलानाथ जो आजकल ठेकेदारी करने लगा था, को फोन कर बुलाते हैं, तब वह कहता है कि "क्या बताएं सर जी, बड़ा बुरा हाल है। कारीगर अब कारीगर नहीं रहा, सब नौसिखिए हैं। न हाथ साफ़ है और न मन, बस दिहाड़ी चाहिए। जो पुराने एक–दो हैं वे बीमार होकर बाहर से लौटे हैं और मेरी तरह ठेकेदारी कर रहे हैं।" [11]

यही हाल 'कुईयाँजान' के कमाल को अपने मूल गाँव मुस्तफाबाद जाने पर पता चलता है। हातिम उसे मोहल्ले–दर–मोहल्ले घूमता हुआ गाँव की स्थिति को बयां करता हुआ कहता है कि "जो सबसे अजीब बात उसे लगी, वह यह थी कि कोई भी हुनरमन्द अपने आबाई पेशे से नहीं जुड़ा था। तालाब में सिंघाड़ा बोने वाले तालाबों के पट जाने और नल लग जाने के कारण, अब घर–घर पहुँचाने की जगह रेडीमेड कपड़ों की रेड़ी लगाने लगे थे। कहार और कुम्हार कटाई–बोआई में लग गए थे। दर्जियों की हालात थोड़ी बेहतर थी। मगर उनके लड़कों का रुझान पीसीओ और केबिल की दुकान खोलने की तरफ लगा था। मिस्त्री और प्लंबर मध्यपूर्वी देशों में काम ढूँढ रहे थे। सारा निजाम तितर–बितर नजर आ रहा था। समस्या पेट की थी, खानदानी हुनर की नहीं। जहाँ जिसको कमाई नजर आती, वह वहीं रहने लगता।" [12]

लेखिका अपनी औपन्यासिक रचनाओं के कथानकों के माध्यम से पाठकों को समझाती हैं कि औद्योगिक विकास के साथ–साथ समाज में मध्यवर्ग का तीव्र गति के साथ उदय और विकास हुआ है। इसमें क्लर्क, वकील, डॉक्टर, शिक्षक आदि आते हैं। इस वर्ग के लोगों में पर्याप्त भिन्नता होती है। इस वर्ग की यह मजबूरी होती है कि ये अपने को बढ़ा चढ़कर प्रदर्शित करने की कोशिश करते हैं। बच्चन सिंह जी भी इस सम्बन्ध में लिखते है कि "मध्यवर्ग की एक बहुत बड़ी कमजोरी है–अपनी स्थिति से बढ़कर अपने को प्रदर्शित बड़ी कमजोरी है– अपनी स्थिति से बढ़कर अपने को प्रदर्शित करने की स्पृहा।" [13] 'जीरो रोड' उपन्यास में जब रामप्रसाद के घर दुबई से सिद्धार्थ के मित्र विश्वप्रसद्धि फोटोग्राफर रमेश शुक्ला और फिल्म निर्माता ईयाद आने वाले थे। तब "रामप्रसाद जी का घर दीपावली से पहले पुता था, अब फिर उसकी सफाई सुथराई बड़ी तेजी से चल रही थी। घर का जो कोना ज़रा भी उपेक्षित पड़ा दिखाई दिया उसे रगड़कर चमका दिया गया। फूलों के गमले भी कंपनी बाग से लाकर बरामदे में रख दिये गये। चाय और डिनर सेट के साथ फूलदार चादरें और प्लास्टिक मेज पोश भी राधारानी बाजार जाकर खरीद लायी थीं... .।" [14]

इसी मध्यवर्ग की जीवन–शैली का एक पक्ष यह भी लेखिका ने उद्घाटित किया है कि नौकरी की तलाश तथा ऊँचा उठने की स्पृहा ने मध्यवर्ग के परिवारों को अपनी जड़ों से दूर शहरों में ले जाकर अलग–थलग सा कर दिया है। जब तक सब कुछ अनुकूल होता है तब तक वह अपने को धन्य समझता है परन्तु जब भी विपरीत समय होता है या दुःख–दर्द आता है तब वह सहारे की तलाश में अपनों को याद–करता छटपटाता है। क्योंकि अजनबी शहर में वह अपने नाते–रिश्तेदारों, परिवार वालों से दूर होता है। ऐसी ही स्थिति 'शब्द पखेरू' उपन्यास में देखने को मिलती है। सूर्यकान्त की पत्नी 'साधना' के बीमार होने पर घर की नींव हिलने लगती है। एक तरफ दोनों बेटियों की पढ़ाई और उनके सपने, दूसरी तरफ पत्नी की देखभाल और नौकरी में से किसी एक का चुनाव क्योंकि उसका स्थानान्तरण दूसरे शहर में हो जाता है। साधना की सुध–बुध लेने तथा उसके मन को समझने के लिए किसी के पास समय नहीं होता है। पर धीरे–धीरे "सिर्फ़ साधना को ही नहीं बल्कि पूरे परिवार को यह बात समझ में आ गयी थी कि रोगी का रोग केवल शारीरिक नहीं होता

बल्कि संवेदनाएँ भी शरीर को क्षतिग्रस्त बना देती है। जिसकी तरफ़ किसी का ध्यान नहीं जाता है कि उसे हौंसले की, बढ़ावे की, प्यार की सख़्त ज़रुरत होती है। साधना ने रिश्तेदारों ने ऐसी पटक–झटक दिखाई थी। नौकरों ने उसकी ऐसी गत बनाई थी कि वह रोग की जगह जीवन–मुक्ति की कामना हर समय करती थी.........सूर्यकान्त भी कर्तव्य को निभाने के चक्कर में उससे दूर होते चले गये। उसे एक मुर्दा औरत समझ बैठे जिसे डॉक्टर, दवा को ज़रुरत थी प्यार और स्पर्श की ज़रुरत बाकी नहीं रह गयी थी। बेटियाँ भी तब दूर–दूर से देखती और कमरे से भाग जाती थीं। कितनी व्यथा, कितनी वेदना, कितनी पीड़ा सही है उसने। आखिर वह इस तरह जीकर करती भी क्या? लेटे–लेटे वह ननद की बातें सुनती– "भैया अब दूसरी शादी का सोचो हम भी कब तक अपनी गृहस्थी को छोड़–छोड़कर आते रहेंगे?" [15]

नासिरा जी हमेशा से स्त्री–पुरुष समानता की बात करती आई हैं और यही सोच उनके उपन्यास–लेखन में हमें देखने को मिलती है। वे एक समाज की परिकल्पना करती हुई 'शाल्मली' की शाल्मली से कहलवाती है कि– "मेरे मन–मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहाँ कोई किसी का दास नहीं है, फिर एक बार मैं बता दूँ कि मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म न हो होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है।" [16]

इस प्रकार नासिरा जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों के विभिन्न कथानकों, चरित्रों व पात्रों के माध्यम से समकालीन समाज के यथार्थ को उजागर किया है। समाज के विविध स्वरूपों व विविध पक्षों पर प्रकाश डालकर पाठकों को सोचने पर विवश किया है कि उन्हें समाज में किन–किन पक्षों पर सुधार करने की जरुरत है? और किन–किन बातों को साथ लेकर चलना है? बदलते परिवेश व युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उन्हें बदलना है। संक्षेप में कहें तो एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना लेखिका ने प्रस्तुत की है।

संदर्भ सूचि

1. नासिरा शर्मा, अक्षयवट, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2003 पृ.सं.–28–29
2. नासिरा शर्मा, काग़ज़ की नाव, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018, पृ.सं.–49
3. वही, पृ.सं.–66
4. वही, पृ.सं.–79
5. अक्षयवट, पृ.सं.–102–103
6. नासिरा शर्मा, ज़िन्दा मुहावरे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ.सं.–126–127
7. नासिरा शर्मा, दूसरी जन्नत, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 2017, पृ.सं.–90
8. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ.सं.–169–170
9. वही, पृ.सं.–170
10. वही, पृ.सं.–101
11. काग़ज़ की नाव, पृ.सं.–88–89
12. नासिरा शर्मा, कुइयाँजान, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.सं.–413
13. बच्चन सिंह, उपन्यास का काव्यशास्त्र, बच्चन सिंह, पृ.सं.–57
14. नासिरा शर्मा, ज़ीरो रोड, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008, पृ.सं.–69
15. नासिरा शर्मा, शब्द पखेरू, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृ.सं.–54–55
16. नासिरा शर्मा, शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ.सं.–165